खंड: 1-2, अंक: 4-5, जुलाई-दिसम्बर 2021
Vol: 1-2, Issue: 4-5, July - December 2021

प्राग्ज्योतिका

PRAGJYOTIKA

सिख गुरुओं का योगदान (विशेष संदर्भ: पूर्वोत्तर भारत)

श्री गुरु तेगबहादुर जी के चार सौवें प्रकाश वर्ष को समर्पित अंक

www.pragjyotikapatrika.com

Gurudwara Barchha Sahib,
Dhanpur, Assam

Gurudwara Nanashahi,
Dhaka, Bangladesh

Gurudwara Badi Sikh Sangat,
Calcutta

Gurdwara Chacha
Faagumal Sahib Ji,
SASARAM, BIHAR

खंड : 1-2, अंक : 4-5, जुलाई-दिसम्बर, 2021

प्राग्ज्योतिका

सिख गुरुओं का योगदान (विशेष संदर्भ : पूर्वोत्तर भारत) अंक

साहित्य, मानविकी, समाज विज्ञान और प्रदर्शनकारी कलाओं की 'पीयर रिव्यूड एंड रेफ्रीड' शोध पत्रिका

संपादक

प्रो. चन्दन कुमार

कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली -110007

अतिथि संपादक

डॉ. शोभा कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, किरोड़ीमल महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

समीक्षा समिति

प्रो. त्रिभुवन प्रसाद

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

प्रो. प्रकाश नारायण

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी,
उत्तर प्रदेश-121005

प्रो. ओकेन लेगो

राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर,
अरुणाचल प्रदेश-791111

डॉ. दिव्यज्योति महंत

कृष्णकांत हांडिक राज्यस्तरीय मुक्त विश्वविद्यालय,
गुवाहाटी, असम-781017

डॉ. नरेंद्र शुक्ल

नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय,
दिल्ली-110011

परामर्श मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर,
राजस्थान-302004

प्रो. ज्ञानतोष कुमार झा

प्राचार्य, आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110021

प्रो. हरीश कुमार शर्मा

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर,
उत्तर प्रदेश-272202

प्रो. हितेंद्र मिश्र

नॉर्थ-ईस्टर्न हिल विश्वविद्यालय, शिलांग,
मेघालय-793022

प्रो. संजय कुमार

मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल,
मिजोरम-796004

डिजाइनिंग एवं टाइपिंग

आविद अली, दिल्ली

कवर डिजाइनिंग

गौरव सिंह, दिल्ली

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली-110089

CENTRE FOR LITERARYAND CULTURAL STUDIES (CLCS), DELHI- 110089

Volume : 1-2, Issue : 4-5, July - December, 2021

Pragjyotika

Peer-Reviewed&Refereed Journal of Literature, Humanities, social science and PerformingArts

Editor

Prof. Chandan Kumar
Faculty of Arts
University of Delhi, Delhi-11007

Guest-Editor

Dr. Shobha Kaur
Associate Prof. Kirorimal College
University of Delhi, Delhi-11007

Peer-Review Committee

Prof. Tribhuwan Prasad
University of Delhi, Delhi-110007

Prof. Prakash Narayan
University of Delhi, Delhi-110007

Prof. Rakesh Kumar Upadhyay
Banaras Hindu University
Varanasi (UP)-121005

Prof. Oken Lego
Rajiv Gandhi University, Itanagar,
Arunachal Pradesh-791111

Dr. Dibyajyoti Mahanta
Krishna Kanta Handiqui State Open
University, Guwahati,Assam-781017

Dr. Narendra Shukla
Nehru Memorial Museum and Library,
New Delhi-110011

Advisory Board

Prof. Nand Kishore Pandey
University of Rajasthan, Jaipur
Rajsthan-302004

Prof. Gyantosh Kumar Jha
Principal,Atmaram Sanatan Dharma
College, Delhi University, Delhi-110021

Prof. Harish kumar Sharma
Siddharth University Kapilvastu,
Siddharth Nagar (UP)-272202

Prof. Hitendra Mishra
North-Eastern Hill University, Shillong,
Meghalaya-793022

Prof. Sanjay kumar
Mizoram University,Aizawl,
Mizoram-796004

Designing & Typing
Avid Ali, Delhi

Cover Designing
Gaurav Singh, Delhi

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली-110089

CENTRE FOR LITERARYAND CULTURAL STUDIES (CLCS), DELHI- 110089

साहित्य, मानविकी, समाज विज्ञान और प्रदर्शनकारी कलाओं की त्रैमासिक शोध पत्रिका-प्राग्ज्योतिका

प्राग्ज्योतिका, खंडः 1-2, अंकः 4-5, जुलाई-दिसम्बर, 2021

© साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली (भारत)
CENTRE FOR LITERARYAND CULTURAL STUDIES (CLCS), DELHI, (INDIA)

प्रकाशक : अक्षर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-110090
Akshar Publisher&Distributors,
Delhi-110090, Mo. 9711255121

संपादकीय कार्यालय : यूनिट नंबर-108 (प्रथम तल), वर्धमान, एसी मार्केट, सी.एस.सी, ब्लॉक-ई, सेक्टर-18, रोहिणी, दिल्ली-110089 (भारत)

ई-मेल : pragjyotikapatrika@gmail.com

UNIT N0. 108 (1ST FLOOR), VARDHMAN,AC MARKET, C.S.C, BLOCK-E, SECTOR-18, ROHINI, DELHI-110089 (INDIA)

वार्षिक	मूल्य : व्यक्तिगत प्रति अंक	: 250
	वार्षिक	: 1000
	विदेशों में प्रति अंक	: US $ 5
	वार्षिक	: US $ 15
	संस्थागत वार्षिक	: 1500

मुद्रक : अक्षर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-110090
Akshar Publisher&Distributors,
Delhi-110090 , Mo. 9711255121

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के मत और स्थापनाओं का 'साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली' व 'प्राग्ज्योतिका' का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए स्वामी/प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। किसी भी विवाद के निपटारे का न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

स्वामित्व : साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली (भारत)

CENTRE FOR LITERARYAND CULTURAL STUDIES (CLCS), DELHI, (INDIA)

अनुक्रमणिका

संपादकीय - **प्रो. चंदन कुमार** : 05
अतिथि संपादकीय -**डॉ. शोभा कौर** : 09

1. भारतीय ज्ञान परंपरा और गुरु नानक बाणी (दार्शनिक परिप्रेक्ष्य)
-प्रो.जगबीर सिंह : 13
2. अकाल से खालसा तक
-प्रो. कपिल कपूर : 16
3. गुरु गोबिंद सिंह जी का विद्या दरबार
-डॉ. हरमोहिंदर सिंह बेदी : 22
4. गुरु तेगबहादुर की बानी : दार्शनिक परिप्रेक्ष्य
-मनमोहन सिंह : 29
5. भारत की दशा और दिशा को बदलने के लिए श्री गुरु तेगबहादुर जी की उपदेश यात्राएँ
-प्रो. करमजीत सिंह : 33
6. आधुनिक संदर्भ में सिख गुरुओं के शैक्षणिक विचारों की सार्थकता
-डॉ. अमृत कौर रैना : 38
7. गुरु नानकदेव जी की विश्वव्यापी यात्राएँ
-डॉ. हरबंस कौर सागू : 46
8. गुरु गोबिंद सिंह जी (1666-1708) की सनातन धर्मी विश्व दृष्टि का वीर सावरकर 1883-1966) पर प्रभाव: "हिंदुत्व" एवं "छः स्वर्णिम पृष्ठ" के विशेष संदर्भ में
-प्रो. सुधीर कुमार : 60
9. साका सरहिंद
-तरुण विजय : 64
10. आनंदपुर नगरी की स्थापना और पूर्व की यात्राएँ
-डॉ. सुरजीत कौर जॉली : 66
11. गुरु तेगबहादुर जी : पूर्वी भारत की यात्राएं
-डॉ. परमवीर सिंह : 74

12. श्री गुरु तेगबहादुर जी के बलिदान की समकालीन प्रासंगिकता

-प्रो. रविंदर सिंह: 81

13. श्री गुरु तेगबहादुर जी की वैराग बाणी का दार्शनिक संदर्भ

-डॉ. गुरजीत कौर : 85

14. भारतीय ज्ञान-दर्शन परंपरा और गुरु नानक देव

-प्रो. पूरन चंद टंडन : 88

15. गुरु तेगबहादुर जी का असम (धुबड़ी) आगमन

-हरकीरत हीर : 90

16. पूर्वोत्तर भारत और सिख गुरुओं का इतिहास

-डॉ. आलोक सिंह : 92

17. गुरु नानक जी की बाणी मे तीर्थ की अवधारणा

-डॉ. रुचिरा ढींगरा : 94

18. प्रकाश पर्व के प्रतीक गुरु रामदास

-डॉ. साधना गुप्ता : 97

19. दिल्ली फतेह

-कुलमोहन सिंह : 100

20. गुरु गोबिन्द सिंह का साहित्य-कर्म एवं उसकी सामाजिक उपादेयता

-डॉ. नीतू गुप्ता : 102

21. वर्तमान काल में सिख सम्प्रदाय की प्रासंगिकता

-डॉ. विदुषी शर्मा : 105

22. इतिहास भी रोया था शहीद अजय सिंह की कुर्बानी पर

-डॉ. अवधेश कुमार अवध : 109

23. सच्चे बादशाह : गुरु नानक देव जी

-विवेक शर्मा : 111

24. मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'गुरु तेगबहादुर' का कश्मीरी अनुवाद

-अग्निशेखर : 114

25. पूर्वोत्तर भारत में सिख गुरुओं की परंपरा और गुरु गोबिन्द सिंह का योगदान

-संतोष बंसल : 118

26. पूर्वोत्तर भारत में सिख धर्म का उद्‌भव एवं विकास

-परपिंदर सिंह : 122

27. शब्द सूर-कर्मन का सूर से 'सरबत दा भला'

-आदित्य नाथ तिवारी : 128

28. गुरु के आर्थिक विचार : आज के युग में प्रासंगिकता

-जयरामदास : 130

29. श्री गुरु तेगबहादुर जी का 400वां प्रकाश पर्व

-मणि कुमार : 133

English Articals:

30. Relevance of Sri Guru Gobind Singh's Philosophy and Vision in Contemporary Era

-Prof. K.P. Singh : 135

31. Guru Tegh Bahadur – Holy Travels to The East

-Jagmohan Singh Gill : 142

32. The Sikh Heritage of East India

-Abinash Mahapatra : 152

33. Guru Nanak Dev's Voyages towards North-East India.

- Vaibhav Singh : 159

परिचय : लेखक : 164

सम्पादकीय

'प्राग्ज्योतिका' पत्रिका का यह चौथा अंक है। अपेक्षा है कि सिख गुरु परम्परा की उपस्थिति पर केन्द्रित यह अंक सुधी पाठकों की 'भारतीयता के बोध' को समृद्ध बनाएगा। भारत के ऐश्वर्य से आकर्षित होकर यवन, पठान, मुगल, डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, अंग्रेज इत्यादि विदेशी आक्रान्ता आये और अपनी सामर्थ्यनुसार लूट कर ले गये। इन आक्रान्ताओं से लड़ने के लिए समय-समय पर भारतीय महापुरुषों ने शस्त्र और शास्त्र को धारण किया। इस संदर्भ में श्रीमद्‌भागवत गीता का यह श्लोक याद आता है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।

मध्यकाल का प्रारम्भ ही भक्ति केन्द्रित है। भक्ति एक संवाद-सेतु बनकर उभरी। प्रश्न खड़ा होता है कि हम भक्तिको समझें कैसे? क्या यह सिर्फ भजन-कीर्तन है? अपनी अखिल भारतीयता में भक्ति कीर्तनिया-मंडली नहीं है। आठवीं शताब्दी में केरल के कलाडी से निकले आदि शंकराचार्य, दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में तमिलनाडू के श्रीपेरंबदूर से निकले रामानुजाचार्य, तेरहवीं शताब्दी में वर्तमान कर्नाटक के दक्षिण कन्नड़ जिले के उडुपी शिवल्ली के पास स्थित पाजक नामक गाँव से निकले मध्वाचार्य, चौदहवीं शताब्दी में वर्तमान प्रयाग से निकले रामानंदाचार्य, पंद्रहवीं शताब्दी में वर्तमान दक्षिण भारत के कंकरवाड से निकले बल्लभाचार्य, पंद्रहवीं शताब्दी में वर्तमान असम प्रान्त के नौगाँव के बरदोवा नामक स्थान से निकले श्रीमंत शंकरदेव और पंद्रहवीं शताब्दी में ही वर्तमान पाकिस्तान के ननकाना साहिब से निकले गुरु नानकदेव सहित सिख गुरुओं की पूरी परम्परा में क्या समानता है? वह कौन बिंदु है जहाँ ये महानुभाव संवाद करते नजर आते हैं? वह बिंदु है -सांस्कृतिक सहभाव। आप पूरी भक्ति परम्परा का मूल्यांकन कर लीजिए, सभी संतों के यहाँ एक तथ्य सर्वमान्य ढंग से मिलेगा और वह है- सांस्कृतिक सहभाव। भारतवर्ष को समझने का सहभाव,तीर्थ सहभाव और ज्ञानार्जन का सहभाव। मैंने जिन महानुभावों का नाम लिया उनके जीवन का एक बड़ा हिस्सा यात्राओं में बीतता है। ऐसा क्यों है? क्या ऐसा अनायास है? ऐसा अनायास नहीं है। भारतीय दार्शनिक बोध में जीवन एक यात्रा है। हमारे दार्शनिक मूल्य जीवन को काल की गति को समर्पित यात्रा के रूप मानते हैं।हमारे वांग्मय यात्रा की परिकल्पना संस्कार के रूप में करते हैं। हमारे ज्ञान की वाचिक परम्परा संवाद से पुष्ट होती है। यह संवाद यात्रा से संभव हुआ है। भारतीय पुराख्यान, वैदिक साहित्य, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक इसके प्रमाण हैं। वैदिक ग्रंथों में पुरुजन, यदुजन और भरतजन यात्रा के क्रम में युद्ध नहीं करते थे। यात्राएँ सांस्कृतिक और व्यापारिक प्रसार के उद्देश्य से प्रेरित होती थीं। बौद्ध और जैन आदिग्रंथों में भी 'धम्मविजय' के लिए होने वाली यात्राओं की चर्चा मिलती है। बुद्ध की 'धम्म' प्रचार यात्राएं सर्वज्ञात हैं। 'प्राग्ज्योतिका' का यह अंक सिख गुरुओं के योगदान पर केन्द्रित है।इन महानुभावों के चिंतन का मूल्यांकन करते हुए हम पाते हैं कि इनका धार्मिक-सांस्कृतिक बोध भारत-बोध की निष्पति है। यह ध्यान रखिये कि सिख गुरुओं का भाषाबोध उनके भारतबोध से बनता है। यह भारतबोध उनके यात्राबोध की निष्पत्ति है।

श्री गुरु नानकदेव जी ने चौबीस साल में दो उपमहाद्वीपों के साठ प्रमुख शहरों की पैदल यात्रा की। इस यात्रा के दौरान उन्होंने अठाईस हजार किलोमीटर का यात्रा की। उनकी यात्राओं का उद्देश्य समाज में स्थित वर्ग-वर्ण के भेद को मिटा कर आपसी सद्‌भाव और समरसता स्थापित करना था। वे जहाँ भी गए, एक परमात्मा

की बात की और सभी को उसी की संतान बताया। उनकी यात्राएं आज भी संवाद स्थापित करने का रास्ता बन सकती हैं। महत्वपूर्ण विषय यह है कि गुरुजी इन यात्राओं के दौरान रास्ते में पड़ने वाली हर रियासत के राजा या बादशाह से मिले और उन्हें ये बातें समझाई। इस बात के प्रमाण हैं कि वर्तमान असम के शिवसागर जिले के नाजिरा में दिखू नदी के पास जो मंदिर है वहाँ एक लुनिया सिद्ध की समाधि है। स्थानीय सिख समुदाय के लोग बताते हैं कि इस स्थान पर गुरु नानकदेव जी की श्रीमंत शंकरदेव जी से मुलाकात हुई थी। गुरु नानकदेव जी के नाजिरा यात्रा का उल्लेख तवारीख गुरु खालसा में भी मिलता है। तवारीख गुरु खालसा को शब्दश: उद्धृत कर रहा हूँ– अजमेरीगंज, करीमगंज, सिलहट के भ्रमण के उपरांत गुरु नानकदेव जी घरगाँव नामक शहर पहुँचे जो बाद में नाजिरा कहलाया। यह घरगाँव तब राजा शंकरसेन की राजधानी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त शहर था। ज्ञानी लाल सिंह ने भी गुरु नानकदेव जी के घरगाँव जाने का वर्णन किया है। भाई वीरसिंह ने श्री कलगीधर चमत्कार और श्री दसमगुरु चमत्कार में ढूबरी को सिख गुरुओं के साथ जुड़ा हुआ बताया है। श्रीमंत शंकरदेव जी और श्री गुरु नानकदेव जी दोनों महानुभावों के मूल्यबोध यात्राबोध से बनते हैं। देशाटन से बनते हैं। ये यात्राएं इनके धर्मबोध को बनाती हैं और यही धर्मबोध इनका भारतबोध है। आईडिया ऑफ इंडिया है। यह भारतबोध भारत को प्यार करने से बना है। आप किसी जगह पर क्यों जाते हैं? वहाँ के लोगों के बीच क्यों ठहरते हैं? उन्हें अपनी रचनात्मकता में क्यों जगह देते हैं? उत्तर है– आपका राग आपसे ऐसा करवाता है। भक्तिआन्दोलन के प्राय: सभी संतों के यहाँ आप इस भारत राग को पढ़ सकते हैं। देश पर संकट है। देश को बचाना है। संकट क्या है? बल्लभाचार्य के शब्दों को उधार लें तो– म्लेक्षाक्रान्तेशु देशेषु। देश म्लेक्षाक्रांत है। आस्था के प्रतीक तोड़े जा रहे हैं। गुरु नानकदेव जी भी कहते हैं–

"खुरासान खसमाना किआ हिंदुस्तान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जनु करि मुगल चाइआ॥
एती मार पई कुरलाने तैं दरदु न आइआ ।"

शत्रु जब ताकतवर हो तो घर को ठीक करने की आवश्यकता प्रबल हो उठती है। घर सदस्यों के आत्मवलोकन से शुद्ध होता है। पूरी भक्ति कविता पंजाब से लेकर प्राग्ज्योतिषपुर तक आत्मावलोकन के भाव से प्रेरित है। यह आत्मावलोकन भारतवर्ष को शक्तिशाली देखने की कामना से प्रेरित है। यही कारण है कि सिख गुरुओं के यहाँ समरसता का स्वर है। एकता का स्वर है। आत्मगौरव का स्वर है। यह स्वर अपने पर भरोसा करने से पनपा है। ये संत भारत को शक्तिशाली होते देखना चाहते हैं। आसेतु हिमालय एक सांस्कृतिक राष्ट्र का सपना भक्ति का सपना है। इस सपने की प्रतिध्वनियाँ हम श्री गुरु नानकदेव जी सहित सभी सिख गुरुओं के शिक्षण में सुन सकते हैं। मुझे लगता है कि एक शक्तिशाली सांस्कृतिक राष्ट्र के सपने के संदर्भ में भी सिख गुरुओं के पाठ का मूल्यांकन होना चाहिए। एक मूल्यांकन गुरुद्वारों के सामजिक संदर्भ का भी होना चाहिए। आज जो भारत है उसके पीछे एक बहुत बड़ा योगदान गुरुद्वारों की संस्कृति का है। गुरुद्वारों ने आस्था को एक सामाजिक सन्दर्भ दिया। आस्था जागतिक समस्यायों से निरपेक्ष नहीं है। भूख से मुक्ति, स्वावलंबन, समरसता और आत्मनिर्भरता के प्रकल्प हैं गुरुद्वारा। 1526ई. में बाबर के भारत पर आक्रमण का संकेत गुरु नानकदेव जी को मिल गया था। बाबर की आक्रमणकारी नीतियों से गुरु नानकदेव ने भारतीय राजाओं को सचेत किया लेकिन वे नहीं माने। इसका परिणाम भयानक सिद्ध हुआ। गुरु नानकदेव को बाबर का अत्याचार देखा नहीं गया। अन्तत: उन्होंने सिख मत की स्थापना की और लोगों को पांथिक अत्याचारों के विरुद्ध खड़ा किया। यही क्रम सिख मत के दसवें गुरु, गुरु गोबिंद सिंह तक चलता रहा। इसका भागीदार पूर्वोत्तर भारत भी बना। 'प्राग्ज्योतिका' पत्रिका का यह अंक इन्हीं भावों को प्रतिध्वनित करता है।

'प्राग्ज्योतिका' के इस अंक का पहला लेख प्रो. जगबीर सिंह कृत 'भारतीय ज्ञान परम्परा और गुरु नानक बाणी (दार्शनिक परिप्रेक्ष्य) है। इस लेख में प्रो. सिंह ने भारत की सनातन ज्ञान परम्परा में गुरुनानक की 'खसम की बाणी' और 'सच की बाणी' के महत्व को चिह्णित किया है। परमात्मा ही सच है और सच ही परमात्मा है– जैसे भाव ही गुरुनानक की दीक्षा के मूल स्वर हैं। इस अंक का अगला लेख प्रो. कपिल कपूर का है। प्रो. कपिल कपूर ने अपने लेख 'अकाल से खालसा तक' में सिख धर्म का संस्थापक गुरुनानक देव को बताया है और संकेत रूप में बाकी गुरुओं की भी चर्चा की है। सिख गुरुओं ने अपने धर्म को तीन मूल्यों पर केन्द्रित बताया है– ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग। प्रो. कपिल कपूर ने इन तीन मूल्यों के यात्रा की व्याख्या की है। इस अंकमें संकलित डॉ. हरमोहिंदर सिंह बेदी कृत

'गुरु गोबिंद सिंह जी का विद्या दरबार' लेख में गुरु गोबिंद सिंह से सम्बन्धित कवियों और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। मनमोहन सिंह जी के लेख 'गुरु तेगबहादुर की बाणी : दार्शनिक परिप्रेक्ष्य' में गुरु तेगबहादुर के मूल स्वर 'वैराग्य' की व्याख्या भारतीय सनातन पद्धति को आधार बनाकर की गई है। प्रो. करमजीत सिंह ने मुगल शासकों के अत्याचारों के प्रतिरोध के सन्दर्भ में गुरु तेगबहादुर जी द्वारा किए गए रचनात्मक प्रयासों का मूल्यांकन किया है। डॉ. अमृत कौर रैना के लेख 'आधुनिक संदर्भ में सिख गुरुओं के शैक्षणिक विचारों की सार्थकता' में सनातन धर्म के आध्यात्मिक, धार्मिक और नैतिक मूल्यों के साथ गुरुबाणी के संवाद की व्याख्या की है। डॉ. हरबंस कौर सागू के लेख 'गुरु नानकदेव जी की विश्वव्यापी यात्राएँ' में गुरु नानकदेव जी की यात्राओं के महत्व का उल्लेख है। प्रो. सुधीर कुमार का लेख 'गुरु गोबिंद जी (1666-1708) की सनातन धर्मी विश्व दृष्टि का वीर सावरकर (1883-1966) पर प्रभाव : ''हिन्दुत्व'' एवं ''छः स्वर्णिम पृष्ठ'' के विशेष संदर्भ में' स्वातंत्र्योत्तर भारत, विचारधारा, गुरु गोबिंद जी और वीर सावरकर की भारतीय सनातन दृष्टि के संदर्भ में मूल्यांकन करता है। तरूण विजय का लेख 'साका सरहिंद' गुरु गोबिंद सिंह जी के त्याग और बलिदान का मूल्यांकन है। डॉ. सुरजीत कौर जॉली का लेख 'आनंदपुर नगरी की स्थापना और पूर्व की यात्राएँ' में पावन नगरी आनंदपुर साहिब की संकल्पना और निर्माण-प्रक्रिया की व्याख्या है। डॉ. परमवीर सिंह का लेख 'गुरु तेगबहादुर जी : पूर्वी भारत की यात्राएँ' में पूर्वी भारत के संदर्भ में सिख गुरुओं के यात्राबोध, धर्मबोध और सांस्कृतिक-बोध की व्याख्या है। प्रो. रविंदर सिंह जी ने अपने लेख 'श्री गुरु तेगबहादुर जी के बलिदान की समकालीन प्रासंगिकता' में अद्वैतवादी दर्शन, आत्मानुशासन, भारतीय संस्कृति की शक्ति और सिख गुरुओं के बलिदान का मूल्यांकन किया है। डॉ. गुरजीत कौर का लेख 'श्री गुरु तेगबहादुर जी की वैराग बाणी का दार्शनिक संदर्भ' वैराग्य की सकारात्मक व्याख्या है।

'प्राग्ज्योतिका' के इस अंक में प्रो. पूरनचन्द टंडन, हरकीरत हीर, रुचिरा ढींगरा, आलोक सिंह, साधना गुप्ता, कुलमोहन सिंह, नीतू गुप्ता, विदुषी शर्मा, अवधेश कुमार, अग्निशेखर, संतोष बंसल, के.पी. सिंह, जगमोहन सिंह, वैभव सिंह, पपिन्दर सिंह, आदित्यनाथ तिवारी, जयरामदास, विवेक शर्मा और मणि कुमार के लेख संकलित है। इन सभी लेखों के द्वारा भारतीय समाज की सबलता के विविध सन्दर्भों में सिख गुरुओं के योगदान का मूल्यांकन है। कुछ लेख देश के पूर्वी राज्यों में सिख गुरुओं की यात्राओं पर केन्द्रित है। भारत का पूर्वी क्षेत्र सिख गुरुओं की कर्मण्यता के साथ संवाद करता है। इसका मूल्यांकन होना चाहिए। गुरु तेगबहादुर जी के 400वें प्रकाश पर्व में 'प्राग्ज्योतिका' का यह लघु प्रयास है। यह प्रयास डॉ. शोभा कौर जी, डॉ. सीमा जैन, श्री नरेंद्र यादव जी, श्री विजय यादव जी, श्री अनुपम जी, श्री आदित्यनाथ तिवारी जी, श्री मणि कुमार जी, बिंदु जी, अपूर्वा जी, कुशाग्र जी, 'प्राग्ज्योतिका' की समीक्षा समिति और परामर्श मंडल से जुड़े विद्वतजनों की समवेत कर्मठता एवं सहयोग का सफल है। 'प्राग्ज्योतिका' के इस अंक के लिए मैं इन महानुभावों और इस अंक के लेखकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। सभी को सादर प्रणाम।

-संपादक

प्रो. चंदन कुमार
कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली -110007

अतिथि-सम्पादकीय

'अत ही रण में तब जूझ मरौं'

भारतीय समाज और संस्कृति विभिन्न आस्थाओं, विश्वासों, मान्यताओं और विविधतामुखी जीवन शैली को संजोये हुए है। हमारे देश में इतनी भौगोलिक विभिन्नताओं के बीच एक खासियत है कि यहाँ समय समय पर भारतीयता का बोध कराने वाले महापुरुषों की एक सतत श्रृंखला विद्यमान रही है। यहाँ की भौतिक समृद्धि के प्रति लालायित होकर समय-समय पर अनेक विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत पर लगातार आक्रमण किए, कुछ तो लूटपाट कर पलट गए, लेकिन कई इस देश पर हुकुमत करने के मंसूबे बांध कर यहाँ टिक गए। लेकिन कुछ तो बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी। हूण, शक, यवन, पठान, मुगल, डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेज...आक्रान्ताओं की लम्बी फेहरिस्त है। परन्तु यह एक अजब संयोग है कि मध्यकाल में मुगल सल्तनत के समानांतर भारतीय समाज में सिख-गुरुओं की उपस्थिति देखने को मिलती है। बाबर 1526 ई.में भारत पर हमला करता है और उस समय गुरु नानकदेव जी उम्र 57 वर्ष है और इससे पूर्व वे एक विस्तृत विदेश यात्रा करके आ चुके हैं और भारत के स्थानीय शासकों को आगाह करते हैं कि बाबर काबुल से पाप की बारात लेकर निकल चुका है और समय रहते न चेते तो भारत को तबाह कर देगा....कोई भी उनकी बात सुनने को राजी नहीं होता और सब झूठे घमंड के नशे में चूर कहते हैं कि मुगल आयेंगे तो हम मुठ्ठी भर रेत और मिर्च उनकी आँखों में फेंक देंगे और वे अंधे हो कर वापस लौट जायेंगे; पर होनी कुछ और ही होती है, और गुरु नानक जी बाबर बाणी में कहते हैं कि "कोई मुगल न होया अँधा, किनहु न परचा पाया।" यह एक संत की हृदय को कचोट देने वाली कशमश है। अगर उनके पास सेना होती तो वे मुगलों से वहीं भिड़ जाते। कमी क्या दिखी उन्हें भारतीय समाज में-'परस्पर संवादहीनता', 'चारित्रिक उदासीनता', 'कर्तव्य-विमुखता', 'गुलामी को नियति मान कर' भारतीय मानस ने 'एडजस्ट' कर लिया था। लेकिन बाबर से प्रत्यक्ष मुलाकात के बाद उसके मुँह पर उसे 'जाबर' (अत्याचारी) कहने का साहस गुरु जी ही करते हैं और भारतीयों पर इतना भीषण अत्याचार देख, वे परमात्मा की भी उलाहना कर देते हैं कि इतनी मार निरीह जनता को पड़ी कि तुझे तरस नहीं आया। "एति मार पई कुरलाने तैकी नदर न आयी।" और उसके बाद शुरू होती है सिख-गुरुओं की 'सोशल इंजीनियरिंग'! वे समाज की संरचना को गढ़ना-घड़ना शुरू करते हैं-तीन मूलभूत नियम-नाम जपना, किरत करना और बाँट कर खाना; ऐसे क्रांतिकारी परिवर्तन को अवश्यम्भावी बना देते हैं कि लगभग दो सौ वर्षों में (गुरु नानकदेव जी-1469 ई. से गुरु गोबिंद सिंह-1699) एक सशस्त्र आन्दोलन संभव हो पाता है। यह 'अकाल से खालसा तक की यात्रा'-भारतीय समाज में आमूलचूल परिवर्तन को प्रत्यक्ष कर दिखाती है। बाबर से औरंगजेब के समानांतर गुरु नानकदेव जी से लेकर गुरु गोबिंद सिंह जी सुमेरु पर्वत की भांति भारतीय प्रतिष्ठा और अस्मिता की सुरक्षा के लिए अचल और अडोल सन्नद्द हैं। शुरू होता है नियति नटी का जबरदस्त खेल! और गुरु गोबिंद सिंह जी कह उठते हैं-"देखन आयो जगत तमाशा"! और इस तमाशे में उनकी भूमिका तय है-"धरम चलवान, दुष्ट खपावन..।।" वे गर्जना करते हैं-

"सकल जगत मो खालसा पंथ गाजै।।
जगै धर्म हिंदुन सगल द्वंद भाजे"
"करहु हुक्म अपना सभै दुसट घाऊँ।।
तुरक हिन्दू का सकल झगरा मिटाऊँ।।"
..."छत्र छीन मुगलन करहूँ बेग फानी।।"
"सकल हिन्द सिउँ तुरक दुसटा बिदारहु।।
धरम की धुजा कऊ जगत मैं झुलाऊ।।"

...नौ गुरुओं द्वारा तैयार आत्मिक और शारीरिक रूप से परिपुष्ट भारतीय समाज को वे युद्ध में जूझना भी सिखाते हैं और भारतीयों की जीत को सुनिश्चित भी करते हैं-"निश्चय करी आपुनी जीत करौं!" "भई जीत मेरी कृपा काल केरी"!!

यह संभव कैसे हुआ?

इस देश का वास्तविक इतिहास जिससे अवगत होने का सही समय आ गया है, वह यह है कि सिख गुरुओं ने सिर्फ निर्गुण भक्ति के गीत नहीं गाए, न ही उनकी भूमिका समाज-सुधारक तक सीमित है! उन्होंने तो वह कर दिखाया जो विश्व-इतिहास में बहुत बाद में दिखाई देता है; जिनके गुणगान करते हम नहीं थकते। किन्तु अपने देश की महत्त्वपूर्ण इतिहास के प्रति चिराग के नीचे अँधेरे जितना ज्ञान है। गुरु नानक जी ने "पहले पंगत पाछे संगत" सबको एक साथ भोजन और भजन के अधिकार से शुरुआत की। साथ-साथ ही सामाजिक कुरीतियों का भी वे सफाया करते चले। उनकी चार अखिल भारतीय और वैश्विक स्तर की यात्राओं ने सदियों से गुलामी की मानसिकता को नियति मानने वालों को झकझोरा-अपने भीतर भी झाँकने को प्रेरित किया और राजनैतिक, आर्थिक रूप से भी जागरूक किया-सारे के सारे बिम्ब और प्रतीक उनकी बाणी में लोकजीवन से आते हैं। भाषा इतनी सहज सरल और लोक के रंग में रंगी कि जो भी सुने, जी जुड़ा जाए। चाणक्य, बुद्ध और शंकराचार्य के बाद गुरु नानकदेव जी ने भारत की अखंडता को 'संवाद-परंपरा' के माध्यम से पुनः स्थापित किया। वे देश-विदेश में जहाँ कहीं भी गए; प्रत्येक वर्ग और कौम से संवाद-गोष्ठी कर, बातचीत के माध्यम से कठिन से कठिन मसलों का सहज हल बताते रहे। उनके बाद उनके शिष्य गुरु-पद ग्रहण कर उनकी कार्य के बीजवपन को और भी पल्लवित पुष्पित करते रहे हैं। दूसरे गुरु, गुरु अंगद देव जी गुरमुखी लिपि को प्रोत्साहित करते हैं, और गुरु नानकदेव जी द्वारा संग्रहित अखिल भारतीय संतों की बाणी को लिखित रूप प्रदान करते हैं। तीसरे गुरु, गुरु अमरदास जी उनकी परंपरा का निर्वाह करते हुए स्त्रियों को महत्त्व देते हुए बीबी खीरी जी को लंगर का कार्यभार सौंपते हैं। उनके समय में दिल्ली का मुगल आक्रान्ता शासक अकबर उनसे मिलने आता है, जिसे गुरु जी आदेश देते हैं कि वह पहले सामान्य नागरिक की भांति सबके साथ बैठ कर लंगर ग्रहण करे फिर संगत में बैठे। चौथे गुरु, गुरु रामदास जी अमृतसर नगर की निर्माण प्रक्रिया के साथ, सेवा और सिमरन को आगे बढ़ते हैं। पंचम गुरु, गुरु अर्जुनदेव जी की भूमिका बेहद सराहनीय है। उन्होंने अपने समय की जरूरत को देखते हुए धर्म-ग्रन्थों को लेकर उठे विवादों और अनावश्यक हस्तक्षेपों की समस्या का पूर्णतः निवारण करते हुए गुरु नानक देव जी से लेकर स्वयं की बाणी और गुरु नानकदेव जी द्वारा संग्रहित भारतवर्ष के भक्तों, संतों की बाणी को बहुत अद्‌भुत रूप से भारतीय राग-परंपरा में पिरो कर "आदिग्रंथ" को लोकिंग सिस्टम द्वारा सुसम्बद्ध कर दिया, जिसमें से न तो कोई एक भी शब्द जोड़ सकता है, न ही निकाल सकता है। दिल्ली पर इस समय मुगल आक्रान्ता जहाँगीर का शासन है। उसे दिन-पर-दिन बढ़ती हिन्दुओं की यह जागरूकता बिल्कुल नागवार गुजरती है। क्योंकि जोर-जबरदस्ती से मुसलमान बने हिन्दू, सिख गुरुओं द्वारा दिखाए सही धर्म के उपदेश के कारण, वापस हिन्दू धर्म को स्वीकार कर रहे थे। वह अपनी आत्मकथा तुज्के-जहाँगीरी में अपने मन के सारे द्वेष खुल कर लिखता है : "बहुत समय से मेरे दिल में ख्याल उठ रहा था कि इस झूठ की दुकान को बंद करना चाहिए, या उस (गुरु) को मुसलमानी फिरके में ले आना चाहिए। ...मैंने हुकुम दिया कि उसको हाजिर किया जाए तथा मैंने उसके घर-घाट तथा बच्चे मुरतजा खां के हवाले कर दिए तथा उसका माल असबाब जब्त कर के हुक्म दिया कि उसको सियासत तथा यासा के कानून अनुसार दंड दें।" (गुरु-इतिहास, प्रो. साहिब सिंह, पृ. 189) गुरु अर्जुनदेव जी को भीषण यातनाएँ देते हुए 30 मई 1606 ई. में शहीद कर दिया गया। (गर्म तवे पर बिठा कर उन पर गर्म रेत डाली गई, और फिर गर्म पानी में उबाल कर उन्हें रावी नदी में बहा दिया गया।)

सिख इतिहास में फिर दौर शुरू होता है-'भक्ति और शक्ति के समन्वय का'। गुरु अर्जुनदेव जी के पुत्र गुरु हरगोबिन्द जी जब गुरु-पद ग्रहण करते हैं तो वे मीरी और पीरी की दो तलवारें पहनते हैं। दरबार लगते हैं, जनता की फरियादें सुनी जाती है और अमृतसर में दिल्ली के मुगल शासक के सिंहासन से चार फुट ऊँचे "अकाल तख़्त" का निर्माण किया जाता है, सेना सजायी जाती है और अस्त्र-शस्त्रों की ट्रेनिंग शुरू होती है। हालाँकि जहाँगीर गुरु हरगोबिन्द जी को ग्वालियर के किले में धोखे से बंद कर देता है। लेकिन गुरु जी अपनी सूझबूझ और दूरदृष्टि से स्वयं और अन्य पहाड़ी राजाओं को मुक्त कराने में सफल हो जाते हैं। जहाँगीर के बाद उसका पुत्र शाहजहाँ दिल्ली का शासक बनता है। लाहौर-दरबार ने सिख-सम्प्रदाय की ताकत को दबाने के रास्ते शुरू कर दिए। बहाने बना-बना कर गुरु हरगोबिन्द जी पर चार बार फौजी चढ़ाई की गई। इन सब लड़ाइयों में पहली बार हिन्दू जनता को जीत के स्वाद पता चलता है।

सातवें गुरु, गुरु हरिराय जी मानवता की अद्‌भुत मिसाल प्रस्तुत करते है। आठवें गुरु, गुरु हरिकिशन जी बाल आयु में गुरु-पद ग्रहण करते हैं, और उनका सामना वक्त की हुकूमत मुगल आक्रान्ता औरंगजेब से होता है, पर वे उनसे मिलने से इंकार कर देते है, और उनके महल के सारे द्वार मुगल शासक के लिए बंद कर दिए जाते हैं। दिल्ली का बंग्ला साहिब गुरुद्वारा इसका प्रत्यक्ष गवाह है। अब तक मुगल शासक बुरी तरह से बौखला चुके थे। इस दौरान सिख-गुरुओं ने भारतीय शिक्षा-पद्धति को सुदृढ़ करते हुए, गुरु नानकदेव जी के मिशन "घर-घर होवे धरमसाल" को साकार कर चुके थे। गुरुओं ने अनेक नगर बसाए, कुएँ और बावलियों का निर्माण करवाया। मुगल शासकों को टैक्स न देकर उससे जन-कल्याणकारी योजनाओं का आरम्भ किया। सेना, अस्त्र-शस्त्र, भण्डारण-गृह, सर्वश्रेष्ठ

भारतीय ग्रंथों के अध्ययन मनन से आम जनता स्वयं को समृद्ध और सशक्त महसूस कर रही थी, सिख-गुरुओं ने उनके भीतर से मरने के खौफ को निकाल दिया था...और फिर घटित होती है, नौवें गुरु, गुरु तेगबहादुर जी की कुरबानी! मुगल आक्रान्ता औरंगजेब जब दक्षिण में मराठों से बुरी हार का सामना करता है तो उसका धर्मान्तरण का जूनून सिर चढ़ कर बोलता है। उसे उसके तथाकथित सलाहकार ये कहते हैं कि भारतीय सर्वश्रेष्ठ ज्ञान उत्तर में कश्मीरी पंडितों के पास है; इसलिए उन्हें इस्लाम में लाना बेहद जरूरी है। उन दिनों आक्रान्ता औरंगजेब की तरफ से शेर अफगान खां कश्मीर का सूबेदार था। उसने तलवार के बल पर कश्मीरी पंडितों को मुसलमान बनाना शुरू किया। गुरु तेगबहादुर जी ने सिर्फ कश्मीरी पंडितों के लिए ही नहीं अपितु भारतीय धर्म, अस्मिता, संस्कृति और मानवीयता की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग किया।

और बात करें दसम गुरु, गुरु गोबिंद सिंह जी की, तो उनके जैसा महा-नायक पूरे विश्व में नहीं मिलता। मुगल सत्ता के सबसे क्रूर, अत्याचारी आक्रान्ता औरंगजेब से दो भारतीय ताकतों-मराठा और सिख ने प्रत्यक्ष टक्कर ली: छत्रपति शिवाजी महाराज और गुरु गोबिंद सिंह महाराज का नाम इस सन्दर्भ में अत्यंत उल्लेखनीय है। 1680 ई.में जब छत्रपति शिवाजी का देहावसान हुआ तो उस समय गुरु गोबिंद सिंह जी की आयु 14 वर्ष थी। अखिल भारतीय स्तर से सिख संगत उनके पास आती थी, वे शिवाजी महाराज की वीरता से पूर्ण परिचित थे। 9 वर्ष की आयु में 1675 ई. में उन्होंने अपने पिता गुरु तेगबहादुर जी का लासानी बलिदान सहन किया था। 25 वर्ष तक आनंदपुर साहिब में रह कर उन्होंने कलम और तलवार दोनों से भारत की तकदीर बदलने के जिस शौर्यपूर्ण दायित्व का वहन करते हुए "खालसा पंथ" का निर्माण किया, उन्होंने मुगल सल्तनत की जड़ें उखाड़ कर रख दी। सबसे पहले उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त दीन-हीनता को बलपूर्वक समाप्त कर प्रत्येक मनुष्य में वीरता का प्रबल संचार किया। "मानुष की जात सभै एको पहिचानिबो" और "हरि हरिजन दोए एक हैं, बिब विचार कछु नाहि।" मनुष्य की कोई जाति-पाति नहीं और वह परमात्मा का अंश है-इस उच्च स्वर से उन्होंने जीत के सुर को तान दी। वे योद्धा-संत-कवि थे, उनकी समस्त बाणी में युद्ध की हुँकार है। उन्होंने भारतीय संस्कृति और परंपरा का संरक्षण और संवर्द्धन करते हुए भारतीय समाज में प्रचलित ऐतिहासिक पौराणिक कथाओं पर जमी धूल-झंकार को दूर कर पुन: उनके ऐतिहासिक महत्त्व को स्थापित किया। रामावतार, कृष्णावतार, चौबीस अवतार, ज्ञान प्रबोध, ब्रह्मावतार, रुद्रावतार और तीन बार चंडी-चरित्र की रचना एक विशाल आयोजन के अंतर्गत की गई। उनकी सोलह कृतियों का संग्रह "श्री दसम ग्रन्थ" के नाम से प्रचलित है। व्यावहारिक स्तर पर उन्होंने नए युद्ध प्रशिक्षण केंद्र खोले, मजबूत किलों का निर्माण किया। युद्ध की आपात स्थिति से निपटने के लिए जन-साधारण के लिए सुरक्षित जीवन व्यवस्था का प्रबंध किया। शिक्षा, चिकित्सा और और खाद्य-भंडारण की समुचित व्यवस्था की। इतिहासकार हरिराम गुप्ता ने इसे 'राज्य के भीतर राज्य' (state with in state) की उपमा दी। उनके बढ़ते राजसी वैभव से मुगल-सल्तनत ही नहीं आस-पास के पहाड़ी हिन्दू राजा भी उनसे ईर्ष्या करते थे। वे अपने स्वार्थवश कभी गुरु जी से संधि कर लेते और कभी मुगल वजीरों के साथ मिल कर आनंदपुर साहिब पर हमले कर देते। जाति-पाति से विहीन, समता, समानता और स्वतंत्रता जैसे अधिकारों, और सब सुख सुविधाओं से सम्पन्न खालसा समाज उनकी आँखों की किरकिरी बन गया। छल-कपट से मुगल-सल्तनत के साथ मिलकर उन्होंने गुरु जी को उनके किले से निकलने के लिए विवश कर दिया और फिर होता है विश्व के तीन सबसे असम्बद्ध युद्धों में से चमकौर साहिब का युद्ध-40 भूखे-प्यासे सिखों पर दस लाख की फौज का हमला जिसमें गुरु जी के दो बड़े पुत्र और प्रिय सिख सेवक शहीद हो जाते हैं। दूसरी तरफ गुरु गोबिंद सिंह के दो निर्दोष और मासूम बच्चों को सरहिंद के नवाब के आदेश पर दीवारों में चिनवा दिया जाता है। गुरु जी स्वयं अपनी आत्मकथा 'विचित्र नाटक' और औरंगजेब को लिखे पत्र 'जफरनामा' में इन सच्चाइयों का बयान करते हैं। इस प्रकार गुरु नानकदेव जी से लेकर दसम सिख-गुरु, गुरु गोबिंद सिंह जी, बाबर से लेकर औरंगजेब तक मुगल शासकों से प्रत्यक्ष रू-ब-रू होते हैं और उनके दुष्कर्मों के लिए कड़ी फटकार भी लगाते हैं और उनसे युद्ध में सामना भी करते हैं। गुरु गोबिंद सिंह जी के ज्योति-जोत समाने के बाद सिख-कुर्बानियों की लम्बी दास्ताँ है, उसके बाद नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे खूँखार लूटेरे इस देश पर आक्रमण करते है। पर अब भारतीय समाज में सिख-गुरुओं की अकाल फौज है जिसने इन दुराचारियों को मुँह तोड़ जवाब दिया। वास्तव में सिख गुरु भारतीय समाज और संस्कृति की रीढ़ हैं, जिनके योगदान को समग्रता में समझना अनिवार्य है। उन्होंने सेवा, सिमरन और अन्याय के विरुद्ध युद्ध की जिस सुदृढ़ नींव को रखा आज भी वह स्वस्थ परंपरा निरंतर सक्रिय है।

पूर्वोत्तर में दो सिख-गुरुओं की यात्राएँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं: गुरु नानकदेव जी और गुरु तेगबहादुर जी। सभी पूर्वोत्तर के राज्यों में जहाँ कहीं भी गुरु साहिबान पधारे वहाँ उनकी याद में गुरुद्वारों का निर्माण हुआ है।

यह वर्ष गुरु तेगबहादुर जी के प्रकाशोत्सव (1621 ई.) का 400वाँ वर्ष है। इस पावन अवसर पर प्राग्ज्योतिका पत्रिका का यह अंक गुरु तेगबहादुर जी के श्री चरणों में सादर समर्पित है।

मैं प्राग्ज्योतिका पत्रिका के सम्पादक प्रो. चंदन जी का हृदय से धन्यवाद करना चाहती हूँ जिन्होंने इस अंक के सम्पादन का अवसर

प्रदान किया। भटिंडा यूनिवर्सिटी के कुलपति आदरणीय प्रो. जगबीर सिंह जी से बातचीत कर अनेक विद्वानों के विषय में पता चला जिनके लेख इस पत्रिका में सम्मिलित हुए हैं। कुलपति आदरणीय सर प्रो. करमजीत सिंह जी ने अनेक बार मार्गदर्शन कर इस कार्य की रुपरेखा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। हिमाचल विश्वविद्यालय के कुलपति आदरणीय सर प्रो. हरमोहिंदर सिंह बेदी जी ने निरंतर सहयोग करते हुए इस कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रो. परमवीर सिंह जी, डॉ. हरबंस कौर सागू जी, डॉ. सुरजीत कौर जॉली जी, प्रो. रविन्द्र सिंह जी, प्रो. सुधीर कुमार जी, आदरणीय तरुण विजय जी का हार्दिक आभार।

पूर्वोत्तर में सिख-गुरुओं के योगदान और उनकी यात्राओं की विशेष जानकारी के लिए मैं जगमोहन सिंह गिल जी, अबिनाश महापात्रा जी, पपिन्द्र सिंह जी, आलोक सिंह जी, वीरेंद्र परमार जी की विशेष अनुगृहित हूँ। जगमोहन सिंह गिल जी ने अत्यंत विस्तृत जानकारी प्रदान कर कृतार्थ किया। जयराम दास एवं डॉ.अमृत कौर रैना के लेख उनकी पुस्तकों से साभार लिए गये हैं। दरअसल सिख गुरुओं के आर्थिक चिंतन और शैक्षणिक चिन्तन को जानना आज की युवा पीढ़ी के लिए अत्यंत आवश्यक है। अतः दोनों लेखकों के प्रति आत्मीय आभार। डॉ.अमृत कौर रैना ने उनके देहावसान से पूर्व लम्बी वार्तालाप के दौरान इस लेख को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान कर दी थी।

इस कार्य की तकनीकी जानकारी एवं अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विशिष्ट सहयोग के लिए आदित्यनाथ तिवारी का विशेष रूप से आभार व्यक्त करना चाहती हूँ।

लेखों का चयन सदैव से एक कठिन चुनौती रहती ही है। अधिकांश पंजाबी लेखों के हिंदी अनुवाद के समय सांस्कृतिक विभिन्नता और भाषा-परिवार के अंतर के कारण लगातार चुनौतियों का सामना भी हुआ। मशीनी अनुवाद इस क्षेत्र में निहायत अक्षम माध्यम साबित होता है। मैं एक आंतरिक संतोष और आनंद का अनुभव कर रही हूँ कि गुरु महाराज जी ने मुझे इस दायित्व के लिए चुना; मुझे नहीं पता इस कार्य को करने में कितनी सफल हो पायी हूँ, परन्तु एक गिलहरी प्रयास यह भी...यह अंक पाठकों के समक्ष खुला मंच प्रस्तुत करता है, जिसमें आपके विचारों और सुझावों का सादर स्वागत है। धन्यवाद

-डॉ. शोभा कौर

भारतीय ज्ञान परंपरा और गुरु नानक बाणी (दार्शनिक परिप्रेक्ष्य)

प्रो.जगबीर सिंह

गुरु नानक देव मध्यकालीन भारत के उन क्रांतिकारी धर्म प्रवर्तकों में से हैं जिन्होंने अपने आध्यात्मिक संदेश द्वारा तत्कालीन मानव समाज को मूल्यवान नई दिशाएँ प्रदान कीं। वे संसार के सबसे आधुनिक धर्म, अर्थात् सिक्ख धर्म, के संस्थापक और आदि गुरु हैं। उनके द्वारा स्थापित किए गए इस धर्म की प्रमुख विशेषता यह है कि यह भारत की उस प्राचीन और जीवंत सभ्यता का अंग है जिसका प्रादुर्भाव आज से तकरीबन दस हजार साल पहले भारतीय उप-महाद्वीप के सप्तसिंधु क्षेत्र में हुआ था। भारत की इस सभ्यता के अंतर्गत चार प्रमुख धार्मिक परंपराएँ विकसित हुई हैं-सनातन धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिक्ख धर्म। निस्संदेह इन चारों धर्मों ने विश्व में अपनी स्वतंत्र वैश्विक पहचान स्थापित की है, फिर भी, इन परंपराओं में पंथ, मत और साधना-पद्धति की भिन्नताओं के बावजूद विश्व-दृष्टि और जीवनशैली की समानता के अनेक सूत्र भी दृष्टिगत होते हैं जो विभिन्नता में एकता की यह खूबसूरत मिसाल प्रस्तुत करते हैं। भारत की यह सनातन परंपरा धर्म केंद्रित और ज्ञान आधारित है। इस परंपरा के अंतर्गत धर्म का अर्थ रिलिजन (religion) अथवा मजहब नहीं है। यह मानव जीवन को नैतिक आधार प्रदान करने वाले उस विराट विधान की ओर संकेत करता है जो संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। भारतीय सभ्यता ब्रह्म के रूप में जीवन और यथार्थ के परम सत्य की संकल्पना पेश करती है और इसके अनुरूप ही मानव जीवन के परमार्थ की व्याख्या प्रस्तुत करती है।

एक अद्वितीय धर्म प्रवर्तक के रूप में, गुरु नानक देव जी की विशेषता यह है कि वे मध्यकालीन भारत की उस नव-जागृति लहर के साथ भी संबंधित है जिसको भक्ति लहर के नाम से जाना जाता है। नव-जागृति की इस क्रांतिकारी लहर ने भारतीय लोक मानस को विदेशी मूल के, तुर्क-मंगोल-अफगान, आक्रान्ताओं और दमनकारी शासकों के सदियों से चले आ रहे आतंक से मानसिक मुक्ति प्रदान करने की चेष्टा की। इसके साथ ही इस लहर से जुड़े संतों और भक्तों ने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित खोखले धार्मिक कर्मकाण्ड और सामाजिक कुरीतियों का भी विरोध किया और धर्म को उसके वास्तविक, आध्यात्मिक अर्थों में स्थापित किया।

गुरु नानक देव ने बाणी के रूप में एक वृहत आकार की काव्य रचना की। जिसका प्रामाणिक संकलन आदि ग्रंथ अथवा गुरु ग्रंथ साहिब के पावन ग्रंथ में दर्ज है। इस ग्रंथ में यह बाणी 19 रागों के अंतर्गत शामिल की गई है। इसमें छोटे और बड़े आकार की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ शामिल हैं। जब हम गुरु नानक बाणी का गहन अध्ययन करते हैं तो हमें पता चलता है कि इसमें आम बोलचाल की भाषा के साथ साथ भारतीय दर्शन की शब्दावली का भी प्रयोग किया गया है। वास्तव में ये बाणी भारत की सनातन ज्ञान परंपरा के साथ रचनात्मक संवाद स्थापित करती है और अपने दार्शनिक विमर्श का सृजन करती है।

प्रत्येक मानव समुदाय अपनी आध्यात्मिक और नैतिक अगुवाई के लिए बार-बार अपने पावन ग्रंथों की ओर लौटता है। इन पावन ग्रंथों की विशेषता यह है कि इनके सरोकार सर्वकालीन होते हैं परंतु इनका भाषाई मुहावरा समकालीन होता है। इतिहास के विशेष काल-खंड में रचे गए यह पावन ग्रंथ अक्सर समकालीन स्थितियों और राजनीतिक अवचेतन से प्रभावित होते हैं। अतीत की विरासत को वर्तमान में प्रासंगिक बनाकर ग्रहण करना किसी समुदाय के जीवंत होने की निशानी है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर, हमने गुरु नानक बाणी का अध्ययन करने की चेष्टा की है। हमने इस बाणी को भारत की उस सनातन ज्ञान परंपरा के संदर्भ में रख कर देखने का प्रयास किया है जो चिरंतन काल से हमें जीवन के आदर्श मूल्यों की शिक्षा प्रदान करती रही है। गुरु नानक देव की काव्य चेतना का मूल आधार परमार्थ चिंतन माना जा सकता है। उनकी बाणी की निम्नांकित पंक्तियाँ इसी बात की ओर संकेत करती है:

> जैसी मैं आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो।
> पाप की जंञ लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो।
> सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ु फिरै परधानु वे लालो।
> सच की बाणी नानकु आखै सचु सुणाइसी सचु की बेला।
>
> *(गुरु ग्रंथ साहिब, 722-23)*

गुरु नानक देव जी द्वारा इन काव्य पंक्तियों का उच्चारण मुगल आक्रांता बाबर के हिंदुस्तान के ऊपर हमले के समय किया गया है। उस समय वे पश्चिमी पंजाब के एक गाँव सैदपुर (एमनाबाद) में अपने परम शिष्य भाई लालो के घर में रुके हुए थे। यह पंक्तियाँ भाई लालो को ही संबोधित करके रची गई हैं। गुरु जी कहते हैं 'हे लालो! जैसा ज्ञान मुझे उस खसम (परम पिता परमात्मा) की ओर से आ रहा है वैसा ही ज्ञान मैं तुम्हें दे रहा हूँ। ये जो आक्रांता (बाबर) है यह काबुल की ओर से पाप की बारात लेकर आया है। यह अत्याचार द्वारा वधु के रूप में भारत-भूमि का कन्या दान मांग रहा है। इस समय शर्म और धर्म दोनों ही कहीं छुप गए हैं और चारों ओर कूड (असत्य) की प्रधानता है। नानक सच (सत्य) की बाणी बोल रहा है और सच की इस वेला में सच ही सुनाएगा।

यहाँ 'खसम की बाणी' और 'सच की बाणी' का सृजनात्मक संदर्भ एक ही है। वह है दैवी आवेश का वह चमत्कारी क्षण जिसमें से गुजरने वाला व्यक्ति अपने की लघुता से ऊपर उठ जाता है और निर्भय हो जाता है। गुरुजी की दृष्टि में कविता अथवा शायरी ऐसा

ही एक हौसले वाला कार्य है। यह यथार्थ की समस्याओं को सुलझाने के लिए परमार्थ से राबता कायम करने का प्रयास है। मानव जीवन के त्रासदिक सत्य के रूबरू होकर गुरु जी परम सत्य पर अपना ध्यान एकाग्र करते हैं:

हम आदमी हा इक दमी मुहलति मुहतु न जाणा।
नानकु बिनवै तिसै सरेवहु जा के जीअ पराणा।। 1।।
अंधे जीवना वीचारि देखि केते के दिना।। 1।। रहाउ।
सासु मासु सभु जीउ तुमारा तू मैं खरा पिआरा।
नानकु साइरु एव कहतु है सचे परवदगारा।। 2।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 660)

गुरु जी कहते हैं कि हम 'आदमी' हैं अर्थात् हमारा जीवन एक 'दम' पर ही टिका हुआ है हमें इस बात का कोई ज्ञान नहीं कि हमें जीने की कब तक की मोहलत मिली है और किस मुहूर्त में हमारे जीवन का अंत होने वाला है। इसलिए यही उचित है कि हम उस परमात्मा का स्मरण करें जिसने हमें यह जीवन प्रदान किया है। जीवन की अनिश्चितता और मौत की अटलता का यह अहसास मानव जीवन में निरंतर संवाद की आवश्यक आवश्यकता पर भी बल देने वाला है। इसी भाव की अभिव्यक्ति गुरु नानक बाणी की निम्नांकित काव्य-पंक्तियों में हुई है:

जब लगु दुनीआ रहीऐ नानक किछु सुणीऐ किछु कहीऐ।
भालि रहे हम रहणु न पाइआ जीवतिआ मरि रहीऐ।। 5.2।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 661)

गुरु जी कहते हैं हे नानक, जब तक हम इस दुनिया में रहें कुछ सुनें और कुछ कहें। हमने बहुत खोजबीन कर ली है और पता चला है कि यह जीवन सदा रहने वाला नहीं है। कुछ कहने और कुछ सुनने से तात्पर्य यहाँ परस्पर संवाद के महत्त्व को उजागर करने का है। इस तरह, गुरु नानक देव ने संवाद की इस क्रिया को ज्ञान प्राप्ति के माध्यम के रूप में स्थापित है।

गुरु नानक बाणी की विधा-गत विशेषता यह है कि यह काव्य और संगीत के माध्यम से दार्शनिक विमर्श का निर्माण करती है। गुरु नानक देव जी ने शास्त्रीय संगीत के 19 रागों में अपनी बाणी की रचना की है और इसके साथ ही उन्होंने लोकसंगीत की प्रचलित धुनों का भी प्रयोग किया है। इस तरह क्लासिकल और लोक का एक विचित्र प्रकार का सामंजस्य उन की बाणी में दृष्टिगत होता है। इसके साथ ही उन्होंने काव्य-सृजन की भी अनेक रूप-विधाओं का प्रयोग किया गया है जो हमारी क्लासिकल भारतीय साहित्य परंपरा और लोक परंपरा से संबंधित हैं।

गुरु नानक देव जी ने मानव जीवन के लौकिक सरोकारों को आध्यात्मिक दृष्टि से परिभाषित करते हुए एक संतुलित जीवन शैली का संदेश संचारित किया है। उन्होंने भारतीय परंपरा में प्रचलित मानव जीवन के चार पुरुषार्थों को अपना आधार बनाया है। यह चार पुरुषार्थ हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। उन्होंने मानव जीवन के इन परम उद्देश्यों की चर्चा नए संदर्भ में प्रस्तुत की है। उदाहरण के लिए गुरु नानक बाणी की निम्नांकित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं:

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जडाओ।
कसतूरि कुंगू अगर चंदनि लीपि आवै चाओ।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाओं।
हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ।
मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु ना हीं थाओं।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 14)

गुरु कवि ने यहाँ आर्थिक खुशहाली का एक मन-मोहक चित्र प्रस्तुत करते हुए उसकी आध्यात्मिक सार्थकता पर ध्यान आकर्षित किया है। वे कहते हैं, मेरे रहने के लिए मोतियों से बना हुआ एक सुंदर भवन हो जिसमें हीरे-मोती जड़े हुए हों, कस्तूरी और चंदन जैसी सुगंधित वस्तुओं का उस पर लेप किया गया हो। पर ऐसा ना हो कि मैं अपने आवास की इस अत्यंत समृद्ध स्थिति को देखकर प्रभु के नाम को ही भूल जाऊँ। मैंने अपने गुरु से पूछ कर भली भांति समझ लिया है कि हरि के बिना यह जीव जल कर राख हो जाएगा। इस संसार में उस हरि के बिना कोई भी दूसरा स्थान नहीं है जो प्राप्त करने योग्य है। अर्थात् प्रभु परमात्मा ही मानव जीवन का परम आधार है।

मुख्य बात यह है कि गुरु नानक बाणी की पृष्ठभूमि में भारतीय दर्शन की परंपरा कार्यशील है। इसमें जीवन और यथार्थ के परम सत्य को केंद्र में रखा गया है जिसका परम प्रतीक ब्रह्म है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि गुरु नानक बाणी में ब्रह्म जीव और जगत की व्याख्या को ही दार्शनिक सरोकार माना गया है। वैदिक साहित्य में ब्रह्म की परिभाषा-"सर्व खलुविदं ब्रह्म" और "सत्यम ज्ञान अनंत ब्रह्म" आदि महावाक्यों के माध्यम से की गई है। ब्रह्म सृष्टि का परम सत्य है और यही दृष्टमान संसार का है। भारतीय सभ्यता के सबसे प्राचीन ज्ञान-ग्रंथ, ऋग्वेद में 'नासदीय सूक्त' के अंतर्गत इसका सुंदर वर्णन किया गया है। इस सूक्त का हिंदी में सरल काव्य-अनुवाद निम्नलिखित है:

असत् नहीं था तब, ना ही सत् था,
अंबर नहीं था, ना ही पार फैला हुआ महा-आकाश।
परदे में छिपा, क्या था और कहाँ, किसने थामा था उसे,
तब तो अगम अगाध जल भी कहाँ था।
मृत्यु नहीं थी वहाँ, ना ही अमर जीवन,
रात नहीं थी और ना दिन के प्रकाश का संकेत कोई.
बिना हवा के सांस लेता हुआ,
अपने आप पर निर्भर, तब केवल एक था,
उस के सिवा कोई दूसरा नहीं था।
अँधेरा था वहाँ, अँधेरे से ढंका हुआ,
अंधकार था चारों तरफ था तो बस निराकार शून्य,
तपस की महा ऊर्जा से उपजा पुंज।
फिर, पहले पहल, कामना का हुआ उभार,
मन का आदि-अनादि बीज।
अंतर की सूझ वाले मुनिजनों ने, समझ लिया था भलीभांति,
रिश्ता क्या है अस्तित्त्व का अनस्तित्त्व के साथ।
फैला दिया उन्होंने सूत्र को, महाशून्य के आर पार,
ऊपर वार और नीचे भी।
धारणीय महाशक्तियाँ तत्पर थीं वहाँ,
नीचे थी ऊष्मा, ऊपर असीम ऊर्जा।
कौन जानता है, कैसे उत्पन्न हुआ यह संसार,

देवताओं का भी बाद में हुआ प्रादुर्भाव।
ना जाने रची गई, कब यह रचना,
कौन है सृष्टि का कर्ता, कर्ता या अकर्ता?
अंतर्यामी कौन है, ऊँचे अंबर वाली इस धरा का?
वही जानता है, जो है स्वामी इसका,
या फिर शायद वह भी नहीं जानता।

ऋग्वेद 129.10 (काव्य-अनुवाद: जगबीर सिंह)

नासदीय सूक्त में वर्णित सृष्टि रचना की इसी रहस्यमय स्थिति के साथ रचनात्मक संवाद रचाते हुये गुरु नानक देव ने मारू राग में लिखा है:

अरबद नरबद धुंधूकारा, धरणि न गगना हुकमु अपारा।
ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु सुंन समाधि लगाइदा।। 1।।
खाणी न बाणी पउण न पाणी। ओपति खपति न आवण जाणी।।
खंड पताल सपत नही सागर नदी न नीरु वहाइदा।। 2।।
जा तिसु भाणा ता जगतु उपाया। बाझु कला आडाण रहाया।
ब्रह्मा बिसनु महेसु उपाए माइआ मोहु वधाएंदा।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 1035)

इस तरह गुरु जी ने सृष्टि रचना से पूर्व की शून्य अवस्था का जो वर्णन किया है वह नासदीय सूक्त में वर्णित स्थिति के अनुरूप है। इस में गुरु नानक देव जी ने अपनी ओर से कुछ नया जोड़ने का प्रयास भी किया है। उन्होंने सृष्टि रचना के कारण के रूप में प्रभु की इच्छा (भाणा) और त्रिदेव (ब्रह्मा विष्णु महेश) को शामिल ऋग्वेद की दार्शनिक शब्दावली में 'सत्यम' और 'ऋतं' की अवधारणा बहुत महत्त्वशील है। सत्यम सृष्टि रचना के परम यथार्थ की ओर संकेत करता है और ऋतं संपूर्ण ब्रह्मांड में कार्यशील विधान का द्योतक है। गुरु नानक बाणी में इन अवधारणाओं को 'सच' और 'हुक्म' के हवाले से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के तौर पर गुरु नानक देव जी की दार्शनिक रचना 'जपुजी' की निम्नांकित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं:

आदि सचु जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु।
किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि।।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।। 1।।
हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई।
हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दु:ख सुख पाईअहि।
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि।
हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ।। 2।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 1)

गुरु नानक की गुरु नानक बाणी की इन पंक्तियों में सत्यम और ऋतं की अवधारणा को सच और हुकुम की अवधारणा के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है। इन अवधारणाओं का अर्थ वही है परंतु शब्दावली अलग है। यह शब्दावली लोक भाषा से ली गई है। इस तरह हमें गुरु नानक बाणी में भारतीय धार्मिक परंपरा की निरंतरता का आभास होता है। गुरु नानक देव जी ने सृष्टि रचना को एक खेल कहा इस सृष्टि के रचयिता ने अनेक रंगों और आकारों वाले यह संसार की रचना की है जिसकी तुलना किसी नाट्य-रचना के माध्यम से पेश होने वाले कल्पनाशील यथार्थ से की जा सकती है:

तूं करता पुरखु अगंम है आपि सृसटि उपाती।
रंग परंग 'पारजना बहु बहु बिधि भाती
तूं जाणहि जिनि उपाइऐ सभु खेल तुमाती
इकि आवहि इकि जाहि उठि बिनु नावै मरि जाती।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 138)

गुरु नानक बाणी की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी रचना तो बेशक कविता या शायरी के रूप में हुई है परंतु यह शुद्ध काव्य रचना नहीं है। इस बात का एहसास खुद गुरु नानक देव जी को भी है। उन्होंने अपनी बाणी में इस ओर संकेत करते हुए कहा है:

गावहु गीतु न बिरहड़ा नानक ब्रहम बीचारो। 8.3।।

गुरु जी कहते हैं कि यह जो मैं गा रहा हूँ वह कोई गीत या बिरहडा (लोक गीत की एक वानगी) नहीं है। यह तो ब्रह्म-विचार है। दूसरे शब्दों में गुरु नानक देव जी अपनी बाणी को ब्रह्म विचार करने वाली रचना अर्थात् दार्शनिक रचना के रूप में देखते हैं। इस का सरोकार जीवन के अंतिम अर्थों की तलाश से जुड़ा हुआ है।

उनका जीवन दर्शन एक ऐसी जीवन शैली की ओर संकेत करता है जो आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण है। गुरु जी दृष्टि में एक आदर्श मानव वह है जो साहित्य संगीत और कला की समझ रखता हुआ दार्शनिक दृष्टि में परिपक्व है:

इकि कहि जाणनि कहिआ बुझनि ते नर सुघड़ सरूप।
इकना नादु न बेदु न गीअ रसु रसु कसु न जाणंति।
इकना सिधि न बुधि न अकलि सर अखर का भेउ न लहंति।
नानक ते नर असलि खर जि बिनु गुण गरबु करंत।। 15।।

(गुरु ग्रंथ साहिब,1246)

गुरु जी कहते हैं कि संसार में दो ही तरह के व्यक्ति हैं। एक वह हैं जो कहना जानते हैं और कही हुई बात को बूझना भी जानते हैं। ऐसे व्यक्ति वास्तव में बुद्धिमान हैं। इनके अलावा दुनिया में दूसरे व्यक्ति भी हैं जिनको ना तो नाद की समझ है और ना वेद का ज्ञान है। वे कला और साहित्य के रसों से परिचित नहीं हैं। विवेक बुद्धि से कोरे होने के कारण वे अक्षर का भेद समझ सकने का सामर्थ्य नहीं रखते। ऐसे व्यक्ति तो असल में खर (पशु) हैं जो बिना गुणों के अभिमान में रहते हैं। यहाँ सहज ही हमें भर्तृहरि के इसी भाव के कथन का स्मरण होता है:

साहित्य संगीत कला विहीणः साक्षात पशुः पुच्छ विषाण हीणः

गुरु नानक बाणी जिस आदर्श मानव की संकल्पना प्रस्तुत करती है वह दार्शनिक दृष्टि से जागृत और अंतर-व्यक्तिगत संवाद के हेतु भाषाई योग्यता रखने वाला बुद्धिमान व्यक्ति ही हो सकता है। इस तरह गुरु नानक की यह बाणी भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ रचनात्मक संवाद रचाने वाली रचना के रूप में उजागर होती है।

-प्रो. जगबीर सिंह

अकाल से खालसा तक

प्रो. कपिल कपूर

आप सभी का धन्यवाद बुजुर्ग व्यक्ति को सुनने के लिए। आप जानते हैं भारतीय संस्कृति एवं चीन की संस्कृति में एक सामान्य विशेषता है कि बुजुर्गों का बहुत महत्त्व होता है। सभी जगह नहीं होता। लेकिन इन दो संस्कृतियों में बहुत होता है। वास्तव में शब्द प्रमाण जिसे हम कहते हैं; वह ज्ञान-मीमांसा है। इसका अर्थ है 'ज्ञान'। जब हम ज्ञान के बारे में बात करते हैं तो, उसके प्रमुख आयाम हमारे सामने आते हैं। सबसे पहले हम जानना क्या चाहते हैं अर्थात् ज्ञान की वस्तु; दूसरा हमें यह कैसे पता चलेगा कि हम क्या जानना चाहते हैं। तीसरा जानने वाला कौन है। चौथा क्या जाना जाता है। पाँचवा क्या जो हम जानते हैं वह सत्य है-यह पाँच प्रश्न होते हैं। इन प्रश्नों पर हमारी और पश्चिम की सभ्यता में मुख्य रूप से गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। यह हमारे विचार के इतिहास की समझ को प्रस्तुत करता है। सिख परंपरा का आरंभ गुरुनानक देव जी से होता है और पूर्णता गुरु गोबिंद जी से। इनको हम किसी भी बड़ी नदी के दो मजबूत स्तंभ के रूप में देख सकते हैं। इन्होंने जो विचारों का पुल, जो समर्पण का पुल, और जो सामाजिक प्रतिबद्धता का पुल निर्मित किया, वह वास्तव में बहुत विशाल है। धर्म क्या है? आजकल धर्म का प्रयोग रिलीजन से होता है। धर्म का अर्थ रिलीजन नहीं है। धर्म रिलीजन में अंतर है। हम अपनी चर्चा में इन विषयों पर बिंदुवार बात करेंगें।

भारत भाग्यशाली रहा है कि यह अनेक महान विचारकों की कर्मस्थली रहा है। इन महान विचारकों ने मुख्य रूप से नैतिक विषयों के प्रति विचार किया है। सबसे नैतिक विषय है-'सभी जीवों के प्रति न्याय एवं सम्मान'। सिर्फ मानव ही नहीं सभी सजीव जीवों के जीवन की रक्षा। आप जानते हैं कि पश्चिम आज हमें मानवाधिकार सीखा रहा है। लेकिन हमारी सभ्यता सभी जीवों के जीवन की सुरक्षा हेतु गंभीर रही है। इसका कारण यह है कि हम यह नहीं मानते की मानव प्रकृति का सबसे सर्वोपरि जीव है। हम मानते हैं 84 लाख जीव इस पृथ्वी पर रहते हैं यह आंकड़ा आधुनिक आंकड़े के बहुत करीब है। इस श्रृंखला में सभी को जीने का अधिकार है। सिर्फ मानव नहीं बल्कि सभी। ईसाई धर्म के पवित्र ग्रंथ ओल्ड टेस्टामेंट जिसमें भगवान एडम से कहते हैं, मैंने तुममें अपने आप को बनाया है इसीलिए तुम हवा को, जल का, मछलियों का तुम उपभोग करो और अपना प्रभुत्व स्थापित करो। यह हमारे यहाँ नहीं माना जाता। हम किसी जीव से सर्वोपरि नहीं हैं, छोटी से छोटी चींटी से भी नहीं। यही कारण है कि आप भारत में ध्यान देंगें कि शाम को लोग आटा और चीनी लेकर चींटियों को ढूंढ़ते हैं और चींटियों को भोजन देते हैं। जब मेरी बेटी ने मुझसे पूछा-वे क्यों ऐसा कर रहे हैं? मैंने कहा-क्योंकि यह बारिश का मौसम है और बारिश होने के कारण चीटियाँ बाहर नहीं जा सकती। इसलिए उन्हें भोजन दिया जाना चाहिए। इसीलिए लोग उन्हें खिला रहे हैं और सूखे जैसी स्थिति में जैसे गुजरात आदि राज्यों में जहां पानी की काफी कमी हो जाती है। वहाँ लोग जानवरों-पक्षियों के प्रति ज्यादा ही ध्यान रखते हैं। इसलिए उन्होंने जानवरों के लिए बड़ा पानी पीने की जगह बना दिया। भारत भाग्यशाली है क्योंकि यहाँ के महान विचारकों की मुख्य चिंता का विषय-लोक संग्रह रहा है। लोक संग्रह अर्थात् लोगों का कल्याण। यह विचार भारतीय दार्शनिक साहित्य में बार बार आता रहा है उनमें प्रमुख है-भगवतगीता। भगवतगीता में यह पदबंध तीन बार आया है। जो भी कार्य किया जाएगा उसमें लोक संग्रह होना चाहिए। हमारी सभ्यता, संस्कृति में ज्ञान अपने आप में कुछ नहीं है जब तक वह समाज के लिए हितकर नहीं। ज्ञान लोगों के कल्याण के लिए होना चाहिए। हमारे एक कवि, औचित्य विचारक क्षेमेन्द्र ने कहा-सुन्दर कविता में क्या होना चाहिए? यदि वह आपको जीवन औचित्य न सिखाये। आप क्या कर रहे हैं इसका एहसास कराना। आपको क्या करना चाहिए। इसीलिए नैतिक निर्देश मानवीय सभ्यता को प्रभावित करते हैं और हमारे यहाँ इन संदर्भों की लंबी परंपरा रही है।

भक्ति आंदोलन की शुरुआत संगम साहित्य पहली शताब्दी से मानी जाती है। आज भी भक्ति का भारतीय रूप विभिन्न रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत होता है। भजन कीर्तन यह सभी इसके अभिन्न रूप है। इस परंपरा में अंडाल से लेकर गुरु नानक देव और गुरु गोबिंद सिंह तक की परंपरा सम्मिलित है। मैं अब आपसे दस गुरुओं का परिचय कराना चाहता हूँ। उनमें दोनों गुरु के बारे में अभी मैंने चर्चा की कि कैसे गुरुनानक और गुरुगोबिंद सिंह जी अपने अद्वितीय दृष्टि के कारण विश्व के महान व्यक्तित्व बनें। वे सचमुच अद्वितीय रहे। गुरुनानकजी के बारे में कहा जाता है कि वह प्रकट हुए। 'धुंधमिटी जग चानन होया, सद्गुरु नानक प्रकटया।' अर्थात् धुंध मिटी और जगत ने प्रकाश को प्राप्त किया। इस धुंध से 15वीं 16वीं शताब्दी का समाज ढका हुआ था। यह धुंध अनेक समस्याओं की थी। यह धुंध बेपरवाही, अविद्या, अज्ञान की थी। अविद्या सबसे बड़ी समस्या है। जब कभी हमारे जीवन में सुख और दु:ख आता है तो उसको सहने और ठीक करने की शक्ति हमें हमारे जीवन के अर्जित ज्ञानसे मिलती है। यह ज्ञान हमारे जीवन के अनुभवों से बनता है। इसलिए उस समय धुंध मिटी, जब लोग इन समस्याओं से जूझ रहे थे। वह समस्याएँ लोगों की अविद्या रही जिससे वे ग्रस्त थे। आप जानते हैं मैंने पहले कहा था की हमें अपने मूलभूत सिद्धान्तों को अनुवाद करने से संकोच करना चाहिए और इस स्थिति में और भी

ज्यादा जब लक्ष्य भाषा की संस्कृति, विचार और परंपरा एकदम अलग हो। क्योंकि अनुवाद विचारों को संप्रेषित करता है। यही कारण है कि विचारों में कुछ और भी जोड़ा जा सकता है। अविद्या भी एक प्रकार की विद्या है। अर्थात् आप कुछ सीखते हैं पर वह आपके लिए उपयोगी नहीं है वह अविद्या है। अविद्या वह जो आपको आंनदित न करे। जब अविद्या का धुंध छाया हुआ था तब गुरु नानक जी ने इस धुंध को सही ज्ञान से दूर किया। उन्होंने ज्ञान के अंतर को समझाया। वह ज्ञान क्या है? गुरु नानक जी ने ज्ञान को बाँचा। उस ज्ञान के माध्यम से जगत के दु:ख की धुंध मिटी। आप सोच सकते हैं कि गुरु जी मुगल शासन के अत्याचारों के बारे में लिख रहे थे जब बाबर यहाँ का शासक था। एमनाबाद (आज का पाकिस्तान) के युद्ध में बाबर ने स्थानीय राजा को हरा दिया। इस युद्ध में भीषण रक्तपात हुआ। बाबर ने अपने बहुत से सैनिकों को गवाया। जीत के पश्चात बाबर ने वहाँ के सभी बच्चे, बूढें, स्त्रियों को मारने का आदेश दिया। गुरुनानक ने बाबर बाणी में इस बर्बर हिंसा का जिक्र किया है।

इसके साथ ही गुरुनानक भी उसी परंपरा से हैं, जिससे महात्मा बुद्ध रहे। इन दोनों महापुरुषों के बीच में दो हजार साल का अंतर है; पर इनके विचार और चिंताएँ आपस में मिलती हैं। महात्मा बुद्ध ने भी लोगों के दु:ख पीड़ा के प्रति चिंता जाहिर की और गुरुनानक ने भी। परन्तु महात्मा बुद्ध के समय में भारत सैन्य रूप से बेहद शक्तिशाली था। उस समय कोई विदेशी आक्रान्ता नहीं था जो लोगों को परेशान करता। उस समयजीवन आरामदायक था और लोगों के जीवन में नैतिकता का ह्रास था। लोगों की परेशानी का कारण उनका लोभी होना, शक्तिशाली लोगों द्वारा शोषण रहा। सिर्फ शोषण बाहरी आक्रान्ताओं द्वारा ही नहीं होता बल्कि आतंरिक शासकों द्वारा भी होता है। इसीलिए महात्मा बुद्ध सत्य के प्रश्न की खोज में निकल पड़े और वास्तव में उनका संकल्प अलग था। अपने संकल्प के माध्यम से उन्होंने उचित विकल्पों से मानव समाज के कष्ट को दूर किया। हमारे यहाँ ज्ञान की तीन परंपरा है-ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग

आप अपने चुनाव द्वारा किसी भी ज्ञान के आधार पर आचरण कर सकते हैं। भगवतगीता में कर्म के सन्दर्भ में एक अध्याय दिया गया है। कर्म, विकर्म, अकर्म, निषिद कर्म, नियत कर्म, निष्काम कर्म। महात्मा बुद्ध ने कर्म मार्ग चुना। अष्टांग मार्ग, इस मार्ग में छोटे-छोटे कार्य द्वारा इसको किया जा सकता है। महात्मा बुद्ध के अनुसार चार आर्य सत्य हैं- जीवन दु:ख है। सभी दु:ख के कारण हैं। दु:खों का अंत संभव है। दु:खों के अंत का एक मार्ग है-अष्टांग मार्ग। यह बौद्ध जातक कहानियों में यह बड़ी खूबसूरती से चित्रित किया गया। यह कथाएँ मूल रूप से पाली में हैं। यहाँ दो कथाएँ है। बारिश का मौसम था। एक व्यक्ति अपने घर के अन्दर बैठा था। बारिश शुरू होने वाली थी। उसने कहा मैंने अपनी दीवार का पुनर्निर्माण करा लिया है, मैंने नई छत बना ली है। मेरे पास पर्याप्त भोजन है जो चार महीने चल सकता है। मैंने कुछ सूखा इंधन भी रख लिया है इसीलिए अब मैं तुम्हें चुनौती देता हूँ कि तुम जितना चाहे उतना बारिश करो। अगली कहानी एक यात्री की है। वह हाट में बैठा था उसने कहा-ठीक है! दीवारें टूटी हुई हैं, छत टपक रहा है और फर्श भी टूटा हुआ है तथा इसके साथ ही मेरे पास सिर्फ एक दिन का भोजन है लेकिन मैं तो यात्री हूँ कुछ क्षणों के लिए ही कहीं रुकूँगा। इसीलिए जितनी बारिश होनी है हो जाए। अर्थात् पहला दृष्टिकोण है, ये दुनिया एक धर्मशाला है हम यहाँ आकर थोड़ी देर के लिए रुके हैं। इसका दूसरा दृष्टिकोण है की हमें धन संचित करना है। महात्मा बुद्ध के अनुसार लोग अपने दु:ख के कारण स्वयं पैदा करते हैं। हमें अपने प्रति समभाव रखना चाहिए।

वही गुरुनानक देव जी के समय में बाहरी आक्रान्ताओं का हस्तक्षेप रहा। बुद्ध के समय में आतंरिक स्तर पर समाज का पतन हो रहा था। अगर आपने नाट्यशास्त्र पढ़ा हो तो उसके आरम्भ में ब्रह्मा भरत से कहते हैं-लोगों का आचरण भ्रष्ट हुआ है। वे दार्शनिक ग्रंथों को नहीं पढ़ते। वे वेद और उपनिषद को नहीं पढ़ते। इसीलिए आप कुछ नाटक बनाएँ जिससे मनोरंजन के माध्यम से सिखाया जा सके। सरस अर्थात् मनोरंजन के माध्यम से शिक्षण। वैसे ही जब महात्मा बुद्ध के समय में समाज में इसी प्रकार की स्थिति बनी तो उन्होंने अष्टांग मार्ग के दर्शन का प्रतिपादन किया। गुरुनानक जी के समय में हिंसा का वातावरण था। लोगों को काटा, मारा और शोषण का शिकार बनाया जा रहा था। लोग असहाय महसूस कर रहे थे क्योंकि आक्रान्ता बाहर से आए थे। लोगों की उनसे लड़ने की कोई संभावना और शक्ति नहीं थी। भारतीय जनता अपनी विश्व की सबसे समृद्ध ज्ञान संस्कृति और परंपरा पर गर्व करती है जो अनेक बार जलाने, नष्ट करने के बाद भी पंडितों द्वारा सुरक्षित किया गया। भारत के पास अभी भी 10 लाख पांडुलिपियाँ मौजूद हैं। 13 वीं शताब्दी में जब नालंदा की लाइब्रेरी जलाई गयी थी तब वह तीन महीने तक जलती रही। इतनी पांडुलिपियाँ उसमें मौजूद थीं। भारत विश्व में पहला ऐसा देश है जिसके यहाँ अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय-तक्षशिला, बल्लभी, विक्रमशीला, नालन्दा रही हैं। उन्हें जलाया गया नष्ट किया गया। इसीलिए वह समय 500-600 वर्ष का धुंध था जो गुरुनानक के कारण मिटा। अगर आप वील डूरंट की पुस्तक-सभ्यता की कहानी पढ़ें। वह कहते हैं भारत की सभ्यता बेहद संवेदनशील है। क्योंकि यहाँ की सभ्यता में लोग न केवल सीखते हैं बल्कि दूसरी सभ्यता को भी महत्त्व और स्थान देते हैं। उनकी संस्कृति आत्मकेंद्रित नहीं है इसलिए वह सिर्फ स्वयं के बारे में नहीं सोचते। उनके लिए उनका कोई दुश्मन नहीं है। जैन दर्शन बहुत सारी सभ्यता का मेल है। जैन दर्शन में नदी के प्राकृतिक प्रवाह को बाधित करना, वृक्षों को प्राकृतिक ढंग से विकसित न होने देना भी हिंसा है।

गुरु नानक जी ने दूसरा रास्ता चुना। ज्ञान मार्ग पूर्णत: आत्म विश्लेषण का मार्ग है। ज्ञान के माध्यम से 'स्थितप्रज्ञ' की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। आपके लिए सुख और दु:ख समान हो जाता है। कुछ प्राप्त करने पर नहीं आप बहुत खुश होंगे और कुछ खोने पर न ही आप दुखी होंगे। यह सिर्फ आप के मस्तिष्क के स्तर पर घटित नहीं होता यह आपके अनुभव में आत्मसात किया जा सकता है। ज्ञान, कर्म और भक्ति इसका मतलब यह नहीं है यह तीनों आइसोलेटेड कैबिन्स हैं। ज्ञान अर्जन करना अपने आप में कर्म है। कर्म क्रिया (एक्शन) ज्ञान को उत्पन्न करती है। यदि आप उच्च

स्तर की समझ रखते हैं तो आप सब का सम्मान करेंगे। आप दूसरे के विचारों का सम्मान करेंगे। आप हर जीव के प्रति सहानुभूति रखेंगे। यही भक्ति है। आदि शंकराचार्य भागवत गीता के दूसरे अध्याय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं ज्ञान युक्त कर्म ही भक्ति है। यहाँ यह तीनों मार्ग एक दूसरे से अलग नहीं है। बल्कि आपस में सम्बद्ध हैं।

गुरु गोबिंद सिंह जी बेहद असाधारण व्यक्तित्व के व्यक्ति हैं। उन्होंने इन तीनों मार्गों ज्ञान, कर्म एवं भक्ति को एक कर दिया। उन्होंने दार्शनिक काव्य लिखकर एवं अनुवाद किया। रामावतार, चंडी दी वार उन्होंने युद्ध की देवी चंडी के लिए रचना लिखी। उन्होंने ब्रह्म की संकल्पना को 'अकाल स्तुति' नामक रचना के माध्यम से प्रस्तुत किया। उन्होंने भगवत पुराण को पंजाबी में अनूदित किया। 'भाखा दियो बनाएँ' कथा भगवती की। उनकी कथा मैंने लोक भाषा में बना दी। 'मित्र प्यारे नू हाल मुरीदा दा ना कहना' गुरु गोबिंद सिंह जी ने हीर रांझा की प्रेम कथा लिखी है। वह असाधारण योद्धा थे। 40 लोग एक लाख की फौज से लड़ जाते हैं। वह एक महान कवि, दार्शनिक, संत और अद्वितीय योद्धा रहे। ऐसे महान योद्धा पूरे विश्व में दूसरा कोई नहीं। उनका जीवन ध्यान से कर्म, कर्म से होते हुए भक्ति मार्ग तक पहुँचा। मैं इस महत्त्वपूर्ण तथ्य से आप सभी को अवगत कराना चाहता हूँ कि भारत के चार विश्वास प्रणाली में सिख संप्रदाय चौथा है एवं सबसे युवा है।

दुनिया में दो ही ज्ञान परंपराएँ हैं। उनमें से एक अब्रह्मिक, सेमेटिक, हेब्राइक। अब्राहम एक पादरी रहे, सेमेटिक जाति है, हेब्राइक यहूदी लोग। ये तीनों एकेश्वरवादी हैं। दूसरी परंपरा भारत खंड की है जिसका जिक्र विष्णु पुराण में किया गया। भौगोलिक रूप से भारत बेहद स्पष्ट है। हिमालय से हिंद सागर तक, सुलेमान की ड्राई हिल्स से म्यांमार की ग्रीनहिल तक यह जो प्रदेश है भारतखंड है। भारत देश है नेशन नहीं। नेशन की संकल्पना यूरोप की है। 1881 में जब बिस्मार्क का साम्राज्य टूटा अर्थात् ऑस्ट्रो हंगेरियन साम्राज्य तब यूरोप छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया। उनमें एक धर्म, एक भाषा, एक जाति के आधार पर नेशन की परिभाषा तय हुई। हमने अपने स्कूलों में गिलक्रिस्ट एवं गार्नर को ही पढ़ा है। जिन्होंने संविधान लिखा उन्होंने भी यही पढ़ा था। उनको बड़ी चिंता हुई इंडिया तो नेशन नहीं है। यह सोचने की बजाय की परिभाषा गलत हो सकती है उन्होंने सोचा कि देश ही गलत है। अब आप नेशन बिल्डिंग, नेशन मेकिंग कहते हैं इससे आप क्या कहना चाहते हैं। मतलब क्या हमें कोई शंका है कि हम एक देश है या नहीं। लेकिन हेरोडोटस जिसने विश्व का इतिहास चौथी सदी में लिखा उसे कोई शंका नहीं थी भारत एक देश है। ह्वेनसांग, मेगास्थनीज को कोई भी शंका नहीं रही। मध्य पूर्व के देश हमेशा सिंध नदी के दूसरी तरफ का हिस्सा हिंदुस्तान कहते हैं उन्हें कोई शंका नहीं थी। पर हमें अपने शिक्षा को धन्यवाद देना चाहिए कि हमने इससे शंका करने के अलावा कुछ नहीं सीखा।

मध्य पूर्व की ज्ञान परंपरा एकेश्वरवादी है, जबकि हमारी ज्ञान परंपरा बहुईश्वरवादी है। भारतीय ज्ञान परंपरा में अद्वैत सिद्धांत से ही ब्रह्म के एक या दो होने पर चर्चा होती रही है। इस सिद्धांत में समग्रता महत्त्वपूर्ण है। हमारे यहाँ जो वेदों से निकला ज्ञान है अर्थात् वैदिक ज्ञान, संस्कृति ज्ञान की संस्कृति है। एकेश्वरवाद की संस्कृति नहीं है। आप ध्यान से देखें तो हमारी संस्कृति अर्थात् वैदिक ज्ञान संस्कृति ईश्वर पर आधारित नहीं है। हमारी संस्कृति मानव केन्द्रित संस्कृति है, हमारे यहाँ कोई धर्म ग्रंथ नहीं है। वे धार्मिक ग्रंथ नहीं है। यह सभी ज्ञान के ग्रन्थ हैं। हमारे लिए भौतिक किताब से ज्यादा महत्त्व ज्ञान का है। आदिशंकराचार्य ने कहा 'यह जो जिल्द है, वह ज्ञान नहीं है उसके अंदर जो शब्द राशि है, वह भी नहीं है। वह शब्द किसका संकेत करते हैं, जिस ज्ञान का संकेत करते हैं। वह है वह ग्रंथ।' अंतिम समय में गुरु गोबिंद सिंह ने कहा था 'गुरु मानहु ग्रन्थ' अब ग्रंथ आपका गुरु होगा। ग्रंथ का मतलब संकेत अर्थात् ग्रंथ में जो ज्ञान है वही आपका गुरु है। वह ज्ञान है, सामाजिक कल्याण के 'लोकसंग्रह' के लिए है। इसके साथ ही ईश्वर केंद्रित बनाम मानव केंद्र यही इन दो संस्कृतियों का सबसे बड़ा अंतर है।

मानव के सुख-दुःख जो हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा के केंद्र में रहे हैं। मैं हमेशा कहता हूँ कि हमारे ग्रंथ ज्ञान रिलीजियस ग्रंथ नहीं है। यह ज्ञान के ग्रंथ हैं। वेद ज्ञान ग्रंथ और वास्तव में बेहतरीन कविता भी। अब भगवत गीता धार्मिक ग्रंथ कैसे हैं? आप पढ़ कर देखिए उसमें एक बहुत चतुर आदमी एक पंजाबी को मना रहा है कि तुम्हें लड़ना चाहिए। भगवान श्री कृष्ण जो किंतु परंतु प्रदेश-उत्तर प्रदेश से हैं वही अर्जुन पंजाब से। पंजाब के लोग या तो इधर या तो उधर। इसीलिए अर्जुन ने कहा भी है कि आप कहते हैं कि ज्ञान सर्वोपरि है फिर कहते हैं कर्म सर्वोपरि है तो मुझे एक चीज आप बताइए क्या सर्वोपरि है? तो कृष्ण जो कहते हैं उससे भ्रम पैदा होता है। दोनों में फर्क नहीं है ज्ञान और कर्म में। तब अर्जुन कहते हैं कि मुझे कुछ प्रत्यक्ष दिखाओ। मैं देखूं भगवान क्या है? फिर वह विराट रूप दिखाते हैं तब वह एक भ्रम प्रस्तुत करते हैं। बाहुबली फिल्म का नियाग्रा फॉल तो भ्रम है, वह है थोड़े। विराट रूप भी एक भ्रम है। भगवत गीता एक शानदार पाठ है और एक विशुद्ध कविता। अर्जुन ने पूछा कि हम आप को पहचाने कैसे। श्री कृष्ण ने कहा "तुम कहीं भी पूर्णता या सिद्धता देखो वही मैं हूँ। स्थिर रहने वालों में हिमालय, बहने वालों में गंगा, छंदों में गायत्री, ऋतु में वसंत, महीनों में मार्गशीर्ष और छल करने वालों का छल मैं हूँ।" भगवान पूर्णता या सिद्धता का परम रूप हैं। आप भी पूर्णता या सिद्धता को प्राप्त कर सकते हैं और आप भी भगवान बन सकते हैं। इसीलिए हमारे महान पाणिनि जिन्हें लोग भगवान पाणिनि कहते हैं। वेदव्यास को भगवान वेदव्यास कहा जाता है। यह सभी मानव हैं पर हम इन्हें भगवान कहते हैं। सिर्फ इसलिए की उनमें पूर्णता है। राम मर्यादा के लिए, कृष्ण अपनी क्रियाओं के लिए भगवान कहलाए। क्या आप जानते हैं, लिखना गलत शब्द है। क्योंकि हमारी परंपरा मौखिक परंपरा है, लिखित परंपरा नहीं। वह सभी गाने के लिए है। आप संगीत के माध्यम से लम्बे समय तक याद रख सकते हैं। यही कारण है की आपको पुराने गीत लम्बे समय तक याद रहते हैं। क्योंकि आप गा-गाकर लम्बे समय तक रख सकते हैं। इसीलिए ग्रंथों को इन रागों, छंदों में संयोजित किया गया।

गुरु नानक जी ने ज्ञान मार्ग का अनुसरण किया। ब्रह्म की संकल्पना का सवाल हमारी ज्ञान संस्कृति का प्रमुख विषय रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा चार पद्धतियां-सनातन, जैन, बौद्ध और सिख के रूप में प्रस्तुत होती हैं और उनमें भी सिख सबसे युवा पद्धति है। भर्तृहरि शब्द ब्रह्म की अवधारणा में ब्रह्मा को भाषा के सिद्धांत में प्रस्तुत करते हैं। वह अनादि है अर्थात् जिसकी शुरुआत का हमें पता नहीं है। वह अनंत है क्योंकि हमें उसके अंत का भी पता नहीं। वह अद्वितीय है उसके जैसा दूसरा कोई नहीं। वह सब में व्याप्त है। हमारे विचारक कहते हैं कि जो वैयाकरण ज्ञान की गहराई में गए, उन्हें अंततः मोती मिल गया। बहुलतावाद से शुरू होकर उसमें एकत्व का मोती। यह मोती शब्द ब्रह्म है। 'बिल्ली' शब्द हम बोलते हैं, मैं अलग ढंग से बोलता हूँ। एक अमेरिकन अलग ढंग से बोलेगा। यह सैकड़ों ढंग से बोला जा सकता है। शब्द क्या है? शब्द वह नहीं है जो लिखा है, छपा है, या जो हमने बोल दिया है या जो हम बोल रहे हैं। इन सबके इतर एक शब्द मस्तिष्क में है। ब्रह्मांड में ब्रह्म का स्वरूप आंतरिक है, वह बाहरी नहीं है। इसीलिए सृष्टि की रचना पवित्र है; क्योंकि ब्रह्म इसमें समाहित है। यदि आप किसी गाँव में जाएंगे तो आप पाएंगे कि एक आदमी भूखा है उसको रोटी नहीं मिली। उसके सामने चिड़िया फुदक रही हैं, कबूतर खेल रहे हैं। पर वह उन्हें नहीं मारेगा। यही हमारी जीवन संस्कृति है। हमारी संस्कृति में जीवन बहुत पवित्र है, क्योंकि प्रत्येक जीव में ब्रह्म है। गुरुनानक देव जी ने इस उपनिषद के ज्ञान को जो कि हमारे देश के लोग भूल चुके थे। आक्रान्ताओं के अत्याचारों के कारण, शोषण के कारण और तमाम समस्याओं के कारण अपने ज्ञान से विमुख हो चुके थे वह अपने आप को हीन मानने लगे थे; ऐसे में गुरु नानक देव जी ने घूम-घूम कर देश में ज्ञान को पुनः जागृत किया और लोगों में ज्ञान की चेतना भर दी। उनकी यात्राओं को उदासियाँ कहते हैं। कई उदासियों में वह गए। उनको इस बात की चिंता या उदासी थी कि लोग इतने उदास या परेशान क्यों है। उन लोगों की समस्याओं को दूर करना उनकी उदासियों का लक्ष्य था। वास्तव में कथा प्रवचन परंपरा अर्थात् 'परिवार्जक की परंपरा' हमारे यहाँ बेहद प्राचीन है। साधु संत गाँव-गाँव जाकर लोगों में जागरण का प्रसार करते रहें।

गुरु नानक देव जी का मूल मंत्र है एक ओंकार। मैंने आपको बताया भर्तृहरि ने दार्शनिक ब्रह्म के समानांतर शब्द ब्रह्म की अवधारणा को प्रस्तुत किया। क्योंकि 'ज्ञानं शब्दं शब्देन भाषते'। सभी ज्ञान शब्द में संरचित होते हैं। जगत भाषा का विकल्प है। हम संपूर्ण जगत को भाषा के माध्यम से रचते हैं। भाषा यथार्थ को संरचित करता है। 'बिल्ली' शब्द के माध्यम से मस्तिष्क में अनेक छवियाँ निर्मित होती हैं; जैसे सफेद बिल्ली, ब्राउन बिल्ली, बैठी हुई बिल्ली, खूबसूरत बिल्ली, खतरनाक बिल्ली अर्थात् एक शब्द से कितनी बिल्लियाँ बन गई। हमारे दिमाग में शब्द ने बिल्ली बनाई। हम ज्ञाता (knower) हैं। हम ज्ञान को निर्मित करते हैं। हम जो कुछ भी अपने दिमाग में बनाते हैं वह हमारे स्वयं के अनुभव से निर्मित होता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति के विचार दूसरे से अलग होते हैं। गुरुनानक देव जी ने पूरे उपनिषद में जहाँ ब्रह्म चिंतन है उस सारे चिंतन का सार है जपुजी साहब का पहला ही संदर्भ-

"इक ओंकार, सतनाम, करतापुरख, निरभउ, निर्वैर, अकाल मूरत, अजूनी, गुरुप्रसाद"

मैं इसकी व्याख्या करूँगा अगर आप यह समझ ले तो आपको उपनिषद पढ़ने की जरूरत नहीं है। ब्रह्म कौन है? एक ओंकार, अद्वितीय। प्रश्नोपनिषद ने ब्रह्म को एक कहा है, दूसरा नहीं है।

एक ओम-अ उ म। जब बच्चा पैदा होता है तो उसकी आवाज अ होती है। यह कंठ की मूल ध्वनि है। उ इसमें वाक यंत्र साथ आ जाते हैं और म। हमारे मनोविज्ञान में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति (चेतन अवचेतन अचेतन)तीनों मिलकर चौथे का निर्माण करते हैं। उसी प्रकार 'अ' 'उ' 'म' मिलकर ओम का निर्माण करते हैं। यह ओम अक्षर है इसका अंत नहीं होता जो इस संपूर्ण ब्रह्मांड में है यही ओमकार ब्रह्म है जिसको भर्तृहरि शब्द ब्रह्म कहते हैं। सतनाम का क्या अर्थ है? एक ओंकार क्या ये नाम है उसका? यह नाम सत है यही सत्य है। ओम जो ब्रह्म, यही सारे अस्तित्व का नाम है। दोनों अर्थ संभव है और सत्य है। जो भक्तिमार्गी है वह कहते हैं नाम जपो, जाप ही सत्य है। गुरु नानक ने भी साधारणीकृत करके बताया-कीरत करो, दूसरों की भलाई के लिए काम करो, नाम जपो, हमेशा उसे याद रखो, वंड छको। मिल बांट कर खाओ और सेवा। गुरु ग्रंथ साहिब में सेवा शब्द 800 बार आता है। सेवा करना बेहद कठिन है। सेवा कराना बेहद आसान है। पानी मांगना बहुत आसान है, अगर कोई आप से मांगे ले, ले जाना बड़ा मुश्किल है। पर हमारे सयाने लोग कहते हैं, जहाँ तक हो सके सेवा नहीं करानी चाहिए। दादाजी कहते थे पानी चाहिए तो खुद उठकर पियो। दूसरों की सेवा करनी चाहिए। जैसे बुद्धों में अष्टांग मार्ग है वैसे ही सिख धर्म में चार चीजें बड़ी सीधी हैं-दूसरों के लिए काम करो, सिर्फ अपने लिए नहीं, कीरत करो, अच्छा काम करो, नाम जपो बाँट कर खाओ।

ओम का आकार ब्रह्म है। तो ये यदि ब्रह्म का आकार है तो यही सत्य है। इसलिए नाम लो। या यह नाम है जो भी है उसका। सारी अस्तित्व का यह नाम है। 'करता पुरख' करता संज्ञा है या विशेषता है? यह सोचने की जरूरत है। दोनों से अर्थ बदलते हैं। दोनों ही ठीक हैं। 'करता'-जो कर्त्ता है, हम लोग एजेंट हैं, कर्त्ता नहीं। हमारे माध्यम से वह करवाता है। इसीलिए कोई बच्चा कुछ अच्छा करें। तो आप उससे जाकर कहोगे कि बेटा तूने बहुत बढ़िया काम किया है तो वह कहेगा 'हो गया जी'। वह यह नहीं कहेगा, हाँ जी! देखा मैंने कर दिया। ऐसा नहीं कहेगा। 'हो गया' कर्त्ता वह है, वहीं सब करता है। जिसकी तुलना हम घड़ें से करते हैं। घड़ा बनाना, सुराही बनाना, जो भी बनाना है फॉर्म देना है। वह रूप देते हैं। 'पुरख' पुरुष-आत्मा और चित्र इसका मतलब ऊर्जा सिद्धांत है। एक ओंकार ऊर्जा का सिद्धांत है। यदि पुरख, भौतिक रूप से पुरुष है; तो करतापुरुष वही एक है, जो करता है, वही कर्त्ता है, वह ऊर्जा जो करने की है।

'निर्भय' कोई भय नहीं। भय मानवीय गुण है। 'निर्वैर' कोई घृणा नहीं, कोई दुश्मन नहीं, कोई विपक्षी नहीं, कुछ नहीं। ब्रह्म मानवीय समृद्धता का शब्द है। गुरुजी ग्रंथ साहिब में स्वयं 943 पदों के माध्यम से सकारात्मक वर्णन करते हैं और जब अंत नहीं आता। इसीलिए वह नेति-नेति कहते हैं। मैं क्या हूँ, मैं कुछ शब्दों में बयाँ कर सकता हूँ। लेकिन मैं क्या नहीं हूँ यह तो अनंत है। मैं तुम नहीं हूँ, मैं यहाँ से नहीं हूँ, मैं वहाँ से नहीं हूँ, नहीं का संसार अनंत है। इसीलिए

नीति को जैन कहते हैं स्व पर्याय, परपर्याय। स्व पर्याय का जगत बहुत बड़ा होता है इसलिए ब्रह्म की परिभाषा ज्यादा परपर्याय में होती है जो मानवीय सिद्धांत के सोच के परे है। इसीलिए वह निर्वैर है, निर्भय है।

'अकाल मूरत' अकाल, काल समय है। हमारे देश में कालगणना बहुत आरंभ से उज्जैन में होती थी। उज्जैन में मंगलनाथ का मंदिर है जिसके नीचे से कर्क रेखा निकलती है। इंग्लैंड में ग्रीनविच से समय की गणना होती है हमारे यहाँ उज्जैन मंगलनाथ से होती है। तो अगर आप भागवत पुराण पढ़ेंगे तो इतनी सूक्ष्म समय की गणना से युगों तक की गणना क्रमश: दी जाती है। काल लम्बा समय एवं स्थान है। लेकिन समय क्या है? मैं 10 साल के बाद अपने दोस्त के घर गया और मैंने उसके बच्चे को देखा और कहा अरे यह इतना बड़ा हो गया। समय बीतने का पता कैसे चलता है? जब कोई ऑब्जेक्ट बदल जाता है। यह जरा ध्यान से समझने की बात है। समय है क्या। घड़ी की सुई इधर से हटकर उधर चली गई। यही हुआ ना। समय बीत गया जिसको आपने 3 फुट का देखा था वह आज 6 फुट का हो गया है। समय का बीतना दिखाई नहीं देता। उसी में होता है। अत: एक ब्रह्म अनेक कैसे हो जाता है। आप में भी है, मुझ में भी है, पेड़ पक्षी सभी में। पर हमने तो कहा ब्रह्म एक है। फिर एक अनेक कैसे हो गया। एक अनेक हो गया। यह अनेक काल शक्ति के कारण हो गया। काल की शक्ति से ब्रह्म एक से अनेक हो गया। इसीलिए जो ब्रह्म अक्षर है, बदलता नहीं। अनेक नहीं होता, वह अकाल है। परब्रह्म-हम लोगों के दर्शन में आता रहा। उसमें यह जो समझ है कि परब्रह्म समय से परे है। गुरु जी ने अकाल शब्द का प्रयोग किया और गुरु गोबिंद सिंह जी ने पूरी लंबी अकाल स्तुति लिखी। अकाल क्या है? अकाल मूरत, मूर्त और अमूर्त मूर्त रूप है। एक ओंकार यह समय से परे है। अकाल विशेषण है। वह फॉर्म है जिसे ब्रह्म धारण करता है। आप समझ रहे हो, दो अर्थ निकले फिर बदल गया। एक ओंकार अकाल मूरत अजूनी, अजूनी जन्म का विषय नहीं? क्या वह जन्म का विषय नहीं है। अगर आप पैदा नहीं होते, आप मर भी नहीं सकते।

हमारी जो कथा प्रवचन परंपरा है। गुरु नानक ने पूरे उपनिषदों का ज्ञान, लोक भाषा में डाल दिया या गुरु गोबिंद सिंह ने शास्त्रों का ज्ञान लोक भाषा में डाल दिया। ज्ञानेश्वर जी ने गीता का ज्ञान मराठी में डाल दिया या रामानुजाचार्य ने ब्रह्मा सूत्रों का ज्ञान अपनी तमिल टीका में डाल दिया। इस तरह इस देश में पूरे भक्तिकाल में भक्ति कवियों ने ज्ञान का स्थानांतरण कर दिया। लोक भाषा और क्योंकि वही ज्ञान सभी भारतीय भाषाओं में था इसीलिए विविध भाषाओं के अनेक होने के बावजूद भी हम एक हैं। आप भारत के किसी कोने में जाएँ आप महसूस करेंगे कि आप इसी देश में हैं। अब आप भाषा नहीं समझ पाएंगे। पर आप महसूस करेंगे कि आप इसी देश के हैं। के.पी.एस. गिल ने जेएनयू में आकर कहा था आप बौद्धिक लोग हैं। आप चर्चा करते हैं कि भारत एक देश है या नहीं? लेकिन मुझे बताना है कि मैं इस देश के 31 जगहों पर कार्य कर चुका हूँ, जहाँ भी मैं गया मुझे हमेशा एहसास हुआ कि मैं इसी देश में हूँ। फिर प्रश्न उठता है कि लोगों को क्या जोड़ता है? लोगों को जोड़ती है चेतना। यह चेतना विकसित हुई है, सर्व सामान्य ज्ञान विरासत से। सर्वमान्य ज्ञान विरासत का अद्वितीय स्वरूप है वेदांत। सभी इसे मानते हैं, यह आपकी सोच में शामिल है। चेतना का एकत्व है। आपकी चेतना को प्रभावित करती है। यह तभी आप समझ सकते हैं जब गुरु आप के प्रति दयालु हो, गुरु का प्रसाद। सिर्फ गुरु।

'बिन गुरु ज्ञान कहाँ से पाऊँ'
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काको लागूं पाय।।
बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताए।

यह बात आपको तब समझ आएगी, यदि आपको गुरु का प्रसाद मिलेगा। यदि आपके गुरु हैं जो आपको इसकी व्याख्या कर सकें। तो यह इसका मूल मंत्र है और गुरु नानक जी की महानता यह थी कि यह मूल मंत्र वेदांत का ब्रह्म का सिद्धांत है और या निराकार और निर्गुण है। वह घूमते हुए दक्षिण गए। 'दक्खिनी ओंकार' भी लिखी। 'दक्खिनी ओंकार' में सगुण ब्रह्म है। ब्रह्म क्या क्या रूप लेता है। देवी देवताओं के, विष्णु, रूद्र आदि का वर्णन है। यही विशेषता है जो गुरु नानक को विशिष्ट बनाती है। यही कारण है की उन्हें भक्ति आन्दोलन का "रत्नों से सुसोभित मुकुट" (क्राउन ज्वेल) कहा जाता है क्योंकि वही एक विचारक हैं, जिन्होंने इस देश को हिंदुस्तान कहा है। 'खुरासान खसमाना किता, हिन्दुस्तान डराया।' वह पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने पूरे देश के अर्थ में हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग किया। अत: भारतीय चेतना और उनकी विकास यात्रा पूरे देश में इसके माध्यम से हुई। उन्होंने इसके साथ ही बौद्धिक लोगों से तर्क वितर्क किया एवं उस समय में इस वाद विवाद और विचार को रखा। उस समय नाथ योगियों की परंपरा थी। उन्होंने 'सिद्ध गोष्ठी' नाम की रचना की। उन्होंने उत्पत्ति के प्रश्नों के संदर्भ में विचारकों के चिंतनों को प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया। 'आसा दी वार' में वह कहते हैं 'अरबद अरबद धुंध कारा' हजारों सैकड़ों वर्ष पहले अंधेरा ही अंधेरा था धुंध थी। उसमें कुछ नहीं था। नासदीय सूक्त है ऋग्वेद का। पूरे नासदीय सूक्त को उन्होंने अपनी भाषा में ढाला है। उस 'धुंधकार' से आगे 'मिटी धुंध जग चानन होया,सतगुरु नानक प्रगटया' और तब लोगों ने यह पुन: समझना शुरू किया। जब सिख प्रणाली ज्ञान मार्ग से कर्म मार्ग की ओर प्रवृत्त हुई। अपने धर्म को संरक्षित करने के दो ही तरीके हैं। धर्म मतलब रिलीजन नहीं है। आप की संस्कृति आपकी सभ्यता हेतु यहाँ दो मार्ग पहला शास्त्र दूसरा शस्त्र। गुरु नानक ने उस समय ध्यान से शुरुआत की। पाँचवे गुरु ने यह महसूस किया कि शास्त्र से बात नहीं बनेगी शस्त्र भी रखना पड़ेगा। उनकी शहादत के बाद उनके पुत्र गुरु हरगोबिन्द जी ने दो तलवारें पहनना आरंभ किया-मीरी और पीरी। मीरी ज्ञान और पीरी तलवार। इसका संयुक्त रूप गुरु गोबिंद सिंह में दिखाई देता है। वह महान योद्धा, संत, विचारक रहे।

मैं आपको भी कह रहा था कि हम बड़ी चीज को छोटी बनाने में बड़ी श्लाघा रखते हैं। पर आज हम बोंजाई संस्कृति में रहते हैं। इतने बड़े पीपल को छोटा सा बनाकर दिखाते हैं। इसे कला का कार्य कहा जाता है। एक समय में सामान्य लोगों को असाधारण बनाया जाता था, पर आज के समय में हर महानता को छोटे रूप में प्रस्तुत

किया जाता है। इसके विपरीत गुरु गोबिंद सिंह जी कहते हैं 'चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ तब मैं गुरु गोबिंद सिंह जी नाम कहाँ।' 'सवा लाख से एक लड़ाऊँ तब मैं गुरु गोबिंद सिंह नाम कहाँऊँ।' सारागढ़ी की लड़ाई में (1889) अट्ठारह सिख सिपाही चौसठ हजार पठानों से लड़े। यह जो जुनून उन्होंने पैदा की। खालसा बनाया। अकाल से खालसा तक; मतलब निर्गुण से सगुन तक कि जो यात्रा हुई, शस्त्र से शास्त्र तक की जो यात्रा हुई और उन्होंने आनंदपुर साहब में 5 लोगों को चुना-पंज प्यारे और फिर उन्होंने उनका रक्त सब को दिखाया, वास्तव में वह बकरे का खून था। लेकिन उन्होंने कहा था मुझे आपका सिर चाहिए-कौन तैयार है अपना सर देने के लिए। एक व्यक्ति खड़ा हुआ और ऐसे ही 5 लोग पंज प्यारे कहलाए। यह सभी पंज प्यारे भारत के अलग-अलग क्षेत्रों से थे। पहले उड़ीसा के जगन्नाथ पुरी से, दूसरे बरार आंध्र प्रदेश से, तीसरे गुजरात से, चौथे मेरठ से वह जाट थे और पाँचवे पंजाब से। गुरु गोबिंद सिंह जी में उनको आशा दिखी। उन्होंने लोगों को अपने साथ जोड़ा। यही कारण है कि महाराजा रणजीत सिंह जब मरे तो उनकी इच्छा थी कि कोहिनूर को जगन्नाथ मंदिर भेजा जाए। महाराजा रणजीत सिंह कभी सतलुज से आगे नहीं गए। उन्होंने ऐसी इच्छा क्यों रखी? ऐसा क्यों चाहते थे कोहिनूर को जगन्नाथ मंदिर में भेजना। क्योंकि पहला व्यक्ति जिसने अपने स्वयं को समर्पित किया था, गुरु गोबिंद सिंह जी को-वह जगन्नाथपुरी से था।

अत: 'अकाल से खालसा' तक का पूरा आंदोलन सिर्फ सिखों में ही दिखाई देता है। यह न जैनों में दिखाई देता है न बौद्धों में। इस में सनातन शस्त्र और शास्त्र का मेल है। आज दक्षिण के किसी कोने से कोई उत्तर में जाता है तो स्वर्ण मंदिर जरूर जाता है। बुद्ध के सिद्धांत अहिंसा, जीव के विरुद्ध हिंसा न करना मानवीय मूल्य है। मेरे दादाजी जब शाम को हम फूल फूल तोड़ते थे, तो बोलते थे कि उसका भी सोने का समय है, इस समय उसे क्यों तोड़ रहे हो इसीलिए भारत में हर तरह के जीवो के लिए एक चेतना प्रणाली विकसित है। हम देखते हैं की सिख सम्प्रदाय में विचारों का जो मंथन हुआ है जो गुरु ग्रंथ साहब से लेकर श्री दसम ग्रंथ तक विकसित हुआ है। वास्तव में यह विचारों का इतिहास है। ऋग्वेद से गुरु ग्रंथ साहब तक एक विशाल लंबी यात्रा है। यह कहते हुए मैं अपना व्याख्यान पूर्ण करना चाहूँगा कि ऋग्वेद जिस तरह छंदों में विकसित हुआ है वैसे ही गुरु ग्रंथ साहब रागों में। ऋग्वेद में 10 मंडल हैं गुरु ग्रंथ साहिब में 10 गुरु हैं। भारतीय विचारों के इतिहास में ऋग्वेद से गुरु ग्रंथ साहब की यात्रा बहुत बड़ी भूमिका निभाती है।

(हिंदी अनुवाद - आदित्य नाथ तिवारी)

गुरु गोबिंद सिंह जी का विद्या दरबार

डॉ. हरमोहिंदर सिंह बेदी

पंजाब में गुरु दरबारी काव्य परंपरा गुरु गोबिंद सिंह जी के काल में चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है। गुरु गोबिंद सिंह महान योद्धा के साथ-साथ महान कवि भी थे। उन्होंने न केवल स्वयं काव्य रचना की बल्कि अनेक कवियों को भी अपने दरबार में आश्रय दिया।

कवियों में ग्रंथों का चयन :

गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ के अनुसार इन कवियों की संख्या 52 थी-

बावन कवि हुजूर गुर रहित सदा ही पास।
आवै जाहिं अनेक ही कहि जस, लें धन रासी।। 1।।
तिन कवियन बाणी रची लिहि कागद तुलवाई।
नो मन होए टोल महीं सूखम लिखत लिखाई।। 2।।
विद्याधर सिस ग्रन्थ को नाम धरयो करि प्रीत।
नाना विधि कबिता रची रखि रखि नौ रस नीति।। 3।।
मच्यो जंग गुरु संग रह्यो ग्रन्थ सो बीच।
निकसे आनंदपुरि तज्यो लुटयो पुन मिली नीच।। 4।।
प्रथक प्रथक पत्रे हुते लूट्यो सु ग्रन्थ बिखेर।
इक थल रह्यो न, आईएम गयो जिसते मिल्यो न फेर।। 5।।
वाहठ पन्ने कहूँ ते रह ये आनंद पुरि माहि।
तिनते लिखे कवित्त इहु गुर जसु बरन्यो जाहिं।। 6।।[1]

अर्थात् इन 52 कवियों ने जो बाणी लिखी वह 'विद्याधर' नामक ग्रंथ में संग्रहित की और इस ग्रंथ का भार नौ मन था। यह ग्रंथ आनंदपुर संग्राम में नष्ट हो गया। ग्रंथकार ने गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में दरबारी कवियों के 43 छंद उद्धृत किए हैं और इन कवियों की नामावली प्रस्तुत की है जो इस प्रकार है-

कवि	उपलब्ध रचना
1. उदय राय	... ...
2. अनी राय	जंग नामा गुरु गोबिंद सिंह
3. अमृतराय	चित्र विलास-सभा पर्व महाभारत (भाषा रूपांतरण) और फुटकर छंद
4. अल्लू	
5. आशा सिंह	फुटकर
6. आलम	श्याम स्नेही, आलम केलि, माधवानल कामकंदला, सुदामा चरित, ग्रंथ संजीवन, फुटकर
7. ईश्वरदास	फुटकर छंद
8. सुखदेव	अध्यात्म प्रकाश, ज्ञान प्रकाश, गुरु महिमा, सामुद्रिक शास्त्र
9. सुखा सिंह	
10. सुखिया	
11. सुदामा	फुटकर छंद
12. सेनापति	गुरु शोभा, चाणक्य नीति, सुखसैन ग्रंथ
13. श्याम	
14. हुसैन अली	फुटकर छंद
15. हीर	फुटकर छंद
16. हंसराम कर्ण	पर्व (महाभारत भाषा रूपांतरण) फुटकर छंद
17. कल्लू	
18. कुमरेश द्रोण	पर्व (महाभारत भाषा रूपांतरण)
19. खानचंद	
20. गुनिया	
21. गुरु दास	कथा हीर रांझा की साक्षी हीरा घाट की
22. गोपाल	अनुभव उल्लास
23. चंदन	फुटकर छंद
24. चंदा	फुटकर छंद
25. जमाल	
26. टेकन	अश्वमेघ पर्व महाभारत (भाषा रूपांतरण)
27. धर्म सिंह	पंचतंत्र, कोकसर
28. धन्ना सिंह	फुटकर छंद
29. ध्यान सिंह	फुटकर छंद
30. नानू	फुटकर छंद
31. निश्चल दास	
32. निहालचंद	
33. नंदराम अथवा नंद सिंह	नंदराम पचीसी, कड़वा
34. नंदलाल	दीवाने ए गाथा, जिंदगीनामा, तौ सौ फौसना, जोत विकास, गंजनामा (पंजाबी)
35. पिंडी दास	
36. वल्लभ	
37. बल्लू	
38. विधि चंद	
39. वृष	
40. बुलंद	फुटकर छंद
41. बृजलाल	फुटकर छंद
42. मथुरा	
43. मदन सिंह	
44. मदन गिरी	
45. भल्लू	
46. मल्लू	
47. माला सिंह	
48. मंगल शल्य	पर्व महाभारत (भाषा रूपांतरण), फुटकर छंद
49. राम	
50. रावल	
51. रोशन सिंह	
52. लखन राय	हितोपदेश भाषा।[2]

इस ग्रंथ के संपादक भाई वीर सिंह ने टिप्पणी करते हुए कवियों की इस सूची में 7 नाम और जोड़ दिए हैं यह नाम हैं अचलदास, जमाल, बुलंद, मथुरा, बल्लू, गोपाल और मदन सिंह। इस प्रकार उन्होंने 52 के स्थान पर 59 संख्या निर्धारित की है।[3]

ज्ञानी ज्ञान सिंह ने यह संख्या 61 मानी है और 52 कवियों के

अतिरिक्त नाम इस सूची में सम्मिलित होते हैं-

1. मद्ध 2. रामदास 3. सेना 4. सेखा 5. रामचंद 6. मानीं 7. सुन्दर 8. जान 9. ठाकुर।[4]

इन सूचियों के अतिरिक्त भी कई सूचियाँ प्राप्त होती हैं। थोड़े बहुत फेरबदल के साथ परन्तु साहित्य जगत में सर्वाधिक मान्यता गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में दी गई सूची को प्राप्त है। इसीलिए इस सूची का प्रस्तुतकर्ता 24 कवियों की रचनाओं का नमूना प्रस्तुत नहीं कर सका। भाई वीर सिंह की सूची में से छह कवि (सुक्खू, सोहन, दयाल सिंह, मद्ध, मानचंद, अचलदास) और ज्ञानी ज्ञान सिंह की सूची में से पाँच कवि (मानी, रामदास, जान, ठाकुर, सेखा) कवियों की रचनाएँ उपलब्ध नहीं है। डॉ. भारत भूषण चौधरी ने 33 कवियों की एक सूची प्रस्तुत की है जो उनके अनुसार निर्विवाद रूप से दशम गुरु के दरबारी कवि थे-

	कवि	रचनाएँ
1.	अणीराय	
2.	अमृतरायचित्र	विलास, सभा पर्व महाभारत (भाषा रूपांतरण) और फुटकर छंद
3.	आलम	श्याम स्नेही, आलम केलि, माधवानल कामकंदला, सुदामा चरित, ग्रंथ संजीवन, फुटकर
4.	ईश्वरदास	फुटकर छंद
5.	सुखदेव	अध्यात्म प्रकाश, ज्ञान प्रकाश, गुरु महिमा, सामुद्रिक शास्त्र
6.	सुदामा	फुटकर छंद
7.	सेनापतिगुरु शोभा,	चाणक्य नीति, सुखसैन ग्रंथ
8.	हीर	फुटकर छंद
9.	हुसैन अली	फुटकर छंद
10.	हंसरामकर्ण	पर्व (महाभारत), फुटकर छंद
11.	कुवरेश द्रोण	पर्व (महाभारत)
12.	गुरुदास	कथा हीर रांझा की साक्षी हीरा घाट की
13.	गोपाल	अनुभव उल्लास
14.	चन्दन	फुटकर छंद
15.	चंद	अथवा चंदा फुटकर छंद
16.	टहकन	अश्वमेघ भाषा (महाभारत), रतनदास
17.	धर्म सिंह	पंचतंत्र और कोकसार
18.	धन्ना सिंह	फुटकर छंद
19.	ध्यान सिंह	फुटकर छंद
20.	नन्द सिंह	नंदराम पचीसी, कड़खा गुरु गोबिंद सिंह
21.	बृज लाल	फुटकर छंद
22.	भल्लू या भल्ल भट्ट	फुटकर छंद
23.	मंगल शल्य	पर्व (महाभारत), फुटकर छंद
24.	लक्खण	हितोपदेश भाषा
25.	रामचंद	कथा नल दमयन्ती की, वैद्य विनोद
26.	सुन्दर	फुटकर छंद
27.	सारदा (शारदा)	फुटकर छंद
28.	काशीराम	कनक मंजरी, परशुराम संवाद, पांडवगीता, सिहरफी, बारहमासा और कुछ फुटकर कवित्त
29.	नानू या ननुआ	फुटकर छंद
30.	सैना या सैणा	फुटकर छंद
31.	आसा सिंह	फुटकर छंद
32.	सुकवि	फुटकर छंद
33.	भूपति	फुटकर छंद।[5]

परन्तु लेखक अगले ही पृ. पर विरोधी धारणा प्रस्तुत करता है-हमें हुसैन, अली, नन्द सिंह, मल्ल भट्ट, ईश्वरदास, ध्यान सिंह तथा बृज लाल आदि छ : कवियों की कोई भी कृति उपलब्ध नहीं हो सकी... इस प्रकार 25 कवि ऐसे बचते हैं जिनकी फुटकर या ग्रन्थ रूप में कृतियाँ इस समय उपलब्ध हैं।[6]

डॉ. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी ने एक शोध पत्र में 52 कवियों, ज्ञानी ज्ञान सिंह द्वारा गिनाए नौ कवियों, भाई वीर सिंह द्वारा गिनाए गए साथ कवियों के अतिरिक्त छ: नाम पिछले दिनों खोज से मिले बताए हैं-1. कंकन 2. कांसीराम 3. प्रहलाद 4. भूपति 5. सारदा 6. सुकवि। दो नाम और भी इस सूची में जमा है-1. वृन्द कवि 2. जनदयाल या दयालदास।[7]

वस्तुत: यह निर्णय करना कठिन है कि गुरु गोबिंद सिंह के दरबार में कवियों की संख्या कितनी थी। क्योंकि कई कवि मात्र समस्यापूर्ति तक ही सीमित रहें और कई जिन्होंने लिखा लेकिन काल की गर्त में खो गए, जिससे उनकी काव्य कृति आज हमें प्राप्त नहीं। लेकिन एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि गुरु जी जैसे महान संस्कृति-चेता के दरबार में अनेक कवि अस्थाई रूप से रहते होंगे और अनेक समय समय पर आते जाते रहते होंगे। गुरु जी के दरबार में कवियों की भारी संख्या इसलिए भी रही होगी क्योंकि उसी काल में औरंगजेब ने दिल्ली से हिंदी कवियों को निष्कासित कर दिया था। इन कवियों के लिए दशम गुरु के दरबार में बढ़कर बढ़िया शरण स्थल क्या हो सकता था। हम पूर्ण दावे से इन दरबारी कवियों की संख्या निर्धारित न करते हुए केवल उन कवियों का वर्णन यहाँ कर सकते हैं जिनकी रचनाएँ आज भी प्राप्त है। ये कवि हैं-

1. फुटकर काव्य रचने वाले-आसा सिंह, चंदन, चंद चंदा, धन्ना सिंह, नानू या ननुआ, भूपति सारदा (शारदा)। शारदा, सुकवि, सुंदर, सुदामा, सेना-सेणा, हीर और
2. प्रबंध काव्य प्रणेता-अणीराय, अमृतराय, आलम, काशीराम, कुवरेश, गुरुदास, गोपाल, टहकन, नंदराम, मंगल, लक्खण, सुखदेव, सेनापति, हंसराज। यहाँ इन कवियों व उनके ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है-

कतिपय फुटकर काव्य रचने वाले कवि :

1. आसा सिंह :

गुरु-शब्द-रत्नाकर के प्रणेता काहन सिंह के अनुसार-यह दशमेश का मुत्सद्दी था। एक बार इसने एक गरीब सिक्ख के उपकारार्थ 500-500 रुपये की रसीद सिक्ख पर काट दी। प्रेमी सिक्ख ने रकम अदा कर दी। जब रसीद दशमेश के समक्ष पेश हुई तब महाराज नाराज हुए और फरमाया कि बिना हुकुम रसीद क्यों लिखी? आसा सिंह डरकर रात को भाग गया और एक पोही लिख कर भेजा-

मुख कारा मेरो करै करत न परउपकार।
तिस को मैं फिर करोंगी पलटा इस दरबार।

-इस प्रकार दशमेश ने बुला कर फिर उसी स्थान पर कायम कर दिया। 8 भाई वीर सिंह ने कलगीधर चमत्कार[9] में भाई सुक्खा सिंह के हवाले से उनके पद उद्धृत किए हैं। भाई संतोष सिंह ने गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में आसा सिंह के नाम से छंद दिए हैं।

2. चंदन

हिंदी साहित्येतिहासों में इनसे संबंधित कुछ भी सामग्री नहीं मिलती।

गुरु शब्द-रत्नाकर कार ने इन्हें दशमेश के दरबारी कवि माना है। भाई संतोख सिंह ने गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में इनका एक छंद उद्धरित किया है-

नवसात तिये, नवसात किये, नवसात पिये, नवसात पियाए।
नवसात रचे, नवसातबदे, नवसात पया पहि दायक पाए।
जीत कला नवसातन की, नवसातन के मुख अंघर छाए।
मानहु मेघ के मंडल में कवि चन्दन चंद कलेवर छाए।।[10]

चंद चंदा :

डॉ. भारत भूषण चौधरी ने इन्हें फुटकर काव्य का रचयिता[11] माना है। जबकि डॉ. मनमोहन सहगल के अनुसार गुरु जी के आदेशानुसार चंद ने पहले कर्ण पर्व (महाभारत) और बाद में उद्यम पर्व का भाषा अनुवाद किया। ...दो अन्य रचनाएँ उपलब्ध हैं-प्रीक्षा (परीक्षा) गुरु गोबिंद सिंह तथा त्रिया चरित्र। गुरु महिमा संबंधी कुछ फुटकर पद भी इस कवि के प्राप्त होते हैं। [12] 'त्रियाचरित्र' नामक कृति सिक्ख रेफ्रेंस पुस्तकालय, अमृतसर में अब भी प्राप्त है। इसका नंबर 6118 है और यह खंडित प्रति जोगी नामा ते त्रियाचरित्र नाम से संकलित है।

धन्ना सिंह :

गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ की रुत 5 अंश 26 में एक प्रसंग है कि एक बार गुरु जी के दरबार में चंदन नाम का एक कवि आया। उसने घमंड के कारण गुरुजी के दरबारी कवियों को एक समय की व्याख्या करने की चुनौती दी। गुरुजी ने उत्सव आइए का अर्थ जिस घासी से करवाया वहीं कभी धन्ना सिंह था बाद में धन्ना सिंह ने चंदन के सामने दो सवैये पड़े जिन का अर्थ चंदन न कर सका और पराजित हो गया। [13] क्रमांक 2 पर जिस कवि का परिचय दिया है यह वही चंदन है।

नानू या ननुवा :

यह नौवें गुरु तेगबहादुर के काल में दरबार आए। कुछ समय लाहौर में गदा नारायणी नामक सूफी के संपर्क में रहे। कलगीघर चमत्कार में इनके कुछ पद उद्धृत हैं।

भूपति :

इनके बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। केवल गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में इनका एक छंद उद्धृत है। [14]

सारदा (शारदा) :

इनका जीवन परिचय भी प्राप्त नहीं होता है। गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में इनके छंद उद्धृत हैं, जिसमें गुरु जी की छड़ी की तुलना कृष्ण की बांसुरी से की गई है-

कुंज-कुंज मलिनी बजाई बन बांसुरी जी,
उनही के संग कोई शारदा कहती है
... ...
कान्ह ह्वै औतरयो तो हाथ ही रहत है,
गोबिंद हवे और तरह वो तो हाथ ही रहते।। 13।। [15]

सुकवि :

इनका भी एक छंद गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में उद्धृत है।

सुंदर :

जन्म मृत्यु का ब्यौरा तो प्राप्त नहीं है। कुछ फुटकर छंद इनके मिलते हैं, जिनके कारण यह गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि माने जाते हैं। 'कलगीधर चमत्कार' में इनके छंद प्राप्त होते हैं। [16]

सुदामा :

भाई काहन सिंह ने इन्हें बुंदेलखंड का निवासी माना है। [17] और इनकी रचना का उदाहरण भी दिया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सूची में ग्रंथ सं. 736/ 534 पर एक हस्तलिखित प्रति सुदामा जी की बारह खड़ी विद्यमान है, जो साधारण कोटि की है और पंजाबी प्रभाव इस पर काफी है।

सेना :

ये गुरु गोबिंद सिंह के दरबार में लिपिक का कार्य करते थे और बहुत सुंदर अक्षर लिखते थे। इनके कुछेक फुटकर छंद वंशावली नामा की (केसर सिंह छिब्बर), गुरुपद प्रेम प्रकाश (बाबा सुमेर सिंह) और गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ में मिलते हैं।

हीर :

दशमेश दरबार के फुटकर-काव्य रचनाओं में हीर का नाम विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि यह एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनके कुछ छंद उपलब्ध हैं। कलगीधर चमत्कार में इनके नाम से 13 कवित और एक छप्पय मिलता है। इसके अतिरिक्त 7 कवित्त, एक सवैया और एक छप्पय बिना नाम से है। इसी ग्रंथ से यह संकेत भी मिलता है ये खालसा साजने के उपरांत इस दरबार त्रय[18] में आए थे। इनके कवित्त वीर रस पूर्ण है और भूषण कवि से समानता रखते हैं।

प्रबंध काव्यकार :

अणीराय :

अणीराय ने भी अपने बारे में कोई विवरण नहीं दिया सिवाय इसके कि वे जब गुरु जी से मिले और आशीष दिया तो गुरुजी ने उन्हें नग, कंचन, भूषण से नवाजा था-

अनीराय गुरु से मिली दीनी ताही असीस
आउ कह्यो मुख आपने बहुर करी बखसीस।। 10।।
नग, कंचन, भूषन बहुर, देने सतिगुर एह
नामा हुकम लिखाय के, दिनों सरस स्नेह।। 2।। [19]

कुछ विद्वानों का मत है कि गुरु हरगोबिंद के द्वितीय पुत्र अणीराय ही कवि अणीराय हैं-यदि अणीराय को गुरु हरगोबिंद का पुत्र स्वीकार कर लिया जाए (जन्म संवत 1675) तो रचना समय उनकी आयु 83 से 84 वर्ष रही होगी। इसके शीघ्र ही बाद उनकी मृत्यु हो गई होगी, इसलिए अन्य कोई रचनाएँ नहीं दे पाए। [20] लेकिन चूँकि जंगनामा में कवि का गुरु जी से चाचा-भतीजा वाला संबंध नहीं प्राप्त होता बल्कि आश्रय-आश्रयदाता का संबंध[21] दिखाई पड़ता है। अतः विद्वानों ने इन्हें गुरु गोबिंद का पुत्र मानने में संकोच किया है। हमारा विचार है कि यह छठें गुरु के पुत्र ही थे जो पिता की मृत्यु के उपरांत उपेक्षित हो गए होंगे और जब गुरु जी ने उन्हें बुलाकर सम्मान दिया और दूसरों को भी उनका सम्मान करने का हुक्म दिया होगा तो हर उपेक्षित व्यक्ति की भांति वे में भी मान देने वाले के आश्रयी बन गए होंगे।

ग्रंथ : जंगनामा

यह 69 शब्दों का लघु वीर काव्य है, जिसमें गुरु गोबिंद सिंह और

अजीम खां के मध्य हुए युद्ध का वर्णन है। भाषा पंजाबी और फारसी प्रभाव लिए हुए है।

अमृतराय :

महान कोष के कर्त्ता ने इन्हें लाहौर निवासी छैल राय भट्ट का पुत्र बताया है जिसने सतगुरु की आज्ञा से महाभारत के सभा पर्व का हिंदी अनुवाद किया है।[22] अंत: साक्ष्य से ज्ञात होता है कि इनका वास्तविक नाम चतुरदास था और ये बहल क्षत्रिय थे।[23] इनके तीन ग्रंथ और कुछ फुटकर छंद प्राप्त हुए हैं।

ग्रंथ :1: नवरस

पंजाब के पुस्तकालयों में इसकी कोई प्रति नहीं मिलती।

चित्रविलास:

यह अलंकार से संबंधित ग्रंथ है जिसमें चित्रालंकार का महत्त्व स्थापित किया गया है। डॉ. सहगल के शब्दों में चित्रलंकार में शब्दों और वर्गों को ऐसे चित्र में ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि काव्य में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है।[24] श्री प्यारा सिंह पदम के संपादन में 'पंचनद' की भाषा विभाग, पंजाब ने प्रकाशित करवाया है।

महाभारत का सभा पर्व :

यह महाभारत की सभा पर्व का भाषा रूपांतर है और इसमें 81 अध्याय हैं। यह ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।

कुछ फुटकर कवित्त 'गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ', 'कलगीधर चमत्कार' में संकलित है।

आलम :

आलम नाम के एक से अधिक कवियों का परिचय हिंदी साहित्येतिहासों में मिलता है। आचार्य शुक्ल ने आलम के दो कवियों का उल्लेख किया है एक वह जो 991 हिजरी में हुआ जबकि अकबर का राज्य था उसने 'माधवानल कामकंदला' नामक प्रेम-काव्य लिखा, दूसरा 'आलम' शहजादा मुअज्जम के दरबार हुआ, जो जाति का ब्राह्मण था।[25] भाई काहन सिंह ने आलम नाम के तीन कवियों का उल्लेख किया है।[26] डॉ. बलवीर सिंह ने माधवानल कामकंदला चरित में आलम के जीवन की अनुमानित सूची दी है,[27] जो इस प्रकार है:

ईस्वी सन्	विक्रमी सवंत	विवरण
1633	1690	अनुमानता आलम का जन्म काल।
4-10-1643	1700	मुअज्जम का जन्मकाल।
1653-54	1710-11	आलम शेख का प्रणय, विवाह, धर्म परिवर्तन।
1655	1712	श्याम-सनेही की रचना समाप्ति के काल।
1617	1717	श्याम-सनेही की प्रथम प्रतिलिपि का काल।
1687	1744	गोलाकोंडा विजय, मुअज्जम की कैद, आलम और शेख का पलायन।
1688	1745	दशम गुरु के दरबार में शेख द्वारा प्रशस्ति कवित्त की रचना।
1688	1745	मंगल, आलम आदि कवियों द्वारा प्रशस्ति कवित्त रचना, हुसैनी युद्ध की कवित्त की रचना, हुसैनी युद्ध की समाप्ति।
1695	1752	मुअज्जम की कैद-मुक्ति और पंजाब-सिंध के सूबेदार पद की प्राप्ति।
1696	1753	गुरु गोबिंद सिंह के चरित्रोपाख्यान की पूर्ति, माधवानल-कामकंदला की रचना।
1698	1755	दशम गुरुद्वारा कवियों को विदा देना।
1698	1755	आलम और शेख का मुअज्जम के पास पुन: जाना, मुअज्जम की प्रशस्ति का कवित्त।
1705	1762	अनुमानित: आलम का मृत्यु काल।
1717	1774	माधवानल-कामकंदला की प्रथम प्रतिलिपि का काल।

अत: मुअज्जम और दशम गुरु के दरबार के कवि आलम दो नहीं एक ही थे।

ग्रंथ (1) माधवानल-कामकंदला

दोहा चौपाई में लिखा गया एक प्रेम-काव्य है। हस्तलिखित प्रति एस.आर.एल. में नं. 1562 की छोटी-सी प्रति के 26 से 102 पृ. तक प्राप्त है। साथ में दशमेश के दरबारी कवियों की लिखते, सांझा, सूररंभावत, अंग फुरने के फल,तिलुसतत आदि संकलित है।

2. श्याम-स्नेही :

यह मौलिकता युक्त पौराणिक प्रबंध है जिसमें कृष्ण और रूक्मिणी के विवाह की कथा है।

3. आलम-केलि

इसमें मुक्तक कवित्त हैं।

4. सुदामा चरित्र

सुदामा और कृष्ण की कथा है।

5. ग्रंथ संजीवन

यह वैद्य ग्रंथ है।

कुछ और मुक्त रचनाएँ भी हैं।

काशीराम

ये जाति की कायस्थ थे और औरंगजेब के सूबेदार निजामत खां के आश्रित कवि थे। सरोज में इनका जन्म संवत 1725 दिया गया है। पांडव गीता के अंत: साक्ष्य से ज्ञात होता है कि

1. यह रचना संवत 1745 में आरंभ की गई
   सत्र सै संतालीए, हाड़ वदी करी वार।। 1।।
2. यह गुरु आज्ञा से रची गई-
   गुरु गोबिंद की दया से कछु इहै बनाई।
   काशी कथा सहसक्रित, भाखिआ करि गाई।। 2।।

3. गुरु दरबार के अन्य पंडित मिट्ठू ने इन्हें संस्कृत के अनेकार्थ समझाए थे-

मिट्ठू दिज गोबिंदराइ, अरथ दैंस दितोई.
'काशी' कही जैसी बुधि थी, दोष देहु न कोई।। 78।।

4. 'पांडव गीता' महाभारत के शांति पर्व में आगत एक प्रसंग का भाषानुवाद है-

महाभारत में शांति इक परव है
तो मधे पांडवगीता जानो।।[28]

इसमें पंजाबी के शब्दों का काफी मात्रा में प्रयोग किया गया है।

ग्रंथ : पांडवगीता

महाभारत के शांत पर्व का भाषा अनुवाद है।

2. कनक मंजरी

इसमें रतनपुर के किसी धनी व्यक्ति की पत्नी की प्रेम-कथा शुक-शुकी संवाद के द्वारा कही गई है।

3. परशुराम संवाद

धनुष यज्ञ के उपरांत लौटते राम-लक्ष्मण की मार्ग में परशुराम से हुई भेंट का इसमें वर्णन है।

4. कवित्त काशीराम

फुटकर

5-6 सीहरफी और बाराहमाह पंजाबी में है।

5. कुवरेश

इन्हें हिंदी के प्रसिद्ध आचार्य कवि केशवदास का पुत्र माना गया है। गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ से प्रकट होता है कि औरंगजेब इन्हें मुसलमान बनाना चाहता था लेकिन कुवरेश भाग कर किसी तरह आनंदपुर आ गया और गुरुजी ने उन्हें आदरपूर्वक अपनी शरण में ले लिया। [29] केशवदास के वंशजों ने जो वंशवृक्ष तैयार किया है उसमें इनका नाम नहीं है लेकिन डॉ. भारत भूषण चौधरी के अनुसार-केशव का प्रकाशित वंशवृक्ष भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। [30]

ग्रंथ :

'द्रोण पर्व' का भाषा रूपांतर इनकी एक मात्र उपलब्ध रचना है जो 1752 में लिखी गई।

6. गुरुदास

साहित्य जगत में गुरुदास नाम के एकाधिक कवि हुए हैं। गुरु जी के दरबारी कवि गुरुदास के बारे में भी पर्याप्त विवाद रहा है कि क्या यह वही गुरुदास कवि है, जिसने 'कथा हीर रांझन की' नामक ग्रंथ लिखा है और औरंगजेब की प्रशस्ति गाई है या औरंगजेब का दरबारी कवि गुरुदास और दशमेश का दरबारी कवि गुरुदास अलग-अलग है। लेकिन अब यह माना जाने लगा है कि वस्तुत: गुरुदास ने जब कथा हीर रांझा की (1725 विक्रमी) लिखी तब वह औरंगजेब के दरबार में थे और बाद में जब गुरुजी विद्वानों और कवियों को अपने दरबार में आमंत्रित किया तो ये वहाँ से चले आए और साखी हीरा घाट की रचना की जो दशम गुरु चमत्कार से संबंधित है।

ग्रंथ एककथा हीर रांझा की

यह भाषा विभाग पंजाब, पटियाला से प्रकाशित हो चुकी है एक प्रेम कथा है।

2. साखी हीरा घाट की

यह अप्रकाशित है और दशमेश के चमत्कार से संबंधित है।

7. गोपाल

गोपाल नाम के भी हिंदी साहित्य जगत में एकाधिक कवि हुए हैं जैसे गोपाल भट्ट, गोपाल लाहौरी। श्री देवेंद्र सिंह गोपाल लाहौरी को गुरुजी का दरबारी कवि मानते हैं, वो...लाहौर के रहने वाले थे। गुरु दरबार में आने से पूर्व रीति तत्त्व दर्शक एक रचना 'रसविलास' नामक कथित है। गुरु दरबार में इनकी छोटी-सी रचना अनुभव-उल्लास मिलती है। एक और रचना 'कृष्ण रुक्मणी री बेली' की टीका इनकी बनाई राजस्थान में बताई गई है।[31] लेकिन भारत भूषण चौधरी और डॉ. मनमोहन सहगल इस मत को अस्वीकार करते हुए गोपाल भट्ट को गुरुजी का दरबारी कवि मानते हैं। डॉ. चौधरी के अनुसार अनुभव उल्लास उनकी एकमात्र रचना है।[32] लेकिन डॉ. मनमोहन सहगल ने इनकी दो रचनाएँ स्वीकारी हैं-मोहमरद राजे की कथा तथा अनुभव उल्लास।[33] ये गोकुल के रहने वाले थे और इनकी दोनों रचनाओं में गुरुजी का उल्लेख मिलता है।

ग्रंथ एक: मोहमरद राजे की कथा

इसमें 112 छंदों में साधु शिक्षाएँ एवं सत्संगति के गौरव की प्रस्तुति की गई है।

2. अनुभव उल्लास

डॉ. सहगल के अनुसार 3534 और डॉ. चौधरी के अनुसार[35] 19 रोला छंदों की छोटी-सी रचना है जिसका लक्ष्य तत्वज्ञान की शिक्षा देना है।

टहकन :

टहकन की किसी भी रचना से यह प्रमाणित नहीं होता कि वे दशम गुरु के दरबारी कवि थे। गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में दी गई सूची में इनका नाम आता है। इसी आधार पर इन्हें गुरुजी का दरबारी कवि माना जाता है। अंत:साक्ष्य से ज्ञात होता है कि ये जलालपुर के वासी, क्षत्रिय तथा कृष्ण उपासक थे। पिता का नाम रंगीलदास चोपड़ा क्षत्रिय था। कवि पहले सिपाही बना और वहीं 'अश्वमेघ पर्व' का भाषानुवाद किया। पहले उन्होंने संस्कृत श्लोकों को सुना, तत्पश्चात इस शुभ बाणी का चौपाई दोहा में अनुवाद किया।[36] इस रचना का काल इसी में संवत 1726 दिया है अर्थात् वह समय जब दशमेश सिर्फ बरस के थे। अत: विद्वानों का मत है कि टहकन के अनुवाद कार्य की प्रेरणा से ही दशम गुरु ने अनुवाद कार्य आरंभ करवाया था-जब टहकन गुरु दरबार में पहुँचे होंगे तो उनके अश्वमेघ पर्व को देखकर ही महाभारत के भाषा रूपांतरण को आदर्श मान कर ही अपने कार्य को संपन्न किया।[37]

ग्रंथ:

1. अश्वमेघ पर्व का भाषा रूपांतर
2. रतनदास-रीति ग्रंथ परंपरा का ग्रंथ

ये दोनों ग्रंथ सिख रेफरेंस पुस्तकालय, अमृतसर में क्रमश: 124, 264 और 6384 नंबर पर उपलब्ध है।

3. 4-5 मोरध्वज चंद्रहास की कथा, सूरज स्रोत, लवकुश कथा, जो प्राप्त नहीं है।

नंदराम:

इनके पिता बलीराम उत्तम कवि तथा फारसी, हिंदी, पंजाबी के ज्ञाता थे। ये जाति के वैश्य और अंबावती के रहने वाले थे। 38 चौधरी ने इनकी रचना को उपलब्ध नहीं माना, लेकिन इनकी दो रचनाएँ अब भी उपलब्ध है-

ग्रन्थ :

1. नंदराम पचीसी : इसमें कलियुग का वर्णन है।

2. केड़खा गुरु गोबिंद सिंह-इसमें दशमेश के भंगाणी से चमकौर तक के युद्धों का वर्णन है। प्यारा सिंह पदम ने इसे सेनापति की कृति[39] माना है। यह कृति सिक्ख रेफ्रेंस पुस्तकालय में पांडुलिपि रूप में नं. 3547 पर उपलब्ध है।

मंगल :

इनका जन्म-विवरण भी अनुपलब्ध है। हिंदी के अतिरिक्त पहाड़ी और पंजाबी में भी लिखने के कारण चंद्रकांत बाली का मत है-आपको कांगड़ा निवासी या हिमाचल निवासी सहज में माना जा सकता है।[40] लेकिन डॉ. बलवीर सिंह ने मंगल कवि द्वारा लिखित एक पत्र के द्वारा सिद्ध किया है कि पसरूर (सियालकोट) के निवासी एवं पंजाबी थे, कांगड़ा या हिमाचल प्रदेश के निवासी नहीं।[41]

ग्रन्थ

1. शल्य पर्व का भाषारूपान्तर
2. मुक्तक रचनाएँ

लक्खण राई (राय) :

इसके पिता का नाम बीक चंद था और यह चचागर गोत्र के राजपूत है। ये अपने भाई भोजराज के साथ गुरु दरबार में रहकर सेवा कार्य व भक्ति करते थे। ये ऊना के निवासी थे।[42] इन्होंने महाभारत के किसी पर्व का अनुवाद नहीं किया जिससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इस बीच इनकी मृत्यु हो चुकी थी।

ग्रंथ : हितोपदेश भाषा

सुखदेव

इस नाम के भी एकाधिक कभी हुए हैं। गुरु जी के दरबार में भी सुखदेव,सुक्खा और सुखिया नाम से तीन कवियों का उल्लेख होता है, जो वास्तव में एक ही हैं। आप संस्कृत के ज्ञाता व साधु वृत्ति के व्यक्ति थे। इनका रचनाकाल संवत 1775 के आसपास ठहराया जाता है।

ग्रंथ :

1. अध्यात्म प्रकाश
2. ज्ञान प्रकाश
3. गुरु महिमा
4. सामुद्रिक शास्त्र (असाहित्यिक)

सेनापति :

सेनापति ने 'सुखसैन' नामक ग्रंथ में जिसका उन्होंने अनुवाद किया था,में अपना वास्तविक नाम चंद्रसेन बताया है। गुरु दरबार का सर्वाधिक प्रामाणिक कवि है, जिसकी तीन रचनाएँ-गुरु शोभा, चाणक्य नीति, भाषा व सुखसैन ग्रंथ उपलब्ध हैं। बाह्य: साक्ष्य से इस कवि के संबंध में भी बहुत सामग्री नहीं मिलती। सुखसैन ग्रंथ में कवि ने अपने वंश का वर्णन किया है जिसके अनुसार कवि लाहौर का निवासी जाट वंश के मान गोत्र के बालचंद्र का पुत्र ठहरता है, जिसके विद्या गुरु देवीदास नामक श्रेष्ठ कवि थे। इन्हें गुरु दरबार में सम्मान प्राप्त था और जगतराय नामक अपने मित्र के कहने पर इन्होंने इस ग्रंथ का भाषानुवाद किया था। बाद में यह वजीराबाद में ही रहने लगे।

ग्रंथ: गुरु शोभा

यह सेनापति की मौलिक रचना है जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता गुरु गोबिंद सिंह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का चित्रण किया है।

2. चाणक्य नीति भाषा : यहाँ अनूदित ग्रंथ संस्कृत मूल का भाषारूपांतर है।

3. सुखसैन ग्रंथ : यह वैद्यक ग्रंथ 'राम विनोद' का अनुवाद है।

हंसराम

इनका भी जीवन परिचय प्राप्त नहीं है। कहा जाता है कि पटियाला दरबार के कवि चंद्रशेखर के परमपितामह थे। लेकिन यह निश्चित नहीं है। गुरुजी ने इन्हें कर्ण पर्व की भाषारूपांतर का कार्य सौंपा था।

ग्रंथ :

1. कर्ण पर्व का भाषारूपांतर जिसके 93 अध्याय हैं।
2. गुरु प्रताप सूर्य ग्रंथ में उद्धृत मुक्तक।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त करते हैं-

1. गुरु गोबिंद सिंह का दरबार विद्वान कवियों से भरा हुआ था।
2. यद्यपि मध्यकाल को हम भारत के इतिहास लेखन की शुरुआत का काल मानते हैं तथापि गुरु गोबिंद सिंह जैसे जागरूक नेता से दरबारी कवियों ने भी अपना परिचय देने की आवश्यकता महसूस नहीं की, जो आज हमारे इतिहास लेखन में महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य करते।
3. ऊपर जिन कवियों कृतियों का विवेचन किया गया है वह यह संकेत देना है कि ऐसे ही और भी बहुत से कवि व कृतियाँ होंगी जो वक्त के साथ-साथ लुप्त हो गई होंगी।
4. ये कवि रीतिकाल जो लक्षण और रीति ग्रंथों के प्रधान का काल था,के होते हुए भी एक विशेष अलगाव और मर्यादा अपने जीवन में प्रतिबिंबित करते हैं। ये विशिष्ट होने के साथ ही महत्त्वपूर्ण भी हो जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ. 5725
2. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ. 5725
3. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ. 5725
4. ज्ञान सिंह : पंथ प्रकाश, पृष्ठ-315-17
5. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-65-66
6. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-67
7. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी : रीति और नीति के क्षेत्र में पटियाला दरबार की हिंदी साहित्य की देन (शोध पत्र) पृष्ठ-19

8. कान्ह सिंह : गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश, पृष्ठ-69
9. वीर सिंह : कलगीधर चमत्कार, पृष्ठ-467-68
10. कान्ह सिंह : गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश, पृष्ठ-360
11. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-65-66
12. मनमोहन सहगल : पंजाबी का हिंदी साहित्य, पृष्ठ-92
13. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ. 5767
14. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ. 5721
15. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ. 5728
16. वीर सिंह : कलगीधर चमत्कार, पृष्ठ-478-79
17. काहन सिंह : गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश, पृष्ठ-160
18. वीर सिंह : कलगीधर चमत्कार, पृष्ठ-484-490, 492-502
19. शमशेर सिंह अशोक (संपादक) : जंगनामा गुरु गोबिंद प्राचीन जंगनामे, पृष्ठ-17
20. मनमोहन सहगल : पंजाबी का हिंदी साहित्य, पृष्ठ-76
21. चंद्रकांत बाली : पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-298-99
22. काहन सिंह : गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश, पृष्ठ-59
23. अमृतराय : चित्र विलास हस्तलिखित
24. मनमोहन सहगल : पंजाबी का हिंदी साहित्य, पृष्ठ-73
25. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-224
26. काहन सिंह : गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश, पृष्ठ-79
27. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-97
28. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृष्ठ-4910-11
29. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-114
30. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-13
31. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-13
32. मनमोहन सहगल : पंजाबी का हिंदी साहित्य, पृष्ठ-97
33. मनमोहन सहगल : पंजाबी का हिंदी साहित्य, पृष्ठ-97
34. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-120
35. टहकन : जैमिनीय अश्वमेघ, हस्तलिखित
36. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-122
37. मनमोहन सहगल : पंजाबी का हिंदी साहित्य, पृष्ठ-69
38. प्यारा सिंह पदम्, विद्या सागर : ग्रन्थ श्री गुरु गोबिंद सिंह जी, पृष्ठ-218
39. चंद्रकांत बाली : पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-365
40. भारत भूषण चौधरी : गुरु गोबिंद सिंह के दरबारी कवि, पृष्ठ-125
41. लक्खन राय : हितोपदेश, हस्तलिखित; छंद 9-12, 331-34
42. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ. 5720
43. सन्तोख सिंह : गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ.

• • •

गुरु तेगबहादुर की बानी: दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

- मनमोहन सिंह

गुरु तेगबहादुर जी की बाणी पंद्रह रागों में गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज है; यह अंतिम श्लोक हैं जहाँ पर गुरु ग्रंथ साहिब जी की समाप्ति होती है। इस बाणी का स्वर वैराग्य पूर्ण है। इन श्लोकों के सार में सांसारिक सुखों, वासनाओं और लोभों के आकर्षण और माया की वस्तुओं से ऊपर उठने का उपदेश है, और परोपकार के लिए लगाव का उल्लेख है, जो इससे जुड़े दुखों को बदल देता है और दुनिया और आत्मा में शांति स्थापित करता है। भारतीय रस सिद्धांत की दृष्टि से गुरु तेगबहादुर की बाणी में प्रबल रस वैराग है। 'वैराग' का अर्थ है पिघलना, करुणा और दु:ख की अभिव्यक्ति। वैराग दो संज्ञाओं 'वि' और 'राग' का शब्द है। 'वि' एक नकारात्मक संयोजन है और राग का अर्थ है प्रेम, मनोदर्शन, आनंद, अभेदता आदि। इस प्रकार वैराग्य का अर्थ है परमार्थ की जोशीली याचना, संसार की भौतिकता और यथार्थवाद की अवहेलना करना जो इन भावनाओं के प्रतिकूल है। मनुष्य का वैरागी बनना, मन को सांसारिक वस्तुओं से अलग करना और ज्ञान और भक्ति के मार्ग पर चलना। वैराग्य का ऐसा विचार गुरु साहिब की बाणी में स्पष्ट है।

वैराग्य की मनोवृत्ति पर, विशेषकर भारतीय सनातन में अथाह दर्शन प्राप्त होता है। वैदिक हिंदू परंपरा और बौद्ध दर्शन में, वैराग्य का एक विशेष महत्त्व है जो मन को माया मोह से मुक्त करने और परमार्थ की ओर बढ़ने से संबंधित है। माया भारतीय दर्शन में एक ऐसी घटना है जो शाश्वत है लेकिन उसका रूप कालातीत है। ब्रह्म शाश्वत है, जिसका अर्थ है अकाल। शंकराचार्य का ब्रह्मसूत्र अद्वैत में इस द्वंद्व को स्थापित करता है। भगवद गीता दिव्य दर्शन का व्यावहारिक रूप है।

जब वैराग्य की स्थिति जब मन धारण कर ले तो, काल के पार अर्थात् अकाल हो जाता है। ज्ञान की दृष्टि से जगत् को देखना ही दिव्य ज्ञान है। इस ज्ञान का पहला चरण वैराग्य है। इसलिए, यह मन की शुद्ध अवस्था नहीं है बल्कि दिव्य ज्ञान के मार्ग की शुरुआत है। गुरु साहिब की बाणी में दिव्य ज्ञान की अपील दृश्य जगत के सुखों और सुखों को पार करना है। इस श्रेष्ठता में वैराग्य की प्रबलता स्वाभाविक है। इस वैराग्यपूर्ण भावना के कारण गुरु साहिब के श्लोकों से मन द्रवित हो जाता है। इन श्लोकों में वैराग्य का आवेग व्यापक रूप से पाया जाता है;

"बिखियन सो काहे रचियो, निमिख न होए उदास" यह उदासी ही वैराग्य है। दृश्यमान सांसारिक सुख, सुविधा और वस्तुओं का त्याग। राग देवगांधारी में, गुरु साहिब कहते हैं कि सब कुछ जीवित के साथ ही व्यवहार है। जब तक प्राण होते हैं, तो माता, पिता, रिश्तेदार और पत्नी हर समय पुकारते हैं; लेकिन जैसे ही जीवन चला जाता है, कोई आधा घंटा भी घर में नहीं रखता है और उन्हें तुरंत बेदखल कर दिया जाता है। राग सोरठ में लिखते हैं-

इह जग मीत न देखयो कोए
सगल जगत अपने सुख लगियो
दु:ख महि संग न कोए।
दारा मीत पूत संबंधी सगरे धन सिऊ लागे।
जब ही निर्धन देखयो नर कऊ सगु छाडि सभ भागे।

वैराग्य की भाषा में दृश्य जगत नाशवान लगता है। इससे मन खिन्न हो जाता है। वैराग्य की भाषा के सारे बिम्ब विधान सपना, बुलबुला, छाया, निमख, मृग तृष्णा, धुएँ का पहाड़, बादल, आदि के रूपकों में से अपने आप को व्यक्त करते हैं; जो एक तरह के नश्वरता और क्षण भंगुरता को प्रकट करते हैं। जो एक तरह से भ्रम और धोखे का प्रतीक हैं। जिनका अपना कोई ठोस रूप नहीं होता। गुरु ग्रंथ साहिब की पूरी बाणी में वैराग्य की भाषा व्याप्त है लेकिन गुरु तेगबहादुर की बाणी में यह अर्थ विशेष रूप से प्रबल है। वे देवगांधारी राग में लिखते हैं;

मृगतृष्णा जिउं जग रचना इह देखहूँ रिदै बिचारी। (436)

जो दिखायी दे रहा है, वह बादल की छाया की तरह मिथ्या है, अर्थात् इसने समाप्त हो जाना है। राग गऊड़ी में गुरु साहिब बताते है-

जो दीसै सगल बिनसै जिऊ बादर की छायीं। (219)

हे मनुष्य इस सच को मान ले कि सारा जगत सपने की तरह है। राग सोरठि में गुरु साहिब बताते है-

सगल जगत है जैसे सुपना बिनसत लगत न बार (633)

जो दिखायी दे रहा है वह बादल की छाया के समान है।

राग सारंग में सपने वाले भाव को फिर से दृढ़ करवाया है-

संग सुपने कै इहु जग जान।
बिनसै छिन मैं साचि मान। (1231)

यह जगत चलायमान है, कुछ भी स्थिर नहीं है। सबकुछ जो दृश्यमान है, अस्थिर है:

इह जग धुएँ का पहार। तै सच मानिया किह बिचार।
इस जगत की आयु उतनी ही है जितनी पानी के बुलबुले की:
जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत।
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुन मीत। (25)

भारतीय दार्शनिक परंपरा में, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार जैसे पाँच इंद्रियों और पाँच विकारों से मुक्त होने के साथ साथ प्रशंसा, बदनामी, अहंकार और झूठे ढोंगों का त्याग करना

आवश्यक माना गया। गीता उन्हें माया कहती है, जिससे मनुष्य जगत् के मर्म को नहीं समझता, बल्कि दृश्यमान को ही सत्य मान लेता है। इसे समझने के लिए सब कुछ त्याग, वैराग्यमयी होना आवश्यक है। एक प्रकार से यह ज्ञान प्राप्ति का प्रथम चरण है। गुरु तेगबहादुर की बाणी वैराग्य की स्थिति के वर्णन से भरी है।। जिस मन में वैराग्य की इच्छा परिपक्व नहीं हुई है, उसके लिए ध्यान और मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं है। श्लोक 16, 14 और 15 के अनुसार;

सुख दु:ख जिह परसे नहि लोभ मोह अभिमान।
कहु नानक सुन रे मना सो मूरत भगवान।
उसतति निंदिया नाहि जिह, कंचन लोह समान।
हरख सोग जाके नहि बैरी मीत समान।
कहू नानक सुन रे मना मुकति ताहि ते जान।

भगवद गीता में, कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं; "हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन! वह मनुष्य मृत्यु रहित होता है, जो दुख-सुख, हर्ष-शोक में नहीं पड़ता, बल्कि जो उनके बीच मध्य में कहीं स्थित है। ज्ञानी पुरुष समदर्शी होता है। उसका मन संकट में नहीं डगमगाता। जिसे सुख की लालसा न हो। मन, भय और क्रोध से भरा हुआ न हो। जो मनुष्य स्थिर-बुद्धि वाला है वह विद्वान, ब्राह्मण, चंडाल, गौ, हाथी या कुत्ते में अंतर नहीं करता।

वैराग्य उत्पन्न होने का मुख्य स्रोत मृत्यु का ज्ञान है। मनुष्य काल के अधीन है। संस्कृत के 'वैराग शतक' के कवि भर्तृहरि कहते हैं;

कालनायातोवयमेवजाता।

अर्थात् काल नहीं बीतता, मनुष्य बीत जाता है। गुरु तेगबहादुर साहिब की बाणी में वैराग्य का कारण प्रबल मृत्यु भय है। इसका चित्रण बार-बार विभिन्न रूपों में हुआ है। राग सोरठि और मारू की पंक्तियाँ इस सूत्र की भलीभांति व्याख्या करती प्रतीत होती हैं:

काल बियाल जिऊ परिउ ढौले मुख पसारे मीत।
आज कलि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखियो चीत।।...
काल फास जब गरमै मेली तिह सुधि सभ बिसरायी।

इन श्लोकों के दार्शनिक आधार में देह की नश्वरता और विधाता की रचना की स्थिरता को परस्पर विरोधी स्थितियों में उपस्थित कर यह सिखाया जाता है कि शरीर की नश्वरता को, ईश्वरीय हुक्म में रह कर; धैर्य, स्थिरता और संतोष के साथ स्वीकार करना आवश्यक है। जगत् की रचना को रेत की दीवार के रूप में दर्शाया गया है। इस दुनिया से सभी को जाना है। राम ने भी और रावण ने भी। यह दुनिया एक सपने की तरह है, क्योंकि यह संसार स्थिर नहीं है, अर्थात् शाश्वत नहीं है। इसलिए व्यक्ति को चिंता से मुक्त होना चाहिए। जो पैदा हुआ है वही नाशवान भी है। क्योंकि वह कालवश है। इसलिए सारे जंजाल से मनुष्य को मुक्त होना चाहिए। श्लोक 49, 50, 51 और 52 यहाँ प्रासंगिक हैं;

"जग रचना सभ झूठ है जानि लेहु रे मीत।
कहु नानक थिर नह है जीऊ बालू की भीत।
राम गएओ रावन गएओ जा को बहु परिवार।
कहु नानक थिर किछु नहीं सुपने जिऊ संसार।
चिंता ताकि कीजिये जो अनहोनी होए।
इह मारग संसार को नानक थिर नहीं कोए।
जो उपजएओ सो बिनसि है परे आज के काल।
नानक हरि गुण गाई लै छाडी सगल जंजाल।"

भारतीय दर्शन में मन को चंचल माना जाता है क्योंकि यह किसी न किसी प्रकार की आशा, इच्छा, अभीप्सा और लालसा के पीछे पड़ा रहता है। इसलिए नाशवान आशा से उत्पन्न होने वाले सुख-दु:ख का भागीदार बन जाता है। यह जीवन में अस्थिरता का कारण बनता है क्योंकि वे सभी माया के रूप हैं। इससे छुटकारा पाने का उपाय है कि इनका परित्याग कर, वैराग दर्शन का जीवन व्यतीत किया जाए। गीता के फल के त्याग का दर्शन यहाँ प्रासंगिक है। अष्टांग मार्ग और बौद्ध धर्म के चार सत्य भी इसी ओर इशारा करते हैं। गुरबानी "आसा माही निरस" और 'अंजन माही निरंजन' के विचारों में व्यक्त भावना भी इसी बात की सूचक है। गुरु तेगबहादुर साहब की बाणी में भी वही ज्ञान और रहस्य है। आशा मनसा का परित्याग और उनके बंधन से मुक्ति। राग सूही में, गुरु साहिब : 'जो नरु दु:ख में दु:ख नहीं मनाए' का अर्थ दोहराते हैं;

सुख दु:ख जिह परसे नहीं लोभ, मोह अभिमान
कहू नानक सुन रे मना सो मूरत भगवन।

अर्थात् सुख और दु:ख का स्रोत आशा और इच्छा ही है। इससे छुटकारा पाने के लिए स्तुति, बदनामी, दु:ख, माया का त्याग भी तृष्णा है। सुख चाहिए तो राम की शरण में जाओ। क्योंकि हे मन, मन और शरीर दुर्लभ है। सुख की खोज भी आशा की पूर्ति से निर्धारित होती है। दु:ख में सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए हरि के भाव में, अर्थात् हुकम में रहना अनिवार्य है;

जतन बहुत सुख के किए, दु:ख को कियो न कोए।
कहु नानक सुन रे मन हरि भावे सो होए।

गुरु साहिब ने मानव मन की अस्थिरता, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार जैसे पापों के प्रति झुकाव को प्रस्तुत किया है। मन हाथी के समान मूर्ख और अनियंत्रित है। इसलिए गुरु साहिब के दार्शनिक दृष्टिकोण में मानव मन को शुद्ध करने पर बहुत जोर दिया गया है। राग गौडी अंग 213-19 के अनुसार;

प्राणी को हरिजस मन नहि आवै।
अहनिस मगन रहै माया मैं कहु कैसे गुण गावै।
साधो इह मन गइयो न जाई।
चंचल तृस्ना संगि बसतु है याते थिर न रहाई।

भारतीय दर्शन में मन को साधने की एक लंबी परंपरा है। माण्डुक्य उपनिषद् के अनुसार; मन इच्छाओं की कामनाओं की प्राप्ति चाहता है और बदले में कामनाओं से मुक्त होना भी चाहता है। गुरु गोरख नाथ से पहले चौरासी सिद्धों का तांत्रिक वज्रयान प्रचलित था। गुरु गोरख नाथ ने इसे सात्विक हठ योग में बदल दिया। गुरु गोरख के आसनों पर ध्यान की विधियों पर आधारित हठ योग आज पूरे महाद्वीप में प्रचलित हो रहा है। आज गुरु गोरख मनुष्य के अंतर-मन की खोज के लिए ध्यान की खोज के अग्रणी आविष्कारक हैं। हठ योग के योग ध्यान के अनुसार, 'ह' का अर्थ है एक सूर्य और 'ठ' का अर्थ है चंद्रमा। सूर्य और चंद्रमा के योग को हठ कहा जाता है। सूर्य का अर्थ है जीवन और चंद्रमा का अर्थ

है जीवन। इन दोनों के योग से बना प्राणायाम। प्राणायाम से हवा को नियंत्रित करने का एकमात्र तरीका हठ योग है। सूरज इड़ा नाड़ी है और चन्द्रमा पिंगला है। इड़ा पिंगला नाड़ियाँ को रोक सुषुम्ना मार्ग से ही प्राणवायु को प्रवाहित करना ही हठयोग है। पतंजलि 'चित्तवृत्ति निरोध:' की बात करते हैं।

पतंजलि के अष्टांगयोग के विपरीत है, गुरु गोरखनाथ का षडांग योग। इसमें केवल छ: अंगों का महत्त्व है। यम और नियम गौण हैं। इनका साधन पक्ष है हठ योग। गुरु लिखित ग्रंथ 'अवरोधशासनम्' का भी महत्त्व है। इस संदर्भ में गुरु गोरख का यह कथन कि प्राण और अपान, सूरज और चंद्र नामक शरीर में बाहरी और आंतरिक शक्तियों द्वारा, उन्हें प्राणायाम, आसन के साथ मिलाकर समरसता लाकर सहज समाधि सिद्ध होती है। जो कुछ पिंड में है, वह ब्रह्मांड में है-'जो पिंडे सो ब्रह्मांडे।' हठयोग साधना पिंड को केंद्र बना ब्रह्माण्ड में निहित शक्तियों की प्राप्ति का प्रयास है। गुरबाणी मन के बावरेपन (विक्षिप्तता) को साधने का मार्ग दिखाती है :

कोई माई भूलिउ मन समझावै।
वेद पुराण साध मग सुनि करि निमख न हरि गुण गावै।

गुरु साहिब मन, माया के वश के बंधन से मुक्त होने के लिए हरि की शरण जाने का जाने का राग तोड़ी अंग 718 सुझाव देते हैं।

कहु नानक अब नाहि अनत गति बिनु हरि की सरनाई।

भारतीय दर्शन में श्रवण परंपरा में नाम जप का बहुत महत्त्व है। अरबिंद ने अपनी पुस्तक 'थाहो ऑर्गिन वाड एरॉन स्पोचा' में वैदिक मंत्रों के उच्चारण से निकलने वाली ध्वनि तरंगों के प्रभाव को बहुत महत्त्व दिया है। जपजी में श्रवण, मनन और ध्यान को भी प्राथमिकता दी गई है। ये तीनों मन की साधना में मदद करते हैं और नैतिक जीवन को बनाए रखने की तकनीक प्रदान करते हैं। आधुनिक पश्चिमी दर्शन में सत्य और शुद्धता के दावों की बनिस्पत प्रामाणिकता के में सर्वसम्मति की प्रबल भावना जैसी कोई चीज नहीं है। जोर्गन हैबरमास ने अपनी पुस्तक 'थाहोर ओन्ड फ्रैचियो' में इस तरह के दावों को नैतिक प्रवचन के साथ जोड़ा है। नैतिक प्रवचन, जिसमें प्रतिभागी नियमों की निष्पक्षता और कर्मों के निर्देशों के लिए प्रयास करते हैं क्योंकि ये वही हैं, जो सामान्य रूप से संबंधित व्यक्तियों के लिए आवश्यक चिंता और सम्मान उत्पन्न करते हैं। उनके बनिस्पत नैतिक प्रवचन या तो लोगों (नैतिक-अस्तित्ववादी प्रवचन) या किसी विशेष समूह या राजनीति (नैतिक-राजनीतिक प्रवचन) के अच्छे जीवन से संबंधित प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। परिणाम नैतिक प्रवचन, जो जीवन के इतिहास, परंपराओं और विशेष और अच्छे जीवन मूल्यों से संबंधित हैं, उन विषयों पर एक प्रकार का मजबूत और शक्तिशाली तर्क-वितर्क प्राप्त करते हैं। व्यक्तियों और समूहों के संदर्भों का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि वे सार्वभौमिक सहमति भी उत्पन्न कर सकते हैं।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में, नैतिकता का संबंध वैराग्य की मनोस्थिति के साथ है। वैराग्य की स्थिति मुक्त अवस्था है। सफल और असफल के बीच कोई अंतर नहीं है, दोनों स्थितियों को समदर्शी अर्थ में लेने का सुझाव दिया गया है। 'अंजन माही निरंजन' और 'जैस जल माही कमल निरलम मार्गई नैसाने' की स्थिति भी इसी समानता का संकेत है। क्योंकि भक्ति में 'अनुग्रह' की याचना होती है, 'फल' की नहीं। इसलिए साधारण फल नहीं,कर्म फल है। भक्ति में नदर अर्थात् कृपा का बहुत महत्त्व है। वार मलार में गुरु अमर दास जी के अनुसार, 'नानक जिन कौ नदर करे' ...भगवान की कृपा का बहुत महत्त्वपूर्ण है।

गुरु तेगबहादुर जी की बाणी में भक्ति भाव प्रधान है। कई मिथहासिक और पौराणिक संदर्भों में भक्ति के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। इन संदर्भों का मूल भारतीय वैष्णव दर्शन में है, जिसका मुख्य स्रोत महाभारत और भगवद्-गीता है। इस दर्शन का सार ही भक्ति है, जिससे माया के बंधन टूट जाते हैं। राग मारू में यह शब्द अमग 1104 पर है;

पांचाली कऊ राज सभा मैं राम नाम सुधि आई।
जा के दु:ख हरिए करुनामय अपनी पैज बढाई।
जिस नर जस किरपानिधि गईयों ता कऊ भयो सहाई।
कहु नानक मनहि भरोसै गहि आन सरनाई।

भारतीय दर्शन में जप के साथ-साथ भज अर्थात् भजन का सार भी बहुत प्रबल है। भजन का रूप कीर्तन है, जिसमें भक्त अपने इष्ट प्रभु के गुणों की स्तुति करता है, ताकि वह उनकी कृपा का भागीदार बन सके;

गुण गोबिंद गइयो नही, जनम अकारथ कीन।
कहु नानक हरि भज मना जिह बिधि जल कऊ मीन।

भजन वास्तव में प्रभु प्रेम का ही प्रतीक है। भारतीय वैष्णव परंपरा में भक्ति, भजन, कीर्तन और प्रेम को भगवान से मिलने का साधन बताया गया है। भक्ति का वर्णन विशेष रूप से गुरु तेगबहादुर के शब्दों में स्पष्ट है, जिसमें उन्हें अन्य साधनाओं के सामने उत्कृष्टता का आशीर्वाद प्राप्त है;

हरि के नाम बिना दु:ख पावै।
भगति बिन सहज नह चखे गुर इह भेद बतावै।
कहा भयो तीरथ ब्रत किए राम सरन नहि आवै...।
कहु नानक इह बिधि को प्राणी जीवन मुकति कहावै।

भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन का परम सार मोक्ष है। चार पुरुषार्थ-काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष-जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पंचभूत जीवन के पाँच इंद्रिय विकारों से मुक्ति के लिए कर्म और ज्ञान मार्ग के माध्यम से मोक्ष का मार्ग समझाया गया है। गुरबानी दर्शन में मोक्ष जीवन आदर्श की प्राप्ति है। इस उपलब्धि के लिए ज्ञान और करम मार्ग के नियम साधना, जाप, नाम, भगती सेवा और शारदा हैं। मोक्ष की सिख शब्दावली में निर्वाण, भौनिध, भवजल, पार उतरा जैसे कई शब्द हैं। गुरु तेगबहादुर जी के 'मुक्त' शब्द के प्रयोग का अर्थ है जीवन मुक्त। गुरु साहिब की बाणी में, मुक्ति शब्द की परिभाषा, मुक्ति का प्रकार, मुक्ति पाने के साधन और मुक्त या जीवन मुक्त की अवधारणा की जटिलता को एक परिपक्व व्यक्ति की सूत्र शैली में सरल और सीधे तरीके से समझाया गया है। दार्शनिक नैतिक गुणों की प्राप्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है। नैतिक गुणों की प्राप्ति अपने आप में मोक्ष है। निम्नलिखित दो श्लोक एक ही अर्थ की ओर इशारा करते हैं;

उसतति निंदिया नाहि जिह कंचन लूह समान।
कहु नानक सुन रे मना मुकति ताहि तै जानि।
हरख सोग जेक नाहिं बैरी मीत समान।
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि।

गुरु तेगबहादुर जी की बाणी में ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मुक्ति ये पाँच पहलू हैं। उनके दार्शनिक दृष्टिकोण में ज्ञान और भक्ति के नैतिक कार्यों पर अधिक बल दिया गया है। भरोसा, श्रद्धा और सत्य की टेक ही सदा सर्वदा सच्ची टेक है। इसलिए गुरु तेगबहादुर जी की बाणी में इसलिए मनो-वैराग के दर्शन पर अधिक बल दिया है। मन के विकारों से शुद्धि और भक्ति से नाशवान शरीर से मुक्त होने की बड़ी शक्ति मिलती है।

सन्दर्भ :

1. गुरु तेगबहादुर (बानी, ततकरा, शबद अनुक्रमणिका), पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 1975
2. तरण सिंह, गुरु तेगबहादुर का जीवन, संदेश और शहादत, पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला, 1976
3. तारा सिंह, गुरु तेगबहादुर राग रचनावली, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 1977
4. डॉ. भजन सिंह ज्ञानी, गुरु तेगबहादुर, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत, 1994
5. डॉ. मनमोहन सिंह, गुरु तेगबहादुर के दार्शनिक विचार, मनदीप प्रकाशन, दिल्ली, 1980

• • •

भारत की दशा और दिशा को बदलने के लिए श्री गुरु तेगबहादुर जी की उपदेश यात्राएँ

प्रो. करमजीत सिंह

गुरु तेगबहादुर जी महाराज के समय भारत पर मुगलों का शासन था। बाबर के नेतृत्व में हिन्दुस्तान पर पहली बार इस जनजाति ने 1519 ई. में सूबेदार दौलत खान लोधी पर हमला किया और उसे हरा दिया, जो उस समय पंजाब में दिल्ली का सूबेदार था। मध्य एशिया के शासक बाबर ने अंततः पानीपत की लड़ाई में यहाँ के शासक इब्राहिम लोधी को हराकर 1526 ईस्वी में भारतीय उपमहाद्वीप पर विजय प्राप्त की। अब भारत में मुगल साम्राज्य की नींव इसलिए पड़ी क्योंकि जहीरुद्दीन बाबर का उद्देश्य केवल भारत को लूटना नहीं था। उसका असली लक्ष्य इस समृद्ध देश पर कब्जा करना और अपना राज्य स्थापित करना था। बाबर सफल हुआ और देखते ही देखते बाबर के उत्तराधिकारी के नेतृत्व में यहाँ दुनिया का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित हुआ। गुरु तेगबहादुर के समय में शासक औरंगजेब था, जिसके अत्याचारों की कहानियाँ आज भी लोगों के जेहन में ताजा हैं। इस देश के निवासियों ने उसके उत्पीड़न को सहना, अपने भाग्य का नसीब माना। असहनीय जुल्मों-सितम और भारी टैक्स ने लोगों का जीना दूभर कर रखा था पर, सभी विवश थे। धीरे-धीरे बाबर के राज्य का विस्तार होने लगा और बाबर की तुलना में भारत के छोटे क्षेत्रों के मालिक बनने वाले राजाओं ने इस विस्तार में अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये सभी छोटे-छोटे राज्य एक-दूसरे से बहुत नफरत करते थे। भारत की यह भूमि टुकड़ों में बँटी हुई थी प्रत्येक टुकड़े का स्वामी किसी न किसी रूप में दूसरे की पीठ में छुरा घोंपने को तैयार रहता था। इस सब के लिए वह किसी न किसी तरह से बाबर को प्रोत्साहित करता और मदद का आश्वासन देता ताकि वह अपने पड़ोसी राज्य पर कब्जा कर सके और शाही परिवार का सफाया कर सके। इसके पीछे उनकी बुरी भावना यह थी कि बाबर कुछ समय के लिए भारत में ही रहेगा और लूट के बाद अपने देश 'खुरासान' को लौट जाएगा। उसके जाने से वह अपने पड़ोसी के राज्य पर कब्जा करके अपने राज्य का विस्तार कर सकेगा। उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा कि बाबर यहाँ लूटने के लिए नहीं बल्कि इस समृद्ध भूमि पर हमेशा के लिए अपने राज्य का झंडा फहराने आया है। बाबर इन छोटे राजाओं की चालाकी को समझ गया, परिणामस्वरूप उसने इन छोटे राज्यों को अपने पैरों के नीचे रौंद दिया और यहाँ तक कि बाबर को उसके पड़ोसी राज्य को मारने के लिए हर तरह से मदद करने वाले भी नहीं बचे। भारत के राजाओं की यह बुरी सोच निश्चित रूप से भारत की गुलामी का मुख्य कारण थी।

बाबर के बाद उसका पुत्र हुमायुँ राज गद्दी पर बैठा, जो विद्वान तो था परन्तु दूरदर्शी नहीं था। परिणामस्वरूप, एक अन्य मुस्लिम सेनापति, शेर शाह सूरी ने उसके क्षेत्र पर कब्जा कर लिया और हुमायूँ को अपनी जन्मभूमि में भागना पड़ा। हालांकि शेरशाह सूरी ने बहुत कम समय तक शासन किया, फिर भी उनके शासनकाल को 'स्वर्ण युग' के रूप में याद किया जाता है। भारत में उनका महत्त्वपूर्ण कार्य जो आज भी शेरशाह सूरी मार्ग के नाम से जाना जाता है। जिसे हमारे समय में GT Road-1 कहा जाता है। पूरे भारत को जोड़ने वाला एक हाईवे है। हुमायुँ ने अपनी जमीन से फिर तैयारी की। चुपके से शेर शाह सूरी के सेनापति को खरीद लिया। उस पर हमला किया। शेर शाह सूरी के शासन को उखाड़ फेंका और मुगल सरकार का पुनर्निर्माण किया। हुमायुँ के बाद उसका पुत्र अकबर गद्दी पर बैठा, जिसने केवल सुन्दर और दूरदर्शी दृष्टि से भारत की तकदीर ही नहीं बदली बदली बल्कि उसने भारत के लोगों के दिलों पर शासन किया, उन्हें समान अधिकार दिए, जिससे लोगों का जीवन खुशहाल हो गया। अकबर के बाद उसका पुत्र सलीम जहाँगीर उपाधि के साथ भारत का शासक बना। जहाँगीर का पालन-पोषण एक कट्टर मुसलमान की देखरेख में हुआ। नतीजतन, उसने भारत पर कट्टरपंथी शरीयत का शासन थोप दिया। काफिर और मोमिन दो पक्ष सामने आ गए। भारत के मूल निवासी जो अन्य धर्मों के अनुयायी थे, जहाँगीर के राज्य में काफिर घोषित कर दिए गए। उन पर कई धार्मिक टैक्स लगाए गए, जिससे उनका जीवन दयनीय हो गया। लोग घबराने लगे। उन्होंने भारत के मूल निवासियों के उत्पीड़न की इन्तहाँ कर दी। जहांगीर के इन अत्याचारों ने सिख धर्म को भी छुआ। जहांगीर के परदादा बाबर ने अनजाने में गुरु नानक पातशाह को रिहा करने के लिए माफी मांगी थी, लेकिन जहांगीर के आदेश पर पाँचवें गुरु पातशाह अर्जुन देव जी को लाहौर में शहीद कर दिया। नतीजतन, गुरु के अनुयायियों और मुगल बादशाहों के बीच दुश्मनी की दीवारें खड़ी हो गई। जहाँगीर के बाद, शाहजहाँ सिंहासन पर चढ़ा और शाहजहाँ के बाद, उसके बेटे औरंगजेब, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, गुरु तेगबहादुर के समय में औरंगजेब के नाम पर भारत के राज्य का मालिक था और औरंगजेब मुगल सम्राटों में सबसे कट्टर मुस्लिम था।।

यात्रा का उद्देश्य

औरंगजेब ने अपनी तानाशाही से हिंदू समाज में हलचल मचा दी थी। लोग डर गए और उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि औरंगजेब का वंश नष्ट हो जाए और ऐसा दिव्य प्राणी इस धरती पर आए जो इस पापी राज्य का अंत कर दें ताकि वे अपनी धरती पर राहत की सांस ले सकें। भारत भूमि पर, दैवी-पुरुष श्री गुरु

तेगबहादुर साहिब 'नानक गुरुगद्दी' पर नौवें स्वरूप में सुशोभित थे और वे पूरे वातावरण को बहुत ध्यान से और करीब से देख रहे थे। उन्होंने भारत की दशा और दिशा को बदलने का संकल्प लिया। उन्होंने भारत के लोगों के मनोबल को बढ़ाने के लिए धार्मिक तीर्थयात्रा करने और जनता को यह संदेश देने का मन बना लिया कि 'भय काहू को देत नहि, न भय मानत आनि'। ऐसे समय में गुरु नानक पातशाह के उत्तराधिकारी से केवल एक ही उम्मीद की जा सकती थी कि इस संकटपूर्ण और अशांत समय में लोगों को धैर्य दें और उनका मनोबल बढ़ाएं। गुरु महाराज ने अपने परिवार और अपने सिख सेवकों के साथ सुदूर पूर्व की यात्रा की। इन यात्राओं के दौरान उनके कई उद्देश्य थे। सबसे पहले, वह संगतों से मिलना चाहते थे और उन्हें दर्शन देकर सिख सिद्धांत को सुदृढ़ करना चाहते थे, जिसकी स्थापना इस धर्म के संस्थापक गुरु नानक जी महाराज ने की थी। दूसरा, वह ऊपर बताए गए लोगों का मनोबल बढ़ाना चाहता था, तीसरा, उनका मन्तव्य ऐसे काम करने का था जिससे लोगों का जीवन खुशहाल और अधिक आरामदायक हो।

गुरुजी की यात्रा

बेशक, पंजाब में वर्तमान हरियाणा में सुदूर पूर्व का सटीक मार्ग ज्ञात नहीं है कि वे कहाँ कहाँ और किन किन रास्तों से होते हुए गये। लेकिन कुछ सिख ग्रंथ जैसे साखी पोथी, सूरज प्रकाश और पंथ प्रकाश आदि में कुछ विवरण निश्चित रूप से जरुर मिल जाते हैं। बेशक इन नामित स्थानों के अलावा और भी कई गाँव, कस्बे और शहर होंगे जहाँ गुरु पातशाह के चरण पड़े होंगे लेकिन यहाँ हम उपरोक्त ग्रंथों के आधार पर उनकी यात्राओं को बहुत संक्षेप में बताने का प्रयास करने जा रहे हैं।

गुरु तेगबहादुर जी की यात्रा

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. कृपाल सिंह के अनुसार, गुरु तेगबहादुरजी ने "चक्क नानकी" की स्थापना के बाद पूर्व की ओर अपनी यात्रा शुरू की। इस यात्रा के पीछे गुरु महाराज का एक विशेष उद्देश्य था जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। पंजाब में वे रोपड़ जिले के दुगरी, कोटली और घडूआं; फतेहगढ़ साहिब में नंदपुर, कलौड, रैले, बहोड, भगताना और दादूमाजरा शामिल हैं; जिला पटियाला के उगाणी, टहिलपुर, सैफाबाद, बीवीपुर खुर्द, नौलखा, लंग और गुनिके, संगरूर में भवानीगढ़, मूलोवाल, गागा, मरोकड़ साहिब गुरना; बरनाला में सेखा, हडीयाइया, सोहिवाल, पंढेर, ढिलवाँ मौड; मनसा में अलीशेर कलां, गोबिंदपुरा, जोगा, भूपाल, खिवा कलां, भीखी, खियाला कलां, कोट धर्मू, बरेड; भटिंडा में दमदमा साहिब, मौड आदि में स्थानों को निहाल करते हुए वर्तमान हरियाणा के जिला जींद के पिंड धमधान (जहाँ पातशाह की गिरफ्तारी के विषय में भट्ट वहियों और महिमा प्रकाश मिलता है) कैथल, बणी बदरपुर,सुफैल, बारना, कुरुक्षेत्र, थानेसर से पूर्व का रुख कर लिया। गुरुजी का उद्देश्य लोगों को मुक्त करना, सही रास्ता दिखाना और शोषण से उनकी मुक्ति के लिए एक उपाय करना भी था। इस तीर्थ यात्रा के दौरान, गुरु ने जहाँ भी किसी को गरीब या दुखी देखा, उन्होंने गुरु की गोलक खोल दी और करनाल के पास पहुँचते ही,

गुरु तेग बहादुर जी की यात्रा

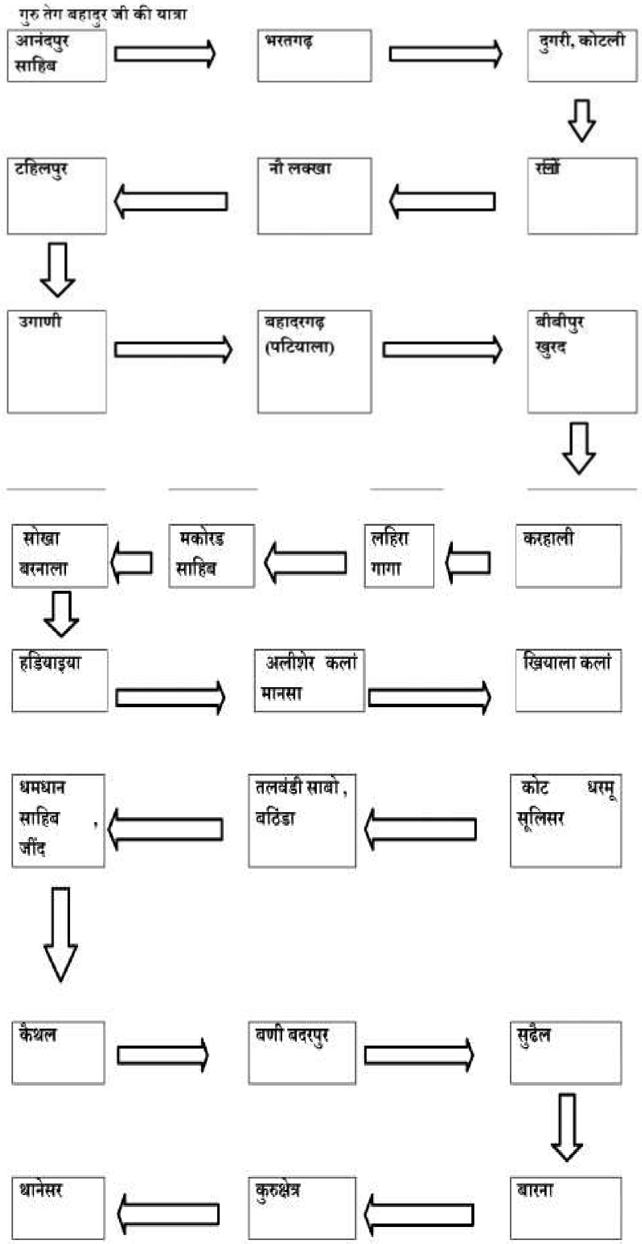

गुरु तेग बहादुर जी की पूर्व की यात्रा

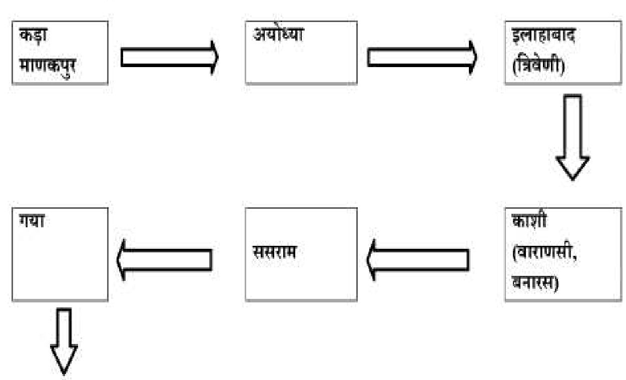

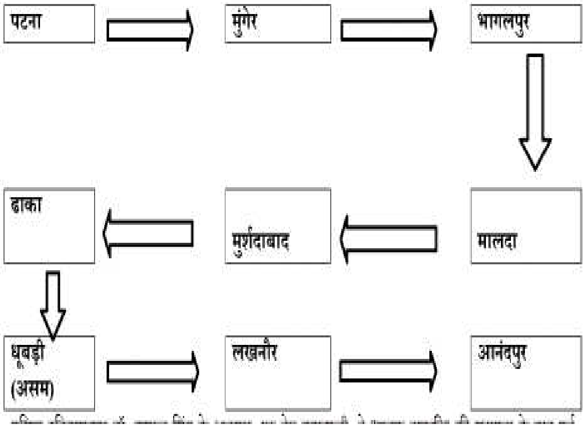

उन्होंने धन से भरी थैली को एक यात्री को दिया। उस पैसे से लोगों का उपकार करने के लिए कुएँ खुदवाए और वृक्ष लगवाए। उसी बदर या झोला की कृपा से उस नगर का नाम बदरपुर पड़ा। बदरपुर से गुरु जी कड़-माणकपुर पहुँचे, जहाँ उन्होंने एक योगी का (खाने-पीने संबंधी) भ्रम दूर किया। कड़-माणकपुर, वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य का एक प्रमुख शहर है, हिंदू धर्म स्थान प्रयाग से लगभग 50 मील की दूरी पर गंगा के तट पर स्थित है। गुरु पातशाह ने उस स्थान पर निवास किया। उस स्थान पर मलुकदास नाम का एक वैष्णव संत था। जिसके मन में कई शंकाएँ थीं। गुरु पातशाह ने उसकी कुटिया में जाकर निवास किया और उसके सारे भ्रम दूर किये। जो उसे विचलित कर रहे थे और उसकी भक्ति में रूकावट बने हुए थे। मलूक दास को आशीर्वाद मिला, गुरु पातशाह का शिष्य बना और एक सिख साथी के रूप में सिख धर्म के प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। इस मिलाप का उल्लेख सूरज प्रकाश ग्रंथ में भी मिलता है:

चौपई

कड़े सु मानिकपुर दे राहु। गमने सतगुरु बेपरवाहु।
सुनियत मलूकदास भरमायहू। संक मान महि नहि भायहु।
कह्यौ-बैसनो मत है मेरो। सतिगुर मॉस अहारी होएरो।

कड़-माणकपुर से गुरु जी मथुरा, आगरा, इटावा होते हुए प्रयाग (इलाहाबाद) पहुँचे। इलाहाबाद इस राज्य का एक और महत्त्वपूर्ण शहर है। जिसकी आज भी भारत के सभ्य शहरों में प्रशंसा की जाती है। गुरु पातशाह के समय में इस शहर को प्रयाग के नाम से जाना जाता था। इस शहर की सुंदरता यह थी कि यह तीन नदियों गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम था, जिसने इसे हिंदू धर्म में मुक्ति का प्रतीक बना दिया और धार्मिक साहित्य में त्रिवणी भी कहा। इसके ऐतिहासिक महत्त्व का अंदाजा इसी बात से भी लगाया जा सकता है कि भारत के सम्राट अकबर ने मध्य भारत पर नजर रखने के लिए यहाँ एक विशाल किले का निर्माण कराया था। सिख परंपरा के अनुसार, गुरु महाराज यहाँ लगभग छह महीने तक रहे। जिस स्थान पर वे स्थित थे वह एक बुजुर्ग माँ का घर था जो नानक घर की भक्त थी। इस स्थान की महिमा का उल्लेख कवि संतोख सिंह और अन्य लोगों ने किया है:

जल उज्ज्वल, श्यामल बारी।
सरस्वती बिदताई माझारी।
पाप अनेकनि कतरनी छैनी।
बड सोभा तिह होती त्रिबेनी।

अर्थात् एक तरफ तेज पानी था तो दूसरी तरफ काले रंग का जल था, उसमें सरस्वती प्रकट हो रही थीं। यह संगम अनेक पापों का नाश करने वाला है। गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों नदियों का संगम बेहद खूबसूरत है।

दो महीने प्रयाग में रहने के बाद गुरु बनारस के लिए रवाना हो गए। बनारस के लोग गुरु नानक के समय से ही गुरु के घर के दीवाने हो गए थे और उनके आगमन पर गुरु तेगबहादुरजी का गर्मजोशी से स्वागत किया। काशी से गुरु जी सासाराम पहुँचे, जहाँ से चाचा फग्गू ने अपनी हवेली के दरवाजे इतने बड़े कर दिए थे कि जब गुरु जी सासाराम आए तो वे घोड़े से उतरे बिना ही हवेली में प्रवेश कर सकें। दरअसल गुरु जी सासाराम अपने सिक्ख की मनोकामना पूरी करने ही गए थे। सासराम से गुरु जी गया पहुँचे। यह शहर गंगा के किनारे स्थित होने के कारण हिंदुओं के लिए बहुत पवित्र माना जाता है। अपने मृत पूर्वजों की मुक्ति के लिए हिंदू इस स्थान पर 'पिंडदान' करने आते थे। दरअसल, यह पुजारियों द्वारा आम लोगों की लूट का आवरण था और यह लूट सदियों से चली आ रही थी। गुरु पातशाह की महिमा देखकर पांडे ने गुरु पातशाह से उत्साह से मुलाकात की। उनके मन में यह ढोंग था कि वे गुरु पातशाह को अपने भ्रम में फँसा लेंगे और उन्हें अच्छी तरह से लूट लेंगे। गुरु पातशाह ने मुस्कुराते हुए पंडितों के साथ एक प्रवचन किया और उनका झूठ उजागर किया और लोगों को समझाया कि मोक्ष का एकमात्र तरीका नाम सिमरन है। जब पंडितों ने अपना गुस्सा व्यक्त किया, तो गुरु पातशाह के आदेश पर, औरंगजेब के सेनापति राजा राम सिंह ने पंडितों को निष्कासित कर दिया और कहा कि अगर उन्होंने फिर से अपने पाखंड से लोगों को लूटने की कोशिश की, तो उन्हें कड़ी सजा दी जाएगी। पंडितों ने डर के मारे पत्रा पढ़ा। जिस स्थान पर पंडितों से परामर्श किया गया था, वहाँ अब एक सुंदर गुरुद्वारा बनाया जा रहा है। गया से, गुरु पातशाह का मुख अब पटना की ओर था, जो अब 'पटना साहिब' के रूप में प्रतिष्ठित है, और यहाँ पर सिखों का तख्त सुशोभित है। ध्यान दें कि पटना वर्तमान में बिहार राज्य की राजधानी है और भारत के सबसे पुराने शहरों में से एक है। पुराने दिनों में उन्हें 'पाटलिपुत्र' के नाम से जाना जाता था। गंगा और गंडक नदियों का संगम इस शहर के बहुत करीब है। गुरु महाराज के समय यह शहर राजा फतेह सिंह मैनी का था और उनकी गिनती गुरु नानक के घर के अनुयायियों में होती है। ऐसा माना जाता है कि जब मैनी को गुरु महाराज के पटना आने की खबर मिली तो वह अपने परिवार के साथ गुरु पातशाह के स्वागत के लिए दौड़ पड़े। गुरु पातसाह दो महीने से अधिक समय तक पटना साहिब में रहे और बंगाल की यात्रा करने के लिए परिवार को यहाँ छोड़ दिया। यहीं पर बाल गोबिंद जी का प्रकाश 1666 ई.में होता है, जहाँ उनकी याद में अनेक गुरुद्वारा साहिब सुशोभित हैं। इनमें हरिमंदिर साहिब पटना, गुरुद्वारा गौघाट,

गुरुद्वारा गुरु दा बाग, गुरुद्वारा गोबिंद घाट, गुरुद्वारा मैनी संगत साहिब आदि प्रमुख हैं।

आज भी बड़ी संख्या में गुरु महाराज के बिहारी सिख बिहार के उन स्थानों पर उन्हें श्रद्धांजलि देते हैं और उनकी यादों को संजोते हैं जो उन्हें समय-समय पर उनकी यात्रा के दौरान गुरु महाराज द्वारा दी गई थीं। हैरानी की बात यह है कि कई गाँवों में एक भी सरूप धारी सिख नहीं है बल्कि गुरु ग्रंथ साहिब जी के हाथ से लिखे सरूपों की मौजूदगी इस बात की ओर इशारा करती है। वह गुरु जी अपनी यात्रा के दौरान यहाँ अपने आशीर्वाद से आगे बढ़ते थे। ये बिहारी सहजधारी बड़ी श्रद्धा के साथ उन पवित्र ग्रंथों की देखभाल करते हैं। पटना साहिब से गुरु पातशाह की अगली दिशा ढाका की ओर थी। वह बाड कस्बे शहर से गुजरते हुए मंगेर पहुँचे। मंगेर का स्थान उनकी स्मृति में एक सुंदर गुरुद्वारा से सुशोभित है। इसकी पुष्टि कवि संतोख सिंह के शब्दों से होती है:

हुते मुंगेर नगर इक भारे।
बसहिं बृंद नर गंग किनारे।।
श्री सतिगुरु तहि उतरे जाहि।
संगति सुनि आई समुदायि।

मंगर से भागलपुर, कंतनगर, राजमहल और मालदा होते हुए गुरु महाराज ढाका पहुँचे। गुरु पातशाह की याद में ढाका में सुंदर गुरुद्वारा सुशोभित हैं। ढाका में ही गुरुजी को मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र राम सिंह से मिले, और कामरूप के अभियान में मदद के लिए गुरु से अनुरोध किया। यद्यपि गुरु जी ने एक सशस्त्र योद्धा के बजाय शांति और सुलह के पैगंबर के रूप में असम अभियान में भाग लिया, लेकिन वे दो या तीन आधारों पर राजा राम सिंह के साथ असम जाने के लिए सहमत हुए। पहला यह था कि राजा राम सिंह और उनके पिता, मिर्जा राजा जयसिंह गुरु हरकृष्ण द्वारा दिल्ली बुलाए जाने के समय से गुरुघर के श्रद्धालु बने हुए थे, और गुरु तेगबहादुर को राजा राम सिंह से बहुत प्यार था। दूसरे, राजा राम सिंह को औरंगजेब द्वारा किसी तरह उन्हें दंडित करने के लिए असम में एक अभियान पर भेजा गया था, क्योंकि राजा राम सिंह की हिरासत से शिवाजी बच कर निकल गए थे। औरंगजेब को राजा राम सिंह के बारे में कुछ संदेह था, पहले उसे पदावनत किया और बाद में उसे असम के लिए एक अभियान पर जाने का आदेश दिया। असम अभियान का नेतृत्व बहुत कठिन था। कामरूप की घुमावदार कठिन पहाड़ियाँ, बाढ़ का मैदान और बिफरे नदी, और उससे भी अधिक, राजा राम सिंह को उनके शुभचिंतकों ने असम की भयंकर जादूगरनियों के भयानक जादू से भयभीत कर दिया था। इसलिए राजा राम सिंह अपने साथ कई मुस्लिम फकीरों को ले गए। उसने गुरु से अपने साथ चलने की विनती की। हो सकता है कि गुरु जी इन कारणों से राजा राम सिंह के साथ असम न भी जाते, लेकिन एक ओर उन्होंने पहले ही असमिया प्रदेशों (धुबरी, आदि) में जाने का मन बना लिया था, जो गुरु नानक जी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त था, दूसरी ओर मुगल फौजदार राजा रामसिंह और कामरूप के राजाओं के बीच शांति स्थापित करने के आदर्श के साथ कामरूप जाने के लिए सहमत हुए। कामरूप में, गुरु ने मुगलों और कामरूप राजा के बीच एक समझौता भी किया। कुछ समय असम में रहने के बाद, उन्होंने जगन्नाथ पुरी का भी दौरा किया लेकिन औरंगजेब तेजी से हिंदुओं पर हमला कर रहा था और कई मंदिरों को ध्वस्त कर रहा था। इसलिए गुरु ने पंजाब जाने का मन बना लिया और 1671 ई। में साहिबजादा गोबिंद राय और अपने परिवार को पटना से अपने साथ लेकर आनंदपुर साहिब पहुँचे।

आनंदपुर साहिब पहुँचकर, उन्होंने साहिबजादा गोबिंद राय की बहुआयामी शिक्षा और आसन्न संकट को ध्यान में रखते हुए अपने सभी सिखों को शस्त्र और शास्त्र दोनों में कुशल होने की व्यवस्था की। उस समय पंजाब में धार्मिक जागृति की आवश्यकता थी, इसलिए गुरु ने लोगों का मनोबल बढ़ाने और धर्म का प्रचार करने के लिए पंजाब और मालवा के गाँवों का दौरा किया। आनंदपुर साहिब से चलकर वह कीरतपुर, रोपड़, दादूमाजरा, बस्सी पठान, नौ लाखा, उगालिया, टहिलपुर, सैफाबाद आदि कई गाँवों से होते हुए मूलोवाल पहुँचे। ग्रामीणों ने बताया कि कुएँ का पानी खारा है। गुरु ने स्वयं जल पीकर उस जल को अमृत के समान मीठा बनाया और साथ ही चौधरी जवंदा का अभिमान भी तोड़ा। इसके बाद हडिया गाँव में लोगों की जाति-पाती के भ्रम को दूर करने के लिए उन्होंने एक तालाब में स्नान किया और सभी को स्नान करने के लिए प्रेरित किया और भक्तों के कष्टों को दूर किया। हडिया से चलने के बाद गुरु ढीलवाँ किया। ढिलवाँ गाँव में बेहद कमजोर और गरीब ब्राह्मण रहते थे। गुरु पातशाह ने उनकी मदद की ताकि वे अपना जीवन अच्छे से जी सकें। तब गुरु जी लोगों का उद्धार करते हुए भिखी गाँव पहुँचे। वहन का एक सरदार देसू जी जोकि एक सरवर का चेला था; उसका उद्धार किया। इसी प्रकार गुरु जी बठिंडा के गावों से होते हुए, बछौआना, धमधान गाँवों से गुजरते हुए मालवे की यात्रा पूरी की और लोगों का आध्यात्मिक रूप से उद्धार किया और गरीबों और जरूरतमंदों को आर्थिक सहायता प्रदान की।

गुरु नानक देव जी ने लोगों के मन को जगाने और अंधविश्वास को दूर करने के लिए चार उदासियाँ (यात्राएँ) की-वे खुद पैदल ही लोगों के पास गए। सुनने में आता है कि प्यासे अपनी प्यास बुझाने के लिए कुएँ पर आते हैं लेकिन गुरु नानक खुद प्यास बुझाने के लिए प्यासे के पास गए।

अंत में यह कहना उचित होगा कि गुरु तेगबहादुर ने गुरु नानक की शिक्षाओं के प्रसार और प्रचार के लिए यात्राएँ कीं। तीर्थयात्रा का उद्देश्य लोगों का भला करना, उन्हें अंधविश्वास से मुक्त करना, उनके बीच की खाई को पाटना, निर्भयता और शत्रुता की अवधारणा को मजबूत करना, शोषण से मुक्ति का संदर्भ बनाना आदि था। उन्होंने चार अवधारणाओं को समेकित किया जो उनके द्वारा रचित 59 छंदों में दर्ज हैं।

1. भय न करे

गुरु 16वें श्लोक में कहते हैं:

भै काहू को देत नहि, नहि भै मानत आन।।
कहु नानक सुनि रे मना गियानी ताहि बखानि।। 1।।

अर्थ : जो मनुष्य किसी को नहीं डराता और न किसी से डरता या डराता है-उसे ज्ञानी अर्थात् आध्यात्मिक जीवन का ज्ञान रखने

वाला माना जाना चाहिए।

2. चिंता न करें

श्लोक 51 में गुरु कहते हैं:

चिंता ताकि कीजिए जो अनहोनी होए।।

इहु मारग संसार को नानक थिर नही कोई।।51।।

अर्थ: सारा संसार नाशवान है, जिसका जन्म हुआ है, उसे एक दिन मरना ही है। सबसे बड़ी चिंता मृत्यु है। गुरु जी समझाते हैं कि मृत्यु की चिंता भी अनावश्यक है और इसे स्वीकार किया जाना चाहिए और सतगुरु को साक्षी मानकर धर्म के अनुसार सच्चे कर्म करने चाहिए।

3. दु:ख के समय प्रार्थना करें

श्लोक 53 में गुरु कहते हैं:

बल छुटकियो बंधन प्रे कछु न होत उपाई।।

कहू नानक अब अउट हरि गज जिऊ होत सहाई।।53।।

अर्थ: जब शक्ति चली जाए और आप हर जगह से निराश हो जाएँ, कोई उपाय काम न करे तो भगवान से प्रार्थना करें तब गुरु जी प्राचीन साखी को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि जिस तरह हाथी की भगवान ने मदद की, वह हर तरह से आपकी कठिनाई में मदद करेगा।

4. खुशी के समय में धन्यवाद

पद 54 में गुरु कहते हैं:

बल होआ बंधन छुटे सभ किछु होत उपाई।।

नानक सभ किछु तुमरै हाथ में तुम ही होत सहाई।।

भावार्थ : जब बल आये, सब सुख आये, सारी कठिनाइयाँ, बंधन समाप्त हो, तब ईश्वर का धन्यवाद करो क्योंकि तुममें कोई अभिमान नहीं है कि मैंने कुछ हासिल किया है-जो कुछ भी आपको मिलता है वह उसका (ईश्वर) ही आशीर्वाद है।

• • •

आधुनिक संदर्भ में सिख गुरुओं के शैक्षणिक विचारों की सार्थकता

डॉ. अमृत कौर रैना

कुछ महानुभाव, संत, महात्मा, लेखक, साहित्यकार, शिक्षा शास्त्री ऐसे होते हैं जो अपनी महान धार्मिक साहित्यिक, शैक्षणिक देन के कारण अपने पद चिह्नों को स्थाई रूप से समय के धरातल पर छोड़ जाते हैं जो सदैव अंधेरे में भटकती मानवता के लिए प्रकाश स्तंभ का कार्य करते हैं। ऐसे ही महान व्यक्तित्व के स्वामी थे गुरु साहिबान; जिनकी बाणी गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित होकर शब्द गुरु का रूप धारण कर आधुनिक युग में भी मानवता का पथ प्रदर्शन कर रही है। केवल भारत में ही नहीं विदेशी विद्वान भी इसकी शिक्षा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। अर्नाल्ड टायनबी[1] के अनुसार श्री गुरु ग्रंथ साहिब संपूर्ण मानवता का सार्वभौमिक आध्यात्मिक खजाना है जिसका संदेश अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाना चाहिए ताकि सिखों के अतिरिक्त संसार के लोग भी इसके अध्ययन से लाभ उठा सकें। एच.एल. ब्राडशा[2] सिख धर्म को नए युग का धर्म कहता है। (faith of new ages) उनके अनुसार सिख धर्म एक सार्वभौमिक, सर्वकालिक धर्म है जिसमें संपूर्ण मानवता के लिए धर्म का सार है। आधुनिक अंतरिक्ष युग में मनुष्य के लिए यह एक दैवी वरदान है क्योंकि आधुनिक युग में मनुष्य की समस्याओं का उत्तर इसमें है।

डोरथी फील्ड[3] के अनुसार संसार के धर्मों में सिख धर्म का एक विशिष्ट स्थान है क्योंकि यह एक क्रियात्मक धर्म है जिसने अपने प्रयोगात्मक (pragmatic in approach) दृष्टिकोण के कारण बहुत कम समय में एक कौम का निर्माण किया। इसने निम्न वर्ग के साधारण अछूत लोगों को वफादार वीर योद्धाओं में बदल दिया। यह एक चमत्कार से कम नहीं। अपने लेख आधुनिक युग में गुरु नानक दर्शन की सार्थकता- (Relevance of Nanak's Philosophy in the Modern age) में डॉ. रोनाल्ड दवे[4] कहता है कि, आधुनिक युग में गुरु नानक देव जी की शिक्षाओं की विशेष सार्थकता है। उन्होंने संगत और पंगत के द्वारा ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, जाती-पांति के भिन्न भेद को मिटाकर मानवीय एकता के धार्मिक सारहीन दिखावे के कर्मकांडों से ऊपर उठकर सच्चे नैतिक आध्यात्मिक धर्म का स्वरूप बताया। उन्होंने धार्मिक कर्त्तव्यों से विमुख न होकर सांसारिक कर्तव्यों को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान कर सांसारिक कर्तव्यों में से प्रभु को खोजने का उपदेश दिया।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित गुरु साहिबान की शैक्षणिक प्रणाली हमारे युग के अनुकूल तो थी ही आधुनिक युग में भी इसकी सार्थकता है या नहीं। आधुनिक युग में शिक्षा को विशाल अर्थों में दिया जा रहा है। लेकिन परीक्षाएँ पास करना, डिग्रियाँ प्राप्त करना शिक्षा नहीं है अपितु व्यक्तित्व के संपूर्ण चतुर्मुखी आध्यात्मिक, बौद्धिक, सामाजिक, औद्योगिक, शारीरिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विकास की संपूर्ण प्रक्रिया को शिक्षा माना जा रहा है। भारत सरकार की ओर से नियुक्त कोठारी[5] कमीशन (1964-66) के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य चरित्र निर्माण के द्वारा बढ़िया नागरिक तैयार करना, उसमें राष्ट्रीय एकता की भावना का संचार करना, किसी अच्छे उद्योग की शिक्षा द्वारा आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर बनाकर अपने देश के आर्थिक विकास में योगदान देना, उसका कलात्मक, सौन्दर्यात्मक, सांस्कृतिक व्यक्तित्व का विकास कर उसे जीवन का भावनात्मक आनंद उठाने के योग्य बनाना, ज्ञान प्रदान कर उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण कर उसमें आधुनिकीकरण का विकास करना है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि सर्वसाधारण जनता को शिक्षित करने के लिए गुरु साहिबान ने शिक्षा के किन महत्त्वपूर्ण तत्वों पर बल दिया और आधुनिक संदर्भ में वे कितने सार्थक हैं।

1. शिक्षा आध्यात्मिक नैतिक विकास के लिए: भारत की आधुनिक शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक मूल्यों का अभाव अनुभव किया जा रहा है। आध्यात्मिक, बौद्धिक, चारित्रिक निर्माण की अपेक्षा परीक्षाएँ पास करना और डिग्रियाँ प्राप्त करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बन गया है। आज का मनुष्य अर्थ और काम का पुजारी बन दौलत के अंबार इकट्ठे करने में लगा है चाहे इसके लिए रिश्वतखोरी, शोषण, धोखा यहाँ तक कि खाने की वस्तुओं में मिलावट ही क्यों न करनी पड़े। कवि वड्र्सवर्थ के अनुसार धन पैदा करने और खर्च करने में हम अपनी शक्तियों का ह्रास कर रहे हैं। धन और शक्ति की इस पूजा को भौतिकवादी मूल्यों को आध्यात्मिक आधार, उच्च आदर्शों और नैतिक मूल्यों से बदलना होगा। इस दिशा में गुरुओं का शिक्षा दर्शन जो आध्यात्मिक, नैतिक मूल्यों पर आधारित है हमारी सहायता कर सकता है। उन्होंने श्री गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी के अध्ययन, अध्यापन, गायन, मनन, चिंतन आदि को अपने शिष्यों की दैनिक दिनचर्या का अविभाज्य अंग बनाकर उसके आध्यात्मिक नैतिक जीवन के विकास का प्रयास किया। उनके अनुसार शिक्षा वह अमृतदायिनी, कल्याणी शक्ति है जो आत्मानुभव, आत्मसाक्षात्कार, विद्ययाऽमृतमश्नुते (ईशावास्योपनिषद्।।) की तरह 'मन तूं ज्योति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु' (म.3 पृ. 441) पर बल देते हुए शिक्षा को एक साधना, तपस्या मानते हैं। 'बिदिआ तपुजोगु प्रभ धियानु।। गिआनु स्रेसट ऊतम इसनानु।।' (म. पृ. 296) उनके अनुसार वास्तविक शिक्षक वह है जो अपने मन की संपूर्ण शक्तियों को विकसित कर अध्यात्मिक विकास में भी सहायक सिद्ध होता है।

शुभ गुणों का जीवन में विकास, नैतिक गुणों पर आचरण प्रभु की सच्ची पूजा है। सत्य महान है पर सच्चा जीवन उससे भी महान है। वास्तविक ज्ञान जीवन में उच्च गुणों के विकास द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। 'गुण वीचारे गिआनी सोइ।। गुण महि गिआनु परापति होइ।।' (म.1पृ. 931) वह शिक्षित व्यक्ति गधे के समान है जो गुणहीन होते हुए भी अपने पर गर्व करता है।

नानक ते नर असलि खर जि बिनु गरबु करंत।।

(म.1पृ. 1441)

गुरुनानक देव जी के अनुसार वह पढ़ा लिखा शिक्षित व्यक्ति भी मूर्ख है जिसमें लोभ, अहंकार आदि दुर्गुण पाए जाते हैं।

पड़िआ मूरखु आखिऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा।।

(म.1पृ. 1441)

दैवी ज्ञान जीवन में गुणों के विकास द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अवगुण तो गले की जंजीरे हैं, फांसी के फंदे हैं, जिन्हें जीवन में गुणों के विकास द्वारा काटा जा सकता। अत: वे समाज को गुणवान बनाने के लिए गुणों के पारस्परिक प्रसार पर बल देते हुए कहते हैं:

साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगुण चलीए।।

(म.1पृ. 766)

अत: गुरु साहिबान के संकल्प का शिक्षित व्यक्ति गुरमुख, ब्रह्मज्ञानी अथवा खालसा है जो जीवन में उच्च गुणों के विकास द्वारा अपने व्यक्तित्व को विकसित और प्रफुल्लित कर पुष्प की भांति अपने वातावरण को भी अपने गुणों की आभा से महका देता है, सुगंधित कर देता है।

मनुष्य केवल रोटी के सहारे जी नहीं सकता। उसे मानसिक शांति और आध्यात्मिक भोजन की भी आवश्यकता है। अतैव आधुनिक आदर्शवादी शिक्षा शास्त्री, इच्छाओं के मकड़जाल में उलझे, तृष्णाओं के वात्याचक्र में फंसे मनुष्य की मानसिक आत्मिक शांति के लिए आध्यात्मिक, नैतिक शिक्षा पर बल दे रहे हैं। शिक्षा शास्त्री फ्रायबल[6] के अनुसार मनुष्य का आध्यात्मिक विकास करना, उसमें अंदर के सुषुप्त दैवीपन को जागृत करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक रूप से विकसित स्वतंत्र सचेत मनुष्य का प्रभु से तालमेल बिठाना है। अत: आधुनिक युग में भी जब मनुष्य चांद पर जा पहुँचा है उसके आध्यात्मिक और नैतिक विकास की अवहेलना नहीं की जा सकती।

2. क्रियात्मक प्रयोगात्मक शिक्षा द्वारा बौद्धिक विकास: ज्ञान के समान पवित्र वस्तु इस संसार में नहीं है। 'नहि ज्ञानेन सादृशं पवित्रमिह विद्यते।।' यह वेदों का मत है। अत: 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' 'आत्म: दीपो भव' की कामना की जाती है। शिक्षा उस प्रक्रिया को माना जाता है जिसमें एक व्यक्ति सचेत रूप से ज्ञान प्रदान कर दूसरे व्यक्ति के विकास में सहायता करता है। यह ज्ञान की ज्योति मनुष्य के अंदर है जो गुरु की सहायता से प्रज्ज्वलित होती है।

अंतरि तीरथु गिआनु है सतिगुरि दीआ बुझाइ।।

(म.3 पृ. 587)

शिक्षा प्रक्रिया में बौद्धिक विकास में ज्ञान की खोज सतत प्राप्ति का विशिष्ट स्थान है। ज्ञान को गुरु मानते हुए 'ग्यान गुरु आतम उपदेशहु' और ज्ञान की बढ़नी (झाड़ु) हाथ में लेकर जीवन में कायरता और कमजोरी को दूर करने के लिए कहते हैं। 'ग्यानही की बढ़नी मनु हाथ ले कातरता कुतवार बुहारै।।' (द.ग्र. पृ. 570) गुरु साहिबान द्वारा जीवन में ज्ञान प्राप्ति पर विशेष बल दिया गया है।

सगल तत महि ततु गिआनु।। *(म.5 पृ. 1182)*

अत: गुरुनानक देव जी ज्ञान की भंडार पुस्तकों के अध्ययन पर बल देते हैं। 'पोथी पुराण कमाईऐ' (पृ. 25) जिस प्रकार दीपक जलाने से अंधेरा दूर हो जाता है इसी प्रकार ज्ञान का स्रोत महान ग्रंथों के अध्ययन मनन से मन की अज्ञानता दूर हो जाती है और वह पुन: मैला नहीं होता।

परंतु आधुनिक युग में हमारा पाठ्यक्रम बालकेंद्रित होने की अपेक्षा पुस्तक केंद्रित बनता जा रहा है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण की अपेक्षा भारत की शिक्षा संस्थाएँ अपनी संपूर्ण शक्तियाँ विषयों के पढ़ाने में लगी लगा रही हैं। पश्चिम के महान शिक्षाशास्त्री जॉन डीवी और किलपैट्रिक ने विषयकेंद्रित पाठ्यक्रम की नीरसता को अनुभव करते हुए क्रिया केंद्रित शिक्षा प्रणाली की वकालत की है। भारत के आधुनिक शिक्षा शास्त्री भी प्रयोगात्मक, उद्देश्यात्मक, क्रियात्मक, शिक्षा पर बल दे रहे हैं। इस दिशा में गुरु साहिबान का दृष्टिकोण अत्यंत आधुनिक है। वे सैद्धांतिक शिक्षा के विरुद्ध हैं जो बालक की संपूर्ण शक्तियों का विकास नहीं करती। वे शिक्षा को केवल मात्र सूचनाएँ इकट्ठा करने से अलग मानते हैं। कोरा ज्ञान प्राप्त करना और उस पर आचरण न करना मन पर बोझ है।

कथनी बदनी पड़ि पड़ि भारु।। *(म.1पृ. 412)*

महर्षि टैगोर के अनुसार शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करने के लिए नहीं है। मनुष्य सूचनाओं का बोझ ढोने के लिए पैदा नहीं हुआ। भक्त कबीर के अनुसार जो ज्ञान क्रियात्मक रूप धारण कर जीवन में काम नहीं आता उसका बोझ ढोना इस प्रकार है जैसे गधे ने भार उठाया हुआ हो।

वेद पुरान पड़े का किआ गुनु खर चन्दन जस भारा।।

(पृ. 1103)

यदि शिक्षा द्वारा, ज्ञान अर्जन द्वारा हमारी संपूर्ण शक्तियों का विकास नहीं होता तो वह 'पड़ि पड़ि गडी लदीअहि' की तरह बेकार है। ज्ञान ज्ञान के लिए पर्याप्त नहीं। ज्ञान जीने की कला सिखाएँ। दर्शन क्रिया की ओर प्रेरित करें तभी वह सच्चा ज्ञान है। अत: गुरु साहिबान ज्ञान के द्वारा मानसिक शक्तियों को विकसित करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं–

पंडित इसु मन का करहु बिचारु।।

अवरू कि बहुता पड़हि उठावहिं भारु।। *(म.3 पृ. 1261)*

ज्ञान की प्राप्ति यदि व्यक्ति को ज्ञानवान, आचारवान, विचारवान बनाती है तभी वह वास्तविक रूप से शिक्षित है नहीं तो संसार में कोरे ज्ञानियों और पंडितों की कमी नहीं।

जगि गिआनी विरला आचारी।।

जगि पंडितु विरला वीचारी।। *(म.1पृ. 413)*

अत: गुरुजी ज्ञान की खोज में निरंतर क्रियाशील रहने परख की कसौटी पर कसने और खोज की दृष्टि को अपनाते हुए सत्य की गहराई तक पहुँचने और सत्य को सूक्ष्म निरीक्षण के बाद अपनाने

की प्रेरणा देते हुए कहते हैं।

खोजी उपजै बादी बिनसै।। *(म.1 पृ. 1265)*

वे अपने दृष्टिकोण में कितने आधुनिक हैं।

3. समर्पित अध्यापक और समर्पित शिष्य: आधुनिक युग की तरह अध्यापक भी धन कमाने के लिए भागा फिरता है। उसमें ज्ञान प्रदान करने, ज्ञान अर्जन करने की निस्वार्थ भावना खत्म होती जा रही है। वह अपने काम को धन की तुला पर तोलता है। आए दिन वह हड़ताल और अधिक से अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के संघर्ष में जुटा रहता है जिससे विद्यार्थियों की शिक्षा में बाधा पड़ती है। जो कुछ नहीं बन पाता वह अध्यापक बन जाता है। नैतिक और चारित्रिक रूप से भी वह कसौटी पर पूरा नहीं उतरता। ट्यूशन प्रणाली के कारण अध्यापक एक व्यापारी बन गया है। शिक्षा इतनी महंगी हो गई है कि वह साधारण व्यक्ति की पहुँच से दूर हो गई है। आधुनिक विद्यार्थी में भी अध्यापक के प्रति प्राचीन गुरुभक्ति, श्रद्धा, सम्मान, प्रेम आत्मसमर्पण की कमी पाई जाती है। वह अनुशासनहीनता और विफलता की ओर अग्रसर हो गया है। प्राचीन गुरु शिष्य का रिश्ता समाप्त होता जा रहा है। विद्यार्थी सोचते हैं कि वे पैसा देते हैं और पढ़ते हैं। कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने के कारण अध्यापक उनके नाम तक नहीं जानते। उनका रिश्ता औपचारिक बनता जा रहा है।

गुरु साहिबान द्वारा गुरु शिष्य की आदर्श परिभाषा आधुनिक युग में भी प्रेरणादायक है। आध्यात्मिक विकास, बौद्धिक उन्नति, नैतिक उत्थान, साहित्यिक, सांस्कृतिक विकास, व्यक्तित्व का सर्वांगीण चतुर्मुखी विकास एक अच्छे अध्यापक के पथ प्रदर्शन द्वारा ही संभव है। गुरु साहिबान के संकल्प का गुरु स्वयंपूर्ण है और शिशु को भी पूर्णता की ओर ले जाता है। ज्ञान से आलोकित, प्रज्ज्वलित उसके पारदर्शी व्यक्तित्व से स्वयंमेव ज्ञान की किरणें फूटती हैं। 'पाधा आखिऐ बिदिआ बिचरै सहजि सुभाई' (म.1, पृ. 938) वह प्राचीन ऋषियों की तरह है जो परोपकार की दृष्टि से अध्ययन, अध्यापन में संलग्न रहता है और निस्वार्थ रूप से आर्थिक प्रलोभनों से ऊपर उठकर कड़े परिश्रम द्वारा अपनी जीविका अर्जन करता है जो विष खाता है।

मनमुखु बिदिआ बिक्रदा बिखु खटे बिखु खाइ।।

(म.1, पृ. 968)

भगत कबीर भी इसी स्वर में कहते हैं-

माइआ कारन बिदिआ बेचहु जनमु अबिरथा जाई.।

(पृ. 1103)

जो पंडित विद्वान, गुरु माया का व्यापारी बन पोथियाँ पढ़ता और पढ़ाता है। वह गुरुओं के संकल्प का सच्चा गुरु हो ही नहीं सकता।

पंडित वाचाहि पोथीआ ना बुझाहि विचारू।।

अनकउ मती दे चलहि माइआ का वापारू।। *(म.1पृ. 56)*

वह पंडित जो माया के मोह के कारण पढ़ पढ़कर उच्च स्वर में चिल्लाता है, मूर्ख और गंवार है।

पंडितु पड़िपड़ि उचा कुकदा माइआ मोहि पिआरू।।

(म.3 पृ. 86)

गुरु साहिबान के संकल्प का शिष्य भी गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पित आत्मा है। उसे पता है कि गुरु भक्ति, श्रद्धा, आत्मसमर्पण, गुरु प्रति आदर, सम्मान की भावना मन को आलोकित करते हैं। शिष्य अपनी सेवा, आत्मसमर्पण, अथक परिश्रम और श्रद्धा के द्वारा गुरु के इतने समीप आ जाता है कि गुरु और शिष्य में कोई अंतर नहीं रहता। लहिणा, अंगद बन जाता है। गुरु के शरीर का अंग ज्योति ज्योति में समा जाती है।

गुरु सिखु सिखु गुरु है एको गुरु उपदेसु चलाए।।

(म.4 पृ. 444)

उसकी गुरु के प्रति श्रद्धा चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। उसे गुरु परमात्मा का साकार रूप दिखाई देता है। वह गुरु के आह्वान पर शीश हथेली पर लेकर आत्मोत्सर्ग के लिए तैयार हो जाता है और ऐसे शिष्य के लिए गुरु भी सरवंश न्योछावर करने के लिए तैयार हो जाता है।

मो ग्रहि में मन ते मन से सिर लउ धन है सभ ही इन ही को।।

(द.ग्र. पृ. 716)

वह अपने शिष्य के व्यक्तित्व का निर्माण मां जैसे प्यार से करता है।

जिउ जननी सुतु जण पालती राखै उदरि मझारी।। *(पृ. 168)*

गुरु शिष्य की पारस्परिक प्रेम और सम्मान की भावना ने एक निष्प्राण निर्जीव सोई हुई कौम को जगाकर नई कौम का निर्माण किया। शिष्यों के प्रति उनकी इस आदर और सम्मान की भावना ने उनके आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को जगाया। उनका शारीरिक स्वरूप ही नहीं उनकी मानसिकता को भी सदा सदा के लिए बदल दिया। एक वीर स्वाभिमानी कौम का निर्माण हुआ। सवा लाख से एक को लड़ा दिया।

गुरु शिष्य के पारस्परिक सुखद संबंधों का यह संकल्प आज के समय की मांग है। जब अध्यापक एक अध्यापक न रहकर समाज का निर्माता बन जाता है। अपने शिष्य के जीवन का पथ प्रदर्शन और शिष्य अपनी संपूर्ण अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता भूल गुरु को प्रकाश स्तंभ, मित्र, निर्देशक और दार्शनिक मान श्रद्धा से नतमस्तक हो उसके बताए मार्ग पर चल पड़ता है।

तूं गुरु पिता तूं है गुरु माता तूं गुरु बंधपु मेरा सखा सखाइ।।

(म.4 पृ. 167)

4. सामाजिक पुनर्निर्माण और औद्योगिक विकास के लिए शिक्षा: प्राचीन भारत में एक विद्यार्थी का नैतिक कर्तव्य साझा जाता था की वह अपनी शिक्षा का ऋण अपनी शिक्षा पूर्ण करने पर समाज के प्रति सेवा के रूप में चुकाए। समाज उसे शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएँ प्रदान करता है। अत: समाज को बेहतर बनाने के लिए समाज को शिक्षित करना समाज निर्माण और कल्याण के लिए कार्य करना उसका सामाजिक कर्तव्य था। हमारे देश के प्राचीन ऋषियों की तरह गुरु साहिबान भी विश्वास रखते हैं कि शिक्षा संस्थाओं ने सामाजिक उन्नति के लिए शिक्षा प्रदान करने का कार्य धार्मिक कर्तव्य समझकर करना है और समाज का यह धर्म है कि वह शिक्षा की उन्नति के लिए कार्य करें। 'बिदिआ विचारी तां परउपकारी।।' (म.1 पृ. 356) में गुरुनानक देव जी मानवता की सेवा

को शिक्षित व्यक्ति की प्रमुख विशेषता बताते हैं। गुरु जी का यह महावाक शैक्षणिक विचारधारा में अद्वितीय है जिसे राष्ट्रीय समाज सेवा (एनएसएस) की ओर से संपूर्ण भारत में अपनाया जा रहा है।

गुरु साहिबान ने संगत और पंगत के क्रियात्मक विधान द्वारा सामाजिक पुनर्निर्माण का कार्य शुरू किया। जाति-पांति, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब के अंतर को मिटाकर 'एक पिता एकस के हम बारिक।। मानस की जात सभै एकै पहचानबो।।' की शिक्षा प्रदान की। सामाजिक निर्माण के लिए समाज के निम्न पद दलित वर्ग और नारी के उत्थान के लिए विशेष प्रयास किए। उन्होंने लालो को सम्मानित किया। मलक भागों के पकवान खाने स्वीकार नहीं किए। सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है कि सब को पेट भर खाना मिले। कोई किसी का शोषण न करें। मलक भागो और लालो की कहानी इस विश्वास को प्रकट करती है-

जे रतु लगे कपड़े जामा होइ पलीतु।।
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु।।

(म.1पृ. 140)

दूसरों का शोषण करके धन कमाना मानवीय रक्त पीने के बराबर है। माया के ढेर पाप की कमाई के बिना इकट्ठे नहीं किए जा सकते। अतः मलक भागो, सेठ दुनीचंद और सज्जन ठग को उनका उपदेश है कि माया के इन ढेरों को गरीबों की सेवा में उनके उत्थान के लिए खर्च कर दो। सामाजिक निर्माण के लिए आय का दसवाँ अंशदान करना है इस परंपरा को सिख धर्म का अविभाज्य अंग बना दिया।

गुरु साहिबान ने अपने शिष्यों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनके औद्योगिक विकास के लिए प्रयत्न किए। उन्होंने नए नगरों को बसाकर अपने शिष्यों को अनेक धंधों द्वारा जीविका कमाने के सुअवसर प्रदान किए। इस दिशा में गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव की देन विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने अमृतसर शहर को बचाकर 52 अलग-अलग उद्योगों के व्यापारियों, कारीगरों, किसानों को बसाया ताकि व्यापारिक उन्नति हो। निहाररंजन रे के अनुसार 'गुरु रामदास जी ने अमृतसर का निर्माण कर व्यापार और औद्योगिक विकास में भारी योगदान दिया।' गुरु साहिबान की शिक्षा के कारण कड़े परिश्रम के द्वारा जीविका कमाने के लिए पंजाबी संसार भर में प्रसिद्ध है। गुरुओं ने अपने शिष्यों को विदेशों में जाकर व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित किया। गुरु अर्जुन देव जी की प्रेरणा स्वरूप सिख काबुल कंधार तक घोड़ों के व्यापार के लिए जाने लगे। गुरुओं की शिक्षा के फलस्वरुप अपने परिश्रमी स्वभाव के कारण पंजाबियों ने हरित क्रांति लाकर पंजाब को भारत का अन्न का भंडार बना दिया। वह भारत का सर्वोत्तम किसान है। प्रति व्यक्ति आमदनी में सबसे आगे है। वह रेगिस्तान के सीने चीर कर दरिया बहा देता है। जंगल में मंगल बना देता है। उजड़कर फिर बस जाता है। उसने हार माननी नहीं सीखी। वही संसार के किसी कोने में भी जाए अपने परिश्रमी स्वभाव, निडरता और साहस के कारण अपना स्थान बना लेता है। विदेशों में साउथहॉल जैसे अनेक नगर मिन्नी पंजाब लगते हैं। कैलिफोर्निया निवासियों के अनुसार उनके जंगलों को फूलों के बागों में बदल दिया है। कनाडा की खुशहाली में पंजाबियों का विशेष योगदान है। दैनिक ट्रिब्यून रविवार 4 जुलाई 2004 अपने संपादकीय नोट 'पंजाबियत का परचम' में लिखता है कि कनाडा की 308 संसदीय सदस्य में 8 पंजाबी चुनकर आए हैं। यूं ही पंजाबियों को धरती का पुत्र नहीं कहा जाता। जहाँ भी जाते हैं अपनी धरती की सौंधी सुगंध से उस क्षेत्र को साराबोर कर देते हैं जो उन्हें गुरु साहिबान की शिक्षा के फलस्वरुप गुण में मिलती है। कहते हैं जो दीया तूफान की आंखों में जलता है अपने अस्तित्व को समाप्त नहीं होने देता वही दिया इतिहास बनाता है और इतिहास लिखता है। ऐसे ही दीपक हैं हमारे पंजाबी भाई और बहनें जिन्होंने गुरबाणी के कर्म के सिद्धांत को अपने जीवन में ढालकर संपूर्ण संसार में अपने अस्तित्व का परचम लहराया है।

सामाजिक निर्माण के लिए दान और सेवा की भावना आज भी पंजाबी सभ्यता का अंग है। गुरु का शिष्य दुखी मानवता की पुकार सुनकर भागा चला जाता है और उच्च नीच, जाति पाति, अमीर गरीब की सीमाओं से ऊपर उठकर सेवा में संलग्न हो जाता है।

'अणहोदे आपु वंडाए।। को ऐसा भगतु सदाएँ।।'

(फरीदा पृ. 1384)

बाबा फरीद के इन शब्दों की सार्थकता उसके लिए सदैव रहेगी।

5. नारी चेतना और सामाजिक पुनर्निर्माण: सामाजिक निर्माण और पुनरुत्थान के लिए नारी चेतना, उसके उचित स्थान और सम्मान की परम आवश्यकता है। वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती हुई ही सामाजिक विकास में योगदान दे सकती है और जीवन का आनंद उठा सकती है। 'जहाँ जराई कामिनी तू जनि जाई कबीर' और 'भोजन भजन और नारी तीनों पर्दे के अधिकारी' के उस युग में गुरु नानक देव जी का 'सो किउ मंदा आखीऐ जितु जमहि राजान' (पृ. 473) कहना तत्कालीन नारी विरोधी युग में एक क्रांतिकारी कदम था। गुरु जी के व्यक्तित्व के निर्माण में तीन स्त्रियों माता तृप्ता, बहन नानकी और पत्नी (माता) सुलखनी का योगदान था जिन्होंने उन्हें भरपूर प्यार सहयोग और सम्मान दिया। माता सुलखनी की प्रशंसा करते हुए वह कहते हैं 'पारजातु घरि आगनि मेरै' (पृ. 503) मेरे घर में तो कमल का फूल खिल रहा है जिससे मेरा घर आंगन महक उठा है। स्त्री के प्रति उनकी इस आदर और सम्मान की भावना को बाकी गुरु साहिबान ने भी अपनाया और स्त्री की सामाजिक स्थिति सुधारने और प्रशिक्षित करने के लिए प्रयास किए। गुरुद्वारों के साथ खोलें प्रारंभिक स्कूलों में लड़कों के साथ लड़कियों को शिक्षित करने का प्रयास किया जिसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि गुरु अंगद देव जी की बेटी बीबी अमरों की सुरीली आवाज में गुरबाणी का पाठ सुनकर गुरु अमरदास जी की कायाकल्प हो गई। गुरु हरगोबिंद की बेटी बीबी वीरों की शिक्षा के लिए गुरु हरगोबिंद साहिब द्वारा हस्तलिखित पुस्तिका अभी कीरतपुर के गुरुद्वारे में मंजी साहिब में उपलब्ध है।

स्त्री को समाज का बढ़िया अंग बनाने के लिए गुरु साहिबान ने उसे सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उसे काम करने, सोचने और बोलने की स्वतंत्रता प्रदान की। उसे संगत और पंगत की क्रियाओं में भाग लेने के लिए उत्साहित किया। माता खीवी की लंगर

सेवा सुप्रसिद्ध है। उसमें आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की भावना को जागृत करने के लिए उसे पुरुष के साथ एक बाटे में से अमृत पान करने का अधिकार दिया। उसे पाँच ककार धारण करने की आज्ञा देकर उसके नाम के साथ कौर अथवा कुंवर शब्द लगाकर उसे शेरनी बनाया। आत्मरक्षा के लिए उसे सैनिक शिक्षा प्रदान की जिसका उदाहरण भाई भाग और बीबी शरण कौर की कहानियों से मिलता है जिन्होंने युद्ध क्षेत्र में मुगल सैनिकों से टक्कर ली। गुरु गोबिंद सिंह ने 'चंडी दी वार' में स्त्री के वीरांगना रूप का चित्रण किया।

गुरु साहिबान ने स्त्री जीवन में घुन की तरह खाने वाली को प्रथाओं के विरुद्ध आवाज बुलंद की। गुरु अमरदास ने सती प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह का विरोध और विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने 'एक जोति दुइ मूरती' कहकर स्त्री को सम्मानित किया। 22 मंजिओं के प्रचारकों में स्त्री को भी प्रचारक नियुक्त किया। अपनी बेटी की सेवा से प्रसन्न होकर गुरु गद्दी का वारिस उसके पति गुरु रामदास को बनाया। अपनी बेटी बीबीभानी के नाम से जमीन खरीदी जहाँ बाद में अमृतसर बसाया। गुरु हरगोबिंद साहिब ने औरत को ईमान कहा। उन्होंने दहेज प्रथा पर करारी चोट करते हुए माता गुजरी के पिता लालचंद को कहा 'लालचंद तुम दीनों सकल बिसाला।। जिन तनुजा अर्पण कीन तै पाछे क्या रख लीन।।'

माता गंगा से आशीर्वाद स्वरुप उन्होंने शीलवान कन्या का वरदान मांगा।

शीलवान कन्या इक होवे नहीं ता[7] मां गृहस्थ विगोवे।।

गुरु जी के यह शब्द आधुनिक युग में जब भ्रूण हत्या के फलस्वरूप गुरुओं की इस धरती पंजाब की में स्त्रियों की संख्या 1000 के पीछे 770 रह गई है हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

गुरु गोबिंद सिंह ने अपने हुक्मनामे में आदेश दिया है 'गुरु का सिक्ख कन्या नहीं मार, कुड़ी मार नाल नहीं वरते।' गुरु हरिकृष्ण राजाराम के सामाजिक बहिष्कार का आदेश दिया जो अपनी कन्याओं को जन्मते ही मार देता था। आज आवश्यकता है गुरु साहिबान के इन विचारों के प्रचार और प्रचार की जब भ्रूणहत्या हमारी समाज में जोरों पर है। आज बलात्कार की घटनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। भाई गुरुदास का कथन है 'देखि पराईआ चंगिआं मावाँ भैणा धीआं जाण' (29/11) और गुरु गोबिंद सिंह का आदेश है जो 'सिक्ख तुरकनी भोगे जाए' 'उह नहीं बखशिया जाए कदाई' यहाँ तक कि दुश्मन की स्त्री का भी उपभोग नहीं करना।

आज एड्स का रोग सुरसा के मुंह की तरह बढ़ता जा रहा है इस रोग से हमारा बचाव हो सकता है यदि हम गुरु साहिबान के आदेश पर आचरण करें:

निज नारी के साथ नेहु तुम नितबढैयहु।।
पर नारी की सेज भूलिसुपने हूँ न जैयहु।। (द.ग्र. पृ. 842)
जैसा संगुबिसीअर सिउ हे रे तैसो ही इहु पर गृहु।।
(म.5 पृ. 403)

आधुनिक युग में भी गुरु साहिबान में यह प्रगतिशील विचार स्त्री के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। आवश्यकता है उनके पुनः प्रसार और प्रचार की।

6. शारीरिक और सैनिक शिक्षा पर बलः शरीर मनुष्य का पहला धर्म है। 'शरीरम् खलुद्यं धर्मम् मनुजस्य।।' स्वस्थ शरीर मनुष्य की सबसे बड़ी पूंजी है। 'हरी मंदरू एहु सरीरू' है। (म.3, पृ. 1346) हरि मंदिर रूपी शरीर को शारीरिक व्यायाम, संतुलित भोजन संयमित जीवन के द्वारा स्वस्थ और निरोग रखने की आवश्यकता है और प्रत्येक युग में रहेगी। आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि मैं गीता पढ़ने की अपेक्षा फुटबॉल खेलना अधिक पसंद करूँगा क्योंकि इसके द्वारा स्वस्थ शरीर का निर्माण होता है। 'नचणु कुदणु मन का चाउ' (पृ. 465)। जहाँ नाचने कूदने के द्वारा स्वस्थ शरीर का निर्माण होता है वहाँ प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। गुरु नानक देव जी के अनुसार संयमित, संतुलित भोजन ग्रहण कर शरीर को विषय विकारों से बचाना है।

बाबा होरू खाणा खुसी खुआरू।
जितु खाधै तनु पीड़िऐ मन महि चलहि विकार।। (म.1पृ. 16)

गुरु अंगद देव जी के समय से शारीरिक शिक्षा गुरु साहिबान के पाठ्यक्रम का अविभाज्य अंग बन गई। उन्होंने शारीरिक रूप से अपने शिष्यों को मजबूत बनाने के लिए अखाड़े बनाए। स्वाभिमान की रक्षा के लिए, दुष्टों के दमन के लिए, स्वतंत्रता के आह्वान के लिए शारीरिक दृष्टि से मजबूत ताकतवर सैनिकों की आवश्यकता थी। गुरु हरगोबिन्द सिंह और गुरु गोबिंद सिंह जी ने निराशा के भंवर में डूबी मुगल राजाओं द्वारा पद्दलित निष्प्राण, निर्बल हिन्दुओं को शारीरिक, व्यायामों और सैनिक शिक्षा के द्वारा मजबूत, ताकतवर बनाने का शुभ कार्य आरम्भ किया। उनकी दिनचर्या का अधिकांश समय अपने साथियों को कुश्ती लड़ना, कबड्डी खेलना, घुड़सवारी करना, गतका खेलना, शिकार खेलना, तीर और तलवार चलाना, नेजबाजी, नकली युद्ध कौशल के दांव पेंच दिखाने में व्यतीत होता। उन्होंने शारीरिक और सैनिक शिक्षा को सिक्खशिक्षा प्रणाली का अभिभाज्य अंग बनाकर नवीन इतिहास का सृजन किया। उन्होंने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए, देश और कौम की रक्षा के लिए, तलवार को खालसे की पोशाक का अंग बना दिया। इस शारीरिक, सैनिक शिक्षा के द्वारा साधारण मानव के जीवन का नव निर्माण हुआ। उनका मनोबल आत्मविश्वास, आत्मसम्मान जागृत हुआ। उसमें अत्याचारी राजाओं को चुनौती देने का साहस उत्पन्न हुआ। वह नया इतिहास सृजन करने में समर्थ बना। भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमाओं से निरंतर होते आक्रमणों का इसने मुख मोड़ दिया। डॉ. गोकुल चंद नारंग[8] के अनुसार 'वे मनुष्य जिन्होंने कभी तलवार का स्पर्श तक नहीं किया था बहादुर योद्धा बन गए। हलवाई और मोची, धोबी और जमादार, सेनाओं के नेता बन गए जिनके योद्धा बन गए उनके सम्मुख राजे कांपते थे और नवाब डर के झुक जाते थे।' जिन्होंने बंद बंद कटवाए, चरखाड़ियों पर चढ़े, दीवारों में चिने गए, सरफरोशी की तमन्ना गाते हुए फांसी के फंदे को चूम लिया परंतु जिनके होंठ सदैव 'सूरा सो पहचानिए जो लड़े दीन के हेत।' 'पुरजा पुरजा कटि मरे कबहूँ न छाड़े खेतु' (कबीर पृ. 1105) गीत गुनगुनाते रहे। आंकड़े गवाह है कि भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सिक्खों का योगदान और शाहिदियों की मात्र सर्वाधिक है। खुशवंत सिंह[9] के अनुसार सिक्ख भारत की जनसंख्या का 2% हैं परंतु

भारतीय सेना का प्रत्येक 10वाँ सैनिक सिक्ख है। एवरेस्ट पर्वत पर नौ भारतीय चढ़े जिन में तीन सिक्ख थे। भारत की खेलों की टीमों में प्रत्येक तीसरा खिलाड़ी सिक्ख होता है। उसमें शारीरिक, सैनिक शिक्षा के कारण सिक्ख स्वस्थ ऊँचे लंबे और तगड़े होते हैं। इस शारीरिक, सैनिक शिक्षा में पंजाबियों को मरने से न डरने वाले,मृत्यु से भी मजाक करने वाली को बना दिया है। गुरु साहिबान का शारीरिक, सैनिक शिक्षा का अपनी शिक्षा प्रणाली का अभिभाज्य अंग बनाना शिक्षा के क्षेत्र में उनकी बहुत बड़ी देन है जो सदैव हमारा प्रदर्शन करती रहेगी। जिसकी सार्थकता प्रत्येक युग में रहेगी।

7. मातृभाषा, साहित्यिक, सांस्कृतिक, कलात्मक, भावनात्मक शिक्षा पर बल: किसी भी देश को मानसिक रुप से परतंत्र बनाने के लिए उसकी भाषा, संस्कृति को छीन कर अपनी भाषा, संस्कृति को शिक्षा को लागू कर उसे सहज रूप से गुलाम बनाया जा सकता है। अंग्रेजों ने भारतवासियों को मानसिक रूप परतंत्र बनाने के लिए अपनी भाषा और संस्कृति को भारतीय शिक्षा प्रणाली का अविभाज्य अंग बना दिया। यहाँ तक की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हमें विदेशी भाषा, वेशभूषा और संस्कृति को अपनाना अपनी शान समझते हैं। इसी तरह मुगलों के राज्य में उनकी भाषा, सभ्यता, संस्कृति की नकल करना भारतवासी अपनी शान समझने लगे थे। परंतु गुरु नानक देव जी 'घरि घरि मीआ सभनां जीआं बोली अवर तुमारी' (पृ. 119) और खत्रीआ त धरमु छोडिया मलेछ भाखिआ गही' (पृ. 663) के विरुद्ध थे।

गुरु साहिबान भारतवासियों द्वारा अपनी भाषा, सभ्यता, संस्कृति को त्यागकर विदेशी भाषा, सभ्यता, संस्कृति अपनाने का विरोध करते हैं। वे 'कूजा बाग निवाज मुसला नील रूप बनवारी' (पृ. 119) को पसंद नहीं करते हैं।

'अंतरि पूजा पड़हि कतेवा संजमु तुरका भाई।
छोडिले पाखंडा।। (म.1, पृ. 471)
'अंधी रयती गिआन विहूणी।।' (पृ. 469)

अज्ञान के अंधकार में डूबी साधारण जनता में ज्ञान की ज्योति का प्रचार-प्रसार कर उनके नव निर्माण के लिए गुरुद्वारों के साथ संलग्न आरंभिक पाठशालाएँ खोली जिनमें जनसाधारण के द्वार तक शिक्षा को सहज रूप से पहुँचाने के लिए मातृभाषा पंजाबी को शिक्षा का माध्यम बनाया। मुगलों के राज में जब उर्दू फारसी का बोलबाला था मातृभाषा पंजाबी को शिक्षा का माध्यम बनाना शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ी देन है। गुरु साहिबान ने बाणी रचना द्वारा कथा कीर्तन द्वारा लिखित रुप से बड़ों और बच्चों को सचेत अचेत रूप से शिक्षित करने का प्रयास किया। पोथियों के निर्माण द्वारा, संगत में साहित्य को बांटकर साहित्य के पढ़ने की प्रेरणा दी। श्री गुरु अर्जुन देव जी ने गुरु और संतों भक्तों की बाणी को श्री गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल कर-

'पीऊ दादे का खोलि डिठा खजाना।।' (पृ. 186)
को 'पोथी परमेसर का थानु।।' (पृ. 1226)

बनाकर अपनी शिक्षा प्रणाली के अध्ययन, अध्यापन का अविभाज्य अंग बनाकर बाणी के गायन, मनन, चिंतन द्वारा शिक्षकों में भावनात्मक, सांस्कृतिक, साहित्यिक विकास में महान योगदान दिया। गुरबाणी की शिक्षा में भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति और सभ्यता का सार मिलता है। सारे गुरु साहिबान महान साहित्यकार थे जिन्होंने अपनी बाणी रचना, साहित्य रचना, अनुवाद कार्य द्वारा भारतीय जनता को जागृत करने और उनकी मानसिकता को बदलने का महान कार्य किया।

साहित्य, संगीत, कविता, चित्रकारी, नृत्य आदि ललित कलाओं की शिक्षा व्यक्तित्व के अंदर सौन्दर्यात्मक, भावनात्मक कलात्मक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीवन में आनंद का संचार करने और व्यक्ति की रचनात्मक, भावनात्मक प्रतिभा को विकसित करने का सर्वोत्तम साधन है। यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी में साहित्य, संगीत और काव्य का संगम है। सत्यं, शिवं, सुन्दरम की त्रिवेणी बहती है। संपूर्ण बाणी संगीतमय और रागों में रचित है जिसका कीर्तन, शब्द गायन आधुनिक समय में भी जनता की भावनात्मक भूख को शांत करता, दैवी आनंद प्रदान करता आ रहा है। आज भी गुरुओं की लाडली फौजे,

'देहि शिवा बर मोहि इहै।।' (द.ग्र.पृ. 99)
और 'सूरा सो पहिचानीऐ' (पृ. 1105)

की वीरध्वनि का मार्च पास्ट करती हुई अपना जीवन देश को अर्पण के लिए प्राण हथेली पर लिए निकल पड़ती हैं।

आज अंबर तक छूते धन के ढेर में खड़ा मनुष्य पूछता है शांति कहाँ है? मानसिक तनाव के कारण अनेक रोग से ग्रस्त है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों और डॉक्टरों के अनुसार दैवी संगीत का कीर्तन बाणी का पठन-पाठन, चिंतन, मनन सात्विक विचार न केवल शांति और आनंद प्रदान करते हैं अपितु शकर रोग, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि के उपचार में भी सहायक सिद्ध होते हैं। शुभ विचार तरंगें हमारे वातावरण में प्रसारित होकर वातावरण को निर्मल, स्वस्थ, सुखद बनाती है। प्रतिदिन संगत में गुरबाणी का कीर्तन जहाँ भावनात्मक बल प्रदान करता है वहाँ पारस्परिक प्रेम, सांझीवालता और सौहार्द की भावना का विकास होता है। गुरुबानी के गायन द्वारा प्रदत्त भावनात्मक बल के कारण, चढ़ती कला में रहते हुए, वह कठिनाइयों के सम्मुख घबराता नहीं। चट्टान बनकर खड़ा हो जाता है 'जिसके सिर ऊपर तू स्वामी सो दुखु कैसे पावै' 'तेरा कीया मीठा लागै' के शब्दों को गुनगुनाता हुआ दृढ़ कर्मों से जीवन डगर पर बढ़ता चला जाता है।

8. राजनैतिक, लोकतंत्रीय चेतना का विकास : गुरु साहिबान द्वारा मानवतावादी लोकतंत्रीय विचारों पर आधारित सच्चे की सरकार की स्थापना का प्रयास गुरु नानक देव जी के समय से प्रारंभ हो जाता है। गुरु साहिबान तत्कालीन राजनीतिक सत्ता के साथ संघर्ष में आए। इसके हाथों दु:ख भोगा। प्रतिक्रिया स्वरूप उसके विरुद्ध संघर्ष किया ताकि साधारण जनता बढ़िया राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक जीवन जी सकें।

'पाप की जंझ लै काबलहु धाइआ' (पृ. 722)
'एती मार पई कुरलाणे।।' (म.1 पृ. 360)
और 'राजे सीह मुकदम कुते।।' (पृ. 1228)

कहकर तत्कालीन राजनीतिक सत्ता की तीखी आलोचना करना गुरु नानक देव जी को सिक्ख धर्म की राजनैतिक चेतना का नेता

बनाता है। परतंत्रता के गहन अंधकार में स्वतंत्रता की शमा रोशन करने वाला बनाता है सिक्ख धर्म के सैनिक स्वरूप का जन्मदाता बनाता है। बाबरबाणी की क्रांतिकारी रचना से शुरू हो जाती है, राजनीतिक चेतना का विकास जो गुरु अर्जुन देव के समय स्पष्ट रूप में धारण कर लेती है।

तखति राजा सो बहै जि तखतै लाइक होई।।
जिनी सचु पछणिआ सचु राजे सेई।। (म.3 पृ. 1088)

अब सिक्ख गुरु केवल धार्मिक नेता न रहकर, सत्ताधारी राज्य करने वाले सच्चे पातशाह बन गए। डॉ. हरिराम गुप्ता[10] के अनुसार सिख कौम ने मुगल स्टेट के अंदर अपनी स्टेट कायम करके अपनी राजनीतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। गुरु हरगोबिंद साहिब को मीरी पीरी की दो तलवारें धारण कर गद्दी पर बैठना और तख्त साहिब का निर्माण करना मुगल बादशाह की शक्ति को खुली चुनौती थी। उन्होंने अकाल तख्त की छत्रछाया के नीचे एक स्वचालित सत्ताधारी कौमान्तरी खालसा सल्तनत का ऐलान किया। गुरु हरगोबिंद साहिब और गुरु गोबिंद सिंह ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध लड़कर सिखों को राजनीति की क्रियात्मक शिक्षा प्रदान की।

गुरु साहिबान के द्वारा प्रदत्त यह राजनैतिक शिक्षा क्रियात्मक रूप से लोकतंत्रीय है। गुरुद्वारा में संगत पंगत की स्थापना द्वारा जाति पात, ऊँच नीच, अमीर गरीब के भेदभाव मिटाकर सांझीवालता,भातृत्व भाव और बराबरी का संदेश प्रदान किया जाने लगा। पंच प्रधान बन गए जिनकी महिमा गुरु नानक देव जी ने जपुजी साहिब में गाई है। पंचों के निर्माण के द्वारा समस्याएँ सुलझाई जाने लगी। संगत पंगत, पंचायत लोगों की आवाज बन गई। 'पांचों में नित बरतत मैं हूँ।। पाँच मिलै तो पीरन पीर' गुरुमता लोकराय का साधन बन गया। "पंच परवान पंच परधानु" कहकर लोगों की राय को सम्मानित किया जाने लगा। जत्था, दीवान, दल, पंथ, खालसा की स्थापना होती चली गई। संगत खालसा रूप धारण कर गई। सिख धर्म और राजनीति का अटूट संबंध स्थापित हो गया। गुरु गोबिंद सिंह ने विभिन्न जातियों, धर्मों प्रांतों के पाँच प्यारों का चुनाव कर एक बाटे से अमृतपान करा क्रियात्मक रूप से लोकतंत्रीय चेतना का पाठ पढ़ाया। जनता जनार्दन की शक्ति को पहचाना। डॉ. ए.सी. बनर्जी[11] के अनुसार सिक्ख गुरुओं से बड़ा लोकराजी और कोई नहीं। उन्होंने केवल लोकतंत्र की शिक्षा ही नहीं दी लोकतंत्रीय क्रियात्मक रूप से जी कर दिखाया। डॉ. हरीराम गुप्ता[12] के अनुसार गुरु गोबिंद सिंह ने 90 वर्ष पूर्व स्वतंत्रता, मानव एकता, भ्रातृत्व भाव के सिद्धांतों की घोषणा की जो फ्रांसीसी क्रांति के आधार बने। आर्नोल्ड टायनिबी[13] के अनुसार गुरु जी ने दो शताब्दी पूर्व लोकतंत्र की भावना का विकास किया। इस तरह उन्होंने ढाई शताब्दी पूर्व संयुक्त राष्ट्र के मौलिक मानवीय अधिकारों, स्वाभिमान, आत्मसम्मान और स्त्री पुरुष की बराबरी के द्वारा ऐसे स्वतंत्र वातावरण का सृजन किया जहाँ न्याय और मानवीय आत्मसम्मान की भावना का विकास हो। न्याय, स्वतंत्रता, बराबरी, मातृभाव आदि के सिद्धांत जिन पर गुरु जी ने अपना नया अद्भुत लोकतंत्र स्थापित किया भारतीय संविधान के मुख्य आधार बनें। महर्षि अरविंद के अनुसार खालसे के सृजन ने इतिहास का मुख मोड़ दिया। खालसा सृजन की लोकतंत्रीय संस्था आश्चर्यजनक रूप से नवीन और मौलिक है जो आधुनिक युग में भी युग निर्माण की सार्थकता रखते हैं क्योंकि उनका दृष्टिकोण सार्वभौमिक और संपूर्ण मानवता के कल्याण के लिए है।

९. देशभक्ति राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सद्भावना की शिक्षाः भारत की आधुनिक परिस्थितियों में धार्मिक सद्भावना और राष्ट्रीय एकता समय की मांग है। अनेकता में एकता पैदा करना है राष्ट्रीय एकता का आधार है। भारत में अनेक धर्मों, जातियों और प्रांतों के लोग रहते हैं। इस भिन्नता में अभिनेता उत्पन्न करना हमारी राष्ट्रीयता के लिए परम आवश्यक है। गुरु साहिबान की देशभक्ति, राष्ट्रीय भावना का विकास कर सकते हैं।

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे।।
एक नूर ते जगु उपजिआ कउन भले को मंदे।।
(कबीर पृ. 1349)

कबीर की पंक्तियाँ श्री गुरु ग्रंथ साहिब की शिक्षा का मुख्य आधार है जो मानवतावाद और एकतावाद का संदेश देने वाली प्रचलित धर्मों के संतो, भक्तों की बाणी का सामूहिक, धार्मिक ग्रंथ है। उसकी आधारभूत सच्चाईआं और मूल्यों में हिंदुओं, मुसलमानों व ईसाईयों वेदों, पुराणों, उपनिषदों की सार्वभौमिक सर्वकालिक सच्चाईओं और मूल्यों को देखा जा सकता है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में विभिन्न जातियों, धर्मो, प्रांतों के संतो, भक्तों की बाणी को शामिल करना श्री गुरु अर्जुन देव जी का भारत को भावनात्मक एकता में पिरोने का एक बहुत बड़ा प्रयास था। हरिमंदिर साहिब की नींव एक मुसलमान पीर दरवेश मिया मीर से रखवाना इस तथ्य को प्रकाशित करता है कि वह भारत देश को एक सांझा धार्मिक ग्रंथ, एक सांझा तीर्थ स्थान देकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने का प्रयास कर रहे थे। हरिमंदिर साहिब के चार द्वार इस बात के सूचक हैं कि उनका उपदेश, खत्री, ब्राह्मण, सूद, बैस उपदेसु चहु वरना कउ सांझा है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना, विश्वबंधुत्व "वसुधैव कुटुंबकम" प्रेम और शांति का संदेश देने के लिए गुरु नानक देव जी ने बीस वर्षों के लंबे समय तक देश देशांतरों का रटन किया। सरबत की भलाई की कामना करते हुए बाकी गुरु साहिबान ने भारत के विभिन्न प्रांतों में पारस्परिक सहयोग और सद्भावना का संचार करने के लिए इस भ्रमण प्रणाली को अपनाया।

श्री हरगोबिंद और गुरु गोबिंद सिंह की सेना में हिंदू-मुसलमान दोनों जातियों के सैनिक थे। भाई कन्हैया का बिना भेदभाव मुसलमान घायल सिपाहियों को पानी पिलाना धार्मिक सद्भावना का प्रतीक है। सांस्कृतिक एकता राष्ट्रीय जागरण और भावनात्मक एकता को सुदृढ़ करने के लिए गुरु गोबिंद सिंह ने अपने दरबारी कवियों के सहयोग के द्वारा भारत के पौराणिक, धार्मिक राज्यों का पुनर्सृजन किया। भाषाई भेदभाव के ऊपर उठकर हिंदी, पंजाबी, फारसी में साहित्य रचना की। संस्कृत के पठन-पाठन को प्रोत्साहन दिया।

गुरु साहिबान एक देशभक्त कौम का निर्माण करना चाहते थे इसके लिए उन्होंने ढाई सौ वर्ष तक अथक प्रयास किया था कि वह परतंत्रता की जंजीरों में जकड़े भारत को स्वतंत्र करा सके। इस देशभक्ति की भावना का जन्म हो जाता है गुरु नानक देव जी की उस करुण पुकार से जो उन्होंने बाबर द्वारा निशस्त्र भारतवासियों की

खून की होली खेली जाती देखकर की।

जै जीवै पति लथी जाइ।। सभु हरामु जेता किछु खाइ।।

(म.1 पृ. 142)

आत्म-सम्मान गँवा कर जीना भी कोई जीना है। आओं मुगलों के चंगुल से देश को स्वतंत्र कराने के लिए अपने आपको न्योछावर कर दो। 'सिरू धरि तली गली मेरी आउ', (पृ. 1412) 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा' सुभाष चंद्र बोस के इस कथन का बीज गुरु नानक देव जी के इस कथन में विद्यमान है। गुरु अर्जुन देव जी और गुरु तेगबहादुर ने अपनी शहीदियों द्वारा इस स्वतंत्रता के पौधें को सींचा और गुरु हरगोबिंद साहिब और गुरु गोबिंद सिंह ने एक वीर कौम के निर्माण द्वारा भारत की परतंत्रता की बेड़ियों को काटने में भरपूर सहयोग दिया। तभी तो पंडित मदन मोहन मालवीय कहते हैं कि भारत यदि ताकतवर बनना चाहता है उन्नति करना चाहता है तो प्रत्येक हिंदू को अपना बड़ा लड़का सिक्ख बनाना चाहिए। (सिक्ख रीवियु, फरवरी 2002 पृ. 37)

इस लेखिका की अनेक विद्वानों, साहित्यकारों, अध्यापकों, विद्यार्थियों, सैनिक, अफसरों, डॉक्टरों, उच्च अधिकारियों और साधारण लोग से बातचीत हुई कि आज के वैज्ञानिक युग में श्री गुरु ग्रंथ साहिब की शिक्षा का उनके जीवन पर कितना प्रभाव है। उनका कहना था कि वे सचेत अचेत रुप से श्री गुरु साहिब और गुरु साहिबान की शिक्षा से जुड़े हुए हैं। आज भी गुरु साहिबान की बाणी की अनेक उक्तियाँ कहावतों का रूप धारण कर उनका प्रदर्शन करती हैं। उनके व्यक्तित्व के निर्माण और जीवन को संवारने में गुरु साहिबान की शिक्षा का गहरा प्रभाव है। उनकी शिक्षा उन्हें कड़ा परिश्रम करना सिखाती है। 'आपण हथी आपणा आपे ही काजु सवारीऐ' (पृ. 474) और साथ ही 'हंसदिआ खेलदिआ पैनंदिआ खावंदिआ' (पृ. 522) की शिक्षा देकर जीवन का आनंद उठाना सिखाती है। केवल अपने लिए ही जीवन नहीं सिखाती (पृ. 356) द्वारा मानवता की सेवा भी सिखाती है। 'शुभ करमन से कबहूँ न डरो' द्वारा नैतिक निर्माण की शिक्षा देती है। आत्मसम्मान की रक्षा करना सिखाती है। 'जै जीवे पति लथि जाइ। सभु हरामु जेता किछु खाइ' दु:ख के समय भी प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करने की शिक्षा देती है। 'तेरा कीआ मीठा लागै' पंजाबी संसार के किसी कोने में हो गुरु साहिबान की शिक्षा द्वारा अपने आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक धरोहर से जुड़े हुए हैं। जहाँ भी वे जाते हैं गुरुद्वारे स्थापित हो जाते हैं। कथा, कीर्तन,लंगर का प्रवाह चल पड़ता है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी तो सचमुच आत्मा का संगीत है, कर्म का स्रोत है, ज्ञान का भंडार है, ज्योति स्तंभ है, प्रकाश पुंज है, प्रेरणा स्रोत है जो सदैव जीवन को और आलोकित करती हुई जीवन जीने की कला सिखाती रहेगी। यहाँ तक कि आधुनिक युग में विवेकानंद और महर्षि टैगोर जैसे महानुभाव की इसकी शिक्षा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकें। महर्षि टैगोर के जीवन पर गुरु साहिबान की शिक्षा का प्रभाव हम उनके शब्दों में इस प्रकार कर सकते हैं सुंदर, आकर्षक, स्वस्थ पंजाबी दूर से ही पहचाना जाता है। यह गुरु साहिब की शिक्षा का प्रभाव है कि निर्भय, निर्वैर स्वभाव के कारण गर्व से सिर ऊँचा कर सम्मान पूर्वक जीवन यापन करता है। उसका चरित्र और मुख मंडल उदारता और ज्ञान से चमकता रहता है। अमलेंदु बोस[14] अपने लेख टैगोर और सिक्ख के अनुसार महर्षि टैगोर अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि उनके पिताजी प्रतिवर्ष सच्चाई और शांति की खोज में श्री अमृतसर स्वर्ण मंदिर जाते रहते थे। बालक टैगोर भी उनके साथ जाते थे। बालक टैगोर के मन में गुरबाणी गायन का ऐसा स्थायी और अमिट प्रभाव पड़ा जो संपूर्ण आयु बना रहा। वह जपुजी साहिब की कुछ 'पऊड़ियों' का पाठ निरंतर करते रहें। उन्होंने गुरु नानक, गुरु गोबिंद सिंह और सिक्ख वीरों के बारे में बच्चों के लिए सरल भाषा में निबंध लिखे जिनका बंगाली जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप कई प्रसिद्ध बंगाली लेखकों ने गुरु साहिबान के बारे में पुस्तकें लिखी। टैगोर ने जपुजी साहिब की कुछ 'पऊड़ियों' का बंगाली में अनुवाद किया जिन्हें आज भी बंगाली समाज में गाया जाता है। कथाओं, कहानी में सम्मिलित गुरु गोबिंद सिंह, बंदा सिंह बहादुर, तारु सिंह की कहानियों का ब्रह्म समाज पर विशेष प्रभाव पड़ा। बंदा वीर की कहानी तो अपने भावुकता के आवेश में मन को बहाकर ले जाती है। इसमें मन को झकझोरने की शक्ति है। ब्रह्म समाज के क्रांतिकारी वीरों के द्वारा गुरु गोबिंद सिंह और बंदी वीर की कहानी बड़े जोश के साथ गाई जाती है। टैगोर के मन पर गुरु गोबिंद सिंह और बंदा बहादुर के सैनिक स्वरूप का विशेष प्रभाव पड़ा। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु साहिबान के शैक्षिक विचारों की सार्थकता आधुनिक युग में भी है और सदैव रहेगी क्योंकि उनकी शिक्षा प्रणाली सार्वभौमिक, सार्वकालिक मूल्यों पर आधारित हैं जो कभी पुराने नहीं होते।

'उत्तम सलोक साध के वचन' 'अमुलीक लाल एही रतन'

'सुनत कमावत होत उधार' 'आपि तरै लोकह निसतार'

(म.5 पृ. 295)

संदर्भ सूची

1. अर्नाल्ड टायनबी-द सिलेक्शन फ्रॉम द सेकरड राइटिंगज ऑफ द सिक्खस-यूनेस्को 1960 पृ. 9-11
2. एच.एल.ब्राडशा-गुरबख्श सिंह-यूनिवर्सल मैसेज,रीचारडसन 1991 पृ. 8
3. डोरोथी फील्ड रिलीजन ऑफ द सिक्खस लंदन 1914 पृ. 9
4. डॉ. डोनाल्ड जी दवे-गुरु नानक कोमेमोरेटिव वॉल्यूम संपादक डॉ. गुरबचन सिंह सालवी पटियाली यूनिवर्सिटी पटियाला 1969 पृ. 113 114
5. रिपोर्ट ऑफ द सेकेंडरी एजुकेशन कमिशन मुदालियर 23-15
6. आर.आर.रश्क द यूनिट ऑफ ग्रेट एजुकेशनिसटस न्यूयॉर्क 1969 पृ. 271
7. गुरु विलास पादशाही छेवी-अध्याय आठवाँ
8. गोकुल चंद नारंग, ट्रांसफॉरमेशन ऑफ सिक्खइजम पृ. 84
9. सुखवंत सिंह दा सिक्खस-अंग्रेजी ट्रिब्यून 1 जुलाई 2001
10. डॉ. हरिराम गुप्ता, हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस भाग 1 पृ. 134
11. ए.सी. बनर्जी, हिस्ट्री ऑफ द सेक्स भाग पहला पृ. 282
12. हरिराम गुप्ता, हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस भाग पहला पृ. 282
13. अर्नाल्ड टायनबी,ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री पृ. 748
14. अमलेंदु बोस, टैगोर एंड द सिक्ख, संपादक गुरबचन सिंह तालिब गुरु नानक कोमेमोरेटिव वॉल्यूम पृ. 200

(सिख गुरुओं का शैक्षणिक योगदान-डॉ. अमृत कौर रैना-पुस्तक से साभार)

गुरु नानकदेव जी की विश्वव्यापी यात्राएँ

डॉ. हरबंस कौर सागू

यात्राओं का उद्देश्य:-

गुरु नानकदेव जी की बाणी को पढ़ने और उनके जीवन के विवरण को पढ़ने और समझने के बाद, एक बात स्पष्ट हो जाती है कि जीवन भर उनका दृष्टिकोण मानवतावादी और आत्मपरक रहा है। बचपन में जब वे पढ़ रहे थे, जब वे सामाजिक रीति-रिवाजों और कर्मकांडों का पालन कर रहे थे, जब वे वैद्य को बीमारी दिखा रहे थे, जब वे काम कर रहे थे, उन्होंने किसी भी देहधारी व्यक्ति को सर्वशक्तिमान नहीं माना, और न ही उन्होंने हिंदू या मुस्लिम के अलगाव पर विचार किया। उनके लिए पंडित-मुल्ला, मंदिर-मस्जिद और आरती-नमाज एक समान ही थे। यह सर्वव्यापी, व्यक्ति-व्यवहार ही था जिसने हर जगह गुरु नानकदेव जी के मान-सम्मान को बढ़ाया। गुरु नानक देव जी की मानसिक स्थिति में परिवार और अन्य सांसारिक जिम्मेदारियों के साथ-साथ दुनिया की मानवता को भ्रम और पाप से मुक्त करना, सांसारिक रहस्यों को ठीक करना एक महान दायित्व था। अपनी विश्व यात्रा से पहले, वह जागरूकता लाने के लिए तलवंडी और सुल्तानपुर के आसपास के क्षेत्रों में उपदेश देते रहे थे, लेकिन वे हमेशा मानवीय सिद्धांतों पर अपनी शिक्षाओं के दायरे का विस्तार करने के तरीकों के बारे में सोचते थे। वे किसी विशेष जनजाति, किसी विशेष शहर या किसी विशेष प्रांत से उधार लेने नहीं आए थे। उसकी नजर सारी दुनिया, सारी कौमों और सारे देश पर पड़ी। उन्होंने हर तरफ से शोक, पीड़ा और संकट की आवाजें सुनीं। तृष्णाओं में सारा संसार जलता हुआ प्रतीत होता था, इसीलिए सारा संसार उनके मिशन का कार्यक्षेत्र बन गया।

'बाबा देखे धियान धर जलती सभ पृथ्वी दिस आई.'[1]

गुरु नानक के भगवान एक थे और सभी के लिए सांझे थे, वह अकाल पुरख किसी एक देश या जाति के नहीं बल्कि पूरी मानवता के थे। उनके लिए सभी मनुष्य समान थे, पाँच तत्वों से बने, सभी मनुष्यों का अस्तित्व उसी निरंकार के आत्मज्ञान के कारण है। इसलिए उन्होंने इन शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए घर, परिवार, बच्चों, पत्नी, माता-पिता, भाई-बहनों को कुछ समय के लिए छोड़ने का फैसला किया। जहाँ उन्होंने तलवंडी की जमीन को 32 साल तक निहाल किया, वहीं सुल्तानपुर में करीब साढ़े चार साल काम करके दौलतखान लोधी जैसे और अन्य को भी राजी किया। भाई गुरदास जी के अनुसार 'चढया सोधन धरत लुकाई'[2], क्योंकि उन्होंने हर जगह असत्य का राज्य देखा और सच्चे धर्म और शर्म की कीमतें उड़ती देखीं।

परन्तु आप प्रबल अराजकता के स्थान पर, सच्चे धर्म और लज्जा के दैवीय मूल्यों को प्रधान बनाना चाहते थे। दैवीय मूल्यों की सर्वोच्चता को स्थिर और सुरक्षित रखने के लिए परस्पर सौहार्द भी जरूरी था। इसलिए, गुरु नानक के शब्द 'न हिंदू और न ही मुसलमान" सुल्तानपुर के लोगों को बहुत अजीब और आश्चर्यजनक लगे। यद्यपि इस भाषण में प्रेम और आग्रह था, सदियों से लुप्त हो चुकी साझी संस्कृति को पुर्नजीवित करने का सपना था, हिन्दू-मुसलमानों को मानवता और आत्म-स्तर पर एक साथ आने की प्रेरणा भी थी, लेकिन इस क्रांतिकारी आवाज को कौन सुनता? यदि वह मुल्ला सुनेगा, तो उसकी शरीयत और प्रभाव क्षमता नष्ट हो जाती, यदि वह ब्राह्मण बात सुनेगा, तो उसके पाप और पाखंड का पर्दाफाश हो जाएगा और यदि वह योगी बात सुनेगा, तो उसकी मांग कर खाने की इच्छा समाप्त हो जाएगी और उसका चमत्कारी प्रभाव खत्म हो जाता। समकालीन धार्मिक नेताओं में से कोई भी सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ाने की हिम्मत नहीं रखता था।

कादी कूड बोलि मल खाई.।
ब्राह्मण नावै जीआ घाई.।
जोगी जुगत णा जाणे अंध।।
तीने उजाड़े का बंध।[3]

सद्भाव की बात सुनने को कोई तैयार नहीं था। यही कारण है कि सभी हिंदुओं और मुसलमानों को गुरु नानक देव जी का यह नारा किसी राक्षसी या मानसिक झुकाव का प्रतीक लगा। इसलिए किसी ने आपके बारे में कुछ कहा तो किसी ने कुछ। आपने सभी अक्षम शब्दों को सुना और कहा:

कोई आखे भूतना को कहे बेताला।
कोई आखे आदमी नानक वेचारा।
भएया दीवाना साहा का नानक बौराना।
हऊ हरि बिनु अवर ना जाना।[4]

गुरु नानक देव जी को हिंदुओं और मुसलमानों का धार्मिक भेदभाव बिल्कुल पसंद नहीं था। वे पक्षपात और अलगाव को सिरे से खारिज करते हुए उसकी भर्त्सना करते थे। अपनी बाणी में उन्होंने मनुष्यों का आपसी मेलजोल और आत्मा और ईश्वर के मिलन पर जोर दिया। इसके अलावा, उनकी बाणी मानवतावादी व्यक्तित्व के चरित्र का वर्णन करने पर जोर देती है। ये सभी दैवी गुण एक सिद्ध और सच्चे व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। वास्तव में गुरु नानक देव जी ने एक सच्चे व्यक्तित्व के निर्माण के लिए ही अपनी विश्व यात्रा शुरू की थी।

उन्होंने पहली बार संसार-भ्रमण का विचार अपने पिता मेहता कालू के साथ तब साझा किया जब वह केवल 20 वर्ष के थे। जब

उन्होंने अपने पिता से तीर्थ यात्रा पर जाने की अनुमति मांगी तो मेहता जी ने कहा कि आपकी अभी-अभी शादी हुई है, तीर्थयात्रा पर जाने के लिए बहुत उम्र पड़ी है[5], यह बात सुन कर गुरु जी चुप हो गए क्योंकि अभी भाई मरदाना भी साथ चलने के लिए तैयार नहीं था क्योंकि उसने अपनी जवान बेटी के विवाह की बात की और कहा कि वह इससे पहले कहीं नहीं जा सकते। गुरु जी ने इस इच्छा को थोड़ा आगे बढ़ा दिया और सही समय की प्रतीक्षा करने लगे।

एक बार मेहता कालू ने भाई मरदाने को गुरु नानक जी का पता खोजने के लिए सुल्तानपुर भेजा और मरदाने ने अपनी बेटी की शादी के लिए मदद मांगी तब गुरु जी ने भाई भागीरथ को कह कर लाहौर के भाई मनसुख से वह सब वस्तुएँ मंगवा दी जिनकी मरदाने को जरुरत थी। मरदाना शादी का सामान लेकर तलवंडी आया और अपनी बेटी की शादी के बाद सुल्तानपुर गुरु साहिब के पास लौट आया।

वई नदी में प्रवेश की घटना के बाद गुरु जी ने मोदीखाना की नौकरी छोड़ दी और कोषागार से प्राप्त सारा धन गरीबों में बाँट दिया और विश्व भ्रमण के लिए पूरी तरह से तैयार हो गए, और भाई मरदाना को भाई फरिंदे के पास से रबाब भी ले कर दी। रबाब खरीदने के लिए पैसा बेबे नानकी जी ने दिया था। उन्होंने माता सुलखनी जी और श्री लखमी चंद को मायके भेज दिया और कहा कि वे जब चाहें तलवंडी और सुल्तानपुर जा सकते हैं। माता जी ज्यादातर तलवंडी में ही रही थीं (अपने ससुराल, पति के घर) श्री चंद जी की देखभाल बेबे नानकी जी ने की थी।

गुरु नानक देव जी की उदासियों (यात्राओं) का उद्देश्य पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों को परिष्कृत और प्रबुद्ध करना था। यह उद्देश्य अपने आप में बहुत ही रचनात्मक और महत्त्वपूर्ण था। साथ ही मानवता के लिए भी फायदेमंद था। इसलिए, गुरु नानक ने जो उदासी की रीत चलायी, उस उद्देश्य के लिए बड़े साहस के साथ, उन्होंने पहले पूरे पंजाब में, फिर भारत में और फिर भारत के बाहर प्रचार किया। यद्यपि मध्य युग में किसी भारतीय का भारत से बाहर जाना एक क्रांतिकारी घटना माना जाता था, गुरु नानकदेव जी ने ऐसा करने में संकोच नहीं किया। उन्होंने बड़े साहस और निडरता के साथ हर जगह उदासी के नारे लगाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भले ही उन्हें अपने सांसारिक वस्त्र उतारकर उदासी-भेष धारण करने पड़े। उन्हें उदासी के पहनावे में देखकर उनके पिता और परिवार को कुछ दु:ख हुआ होगा लेकिन उद्देश्य इतना महान और रचनात्मक था कि पिता परिवार और उनके अपने परिवार ने अंतत: गुरु नानक को इस उद्देश्य की सफलता के लिए आशीर्वाद और प्रोत्साहन के साथ आशीर्वाद दिया होगा।

सैयदपुर (सैदपुर):

ऐसा लगता है कि लंबी यात्रा गुरु नानक देव जी ने सैदपुर से शुरू की थी, जिसे अब एमिनाबाद कहा जाता है। बढ़ई भाई लालो यहीं रहते थे। गुरु जी भाई लालो के साथ रहे और भाई मरदाना तलवंडी अपने परिवार से मिलने गए।

यहाँ रहते हुए गुरु जी प्रात:काल घर से निकल जाते थे और अपने शरीर को लंबी यात्रा के लिए तैयार करने के लिए घोर तपस्या करने लगे। जहाँ उन्होंने रोड़ियाँ बिछाकर तपस्या की थी, वहाँ गुरुद्वारा रोड़ी साहिब स्थापित है। यह जगह पाकिस्तान में है।

यहीं रहते हुए उसकी मुलाकात सैयदपुर के जागीरदार मलिक भागो से हुई। वह लोगों पर बहुत जुल्म करता था और लोग इससे बहुत परेशान थे। उसने ब्रह्मभोज का आयोजन किया था और गुरु जी को भी आमंत्रित किया गया, लेकिन वे ब्रह्मभोज के लिए नहीं गए और जब बुलाने पर गुरु जी भाई लालो के साथ मलिक भागो के पास गए और उसने पूछा कि वह ब्रह्मभोज में क्यों नहीं आए, इसका उत्तर देते हुए गुरु जी ने कहा कि हम आपके व्यंजनों में गरीबों का खून देखते हैं और जब पूछा गया कि वे निचली जाति के लालो के घर में क्यों रहते हैं तो आपका जवाब था कि भाई लालो जिसे आप शुद्र कहते हैं, हम उसकी रोटी पर विश्वास करते हैं, क्योंकि वह दस उँगलियों से अर्थात् कड़ी मेहनत से काम करता है। कुछ दिनों बाद जब मरदाना तलवंडी से लौटे तो गुरु नानक ने भाई लालो से अनुमति ली और आगे बढ़े।

पाकपट्टन :

उस समय सैयदपुर (सैदपुर) से पाकपट्टन तक का मार्ग सैदपुर से लाहौर और लाहौर से मुलतान तक सड़क के माध्यम से था और रावी नदी पर नाव द्वारा पहुँचा जा सकता था। तुलम्बा शहर रावी के दोनों किनारों पर आता था। इसका वर्तमान नाम मखदुमपुर है। कस्बे के बाहर सज्जन नाम के एक ठग ने एक सराए बनायी हुई थी और उसमें एक ठाकुरद्वारा (मन्दिर) और एक मस्जिद बनायी हुई थी। बाहर, हिंदुओं और मुसलमानों द्वारा पीने के लिए पानी के अलग-अलग घड़े रखे गए थे। जब गुरु जी मरदाने सहित इस स्थान पर पहुँचे तो सज्जन ने रात को रोटी खिलायी और सभी प्रकार की सेवा की और अनुरोध किया कि वह थक गए हैं और कुछ रात आराम करने के लिए कहा। गुरु जी उसके इरादे जान गए और मरदाने को रबाब बजाने के लिए कहा और उन्होंने निम्नांकित शब्द का गायन किया :

ऊजल कैहा चिलकना घोटिम कालड़ी मसु।।
धोतिया जूठी न उतरै जे सऊ धोवा तिस।।[6]

वह सज्जन सोचने लगे कि इस शब्द में वर्णित ये सभी अवगुण मुझमें मौजूद हैं। तब उसकी समझ में आया कि यह फकीर दिल को जानने वाला है।[7] वह गुरु जी के पैर पकड़ कर बहुत रोया और अपनी भूल को क्षमा करने की प्रार्थना करने लगा, और आगे से सचमुच का सज्जन बन कर लोगों की सेवा के लिए अपना सबकुछ अर्पित कर दिया। उसने अपनी धर्मशाला को सच्चा धर्मसाल बना लिया और आने वालों की सेवा करने लगा। रात में गुरु जी और मरदाना ने उसके यहाँ विश्राम किया, सज्जन ठग को सज्जन बना दिया और आगे बढ़ गए।

पाकपट्टन में शेख इब्राहिम के साथ मेल:

गुरु नानक साहिब तुलम्ब से हड़प्पा आए और फिर शोरकोट से डेरा इस्माइल खान और पाकपट्टम पहुँचे। शहर के बाहर डेरा डालने के बाद, उन्होंने मरदाने को रबाब बजाने के लिए कहा और निम्नलिखित श्लोक का कीर्तन शुरू कर दिया। वर्तमान में शेख ब्रह्म,

जिनका पूरा नाम शेख इब्राहिम था, शेख फरीद जी के सिंहासन पर विराजमान हैं, लेकिन जन्म-साखियों में यह नाम केवल शेख ब्रह्म के लिए लिखा गया है। शेख ब्रह्म का एक अनुयायी जिसका नाम शेख कमाल था, लंगर के लिए लकड़ी इकट्ठा कर रहा था। जब उसने देखा कि दो फकीर कीर्तन कर रहे हैं, तो वह आया और वहीं बैठ गया, जब उसने इस श्लोक का कीर्तन सुना।

'आपे पट्टी कलम आपि उपरि लेखु भी तूं।।
इको कहै नानका दूजा कहे कू।।[8]

शेख कमाल बहुत प्रभावित हुए और खानगाह में जा कर अपने सिर से लकड़ियाँ उतारी और शेख इब्राहिम से कहा कि कोई दो फकीर आए थे जो ईश्वरीय-एकता के गीत गा रहे थे। इब्राहिम ने कमाल से पूछा, "ये फकीर हिंदू हैं या मुसलमान?" तब कमाल ने कहा कि हिंदू हैं। इब्राहिम को आश्चर्य हुआ कि क्या कोई हिंदू ईश्वर की एकता में इतना विश्वास कर सकता है। अगले दिन इब्राहिम भी कमाल के साथ आए और गुरु जी और मरदाने को अपने साथ खानगाह ले गए और गुरु जी से पूछा कि वे हिंदू हैं या मुसलमान ? तो गुरु नानक देव जी ने कहा कि मैं पाँच तत्वों की मूर्ति हूँ और ये पाँच तत्व हिंदू-मुसलमान में एक ही हैं और दोनों मनुष्य ही हैं। हिंदुओं और मुसलमानों के लिए भगवान की पूजा करने के दो तरीके हैं, लेकिन उन दोनों का लक्ष्य एक ही है। शेख इब्राहिम गुरु जी से बहुत प्रभावित हुए और शेख ने निम्नलिखित शब्द कहे और उनसे उनका आंतरिक अर्थ समझाने को कहा।

बेड़ा बन्धि न सकियुं बंधन की बेला।
भरि सरवर जब ऊछलै तब तरण-दुहेला।
हथ न लाई कोंसुभ्ड़े जलि जासी ढोला।
इक आपिनै-पतली शह केरे बोला।
दुधा थणी न आवई फिरि होई न मेला।
कहै फरीद सुहेलिहो सहु अलाएसी।
हंस चलसी डुमणा अहि तनु ढेरी थीसी।[9]

इस शब्द की व्याख्या गुरमत दृष्टिकोण से गुरु नानक देव जी ने अपने इस श्लोक द्वारा की।

जप तप का बंध बेधाला जितु लंघाहि वहेला।
ना सरवर ना ऊछ्ले ऐसा पन्थ सुहेला।
तेरा इको नाक मंजीठडा रता मेरा चोला
सद रंग ढोला।[10]

शेख इब्राहिम गुरु से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गुरु को कई दिनों तक खानगाह में रखा और सेवा की। गुरु जी के अनुरोध पर, उन्होंने फरीद जी की सारी बाणी दे दी, जो गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित है। गुरु नानक देव जी ने भी बड़ी विनम्रता से उस बाणी का सत्कार किया। जन्मसाखी भाई बाला के संदर्भ में डॉ. त्रिलोचन सिंह जी लिखते हैं कि, शेख इब्राहिम के अनुरोध पर, 'आसा की वार' की पौडिओं की रचना पाकपट्टन में की गई और गुरु अर्जन देव जी ने गुरु ग्रंथ साहिब जी का संपादन करते समय इन पौडियों के साथश्लोक भी शामिल कर लिए। जन्मसाखी भाई मणि सिंह के संदर्भ से, डॉ. त्रिलोचन सिंह जी लिखते हैं कि गुरु ग्रंथ साहिब का संपादन करते समय शेख इब्राहिम के डेरे की एक हस्तलिखित प्रति भी गुरु अर्जन देव जी द्वारा मंगवायी गई थी।[11] कुछ दिन यहाँ रह कर गुरु नानकदेव जी पूर्व की ओर यात्रा को चल दिए।

कुरुक्षेत्रः

पाकपट्टन से गुरु साहिब सतलुज नदी पार कर सरसा जाने वाले रास्ते पर निकल पड़े। गुरु नानक की याद में यहाँ एक पुराना गुरुद्वारा भी है। यहाँ से थानेसर जाते हुए गुरु जी भाई मरदाने के साथ करा और पहोवे होते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचे। करा तहसील कैथल (जिला करनाल) पहोवे से सात मील पश्चिम में है। यहाँ राजा उदय सिंह ने गुरु जी की याद में एक गुरुद्वारा बनवाया था। पहोवा एक हिंदू तीर्थ है। सरस्वती नदी पहले यहीं से होकर गुजरती थी। कहा जाता है कि महाभारत के युद्ध के बाद पाडव भाइयों ने यहाँ आकर शुद्धि करवायी थी। यहाँ भी राजा उदय सिंह ने गुरु नानकदेव जी की स्मृति में एक गुरुद्वारा बनवाया था। यहाँ जो कुआं है वह गुरु नानक साहिब के समय का बताया जाता है, और बाद में गुरु हरगोबिन्द जी ने बऊली बनवायी थी।

कुरुक्षेत्र में कौरवों और पांडवों के बीच महान युद्ध हुआ था। जब गुरु नानक साहिब यहाँ पहुँचे तो सूर्यग्रहण लगा हुआ था। महाराजा रणजीत सिंह ने जिस स्थान पर वे बैठे थे, उस स्थान पर एक गुरुद्वारा बनवाया था। यह गुरुद्वारा कुरुक्षेत्र तलाब के करीब है। गुरुद्वारा साहिब में एक कुआं छोटी ईंटों से बना है और इसलिए यह काफी पुराना प्रतीत होता है और इसका नाम गुरुद्वारा सिद्धबटी है।

यहीं पर एक राजकुमार और उसकी मां गुरु जी के पास पहुँचे थे। भाई मनी सिंह की जन्मसाखी में इसे पटना के राजा के रूप में लिखा गया है। डॉ.कृपाल सिंह का मानना है कि यह राजा पटियाला के पास पटनपिंड से आया होगा। डॉ.त्रिलोचन सिंह 'त्वारीख गुरु खालसा' की गवाही देते हैं कि जगत राय, हांसी राज्य के राजा अमृत राय के पुत्र थे। इसने गुरु जी से आशीर्वाद माँगा कि इसे अपनी खोयी हुई रियासत का राज मिल जाए। गुरु साहिब ने कहा कि अगर वह संतों और गरीबों के लिए लंगर लगाते हैं तो भगवान उस पर दया करेंगे। लेकिन राजकुमार ने कहा कि उनके पास शिकार किए गए हिरण के अलावा कुछ नहीं है, इसलिए गुरु साहिब ने हिरण का मांस पकाने का फैसला किया। जब ऐसा किया गया तो धुंआ निकलता देख सारे पंडे खेत की ओर दौड़ पड़े और इस बात पर झगड़ने लगे कि ग्रहण के दौरान यहाँ मांस क्यों पकाया जा रहा है। गुरु ने बहुत शांति से समझाया कि ग्रहण में लड़ाई-झगड़ा ठीक नहीं है। इन सब में से नानू पंडित बहुत तेज था और खुद को बहुत चालाक समझते था। इस पूरी बहस का सार गुरु साहिब ने अपने शब्दों में दिया है।

पहिला मसहु निमिया मासै अंदरि वासु।
जीऊ पाई मासु मुहि मिलिया हड चमु तन मासु।[13]
और
मास मास करि मूरख झगड़े गियान धियान नही जाने।
कौउन मासु कौउन साग कहावै किसु महि पाप समाने।[14]

जब उन्होंने गुरु जी से इन शब्दों का अर्थ समझा, तो नानू पंडित और उनके अन्य साथी गुरु जी से बहुत प्रभावित हुए और उनके अनुयायी बन गए।

हरिद्वार:

कुरुक्षेत्र से, गुरु साहिब ने वर्तमान पिपली मार्ग से जमुना को पार किया और गंगा के तट पर पहुँचे, जिसे हरिद्वार के नाम से जाना जाता है। गुरु साहिब जाकर हर की पौड़ी से करीब डेढ़ मील दूर बैठ गए। वह जिस स्थान पर ठहरे थे, उसे 'नानकवाड़ा' कहा जाता है। पहले यहाँ एक पुराना ईट का बना गुरुद्वारा हुआ कर्ता था, जो आजकल दिखाई नहीं देता है। आप यहाँ बैसाखी के पर्व पर हरिद्वार पहुँचे थे। तीर्थयात्री गंगा में खड़े होकर पूर्व की ओर मुंह करके सूर्य को जल दे रहे थे। आप गंगा में खड़ा हो कर और पश्चिम की ओर जल देने लगे। जब कुछ लोगों ने आपसे पूछा कि आप पश्चिम की ओर पानी क्यों दे रहे हैं? तो गुरुजी ने पूछा कि तुम पूरब को पानी क्यों देते हो? "हम अपने पितरों को पानी दे रहे हैं," उन्होंने कहा। जब गुरु ने पूछा कि पूर्वज कहाँ थे तो उन्होंने कहा कि देवलोक में 49 करोड़ कोस पर है। यह सुनकर गुरु जी ने कहा कि लाहौर के पास मेरे खेत हैं और मैं अपने खेत में पानी दे रहा हूँ ताकि खेत सूख न जाए। सब हँसने लगे और कहने लगे कि लाहौर कहाँ है और हरिद्वार कहाँ है। गुरु जी कहने लगे कि अगर आपका दिया हुआ पानी करोड़ों कोस तक पहुँच सकता है तो लाहौर तो यहाँ से 200-250 मील की दूरी पर ही है; तो वहाँ पानी क्यों नहीं पहुँच सकता? तीर्थयात्रियों ने पूरी बात समझ ली और बहुत शर्मिंदा हुए और फोकट कर्मों के बारे में समझ गए और गुरु जी से क्षमा मांगी। गुरु साहिब ने उपदेश दिया कि इन फोकट के कार्यों में कोई फायदा नहीं है, पितरों को वही मिलता है जो उन्होंने अपने जीवन में दान-पुन्य किया है। वे सभी गुरु जी के चरणों में गिर पड़े और उनके शिष्य बन गए। गुरु जी कुछ समय के लिए हरिद्वार में रुके और फिर चले गए।

नानकमत्ते :

गुरु नानक देव जी हरिद्वार से कनखल और फिर पहाड़ी रास्ते से कोट-दुवार तक पहुँचे। 'चरणपादुका' नामक गुरु की स्मृति में एक पुराना गुरुद्वारा है। कोट दुआर से वह खुद पहाड़ी रास्ते से सीधे श्रीनगर (पौढ़ी) और फिर यहाँ से गुरु साहिब बद्री नाथ और केदारनाथ गए। केदारनाथ से वर्तमान जोशीमठ रोड होते हुए अंतधुर दर्रे से लेपुलेख के पास पहुँचे। लेपुलेख से गुरु साहिब शारदा नदी के किनारे अल्मोड़ा पहुँचे। अल्मोड़ा से एक पहाड़ी सड़क पर, दक्षिण की ओर हल्द्वानी, मंडी और लगभग 33 मील पूर्व में दुर्गा पीपल के माध्यम से एक जंगल में जिसे जोगियों का स्थान कहा जाता है; वहाँ गुरु जी पहुँच गए। गुरु जी जिस स्थान पर बैठे थे वह अल्मोड़ा से लगभग 25-30 मील पूर्व में है। इस जगह को अब 'रीठा साहिब' कहा जाता है और यहाँ गुरु जी की याद में गुरुद्वारा साहिब भी बनाया गया है।

16वीं शताब्दी के प्रारंभ तक पूरा क्षेत्र योगियों के मठों से भर गया था। उस समय पंजाब के उत्तरी भाग में कनफटे जोगियों का प्रबल जमाव था, जो सभी गोरख नाथ के अनुयायी थे। अल्मोड़ा के आस-पास यह मठ बना कर रहते थे।

जब गुरु जी इस स्थान पर पहुँचे तो मरदाना जी को बहुत भूख लगी और जब उसने योगियों से कुछ खाने के लिए कहा तो उन्होंने मना कर दिया। गुरु साहिब ने मरदाने को कहा कि हम जिस पेड़ के नीचे बैठे हैं, वह उस पेड़ का फल खा ले। मरदाना उस पेड़ पर चढ़ गया और लगा रीठे खाने, जो कडवे होने के बजाय मीठे थे। मरदाने ने पेट भरकर खाए और उस स्थान का नाम भी 'रीठा साहिब' पड़ गया और लोग बड़ी श्रद्धा के साथ रीठा का प्रसाद लेने और दर्शन करने के लिए दूर-दूर से यहाँ आते हैं।

गोरख मत्ता या सिद्ध मत्ता, रीठा साहिब से लगभग 70 कि.मी. दूर है। यहाँ से गुरु साहिब सिद्ध मत्ते पहुँचे और एक पीपल के नीचे बैठ गए। यहाँ बैठकर गुरु साहिब ने मरदाने को धूणी जलाने को कहा।

मरदाना लकड़ी इकट्ठा करके जोगियों के पास आग लेने गया, लेकिन उन्होंने आग देने से इनकार कर दिया; पर किसी तरह मरदाना आग लाने में सफल हो गया और उसने धूणी जलायी। कहते हैं कि उस रात बहुत बारिश और आंधी-तूफान आया। सारी धूनियाँ बुझ गई और सिर्फ गुरु नानक देव जी की धूणी ही जलती रही। सुबह उठकर जब पानी की जरूरत पड़ी तो मरदाना पानी मांगने गया और जोगियों ने फिर मना कर दिया। गुरु नानकदेव जी मरदाने को उत्तर की तरफ जाने के लिए कहा। मरदाना दो या तीन फर्लांग पर गया और एक नदी से पानी लाया। (एक कहावत के अनुसार गुरु नानक साहिब ने अपनी आत्मिक शक्ति से मर्दाने को एक फोड़ी दे कर, यह नदी पहाड़ों से मंगवायी थी; इसलिए इसका नाम फोड़ी गंगा है।) यह पूरी नदी अब दीउहा बांध में आ गई है। स्थानीय सिखों के आग्रह पर, उत्तर प्रदेश सरकार ने फोड़ी गंगा के कुछ झरनों को एक कुएँ में बदल दिया है और इसकी दीवारों को एक पुल के माध्यम से बांध से जोड़ दिया है। कुएँ के दोनों ओर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं ताकि तीर्थयात्री नीचे उतर कर चरणामृत ले सकें। बांध के साथ जो पानी एकत्र किया गया है उसका नाम 'नानक सागर' है।

जब सिद्ध-जोगियों ने देखा कि उनकी ईर्ष्या और शत्रुता का गुरु जी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है, तो वे चकित हो गए और उनके पास जाकर प्रश्न पूछने लगे कि आपका गुरु कौन है? और किससे आपने दीक्षा ली है? गुरु ने एक शब्द सुनाया:

कऊन तराजी कवण तुला तेरा कवण सराफ बुलावा..।।
मन तराजी चित्त तुला तेरी सेव सराफ कमावा।
घट ही भीतर सो सहु तोली इन बिध चित रहावा।
आपे कंडा तोलु तराजी आपे तोलण हारा।[15]

आपे देखे आपे बूझे आपे है वंजारा।
अंधला नीच जाति परदेसी आवे तिल जावै।
ता की संगति नानक रहदा कियूं कर मूड़ा पावै।[16]

उपरोक्त श्लोक में गुरु साहिब ने अपनी शब्दावली में अपनी बात स्पष्ट की थी। योगियों की इस बात से संतुष्टि नहीं हुई और वे गुरु जी को जोगी बनने के लिए प्रेरित करने लगे। तो फिर गुरु जी ने शब्द पढ़ा:

जोग न खिंथा जोग न डंडे जोग न भस्म चढ़ाइए।[17]

उपरोक्त शब्द में गुरुसहिब ने उनकी शब्दावली में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया था। जोगी समझ गए और उन्होंने गुरु जी को

नमस्कार की। गुरु जी कुछ दिन वहाँ रहे, जोगियों के साथ संवाद किया और फिर आगे चल दिए।

टांडे :

गुरु नानकदेव जी नानक मत्ते से तकरीबन 60 मील दक्षिण की ओर वन्जारियों (व्यापारियों) के टांडे पहुँचे।। यह नगर अब मुरादाबाद से नैनीताल की सड़क पर है। यहाँ उन्होंने व्यापारी के प्रति एक शब्द का उच्चारण किया "पहिले पहरे रैन के वंजरिया मित्रा, हुकमी पयिआ गरभासि" यहाँ कुछ दिन रुक कर और फिर अयोध्या की ओर मुड़ गए।

अयोध्या :

डॉ.त्रिलोचन सिंह और प्रधानाचार्य सतबीर सिंह जी ने गुरु साहिब के पहले प्रयाग या इलाहाबाद जाने का और बाद में अयोध्या जाने का जिक्र किया लेकिन डॉ. कृपाल सिंह जी ने सबसे पहले अयोध्या जाने का उल्लेख किया है, जो ज्यादा ठीक लगता है। लेखिका भी कृपाल सिंह जी के मार्ग को ठीक मानती है। टांडा से, गुरु साहिब खीरी जिले के एक नगर गोला पहुँचे, और वहाँ से चौकी दरिया (ब्रह्मघाट के पास घाघरा नदी में चौकी नदी का विलय हो जाता है) के पार नाव से और फिर घाघरा नदी से होते हुए, मरदाने के साथ अयोध्या पहुँचे। अयोध्या में जहाँ आप जाकर बैठे थे; वहाँ एक गुरुद्वारा बना हुआ है। यहाँ भी विभिन्न संप्रदायों के लोगों ने गुरु जी से कई प्रश्न पूछे कि कई लोगों ने शरीर को दर्द देकर, नग्न रहकर, उल्टा लटककर या यहाँ तक कि बड़ी तपस्या, यज्ञ और पुन्य-दान भी कहते हैं कि मोक्ष इनका ही होगा? कुछ देर तो गुरु जी चुप रहे और फिर यह शब्द उचरित किया:

जगन होम पुन्न तप पूजा देह नित दु:ख सहे।
राम नाम बिन मुकति न पावसी मुकति नामि गुरमुखि लहै।[18]

प्रयाग :

अयोध्या से गुरु साहिब घागरा नदी से होते हुए टांडा, (जिला फैजाबाद) अयोध्या से 37 मील पूर्व में, यह एक प्रसिद्ध बंदरगाह था। यहाँ व्यापारी आते जाते थे। यहाँ से 12 मील पैदल चलकर मिझोली के इलाके पहुँचे जहाँ टानस नदी का बंदरगाह था। गुरु साहिब नाव से निजामाबाद (आजमगढ़ जिला) पहुँचे। यह टानस नदी के किनारे, गुरु साहिब की याद में गुरुद्वारा भी बनाया गया है। निजामाबाद प्राचीन काल से ही गुर-सिख धर्म का केंद्र रहा है। टानस नदी से लगभग एक फर्लांग पर गुरु साहिब के बैठने की जगह बतायी जाती है और यहाँ एक गुरुद्वारा भी है। प्रयाग, त्रिवेणी संगम निजामाबाद से लगभग 90 मील की दूरी पर है। निजामाबाद से लौटते हुए, प्रयाग नगर की भीड़ से कुछ ही दूरी पर गुरु साहिब रास्ते में ही झूसी रुक गए। कहा जाता है कि जहाँ गुरु साहिब बैठे थे, वहाँ एक थड़ा (बैठे की जगह) था जो समय के साथ गंगा नदी में खो गया।

एक बार गुरु जी अपने ध्यान में लीन गंगा तट पर बैठे थे, और कुछ तीर्थयात्री जो त्रिवेणी स्नान करके आए थे, गुरु के चेहरे पर नूर देखकर, उनके पास आकर बैठ गए। जब गुरु साहिब ने उनकी ओर देखा तो उन्होंने कहा कि हम रोज पाठ पूजा करते हैं लेकिन कोई असर नहीं होता और कोई रस नहीं आता। गुरु साहिब ने समझाया कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, शरीर से जुड़े हुए विषय-विकार वास्तविक रस का आनंद नहीं लेने देते। यह सुनकर यात्री बहुत प्रभावित हुए और नमस्कार कर, आगे बढ़ गए।

एक दिन कुछ तीर्थयात्री आए और उन्होंने बड़े आदर के साथ कहा कि लोग विभिन्न प्रकार के मानसिक विकारों से पीड़ित हैं, लेकिन फिर भी मानसिक विकार ठीक नहीं होते हैं। गुरु ने बहुत ही शांति और प्रेम से कहा कि मन के विकार केवल मन में नाम बसाने से ही दूर हो जाते हैं और उन्हीं को इस दुनिया में महिमा मिलती है।

'नानक ता कौ मिले वडयाई जिस घट भीतर शब्द रवै'[19]

यह सुनकर सभी तीर्थयात्री प्रसन्न हुए और गुरु साहिब को कोटि-कोटि प्रणाम किया और गुरु साहिब कुछ दिनों तक यहाँ रहे और फिर पूर्व की ओर चल पड़े।

बनारसः

पुरानी झूसी से एक सड़क निकलती थी जो गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर बनारस की ओर जाती थी। यह सड़क मुसलमानों के आने से पहले से मौजूद थी। वैसे, प्रयाग से बनारस के लिए नाव से ही आवाजाही होती थी। बनारस प्रयाग से 89 मील दूर है। इसी रास्ते से गुरु जी प्रयाग से बनारस पहुँचे। वर्तमान बनारस रेलवे स्टेशन से कुछ ही दूरी पर, कामछा क्षेत्र में, गुरु नानक की स्मृति में एक ऐतिहासिक गुरुधाम है, जिसे बहुत पुराना माना जाता है। स्थानीय परंपरा के अनुसार, गंगा राम ब्राह्मण सबसे पहले गुरु के पास गए और उनसे बहुत प्रभावित हुए और सिख बन गए। 'सूरज प्रकाश' के लेखक भाई संतोख सिंह के अनुसार काशी निवासी हरि लाल और हरि कृष्ण गुरु अर्जुनदेव जी से मिलने आए थे। भाई काहन सिंह के अनुसार, उन्होंने बनारस के आसपास सिख धर्म का बहुत प्रचार किया। ये दोनों गंगा राम ब्राह्मण के पौत्र थे।

एक दिन गुरु जी गंगा तट पर बैठे थे, वहाँ बहुत सारे पंडित पुस्तकें पढ़ रहे थे, कई शिष्य उनसे सीख रहे थे। कई तपस्या कर रहे थे और कई शमशान की धूल मुंह और शरीर पर मलकर बैठे थे। गुरु जी को देखकर वे गुरु जी के पास आए और उनसे पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? सभी भजन-पूजा या पठन-पाठन में तल्लीन हैं। जवाब में, गुरु ने शब्दों का उच्चारण किया।

दुबिधा न पडऊ हरी बिन होर पूजऊ मढ़े मसाणी न जाणी।।
त्रिसना राची न पर घरि जावा त्रिसना नामि बुझाई.[20]

ये लोग गुरु से बहुत प्रभावित हुए और उनके चरणों में प्रणाम किया। एक दिन पंडित चतुर दास ने गुरु के पास आकर पूछा। "हे भगत, न तो तेरे पास शालिग्राम है, न तुलसी माला, न चंदन-टीका; तो तुम किस प्रकार के भगत हो?" जवाब में, गुरु जी ने इन शब्दों का पाठ किया। :

साल ग्राम बिप पूजी मानवहु सुकृत तुलसी माला।
राम नाम जपि बेड़ा बाधहु दया करहु दयिआला।। ...
बगुले ते फुनि हंसुला होवै जे तूं करहि दयिआला
प्रणवती नानक दासनी दास दया करहु दयाला।।[21]

शब्द सुनते ही उन्हें एहसास होने लगा कि अगर सालग्राम,

तुलसी की माला को भक्ति का प्रतीक मानते हैं तो ये भक्त इसे मिट्टी की दीवार को सींचने जैसा प्रयास मानते हैं। उन्होंने भक्ति के सच्चे साधनों का भी वर्णन किया। जिसमें कर्मों के रूप में अच्छे कर्मों का बीज धरती में बोया जाता है, अगर बंदगी से सींचा जाए तो यह बगुला भी परमहंस बन जाएगा। चरण दास गुरु के चरणों में गिर पड़े। यहाँ के पंडित को अपनी शिक्षा पर बहुत गर्व था। उनके प्रति भी उन्होंने इन शब्दों का भी उच्चारण किया।

पढ़ी पढ़ी गढ़ी लदियाह पढ़ी पढ़ी भरिह साथ।
पढ़ी पढ़ी बेढ़ी पाइए पढ़ी पढ़ी गढ़िये खात..।।
नानक लेखे एक गल, होरु हुमई झकना झाक।[22]

गुरु नानक देव जी ने बहुत शुद्धि रखने के प्रति भी पांडे को बहुत विवेकपूर्ण होने का निर्देश दिया।

सूचे एहि न आखिए बहनि जे पिंडा धोई
सूची सेई नानक जिन मनि वास्या सोइ।[23]

यहीं पर गुरु ने लकड़ियों को धोकर, जलाने वालों को निर्देश दिया था:–

जे करि सूतक मनिए, सब ते सूटक होई.।
गोहे अते लकड़ी अंदरि कीड़ा होई.।
जेते दाने अन्न के जीया बाझ न कोई.।[24]

गुरु जी जितने दिन बनारस में रहे, वे पंडित के साथ संवाद करते रहे और कुछ दिन वहीं रहने के बाद वे आगे बढ़े।

चंद्रौली

बनारस से पटना तक सासराम के रास्ते को तब और अभी भी शेर शाह सूरी मार्ग कहा जाता है। बनारस से करीब 20 मील दूर चंद्रोली एक पुराना शहर है। उस समय यहाँ के राजा हरिनाथ थे। यह विचार डॉ. यह कृपाल सिंह जी का है। प्राचार्य सतबीर सिंह व डॉ. त्रिलोचन सिंह का मत है कि हरिनाथ राजा बनारस के थे। गुरु जी गया जाते समय यहाँ आ गए। गुरु जी चुपचाप बैठे रहे और किसी से बात नहीं की और न ही कोई इशारा किया। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखकर जहाँ शहर के लोग दर्शन करने आये, वहीं राजा हरिनाथ भी उस स्थान पर आ गए। उसे देखकर, गुरु ने निम्नलिखित शबद गायन किया।

जीऊ तपत है बारो बार। तपि तपि खपै बहुत बेकार।
जै तनि बाणी विसरि जाई, जिऊ पक्का रोगी विल्लाई.[25]

राजा को लगा कि 'जिउ तपत है बारोबर, तपि तपि खपै बहुत बेकार' गुरु जी ने उनकी मन:स्थिति का वर्णन किया है। उसे बहुत वैराग्य महसूस हुआ और वह गुरु जी के चरणों में गिर गया, और प्रार्थना की कि गुरु जी उसे अपने पास रखें, उसने भी राज्य छोड़ने का मन बना लिया, लेकिन गुरु साहिब ने उपदेश दिया कि 'राज में योग' होता है, आप लोगों की सेवा करो और नाम बाणी का ध्यान करो। गुरु ने कहा कि हमारा ज्ञान संसार को छोड़कर राज्य छोड़कर भीख मांगना नहीं है। गृहस्थी में रहकर सिमरन सेवा करना ही हमारा मत है। ऐसा करने से राज्य में ही मोक्ष की प्राप्ति होगी।

गया :

बनारस से चंद्रौली और सासाराम होते हुए गुरु साहिब गया पहुँचे। यह फाल्गु नदी पर एक हिंदू तीर्थ स्थल था। यहाँ एक बड़ा विष्णु–पद मंदिर है, जहाँ पूरे भारत से श्रद्धालु आते थे। एक परंपरा के अनुसार, जिनके बुजुर्गों की मृत्यु हो गई है, अगर उन्हें मुक्त करने के लिए यहाँ पिंडदान किया जाता है, जिससे वे मुक्त हो जाते हैं। जब पिंडदान किया जाता था तो वे चावल की पिन्नी और दीपक जलाते थे और उनका मानना था कि ऐसा करने से उनके पूर्वजों की गति हो जाएगी। जब गुरुसाहिब ने फाल्गुई नदी के किनारे बैठ कर ध्यान कर रहे थे तब पंडों ने आकर उनसे कहा कि वे वे भी अपने पितरों की गति करवा लें। उन्होंने कहा कि हमने अपना और अपने पितरों का दिया करवा दिया है। ऐसा कृत्य किया है कि अज्ञानता का अंधेरा दूर हो गया है। स्वर्ग और नरक अज्ञान में हैं और नाम रूपी दीपक जगा लिया गया है। गुरु नानक साहिब ने वहाँ पण्डों को यह शब्द पढकर सुनाया।

दीवा मेरा एक नाम दु:ख विचि पाइया तेल।
ऊनी चानण उह सोखिया चूका जम सिउ मेल।[26]

इन शब्दों को सुनकर पंडित बहुत प्रभावित हुए और बड़े सम्मान से प्रणाम किया और चले गए। विष्णु पद मंदिर के साथ ही गुरु की स्मृति में एक गुरुद्वारा भी है। इस गुरुद्वारे का नाम देउ घाट है। इस गुरुद्वारे की सेवा बाबा अलमस्त जी ने गुरु हरगोबिंद साहिब जी के समय में की थी। यहाँ बाबा अलमस्त जी की मुहर भी पड़ी है। इस गुरुद्वारे में गुरु तेगबहादुर जी का एक हुकमनामा भी संरक्षित है। बुद्ध गया में, बाबा नानक को भिक्षु देवग्रिह मिला और वह गुरु साहिब का अनन्य भक्त बन गए। कहा जाता है कि वह भिक्षु गृहस्थ बना गया और उसका पौत्र भी गुरु हरिराय के दर्शन करने पंजाब आया। गुरु हर राय ने इसका नाम भगत भगवान रखा। (देखें डॉ. त्रिलोचन सिंह) यहीं से गुरु जी नालंदा और राजगृह गए। यह गया से कुछ ही दूरी पर है। गर्म पानी के झरने थे, हर जगह जहाँ भी कुएँ खोदे जाते वहाँ पानी गर्म ही निकलता था। वहाँ के लोगों ने अनुरोध किया कि गुरु जी ठंडे पानी के बिना कष्ट सह रहे हैं। गुरु साहिब के आदेश से जहाँ कुआं खोदा गया, वहाँ ठंडा पानी निकल आया। यह कुआं आज भी मौजूद है और एक छोटा गुरुद्वारा भी है। जिसे गुरु जी की याद में बनाया गया है। मुझे (डॉ. हरबंस कौर सागू) इस कुएँ और गुरुद्वारा साहिब के दर्शन करने का दो बार अवसर मिला। मुख्य परिचारक ने कहा, "हम संक्रांति के दिन कड़ाह प्रसाद बनाते हैं और इसे हमें ही खाना पड़ता है।"

यहीं पर गुरु साहिब की मुलाकात कहलान शाह नाम के एक सूफी फकीर से हुई, जो गुरु साहिब से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कई दिनों तक गुरु जी को अपने खानगाह में रखा। उस स्थान पर गुरुद्वारा बड़ी संगत विद्यमान है। जो स्थान सूफी संत का है उसे छोटी संगत कहा जाता है। बाद में गुरु तेगबहादुर भी यहीं रुके थे।[27]

हाजीपुर (पटना)

जब गुरु नानक साहिब यहाँ आए थे, उस समय पटना साहिब अभी आबाद नहीं हुआ था। कृपाल सिंह जी लिखते हैं कि उस समय एक कच्ची सड़क पटना जाती थी। उस समय अशोक की राजधानी पाटलिपुत्र के पुराने शहर के खंडहर मौजूद थे। इन खंडहरों से होते हुए गुरु साहिब हाजीपुर पहुँचे। हाजीपुर, गंगा नदी के उत्तरी तट पर

आज के पटना शहर के सामने स्थित था जहाँ गंडक नदी गंगा नदी से मिलती है। गुरु नानक ने गंगा नदी को पार किया और उस स्थान पर बैठ गए जहाँ आज नानक का शाही गुरुद्वारा है। यह स्थान हरिहर क्षेत्र के राम चौरा महल में स्थित है। भाई बाले की जन्मसाखी के संदर्भ में डॉ. कृपाल सिंह जी लिखते हैं कि हाजीपुर पहुँचते ही मरदाने को बहुत भूख लगी और गुरु जी ने उसे कुछ मांगने और खाने के लिए जवाहर टोला भेज दिया। जब मरदाना सालसराय जौहरी के घर गया तो वह रोटी खा रहा था। उसका लेखापाल अदरखा बाहर आया और मरदाना को उसके मालिक के पास ले गया। सालसा राय ने देखा कि वह आदमी भूखा था और उसे पहला प्रसाद दिया और उसे कुछ पैसे भी दिए। जब मरदाने ने गुरु जी से कहा कि उन अच्छे लोगों ने लंगर भी खिलाया है और यह पैसा भी दिया है, तो गुरु साहिब ने उन्हें पैसे वापस करने के लिए कहा। जब मरदाने ने पैसे लौटाए तो सालस राय जौहरी बहुत प्रभावित हुए और अपने लेखाकार अधरका को अपने साथ ले कर गुरु जी के दर्शन के लिए आए और प्रसाद के लिए पकवान भी लाए और कहने लगा कि मैं तो मरदाने को लाल समझता था पर आपके दर्शन करने पर तो सब तरफ लाल ही लाल है। गुरु ने कहा कि जिनकी आंखों में नाम रूपी लाल है, वे किसी और को नहीं देखते। गुरु के अमृत वचन सुनकर, सालस राय का मन शांत हो गया, उसने अभिवादन किया और भेंट स्वीकार करने को कहा। गुरु ने पकवान स्वीकार कर लिया लेकिन पैसे वापस कर दिए। गुरु ने सालस राय से कहा कि अधरखे में नाम प्रवेश कर रहा है और वह आध्यात्मिक रूप से उससे बड़ा है। इसलिए उसकी कदर की जानी चाहिए। यह सुनकर दोनों गुरु जी के चरणों में गिर पड़े।[28]

एक बार विष्णु के एक पुजारी ने गुरु नानक साहिब के पास आकर पूछा कि मन धन पदार्थ मांगता है और धन अहंकार के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है और अहंकार से भगवान से दूर हो गया है। तो वह राम के पद तक कैसे पहुँचे तो उत्तर में गुरु जी ने यह शब्द पढ़ा।

तन बिनसे धन का को कहिये।
बिन गुर राम नाम कत लहिए।
राम नाम धन संगी सहाई।
अहनिस निरमल हरि लिव लाई।[29]

तब वैष्णव को शांति मिली और वह गुरु के चरणों में गिर पड़ा।

गुरु ने अंत में कहा कि कोई दुर्लभ सालस राय जौहरी है जो दर्शन भेंट देकर जाता है। जिन्हें विधाता ने दृष्टि दी है, वे मानव जीवन के महत्त्व को समझते हैं, विषय विकारों में पड़ कर जीवन गंवाना ठीक नहीं है। ईश्वर की भक्ति, ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के समान है। सालसराय में भीउत्साह और उमंग का फव्वारा फूट गया और उसने गुरु उपमा में कहा

सतिगुरु दाता नाम का दीने खोल कपाट।
एक जो वनज वनंजिया बहुत न आवे घाट।
सतिगुर नानक पूरा। बचन का सूरा।[30]

इसी सालस राय के वंशजों में से फतेह चंद मैनी दशवें पातशाह का परम भक्त हुआ, जिनके घर में दशवें पातशाह जाकर दूध की पूड़ियाँ, दूध से भीगे हुए छोले और तले हुए छोले खाते थे। उनके नाम की मैनी संगत आज भी विद्यमान हैं। अधरका के वंशजों में से घनश्याम, गुलाब राय, दसवें गुरु के मसंद, मूसा की संगत को आनंदपुर ले जाते रहे। जब सालस राय ने फिर से मिलने का अनुरोध किया, तो उन्होंने जवाब दिया। 'गुरुमुखों को हमेशा दर्शन होते हैं'। जब उन्होंने 'आपकी खुशी कैसे प्राप्त करें' के बारे में बात की, तो गुरु जी ने कहा:-

जे चाहो प्रसन्नता
सेव करहु अधरका संता।[31]

उन्होंने पटना में लंगर की बुनियाद भी रखी। सब पंगत में बैठकर खाने लगे। यहाँ कुछ समय बिताने के बाद, गुरु साहिब और मरदाना आगे बढ़े। सालस राय ने अपने घर को एक धरम-साल बना दिया, और बाद में यहाँ गुरु तेगबहादुरजी, उनके परिवार को यहाँ छोड़ कर, स्वयं, असम की ओर राजा राम सिंह के साथ (सिख धर्म) के प्रचार के लिए निकल गए। यहीं पर दसवें गुरु का जन्म हुआ था और आज यह सिक्खों का पाँचवें में से चौथा तख़्त है।

ढाका:

पटना से गुरु नानकदेव जी कटियार तहसील के कंतनगर नगर में, गंगा के किनारे, प्रसिद्ध नगर करगोला के पास, गंगा नदी के तट पर पहुँचे। गुरु साहिब की याद में एक पुराना गुरुद्वारा है।

कंत नगर से पूर्व की ओर चले गए। जहाँ गंगा नदी दक्षिण की ओर मुड़ती है, वहीं उत्तर से बहने वाली महानंदा नदी इसमें मिल जाती है। इस क्षेत्र में गंगा का नाम कलंदरी है। कलंदरी और महानंदा नदियों के संगम पर मालदा नामक एक नगर था। यह शहर महानंदा और कलंदरी नदियों पर चलने वाली नौकाओं का एक प्रमुख केंद्र था। यहाँ गुरु जी कुछ समय के लिए रुके और यहाँ उनकी मुलाकात रामदेव (बाबू) से हुई जो उनसे बहुत प्रभावित हुए, यहाँ से गुरु जी पूर्व दक्षिण के लिए रवाना हुए। गुरु जी उस सड़क (जी टी) पर गंगा नदी के किनारे चले, जिसे बाद में शेर शाह सूरी ने पक्का किया था। यह सड़क मुर्शदाबाद (मकसूदाबाद) से गुजरती हुई सुनारगाँव पहुँचती है। थोड़ी देर के लिए गुरु साहिब मुर्शिदाबाद में रुके, सुजा को जागृति प्रदान की और वह पुकार उठा।

सतिगुर नानक परसिया सभ पाप मिटाए।
नाम अमोलक पाइया कारज भए रासे।

सुजे भगत की संगत मुर्शदाबाद में आज भी प्रचलित है। गुरु साहिब सुनारगाँव नहीं गए बल्कि दक्षिण की ओर चलकर ढाका पहुँचे। यहाँ देवी ढकेश्वरी देवी का मंदिर है, जिसके नाम पर शहर का नाम ढाका पड़ा। गुरु साहिब के समय, ढाका केवल देवी के अपने मंदिर के लिए प्रसिद्ध था और 1608 ईस्वी के बाद यह इस क्षेत्र की राजधानी बन गया। ढाका बोही गंगा के तट पर था, और प्राचीन काल में बोही गंगा पद्मा की एक विशेष सहायक नदी थी।

गुरु नानक साहिब ढाका में उतरे, जिसे अब रेयर बाजार कहा जाता है। वहाँ कुम्हारों के घर तब भी थे और आज भी। गुरु नानक के वहाँ जाने की परंपरा वहाँ के लोगों के बीच आज भी प्रचलित है। गुरु नानक साहिब के समय से एक कुआं भी है और कहा जाता है कि गुरु नानक साहिब ने अपनी छड़ी से जमीन खोदी और कुआं

खोदा। (जी. बी. सिंह-पंजाब पास्ट एंड प्रेजेंट, 1967, पृष्ठ 75) ढाका को '52 बाजार और 53 गलियाँ' के नाम से भी जाना जाता था। ढाका में, गुरु जी के भक्तों ने 12 संगतों का गठन किया, ये संगत इतनी व्यापक थीं कि आज का ढाका विश्वविद्यालय और अन्य मंदिरों का निर्माण इनसे जमीन खरीदकर किया गया। भैरव, कामाख्या और कब्र की पूजा से हटा कर परमेश्वर की भक्ति से जोड़ा। नाथे शाह की धर्मशाला के तीन अन्य गुरुद्वारे भी प्रसिद्ध हैं। आज यहाँ गुरु नानक शाही गुरुद्वारा सुशोभित है।

ढाका से गुरु साहिब कामरूप के लिए रवाना हुए। आज के गोलपाड़ा, कामरूप-रंगपुर और कच्छ बिहार के जिले कामरूप में गिने जाते थे। गुरु जी सबसे पहले ब्रह्मपुत्र नदी में नाव से धुबरी पहुँचे जो वर्तमान गोलपाड़ा जिले का एक विशेष नगर है। इस स्थान पर गुरु तेगबहादुर साहिब ने मुस्लिम सैनिकों द्वारा खोदे गए टीले को बनवाया था। धुबरी से गुरु साहिब ब्रह्मपुत्र होते हुए गुवाहाटी पहुँचे, जिनका पुराना नाम प्रयाग ज्योतिष्पुर था।

सोलहवीं शताब्दी में, कामरूप के लोग तंत्र विद्या में पारंगत थे। भले ही मुसलमानों ने एक बार देवी कामाख्या के मंदिर को ध्वस्त कर दिया था, लेकिन उनकी आस्था में कोई अंतर नहीं था। कोच्चि जनजाति के लोग कामाख्या देवी की पूजा करते थे और देवी कामरूप को मानव बलि दी। गुरु साहिब गए और कामरूप के बाहर बैठ गए और मरदाने को अपनी भूख मिटाने के लिए कुछ लाने के लिए शहर भेजा। जब मरदाना किसी घर के सामने खड़ा हुआ, तो कुछ औरतें उसे घर के अंदर ले गई और तांत्रिक शिक्षा की सहायता से उनकी सोचने और बोलने की क्षमता समाप्त हो गई और उसे अपने पीछे की ओर चलने वाला मेमने बना लिया। विलायत वाली जन्मसाखी में यहाँ की रानी का नाम नूरशाह लिखा गया है लेकिन इस नाम की पुष्टि किसी अन्य जन्मसाखी या स्रोत से नहीं होती है।[32]

गुरु साहिब ने मरदाना की कुछ देर प्रतीक्षा की और फिर उसकी तलाश में शहर चले गए, तो उन स्त्रियों ने उनका भी वही हाल बनाने की कोशिश की जो मरदाने की की थी। परन्तु उनकी एक न चली और वे गुरु नानकदेव जी के चरणों में गिर कर क्षमा मांगने लगी। गुरु साहिब ने उनकी गलती को क्षमा करते हुए मरदाने को पहले वाले रूप में लाकर मरदाने से कहा रबाब बजा और यह शब्द गाया:

गुनवंती सहु राविया निर्गुण कूके काहे।
जे गुनवंती थी रहे तां भी सहु रावन जाई.[33]

इन महिलाओं ने सोचा कि शायद यह फकीर गीत सुनने में रुचि रखेगा और हमारे नृत्य प्रदर्शन से खुश होगा, लेकिन वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए और गुरु साहिब ने वचन कहा।

ताल मदीरे घट के घाट।
ढोलक दुनिया वज्झी वाज।[34]

इन महिलाओं ने सांसारिक पदार्थों की मदद से फिर से गुरु जी को प्रसन्न करने की कोशिश की लेकिन उसका भी गुरुजी पर कोई प्रभाव नहीं देखा और उनके चरणों में आ गई और गुरु जी उन्हें नाम जप करने की शिक्षा दे कर आगे निकल गए। प्राचार्य सतबीर सिंह जी बताते हैं कि आज गुरुद्वारा बरछा साहिब है। 'विचों मार कढियाँ बुरियाइआं' का यह प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जाता है।

बसते रहो, उजड़ जाओ :

सोलहवीं शताब्दी में, कामरूप की सीमा बरना नदी के पास समाप्त हो जाती थी और वर्तमान जिला दरंग से असम (आसा देश) का क्षेत्र शुरू होता था। कामरूप पर उस समय कोच्चि और असम में अहोम राजाओं का शासन था। गुरुजी कामरूप से ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे पूर्व की ओर चल दिए और रास्ते में कई स्थानों पर रुके। जब गुरु साहिब किसी शहर में गए तो वहाँ के लोग उनका मजाक उड़ाने लगे। गुरु ने कहा, "बसे रहो"। अगले गाँव के लोगों ने बहुत बड़ी सेवा की, फिर गुरु जी उन्हें 'ऊजड़ जाओ' कहकर आगे बढ़े, तब मरदाने ने इस बात का रहस्य पूछा तो गुरु साहिब ने कहा कि इस शहर के लोग जहाँ भी जाएंगे, वहाँ के लोगों को अपने जैसा बना लेगें और पहले शहर वाले भी अपने जैसा बना लेंगे, इसलिये उन्हें 'बसे रहो' कहा गया है।

धनसारी वादी:

गुरु नानक देव जी ब्रहमपुत्र दरिया, गोलाघाट के शहर पहुँचे। यह नगर धनसारी नदी के पूर्वी तट पर असम के वर्तमान पूर्वी भाग में सिब सागर जिले की एक तहसील है। गोलाघाट से लगी नदी की घाटी को धनसारी वादी कहा जाता था क्योंकि यह धनसारी नदी के किनारे एक मैदानी इलाका था। धनसारी नदी नागा पर्वत से निकलती है और वर्तमान सिब सागर जिले की सीमा को नौगंग जिले से अलग करती हुई उत्तर-पश्चिम की तरफ होकर ब्रह्मपुत्र नदी में विलीन हो जाती है। साथ वर्तमान पार करते हुए बहुत अधिक है। धनसारी घाटी के उत्तर में नागा और शकिर पहाड़ियों से घिरे विस्तृत मैदान थे। उन पहाड़ों पर नागाओं का निवास था जिन्होंने मनुष्यों की बलि देते और मानव मांस खाया करते थे।[35]

जब गुरु साहिब धनसारी घाटी गए, तो एक दिन गुरु नानक साहिब और भाई मरदाने को नागाओं ने पकड़ लिया। उन्होंने देखा कि बाबा जी और मरदाना दुनिया से अलग होकर कीर्तन में लगे हुए हैं। जब उन्होंने उन्हें मारना शुरू किया, तो वे गुरु की दिव्य महिमा और आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित हुए। उन्होंने महसूस किया कि यह इंसान आम इंसानों की तरह नहीं है। दिव्य वचन से प्रभावित होकर, उन्होंने गुरु जी और मरदाने को छोड़ दिया। गुरु साहिब उन्हें नाम का उपदेश देकर लौट गए। डॉ.तरलोचन सिंह लिखते हैं कि मरदाने को कौड़ा राक्षस ने पकड़ लिया था और एक पेड़ से बांध दिया था और भुनकर खाने वाला था तभी वहाँ गुरु नानक जी पहुँच गए। गुरु ने उन्हें उपदेश दिया कि आपको इंसानों को नहीं मारना चाहिए जबकि प्रकृति ने आपको खाने के लिए और भी बहुत कुछ दिया है। कोडे ने महसूस किया कि यह एक गंभीर पाप था। उन्होंने बाबा नानक से वादा किया कि वह फिर कभी नरभक्षी नहीं बनेंगे। 'डॉ. मोहम्मद काजिम : असम का एक विवरण: एशियाई अनुसंधान' का हवाला देते हुए। 118. तरलोचन सिंह जी गुरु बाबा के प्रभाव के बारे में लिखते हैं कि "इस क्षेत्र में एक पर्वत श्रृंखला है, जिसके लोग खुद को 'नानक कबीला' कहते हैं, वे बहुत स्वतंत्र स्वभाव के हैं। वे राजा को कर नहीं देते और उसके अधिकांश आदेशों का

पालन करते हैं। हो सकता है कि गुरु नानक देव जी को कौड़ा इन पहाड़ियों पर मिले हों और उनके अनुयायी बाबा नानक के अनुयायी बन गए हों। गुरु नानक से मिलने के तुरंत बाद कौड़ा की मृत्यु हो गई थी।[36]

गुरु साहिब गोलाघाट से वापस गुवाहाटी ब्रह्मपुत्र नदी के रास्ते होते हुए पहुँचे और गुवाहाटी से एक पहाड़ी रास्ता मौजूदा शिलांग की तरफ जाता हैं। इस से आगे जोवाई से होकर, जयंती पूरे पहाड़ी रास्ते पर जहाँ केवल घोड़े और पुरुष ही चल सकते थे; सिलहट पहुँच गए। जयंती पुरा वर्तमान शिलांग से जोवाई तक 64 मील और जयंती पुरा से सिलहट 26 मील दूर था। ऐसा कहा जाता है कि पहले सिलहट में गुरु नानक की याद में एक गुरुद्वारा था। यह तारा सिंह निरोतम के "गुरु तीरथ संग्रह" से स्पष्ट होता है। लेकिन लगता है कि यह गुरुद्वारा समय के साथ ढह गया क्योंकि आजकल यहाँ कोई गुरुद्वारा नहीं है।

सिलहट ब्रह्मपुत्र घाटी के दक्षिण की ओर सूरमा या बराक नदियों की घाटी में के बीच होने के कारण पूर्वी बंगाल के ज्यादा करीब था। 16वीं शताब्दी की शुरुआत में सिलहट पर मुसलमानों का कब्जा था। यहाँ एक पहुँचा हुआ फकीर शाह जलाल यहाँ रहता था और जिसका देहांत 1531 ईस्वी में हुआ। उनकी मस्जिद और मकबरा आज भी उनके खास स्मारक माने जाते हैं। हो सकता है शाह जलाल का गुरु जी से मेल हुआ हो।

सिलहट से वर्तमान कलकत्ता तक जाने वाले कई मार्ग थे। लेकिन सिलहट इलाके में आमतौर पर लोग नाव से ही सफर करते थे। तो गुरु साहिब सिलहट से पूर्व में सूरमा नदी तक और फिर बराक नदी में ढाका के दक्षिण-पश्चिम में कई जगहों पर नाव से और कई जगहों पर पैदल चलकर उस सड़क तक पहुँचे जो वर्तमान कलकत्ता से गंजाम जाती थी। गंजाम उड़ीसा और दक्षिण का एक नगर था। इसी रास्ते से चलते हुए गुरु जी वह उड़ीसा की तत्कालीन राजधानी कटक पहुँचे।

उड़ीसा का सबसे प्रसिद्ध मंदिर जगन्नाथ था। इसलिए, उड़ीसा के राजा को राजा जगन्नाथ के रूप में सम्मानित किया जाता था। जब गुरु साहिब कटक पहुँचे, तो प्रतापरुद्र देव उड़ीसा के राजा थे। जो अपने पिता पुरुषोत्तमदेव की मृत्यु के बाद 1497 में गद्दी पर बैठा।

प्रतापरुद्रदेव वैष्णव मत का अनुयायी था। जब उन्हें पता चला कि उत्तर-पश्चिमी भारत से कोई महापुरुष आए हैं, और उनके साथ एक रबाबी भी है। वह अपने घोड़े पर सवार होकर गुरु जी को मिलने आया। जो लोग गुरु के बगल में बैठे थे वे राजा को देखकर दूर चले गए और राजा ने दर्शन किए और प्रसन्न होकर गुरु जी से प्रश्न पूछा कि यह दुनिया क्या है, कुछ पता नहीं लगता कि कोई जीव किस तरह का है और कोई दूसरा किस तरफ का? बहुत सारे संत और कई चोर हैं। हम उनकी रचना से भगवान के रूप को कैसे समझें ? जवाब में, गुरु ने यह शब्द गाया।

एको सरवर कमल अनूप।। सदा बिगसे परमल रूप।।
ऊजल मोती चुगहि हंस।। सर्ब कला जगदीसे अंस।।[37]

जब राजा ने इन शब्दों को सुना, तो वार्तालाप हुई, वह बहुत प्रभावित हुआ और अभिवादन करके सम्मानित किया और चला गया। कटक, गुरु नानक की याद में एक प्राचीन गुरुद्वारा है। (यह साखी) मेहरवान वाली जनमसाखी और गुरु नानक चमत्कार-भाई वीर सिंह से ली गई है।

जगन्नाथ पुरी:

कटक से पुरी तक की पुरानी सड़क को जगन्नाथ रोड भी कहा जाता था। गुरु ने कटक से इस सड़क पर प्रस्थान किया। इसी रास्ते पर उनकी मुलाकात पंडित कलजुग से हुई थी। जब उन्हें पता चला कि राजा ने गुरु जी का सम्मान किया है, तो वे गुरु को जीतने के लिए अपने तांत्रिक ज्ञान, धन और शक्ति के साथ पुरी से इस पुराने रास्ते पर आ गया। उसने पहले गुरु जी को डराने की कोशिश की। कई भयानक रूप थे, लेकिन गुरु अडिग रहे। जब उसकी एक न चली तो वह गुरु के पास आकर अपने धन का लालच देने लगा, और मोतियों के मंदिर और सुंदर महिलाओं के वादे से उन्हें बहकाने लगे। लेकिन गुरु अडिग रहे और मरदाने से कहा, रबाब बजाओ। उन्होंने इन शब्दों को गाया।

मोती त मंदर उसरही रतनी त होई जडाऊ।
कस्तूरी कंगू अगरि चन्दनि लीपी आवे चाऊ।
मत देख भूला वीसरै तेरा चिति न आवे नाऊ।
हरी बिन जीऊ जलि बलि जाऊ।[38]

यह सुनकर कलजुग गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा और गुरु जी उनसे बात करते हुए जगन्नाथ पुरी पहुँच गए।

पश्चिमी विद्वानों का मानना है कि यह एक बौद्धस्थल था और मध्ययुग में उड़ीसा के गंगा और सूरजवंश के राजाओं की मदद से इसने विष्णु के मंदिर का रूप ले लिया। कई लेखकों का मत है कि गुरुनानक यहाँ चेतनिया भगत से मिले थे और कुछ समय तक दोनों एकसाथ कीर्तन करते रहे। समुद्र की लहरों, लहरदार हवा, आकाश में तारे और चंद्रमा के साथ गुरु नानक को पुरी का स्थान बहुत ही सुखद और प्यारा लगा। उन्हें ऐसा लग रहा था कि ये सभी दृश्य उस अकाल पुरख की आरती कर रहे हैं। एक दिन पंडों ने पूछा कि आप आरती के लिए खड़े क्यों नहीं हुए तो उन्होंने कहा कि सभी प्रकृति, तारे, चंद्रमा और सूर्य सभी उस परमात्मा की आरती कर रहे हैं। तो पंड्या ने कहा कि आप जिस आरती की बात कर रहे हैं, वो आरती भी बता दें। तब गुरु जी ने यह आरती सुनायी।

गगन में थालु रवि चंदू दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूप मलआनलो पवण चवरो करे सगल बनराय फूलंत जोति।
कैसी आरती होए भव खंडना तेरी आरती।
अनहता शब्द वाजंत भेरी।[39]

इस आरती को सुनकर पांडे बहुत प्रभावित हुए। यहाँ गुरु जी की याद में एक पुराना गुरुद्वारा है, जिसे बौउली साहिब कहा जाता है। यहाँ पुरी में, प्रतापरुद्र देव एक बार फिर गुरु जी से मिलने आए और पूछा कि आपको यह नाम का उपहार कैसे मिला? गुरु ने इन शब्दों को गाया।

निधि सिद्धि निरमल नाम बीचार। पूरण पुरि रहिया बिखु मारि।।
त्रिकुटी छुटी बिमल माझारी। गुर की मति जिए आई कारि।।[40]

राजा ने इन वचनों को सुना और प्रणाम किया और गुरु साहिब यहाँ कुछ देर रुके और फिर दक्षिण की ओर चल दिए।

गुंटूरः

जगन्नाथ पुरी से गुरु साहिब और मरदाना दक्षिण की ओर मुड़ गए। आप पुरी से कटक और कटक से गंजम आ गए। बंगाल से गंजाम तक एक पुरानी सड़क आती थी। गंजाम से आप दक्षिण की तरफ कांचीपुरम या मौजूदा कांजीवरम वाली सड़क पर चलते चलते उस स्थान पर पहुँचे जिसे आजकल गंटूर कहते हैं। यह आंध्र प्रदेश का एक प्रमुख शहर है। डॉ.कृपाल सिंह के अनुसार, यह नगर मसूलीपट्टम से 60 मील पश्चिम में और निकटवर्ती पहाड़ी से 6 मील पूर्व में है। यहाँ गुरु नानक देव जी की स्मृति में एक गुरुद्वारा भी है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हैदराबाद के एक वजीर चंदू लाल ने बनवाया था। उस ने दक्षिण की ओर गुरु साहिब जी के चरण छोह प्राप्त करने वाले पाँच स्थानों पर उस ने गुरुद्वारे बनवाए थे। गुंटूर उनमें से एक था। इसकी सेवा उदासी साधु करते रहे हैं। कुछ समय यहाँ रहने के बाद गुरु जी ने प्रकृति के स्वरूप का आनंद लिया और फिर दक्षिण की ओर चल पड़े।

कांचीपुरमः

गुंटूर से गुरु नानक साहिब मद्रास के दक्षिण में कांचीपुरम पहुँच गए। आज कल यह मद्रास से 45 मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है। कांचीपुरम भारत के प्रसिद्ध तीर्थों में से एक है। यहाँ जैन मत के लोग बड़ी संख्या में रहते हैं। यह शहर पाल और चोल राजाओं की राजधानी रहा है। गुरु नानक साहिब के समकालीन राजा कृष्ण ने यहाँ (1502) दो मंदिरों का निर्माण कराया। गुरु नानकदेव जी की याद में एक गुरुद्वारे है।

तिरुवनंतपुरमः

काचीपुरम से दक्षिण की ओर चलकर गुरु जी त्रिवणमलाई नगर पहुँचे। यह शहर अब दक्षिण अर्काट जिले में है। सोलहवीं शताब्दी में, यह दक्षिण में मुख्य सड़क और पश्चिम में पहाड़ी सड़कों पर था। आजकल चारों तरफ सड़कें हैं। त्रिवणमलाई का अर्थ है "पहाड़ों में प्रज्ज्वलित पवित्र अग्नि।" कहा जाता है कि एक बार पार्वती ने शिव की आंखों पर हाथ रखा और पूरी दुनिया में अंधेरा छा गया। शिव पार्वती से बहुत क्रोधित हो गए और उन्हें दुनिया में भेज दिया। त्रिवणमलाई उन स्थानों में से एक था जहाँ उन्होंने तपस्या की थी। कुछ समय तक पार्वती ने यहाँ तपस्या की और फिर शिव ने बगल की पहाड़ी पर एक ज्योति जलाई और पार्वती को संकेत दिया कि उनकी गलती क्षमा हो गई है। इस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि जो पहाड़ी पर दिखाई दी,उसी के नाम पर त्रिवेंद्रम शहर, पहाड़ी की तलहटी में बस गया। यह एक बहुत पुराना शहर है और यहाँ शिव का एक सुंदर मंदिर है जो बहुत पुराना है, गुरु साहिब यहाँ कुछ समय के लिए रुके थे, और उनकी याद में एक गुरुद्वारा है। यह गुरुद्वारा भी चंदू लाल वजीर हैदराबाद द्वारा निर्मित गुरुद्वारों में से एक है। गुरु यहाँ कुछ देर रुके और फिर दक्षिण की ओर चल पड़े।

लंका :

त्रिवेंद्रम से, गुरु नानक और मरदाना ने दक्षिण की ओर त्रिचनापल्ली की ओर प्रस्थान किया। त्रिचनापल्ली के पास तमिल के आलवार वैष्णव संतों का सबसे प्रसिद्ध मंदिर श्री रंगम था। यह मंदिर कावेरी और कोलरौन नदियों के बीच स्थित है। श्री रंगम का अर्थ तमिल में दो नदियों के बीच स्थित होना भी है। दक्षिण भारत में वैष्णवों का यह सबसे बड़ा मंदिर था। यहीं पर भक्ति संप्रदाय के नेता रामानुज ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष बिताए थे। इस मंदिर की सात परिक्रमाएँ हैं। गुरु साहिब कुछ समय के लिए यहाँ ठहरे थे और यहाँ एक गुरुद्वारा चंदू लाल ने बनवाया, पर यह आजकल दिखायी नहीं देता।

त्रिचनापाली से गुरु साहिब नाव से नागापट्टिनम पहुँचे। यह लंका जाने के लिए दक्षिण भारत के सबसे पुराने बंदरगाहों में से एक था। यहीं से गुरु साहिब लंका गए। गुरु नानक साहिब नागापट्टिनम से त्रिंकोमली और फिर मटियाकुलम (नई बटिकुला) आए।

बटिकुला के राजा शिव के उपासक थे। जनम साखियों में इसका नाम शिवनाभ लिखा है। इसका मतलब है कि वह शिव के उपासक थे। उन्होंने मनसुख से गुरु नानक साहिब की स्तुति सुनी थी। मनसुख ने भगीरथ के साथ सुल्तानपुर में गुरु से मुलाकात की थी। यहाँ वह कारोबार के सिलसिले में आया था और उसने राजा को गुरु नानक साहिब की महिमा बताई थी। जब राजा को पता चला कि एक साधु उत्तर भारत से आया है, तो उसने सुंदर महिलाओं को परीक्षा के लिए भेजा। उन्होंने कई रंग दिखाए लेकिन बाबा को मोह नहीं पायी। गुरु साहिब अपने ध्यान में मग्न रहे।

तब इस राजा ने स्वयं आकर पूछा कि तुम कौन हो? आप जोगी हैं या पंडित? तब गुरु ने यह शब्द पढ़ा।

जोगी जुगति नाम निरमाइल ता के मैल न राती।
प्रीतम नाथ सदा सच संगे जनम मरण गति बित।[41]

यह सुनकर राजा समझ गया कि जिस महापुरुष के विषय में मनसुख ने बताया था, वे ये ही हैं। राजा ने गुरु जी का अभिवादन किया और उन्हें अपने साथ महल में ले गया। कुछ समय राजा के पास रहकर, गुरु जी ने राजा से अनुमति लेकर बटिकुला से लगभग 12 मील दक्षिण में डेरे डाले। ये जगहें बहुत खूबसूरत थीं। यहीं पर गुरु जी ने ज्ञानी ज्ञान सिंह के अनुसार एक अच्छे भाट को सिख बनाया। जिस स्थान पर गुरु जी ठहरे थे, उस स्थान पर कुरुकल मंडप नामक नगर है। कुरुकुल एक तमिल शब्द है जिसका अर्थ है 'गुरु का नगर'। यहाँ के लोगो ने डॉ. कृपाल सिंह को बताया कि साढ़े चार सौ साल पहले यहाँ उत्तर भारत से एक सिद्ध बाबा यहाँ आए थे। उनकी याद में शहर बसा हुआ है।

लंका के राजा के साथ मिलन

कुरुकुल मंडप से, गुरु जी ने लंका के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल करतारगामा की यात्रा की, जो लंका के सुदूर दक्षिण पूर्व में स्थित है। भारतीय तीर्थयात्री गुरु साहिब से सदियों पहले इस स्थान पर आते थे। लंका के पूर्वी तट के बटिकुला से तीर्थयात्रियों ने करतारगामा की यात्रा की। तो गुरु जी वर्तमान कलमुनाई, तुकोइल, पाटुविल और पानम से गुजरते हुए मानक गंगा के तट पर प्रसिद्ध स्थान पर पहुँचे। ज्ञानी ज्ञान सिंह के अनुसार, गुरु साहिब करतरगामा या कार्तिक स्वामी के मंदिर से, बादुला नामक शहर में चले गए। वहाँ से वे नूरा अहिलिया के पहाड़ी इलाकों से गुजरे, जिन्हें सीता अहिलिया भी

कहा जाता है, और सीता वाका के माध्यम से कोटि राज पहुँचे। उस समय कोटि के नौवें राजा धर्म-प्रकर्मा बाहू शासन कर रहे थे। वह राजा गुरु जी के साथ चर्चा परिचर्चा से बहुत प्रभावित हुए।

कोटिराज में बौद्ध धर्म बहुत मजबूत था जो एक अनीश्वरवादी धर्म है। लेकिन गुरु नानक देव जी तो भगवान को अंग-संग मानते थे। गुरु जी ने उन्हें ईश्वरवाद का उपदेश दिया। जिससे राजा बहुत प्रभावित हुए। बौद्ध धर्म में, संघ-राजा बोद्धियों की सर्वोच्च स्थानीय उपाधि थी। जब उन्हें पता चला कि गुरु जी ने राजा को अपना अनुयायी बना लिया है, तो उन्होंने गुरु जी से चर्चा करने की कोशिश की। चूँकि गुरु का उपदेश मूर्तिपूजा और जाति के विरुद्ध था, इसलिए कुछ ब्राह्मण भी बौद्धों में शामिल हो गए। जब वे सभी कोटि के राजा के सामने चर्चा करने लगे, तो गुरु ने समझाया कि भगवान का नाम ही सभी को शांति देता है। गुरु ने यह शब्द गया :-

सतयुग सत सत बोलो। पोनाहारी मन नहीं डोले।
त्रेते जग भगत कमाई। जप तप संजम ताड़ी लायी।
द्वापर भागता पुन्न सतजुग त्रेता जुगा दुवापर पूजा चारे।
कलजुग कीर्तन नाम आधारा।
तीने जग तीने दृढे कलि केवल नाम आधार।[42]

यह सुनकर राजा धर्म प्रकर्मा बाहू और अन्य सभी बहुत प्रभावित हुए। गुरु साहिब कुछ देर कोटि रुके और फिर उत्तर की ओर चल पड़े।

उत्तर की ओर चलते हुए, गुरु साहिब सीतावाका पहुँचे, जिसे अब अविस्वेला कहा जाता है। यह कोलंबो से 33 मील उत्तर पूर्व में है। सीतावाका से गुरु साहिब अनराधपुरा पहुँचे। यह प्राचीन काल से श्रीलंका की राजधानी रही है। फिर उत्तर में तालीमीनार बंदरगाह है। पास ही पहिला मैनर का बंदरगाह था। इब्न बतूता भी यहाँ आया और वहाँ के मुसलमानों से मिला था। इस क्षेत्र में पानी की भारी कमी थी, और तालाबों में बारिश के पानी को भर कर पूरे साल भर इस्तेमाल किया जाता था। गाँव की आबादी भी तालाब के पास ही थी। इस क्षेत्र में चलते चलते भाई मरदाने को बहुत प्यास लगी। गुरु जी ने एक तलाब मरदाने को पानी पिलाया और खुद भी पिया। वह पड़ोस की बस्ती से कुछ खाना भी लाया और गुरु और मरदाने दोनों ने खाया। इस प्रकार गुरु ने मरदाने की भूख और प्यास बुझाई.

सेतुबंध-रामेश्वरम :

लंका में गुरु साहिब और भाई मरदाना बादबानी जहाज में सवार होकर सेतुबंध पहुँचे। यह स्थान रामेश्वरम से 8-9 मील की दूरी पर है। कहा जाता है कि श्री राम जी ने लंका पर विजय प्राप्त करने के बाद यहाँ एक पुल का निर्माण किया था। गुरु साहिब सेतबंध से रामेश्वरम आए। गुरुद्वारा नानक उदासी मठ यहाँ गुरु साहिब के आगमन की स्मृति में है। रामेश्वरम का मंदिर पामबन द्वीप के उत्तर पूर्व की ओर है। इसका आंतरिक भाग काले पत्थर से बना है जो लंका से लाया गया था। फर्ग्यूसन के अनुसार रामेश्वरम का मंदिर उतना बड़ा नहीं था जितना अब है। इसका अधिकांश भाग सोलहवीं से सत्रहवीं शताब्दी में बनाया गया था। गुरु साहिब ने रामेश्वरम के पास गोरख पंथी जोगिया से चर्चा की।

जब आप मंदिर जा रहे थे तो किसी ने कहा कि आप निरंकार के भक्त हैं और यहाँ क्यों जाते हैं। गुरु ने शब्द कहे:

दूजी माया जगत चित वासु। काम, क्रोध और अहंकार बिनास।

दूजा काऊन कहा नहीं कोई। सभ महि एक निरंजन सोई.[43]

यह सुनकर जोगी चुप हो गए और गुरु साहिब कुछ देर के लिए रामेश्वरम ठहर कर उत्तर की ओर चल दिए। रामेश्वरम से गुरु साहिब और मरदाना रामनादपुरम और त्रिवनमलाये से होते हुए वर्तमान त्रिवेंद्रम पहुँचे। उस समय त्रिवेंद्रम समुद्र से थोड़ी दूरी पर था और तिरुअनंतपुरम के नाम से प्रसिद्ध नगर था। यहाँ श्री अनंता पद्मनाभा स्वामी का एक पुराना मंदिर था। तिरुअनंतपुरम के नाम से, धीरे-धीरे इसका नाम त्रिवेंद्रम पड़ गया। त्रिवेंद्रम के पास, उत्तर पश्चिम में, दो छोटे शहर, पालम और कोट्टायम थे। यहाँ गुरु नानक साहिब आकर बैठे थे। यहाँ जोगियों का डेरा था, इस पर चर्चा करते हुए गुरु साहिब ने जोगियों को बांट कर खाने का निर्देश दिया। जोगिया ने आपको एक तिल दिया और कहा, "इसे बांटकर दिखाओ।" गुरु साहिब ने मरदाने से कुड़ी में कूटकर और पानी मिलाने को कहा और सब को बांट दिया। इस जगह को तिलगंजी साहिब कहा जाता है। यहाँ एक गुरुद्वारा है और उदासी संत सेवा करते हैं।

कौड़ा राक्षस से मिलन:

पालम कोट्टायम से गुरु ने उत्तर की ओर वर्तमान कोयम्बतूर जिले के दक्षिण में अन्नामलाई पहाड़ियों के पास आ गये, यह पर्वत पश्चिमी घाट के पहाड़ों का हिस्सा थे। इन्हें हाथी पर्वत भी कहा जाता है। इन पहाड़ों की ढलानों पर कादन नाम के जंगली लोग सदियों से बसे हुए हैं। ये लोग पहाड़ों की घाटियों में रहते थे और जंगली उपज पर रहते थे। बाकी जंगली जनजातियों की तरह, वे बाहरी व्यक्ति को मार डालते थे। इन कादान जंगली लोगों के लिए ही ऐसा लगता है कि कौड़ा लिखा गया है। जब गुरु अन्नामलाई पर्वत पर आए, तो एक कादीन ने मरदाने को पकड़ लिया और उसे मारने लगे। उसी समय गुरु जी वहाँ पहुँच गए। गुरु के मुख से तेज टपकता देख कादान चकित रह गया। गुरु जी ने मरदाने को रिहा कर करवाया और उसे अपने साथ ले कर उत्तर की ओर चल दिए। कहा जाता है कि यह कादान भी गुरु का शिष्य बन गया।

बीदर:

गुरु नानक मालाबार के नीलगिरि पर्वत से होते हुए बीदर नगर पहुँचे। यहाँ कभी बांस का जंगल हुआ करता था। जंगल काट दिया गया और वारंगल काकतीय राजाओं ने महादेव का मंदिर बनवाया। इसके चारों ओर बसे हुए नगर का नाम बीदर था। बीदर बहमनी साम्राज्य की राजधानी भी थी। बहमनी राजाओं के मकबरे बीदर के उत्तर, पूर्व और पश्चिम दिशा में मिलते थे। गुरु नानक साहिब बीदर के इस जंगल में रहे। इस क्षेत्र में दो मुस्लिम फकीर जलाउद्दीन और सैयद याकूब अली रहते थे। जब उन्हें गुरु साहिब के बारे में पता चला तो वे गुरु जी के दर्शन करने आए। गुरु जी कुछ समय यह रहे और यह शब्द उच्चरित किया :

मुसलमाना सिफति शरियत पढ़ी पढ़ी करहि बीचार।

बंदे से जि पवहि विचि बंदी वेखन कऊ दीदार।[44]

जलालुद्दीन और याकूबली दोनों की कब्रें अभी भी मौजूद हैं। इन कब्रों के पास मीठे पानी का एक चश्मा बहता है, जो गुरु नानक के समय की याद दिलाता है। इसे नानक झीरा कहा जाता है। यह शहर पहले हैदराबाद राज्य में था और अब कर्नाटक राज्य में है।

नांदेड़ः

नांदेड़ शहर बीदर से 117 मील उत्तर में था। गुरु साहिब नांदेड़ पहुँचे और शहर से तीन मील बाहर बैठ गए। जहाँ आजकल गुरुद्वारा माल टिकरी है। यहाँ एक फकीर सयत शाह हुसैन रहता था। गुरु जी कुछ देर उसके साथ रहे और फिर उत्तर की ओर चले गए। उस फकीर शाह हुसैन का लकड़ी का मकबरा गुरुद्वारे के पीछे बना है।

नर्मदा नदी के किनारे :

नांदेड़ से चलकर, गुरु साहिब देवगिरि जिसे आज दोलाताबाद कहते हैं यहाँ से होते हुए नर्मदा के किनारे पर पहुँचे जहाँ नर्मदा अरब सागर में मिलती है। इस शहर का नाम बरोच नगर था। जो अब रेलवे स्टेशन बरोच के पास है यहाँ गुरु जी को एक संन्यासी मिला, और उसने गुरु जी से पूछा कि जो मन ईश्वर से दूर है वह परमेश्वर को कैसे प्राप्त कर सकता है। गुरु साहिब ने वचन कहा:-

ना मन मरे ना कारज होई.
मन वसि दूता दुरमति दोई।
मन मानें गुर ते इक होई.[45]

यह वचन सुनकर तपस्वी ने गुरु का अभिवादन किया। गुरु साहिब कुछ समय के लिए यहाँ ठहरे। नानकवाडी गुरु नानक साहिब के सबसे पुराने स्मारकों में से एक है। 18वीं शताब्दी में, जब अंग्रेजों ने इस क्षेत्र का बंदोबस्त किया, तो उन्होंने गुरुद्वारे का नाम 75 रुपये प्रति वर्ष की जागीर शुरू की, जो आज भी जारी है। कुछ देर यहाँ रहने के बाद गुरु आगे बढ़े।

गिरनार पर्वत (सोरठि देश):

गुरु नानक साहिब बरोच से एक नाव पर सवार हुए और मौजूदा वैरावल बंदरगाह के पास तत्कालीन बंदरगाह प्रभास के पास पहुँचे। प्रभास बंदरगाह के पास सोमनाथ का एक मंदिर भी था। आप सोमनाथ मंदिर से 50 मील दूर गिरनार पर्वत पर पहुँचे। गिरनार पर्वत जूनागढ़ से 10 मील दूर है। जूनागढ़ क्षेत्र का पुराना नाम सोरठ था। सौराष्ट्र सोरठ का दूसरा नाम था। जिस समय गुरु नानकदेव जी सोरठ देश गए उस समय सोरठ पर मुजफ्फर द्वितीय (1511 से 1526 ईस्वी) का शासन था।

गुरु नानक देव जी ने मरदाने को रबाब और सोरठ राग गाने के लिए कहा और उन्होंने ये शब्द गाए:-

सोरठि सदा सुहावणी जे सचा मनि होई.
दंदी मैल न कतु मनि जीभै सचा सोई.[46]

(जूनागढ़) गिरनार पर्वतः

गुरु नानक साहिब के समय जूनागढ़ के पास गिरनार पहाड़ी गोरख पंथ जोगियों के लिए एक प्रसिद्ध स्थान था। जोगी परंपरा के अनुसार, गुरु दत्तात्रेय मच्छेन्द्रनाथ के गुरु थे। उन्होंने मच्छेन्द्रनाथ को दीक्षा दी मच्छेन्द्रनाथ ने गोरख नाथ को। दत्तात्रेय का स्थान गिरनार पर्वत की एक ऊँची चोटी पर था। गिरनार पर्वत की पाँच चोटियाँ थीं जिनके वर्तमान नाम हैं: अम्बा माता, गोरख नाथ, उग्र शिखर, गुरु दत्तात्रेय और कालका जी। इन चोटियों के रास्ते में जैन मंदिर भी आते थे। अम्बा माता का मंदिर वास्तव में जैनियों का मंदिर है। इस पर्वत पर सभी मतों और संप्रदायों के संत रहते थे। आज गिरनार पर्वत पर तीन कुण्ड हैं। गोरख मुखी कुंड, हनुमान धारा और कमण्डल कुंड। जब गुरु नानकदेव जी गिरनार पर्वत पर गए, तो सिद्धों ने गुरु नानक से पानी मांगा। तब गुरु नानकदेव जी ने कमण्डल उठा कर फेंका, और वहन कमण्डल कुण्ड बन गया। लेकिन जूना गढ़ में आजकल गुरु नानक देव जी का कोई स्मारक नहीं है। नानक संप्रदाय का मत है, कि, जहाँ आजकल देवी दुर्गा का मंदिर है, वहाँ नानक शाही गुरुद्वारा हुआ करता था, जहाँ सुथरे शाही संत रहते थे और जो यह स्थान एक गृहस्थ को बेच कर चले गए। गुरु जी कुछ समय के लिए गिरनार में रहे और फिर उत्तर की ओर चल पड़े।

उज्जैन :

जूनागढ़ से गुरु जी और भाई मरदाना ने पहले उत्तर और फिर पूर्व की यात्रा की और अहमदाबाद होते हुए उज्जैन पहुँचे। पश्चिमी तट से व्यापारी अहमदाबाद और उज्जैन आते जाते रहते थे, क्योंकि दोनों बड़े व्यापारिक केंद्र थे।

भर्तृहरि हरि की गुफा सपरा नदी (अवंती नदी) के तट पर थी। भर्तृहरि हरि की गुफा के पास एक मुस्लिम मस्जिद भी थी, जिसके सामने एक इमली का पेड़ था। इसी पेड़ के पास गुरु साहिब ने डेरा डाला था। इस गुफा के पास एक हरा-भरा रहता था। जब उन्होंने भाई मरदाना और गुरु नानक को कीर्तन करते हुए देखा, तो वे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने आकर गुरु जी से पूछा कि यहाँ आने वाले कितने योगी मोक्ष प्राप्त करेंगे।

आध्यात्मिक करम करे ता साचा। मुक्ति भेदू किया जाने कच्चा।
ऐसी जोगी जुगाती बिचाराई, पंच मारी साचु उरी धारै।
जिस के अंतरि साचु वसावै, जोग जुगति की कीमति पावै।[47]

इन शब्दों को सुनकर भर्तृहरि के मन की अनेक शंकाएँ दूर हो गई और अन्य अनेक विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। एक दिन भर्तृहरि ने फिर पूछा। आपका ज्ञान मार्ग क्या है? आप किस स्नान को सबसे ज्यादा महत्त्व देते हैं? आप किसका सिमरन करते हैं? इसी तरह कई अन्य विषयों पर भी खुली चर्चा हुई और भर्तृहरि बहुत प्रभावित हुए। कुछ समय के लिए गुरु जी भर्तृहरि के साथ रहे और फिर आगे उत्तर की ओर बढ़े।

मथुराः

उज्जैन से गुरु साहिब और भाई मरदाना चितौड़ और अजमेर होते हुए मथुरा पहुँचे। रास्ते में अजमेर के पास पुष्कर झील में गुरु नानक देव का एक पुराना गुरुद्वारा हुआ करता था। यह डॉ. कृपाल सिंह जी का मानना हैं, लेकिन आजकल वहाँ कोई गुरुद्वारा नहीं है। विदेशियों के शासनकाल के दौरान, मथुरा को विष्णु मत का ज्ञान केंद्र माना जाता था जिसके पश्चिमी क्षेत्र को बृजभूमि कहा जाता

था, क्योंकि इसमें श्री कृष्ण जी महाराज के जन्मस्थान और उनके जीवन के अन्य पहलुओं से संबंधित कई स्मारक शामिल थे। दिल्ली से इसकी निकटता के कारण, यह विदेशी सम्राटों के प्रति पक्षपात और द्वेष का प्रतीक बना रहा। महमूद गजनवी ने सबसे पहले मथुरा के मंदिर को तोड़ा था। सम्राट सिकंदर लोधी (1488-1517) ने भी मथुरा में कई मंदिरों को तोड़ा था।

गुरु नानक साहिब मथुरा में केशव देव के एक मंदिर में जाकर ठहरे। जब इस मंदिर में गुरु साहिब विराजमान थे, तो उनके पास कई भक्त आकर बैठ गए और बात करते हुए भक्तों ने पूछा, "यदि आपने भगवान को पाया है, तो आपने उन्हें किस सेवा से पाया है?" तो आपने इसका उत्तर दिया-

सहिज मिलै मिलिआ परवाण,
ना तिस मरण ना आवण जाण।
ठाकुर महि दास दस महि सोई।
जह देखा तह अवर ना कोई।
गुरमुखि भगति सहज घर पाईए।
बिन गुर भेटे मरि आइये जाइए।[48]

एक बार वैष्णव मत के लोग गुरु जी के पास आए और उनसे पूछा कि आपका पंथ कौन सा है? अनुपालन क्या है? और क्या उपदेश है? फिर आपने यह शबद गाया:

अपने ठाकुर की हऊ चेरी।
चरनि गहे जगजीवन प्रभ के हऊमै मार निबेरी।
रहाऊ पूरन परम जोति परमेसर प्रीतम प्राण हमारे।।[9]

उन वैष्णवों ने शब्द सुनने के बाद, गुरु साहिब को नमस्कार किया और गुरु साहिब कुछ समय के लिए मथुरा में रहे और फिर दिल्ली के लिए रवाना हो गए।

दिल्ली में उपदेश:

मथुरा से चलकर गुरु साहिब और भाई मरदाना दिल्ली पहुँचे। दिल्ली के बाहर शाही रास्ते पर एक पेड़ के नीचे, गुरुओं ने डेरा डाला और मधुर स्वर में कीर्तन शुरू कर दिया। कीर्तन से प्रभावित होकर बगल के बगीचे के मालिक ने उन्हें बगीचे में रहने को कहा। गुरु जी मान गए, गुरु नानकदेव जी और भाई मरदाना प्रतिदिन बगीचे में कीर्तन करने लगे, और संगतें जुड़नी शुरू हो गई। गुरु साहिब ने प्यासों के लिए वहाँ एक कुआं खुदवाया ताकि हर प्यासे को पानी मिल सके। जो पैसा लोग चढाते थे उस पैसे का लंगर लगा दिया जाता था। यह व्यवस्था इतनी अच्छी थी कि कोई भी यात्री भूखा-प्यासा नहीं रहता था। बगीचे के मालिक ने यह बाग गुरु नानक देव जी की धर्मशाला बना दी। इसी स्थान पर गुरुद्वारा नानक पियाउ है। डॉ. त्रिलोचन सिंह लिखते हैं कि इसका पहला नाम पियाउ साहब था। यहाँ गुरु साहिब ने एक अभिमानी तपस्वी के अभिमान को ज्ञान-चर्चा के माध्यम से तोड़ा था।

दिल्ली में एक फकीर मजनू रहता था। गुरु जी ने इसकी मेहनत की बात सुनकर, यमुना के किनारे एक टीले परजहाँ उसकी झोपडी थी उस का दरवाजा खटखटाया। मजनू गुरु जी के दर्शन करके निहाल हो गया। उसके भीतर उस नूर की ज्वाला जग उठी जिसकी खोज और दर्शन के लिए वह दीवाना हो गया था। उसने गुरु नानक देव जी को अपना पीर मानकर उस निवास स्थान को गुरु नानक देव जी का स्थान बना दिया। इस जगह को मजनू का टीला कहा जाता है और यहाँ एक खूबसूरत गुरुद्वारा साहिब बनाया गया है। बाद में गुरु हर गोबिंद सिंह जी और बाबा राम राय जी इस स्थान पर ठहरे थे।

दिल्ली से कई अन्य संत-भक्त, सूफी फकीर गुरु के साथ यहाँ विचार-चर्चा करने के लिए आए और गुरु जी का बहुत मान-सम्मान किया। जन्मसाखियों के संदर्भ में डॉ. कृपाल सिंह जी और प्रधानाचार्य सतबीर सिंह जी दिल्ली आने के विषय में पूर्व से दक्षिण की यात्रा की वापसी से मानते हैं; जबकि डॉ.त्रिलोचन सिंह पूर्व की ओर प्रस्थान करने से पहले गुरु साहिब के दिल्ली आने के बारे में लिखते हैं।

पानीपत :

गुरु नानकदेव जी और भाई मरदाना ने दिल्ली से पानीपत की ओर कूच किया, जो शेर शाह सूरी मार्ग के शहर पर स्थित है। पानीपत में एक प्रसिद्ध फकीर, बुआली कलंदर शेख शरफौद-दीन रहता था, जिसे शाह शरफ भी कहा जाता था। 1325 ई.में उनकी मृत्यु हो गई। उनका मकबरा पानीपत में था। गुरु साहिब के समय यह दरगाह सूफी फकीरों का प्रमुख केंद्र था। शेख इदल कबीर उस समय शाह शरफ की दरगाह पर विराजमान थे। उन्हें महान कार्य करने वाला एक फकीर माना जाता था। इसके कई नाम थे और शेख ताहिर भी उनमें से एक था। अरबी में तहर का मतलब पवित्र होता है। जनम सखियों में इसे शेख तातिहार लिखा जाता है। शेख तहर और उसके अनुयायी गुरु साहिब के दर्शन करने आए और कुछ समय बाद पूछने लगे कि सफा (साफ)दिल दरवेश कैसा होता है? और उसका व्यवहार कैसा होता है? इसके जवाब में, गुरु साहिब ने यह शबद गाया:

जीवत मरै जागत फन सोवे। जानत आप मूसावै।
सफल सफा होई मिले खालक कऊ तऊ दरवेसु कहावै।
तेरा जन है को ऐसा दिली दरवेस।
सादी गमी तमक नाही गुसा खुदी हिरस नहीं एस।[50]

शेख ताहिर इन शब्दों को सुनकर प्रसन्न हुआ और गुरु जी का अभिवादन किया। गुरु साहिब यहाँ कुछ देर रुके और फिर आगे चले दिए।

वापस सुल्तानपुर लौटना :

पानीपत से गुरु साहिब और मरदाना पहले थानेसर से होते हुए वर्तमान सगरूर से होते हुए तहसील मोगा जिला फिरोजपुर के तख्तूपुरा थाना निहाल सिंघवाला गाँव पहुँचे। गुरु साहिब की याद में एक ऐतिहासिक गुरुद्वारा भी है। तख्तपुरा से सतलुज को पार करते हुए गुरु जी सुल्तानपुर पहुँचे। सुल्तानपुर आप जी बहन नानकी और फूफा जय राम जी से मिले। इतने सालों बाद भाई जी से मिल कर बहन नानकी बहुत भावुक हो गई लेकिन गुरु साहिब तो मोह-माया से अलग थे। बहन अपने भाई से मिल कर बहुत खुश हुई।

पट्टी के जमींदारों को उपदेश:

सुल्तानपुर से गुरु जी मौजूदा पट्टी हैबत खां पहुँचे। आपने यहाँ

के जमींदारों को जोतते देखकर पूछा कि आप जो खेती करते हैं और करवाते हैं उसका क्या परिणाम होगा? जमींदार ने अहंकार में कहा कि इससे हम आप जैसे संत को खाना खिलाते हैं, परिवार पालते हैं, रिश्तेदारों के साथ व्यवहार करते हैं। इस तरह यह किसानी होती है। हमारी आजीविका का मुख्य साधन है। गुरु साहिब ने जमींदार का उत्तर ध्यान से सुना और कहा, आत्मा की मुक्ति के लिए आप क्या करते हैं? वह एक और तरह की किसानी होती है जिसके साथ आत्मा प्रफुल्लित होती है। तब किसानों ने कहा कृपया हमें भी बतायें ;तो गुरु जी ने ये शब्द पढ़ेः–

इह तन धरती बीज करमा करो सलिल आपाऊ सारिंगपाणी।
मन किरसाण हरि हृदय जमाई लै इहु पावसि पद निरबाणी।
काहे गरबसि मूडे माइआ।[51]

यह सुनकर जमींदारों ने गुरु जी को प्रणाम किया और उनके चरणों में पड़े। गुरु साहिब पट्टी से आगे पश्चिम की ओर चल दिए।

तलवंडी :

पट्टी से गुरु नानक देव जी और मरदाना खालडे और फिर घविंडी नगर होते हुए तलवंडी पहुँचे। खालड़े और घविंडी में भी गुरु नानकदेव जी की याद में गुरुद्वारे भी बने हुए हैं। इस प्रकार पूरब और दक्षिण की उदासी (प्रचार-यात्रा)को लगभग 12 वर्ष लगे और 12 साल बाद तलवंडी पहुँचे। मरदाने को बहुत उत्साह था कि तलवंडी में परिवार और अपने सभी रिश्तेदारों से मिलेगा। तलवंडी में वे सभी से मिले और प्रसन्न हुए। गुरु नानकदेव जी भी अपने माता-पिता से मिले। माता तृप्ता बहुत व्याकुल थी। वे अपने पुत्र को देखकर प्रसन्न हुई और उन्हें अनेक आशीर्वाद दिए। कुछ महीने तलवंडी में रहने के बाद, गुरु साहिब उस आदमी को अपने साथ ले गए और सुमेर पर्वत की यात्रा पर निकल पड़े।

सन्दर्भः

1. भाई गुरदास, वार पहली, पऊडी 24
2. वही
3. गु.ग्र. पृ. 662
4. गु.ग्र. पृ. 991
5. किरपाल सिंह, जनमसाखी परंपराःऐतिहासिक दृष्टिकोण से, न। 9
6. गु.ग्र. पृ. 729
7. देखें, वही, पृ. 729
8. गु.ग्र. पृ. 1291
9. गु.ग्र. पृ. 794
10 .गु.ग्र. पृ. 729
11. त्रिलोचन सिंह, जीवन चरित्र, गुरु नानकदेव, पृ. 11
12. गु.ग्र. पृ. 124
13. गु.ग्र. पृ. 1289
14. गु.ग्र. पृ. 1289
15. गु.ग्र. पृ. 730
16. गु.ग्र. पृ. 730
17. गु.ग्र. पृ. 730
18. गु.ग्र. पृ. 1127
19. गु.ग्र. पृ. 957
20. गु.ग्र. पृ. 634
21. गु.ग्र. पृ. 1171
22. गु.ग्र. पृ. 467
23. गु.ग्र. पृ. 472
24. गु.ग्र. पृ. 472
25. गु.ग्र. पृ. 661
26. गु.ग्र. पृ. 358
27. त्रिलोचन सिंह, वही, पृ. 155
28. किरपाल सिंह, वही, पृष्ठ, 59
29. गु.ग्र. पृ. 416
30. त्रिलोचन सिंह, वही, पृष्ठ, 158
31. प्रिंसिपल, सतबीर सिंह, पृ. 98
32. किरपाल सिंह, वही, पृ. 12
33. गु.ग्र. पृ. 557
34. गु.ग्र. पृ. 349
35. किरपाल सिंह, वही, पृ. 65
36. त्रिलोचन सिंह, वही, पृ. 173
37. गु.ग्र. पृ. 352
38. गु.ग्र. पृ. 14
39. गु.ग्र. पृ. 663
40. गु.ग्र. पृ. 220
41. गु.ग्र. पृ. 992
42. किरपाल सिंह, वही, पृ. 81 (यह शब्द गुरु ग्रन्थ साहिब में नहीं है)
43. गु.ग्र. पृ. 223
44. गु.ग्र. पृ. 465
45. गु.ग्र. पृ. 222
46. गु.ग्र. पृ. 642
47. गु.ग्र. पृ. 223
48. गु.ग्र. पृ. 686
49. गु.ग्र. पृ. 1197
50. किरपाल सिंह, वही, पृ. 88
51. गु.ग्र. पृ. 23

(हिंदी अनुवाद - डॉ. शोभा कौर)

गुरु गोबिंद सिंह जी (1666-1708) की सनातन धर्मी विश्व दृष्टि का वीर सावरकर 1883-1966) पर प्रभाव: "हिंदुत्व" एवं "छः स्वर्णिम पृष्ठ" के विशेष संदर्भ में

प्रो. सुधीर कुमार

प्रस्तुत आलेख में गुरु गोबिंद सिंह जी (1666-1708) की सनातन धर्मी विश्व दृष्टि का वीर सावरकर जी (1883-1966) के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर जो गहरा प्रभाव पड़ा उसके अनुशीलन का एक प्रारंभिक प्रयास किया गया है। यहाँ यह रेखांकित करना नहीं भूलना चाहिए कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में सत्ताधारी वर्गों द्वारा लिखवाई तथा विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक के शैक्षणिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित पाठ्य पुस्तकों (विशेषत: मानविकी, इतिहास, समाज-विज्ञान राजनीति शास्त्र, सामाजिक/ सांस्कृतिक अध्ययन आदि) में जहाँ एक ओर महान सिख गुरुओं और उनकी कालातीत सनातन धर्मी विश्व दृष्टि का और उनके असीम त्याग और बलिदान का कोई विशेष उल्लेख जानबूझकर नहीं किया गया है; वहीं दूसरी ओर राष्ट्र-प्रेम और सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति के प्रखर हस्ताक्षर-वीर सावरकर के अविस्मरणीय व्यक्तित्व और कृतित्व को भी लगभग अनुपस्थित रखा गया है। यदि आप भारतीय इतिहास की मानक एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित कक्षा 6 से 12 तक की पाठ्य पुस्तकों का किंचित भी अध्ययन करें, तो आपको या किसी भी सुधी पाठक को यह आसानी से ज्ञात हो जाएगा कि पाठ्य पुस्तकों में (जो अधिकांशत: मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित लेखकों द्वारा लिखी गई हैं) सभी महान सिख गुरुओं को, उनके जीवन-दर्शन, अद्भुत राष्ट्र-प्रेम, त्याग व सेवा-समर्पण के उद्धरणों, उदाहरणों व महत्त्व को न केवल अनदेखा किया गया है, बल्कि उनके कृतित्व एवं योगदान को 'स्थानीय', 'आंचलिक', 'सामंतवादी', 'अप्रगतिशील', 'राष्ट्रवाद से रहित' जैसे असत्यपरक विशेषणों से व्याख्यायित किया गया है। किम्- बहुना, भारतीय स्वतंत्रता-सेनानियों क्रांतिकारियों तथा राष्ट्रप्रेम के अप्रतिम नायकों, जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अपने जीवन को पूर्णतया समर्पित कर दिया था (जैसे भगत सिंह, चाफेकर बंधु, चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, लाला लाजपत राय, सुभाष बोस, वीर सावरकर, स्वामी श्रद्धानंद आदि)-उनके महान योगदान को भी सम्यक प्रकार से पाठ्य पुस्तकों में नहीं रखा गया है-कहीं पर उन्हें 'क्रांतिकारी आतंकवादी', 'अतिवादी', 'कट्टर हिंदूवादी', 'फासिस्ट' जैसे विशेषणों से सजाकर राष्ट्र की युवा पीढ़ी के सामने प्रस्तुत किया गया। प्रस्तुत आलेख में यह देखने का एक विनम्र प्रयास किया गया है कि महान सिख गुरुओं की धर्म-केंद्रित जीवन दृष्टि उनके ज्ञान, कर्म, भक्ति और त्याग/ परोपकार के समवाय पर आधारित जीवन से जिसे किसी भी कट्टर विचारधारा के माध्यम से एक विशेष वर्ग या समुदाय की जीवन-दृष्टि के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, किस प्रकार आधुनिक भारत में एक महान कर्मयोगी-चिंतक-वीर सावरकर ने, प्रेरणा प्राप्त की-ताकि भारत की आने वाली युवा पीढ़ी सनातन-धर्मी विश्व-दृष्टि से प्रेरणा ले सके, लेता रहे।

सनातन-धर्मी सिख विश्व-दृष्टि, गुरु गोबिंद सिंह एवं वीर सावरकर

भारत के चारों प्रमुख पंथों-हिंदू, बौद्ध, जैन और सिख को धर्म-केंद्रित, और इसी महत्तर अर्थ में सनातन धर्मी, विश्व-दृष्टियाँ कहा जा सकता है। चारों जीवन-दृष्टियों जोकि अन्यतम रूप से अंतर्संबंधित होकर एक सनातन धर्मी ज्ञान परंपरा या संस्कृति का निर्माण करती हैं, के केंद्र में पुरुषार्थ, धर्म और सत्य जैसे मूल्य-परक तत्व या घटक हैं-चाहे उनकी सामाजिक उपासना पद्धतियों व शब्दावलिओं में भेद हो। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में स्पष्ट है :

"ब्रह्म महि जनु जन महि पारब्रह्मु।।
एकहि आपि नहीं कछु भरमु।।"

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 287)

पुनश्च:

"निरंकार आकार आपि निरगुन सरगुन एक।।
एकहि एक बखाननी नानक एक अनेक।।

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, महला 5, पृ. 250)

"नानक दूजा अवर ना कोई.।"

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 278)

सनातन धर्मी जीवन या विश्व दृष्टि का प्रमुख घटक या तत्व "एकात्मक चराचर सृष्टि-दर्शन है जिसे 'अद्वैत' दर्शन भी कहा जाता है-जिसकी प्राप्ति के लिए सम्यक कर्म, सम्यक ज्ञान, सम्यक भक्ति व धर्म व मोक्ष/मुक्ति हेतु किया जाने वाला पुरुषार्थ परमावश्यक है। तभी तो श्रुति कहती है:

"सर्व खलु इदं ब्रह्म तज्जलानिति शांति उपासीत।"

(छांदोग्योपनिषद, 14.1. पृ. 217)2

"तत्वमसि" (वही, पृ. 453)

"अयं आत्मा ब्रह्म" (माण्डुक्य उपनिषद 1.2 पृ. 10)3

"प्रज्ञानं ब्रह्म" (ऐतरेय उपनिषद 1.3 पृ. 69)4

एकात्मता और अद्वैत का यह समवायित भाव भारत के सनातन धर्मी पंथों (हिंदू, सिख, जैन, बौद्ध) में प्रमुख रूप से दृष्टव्य है। किंतु यहाँ यह भी नहीं विस्मरण करना चाहिए कि सनातन धर्म-केंद्रित विश्व-दृष्टियों में "एकात्मकता/अद्वैत" का अर्थ मानव के पुरुषार्थ (विशेषत: धर्म व मुक्ति/ मोक्ष) पर आधारित है। सिख गुरुओं ने अर्थ, काम, को धर्म केंद्रित रखते हुए परम सत्य के साक्षात्कार की, परम आनंद की अनुभूति की बात कही है। अत: संसार या

संसारिकता या इतिहास से सिख गुरुओं ने पलायन नहीं किया, उनके सत्यों, असत्यों को स्वीकार करते हुए, सत्य और धर्म पर चलने का इन सनातन मूल्यों को आचरण में लाने का मार्ग अपने चरित्र व बाणी द्वारा प्रकाशित किया जैसा कि सनातन धर्म के केंद्र में है :

"सदा सच्चिदानंद सत्रं प्रनासी"

(श्री गुरु गोबिंद सिंह जी, श्री दसम ग्रन्थ साहिब, पहली सैंची पृ. 25)[5]

"कहूँ शस्त्र धारी कहू विद्या के विचारी,
कहूँ मारत कहूँ नार के निकेत हो।
...कहूँ धरम धामी कहूँ सरब ठऊर गामी
कहूँ देत कहूँ लेत हो।"

(श्री दसम ग्रन्थ साहिब, पहली सैंची पृ. 29)

"आदि अपार अलेख अनंत अकाल अलक्ख अनसा।
कै सिव शकति दए स्रुति चार रचो तम सत्त तिहु पुर बासा।"

(वही, चंडी चरित्र पृ. 159)

इसी 'चण्डी चरित्र उकति बिलास' में श्री गुरु गोबिंद सिंह जी शक्ति की साधना उपासना करने का आह्वान करते हैं क्योंकि संसार में रहते हुए अधर्म, अन्याय की प्रतीक आसुरी शक्तियों का संहार करना भी मानव का धर्म है :

"तारन लोक उधारण भूमहि दैत संहारण चंद तुही है।"

(वही, पृ. 159)

और तो और जहाँ मानव चेतना में एक और "शक्ति" का प्रादुर्भाव राक्षसी और धार्मिक अमानवीय शक्तियों के विनाश के लिए हो वही श्री गुरु गोबिंद सिंह जी इसी "शक्ति" का रूपांतरण काव्य प्रतिभा के रूप में भी दर्शाते हैं।

"तामस ता ममता नमता कविता कवि के मन मद्धि गुही है।"

(वही, पृ. 159)

कहना न होगा कि गुरु नानक जी से लेकर गुरु गोबिंद सिंह जी (1666-1708) तक सिख गुरुओं की विश्व-दृष्टि,-सत्य और धर्म-इन दो मूल्यों पर, इनको आचरण में लाकर चरितार्थ करने पर और प्रत्येक परिस्थिति में मानव को 'धर्म' की रक्षा करने के लिए हमें प्रेरित करती है। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है सनातन धर्मी पंथों/ विश्व दृष्टिओं में धर्म-अंग्रेजी प्रत्यय 'रिलीजन' का पर्याय नहीं है। धर्म से अर्थ है-कर्तव्य, नैतिकता, अध्यात्म, चरित्र, अधिकार, न्याय सार-तत्व जिससे धारण किया जाए (आप्टे, पृ. 489-90) इत्यादि।

संक्षेप में सभी सिख गुरुओं के जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति का अद्‌भुत समन्वय परिलक्षित होता है और इस सनातन धर्मी जीवन-दृष्टि की पराकाष्ठा श्री गुरु गोबिंद सिंह जी के चरित्र में दृष्टिगोचर होती है। शस्त्र-शास्त्र-समाज-संस्कृति-राष्ट्र और चराचर जागतिक चेतना से संपन्न अवतार पुरुष श्री गुरु गोबिंद सिंह जी मानव द्वारा धर्म रक्षार्थ किए गए त्याग, बलिदान व संघर्ष के अप्रतिम उदाहरण हैं।

क्या भारत का इतिहास गुरु तेगबहादुर जी, गुरु अर्जुन देव जी, गुरु गोबिंद सिंह जी के अमर बलिदान की कथाओं को विस्मृत कर सकता है? यक्ष प्रश्न यह है कि अभी तक भारत की एनसीईआरटी की पाठ्य पुस्तकों से सिख गुरुओं की सनातन धर्मी विश्व दृष्टि व उनके अन्याय, अधर्म के विरोध में किए गए त्याग, बलिदान व संघर्ष की घटनाओं को अलग कर दिया गया है या जानबूझकर सम्मिलित ही नहीं किया गया है ?

इस्लामी कट्टरवादी/ आतंकवादी शक्तियों (मजहबी) द्वारा किए जा रहे बर्बरता पूर्वक अत्याचार अधर्म के विरुद्ध किए गए सिख गुरु के संघर्ष व त्याग से यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने वाले महान वीर सावरकर (1883-1966) जैसे चिंतक-कवि-कर्मयोगी ने, प्रेरणा प्राप्त की इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए!! यहाँ यह स्पष्ट करना समीचीन होगा कि आधुनिक भारत के लगभग सभी महान चिंतकों / स्वतंत्रता सेनानियों ने महान सिख गुरुओं से उनके कृतित्व/चरित्र से किसी ना किसी रूप में प्रेरणा प्राप्त की (श्री अरविंद, स्वामी विवेकानंद, गांधीजी, लाला लाजपत राय, लोकमान्य तिलक, डॉ. अंबेडकर, रविंद्र नाथ टैगोर आदि) किंतु जिस प्रकार की निष्ठा व गहराई से वीर सावरकर जी ने श्री गुरु गोबिंद सिंह जी व उनकी विश्व दृष्टि का अध्ययन किया। वह उससे तादात्म्य स्थापित किया, जो कि वीर सावरकर के चरित्र व रचनात्मक लेखन में समान रूप से परिलक्षित होता है वैसा किसी भी अन्य आधुनिक भारतीय चिंतक स्वतंत्रता सेनानी के चरित्र लेखन में दृष्टिगत नहीं होता है।

वीर सावरकर एवं महान गुरु गोबिंद सिंह जीः कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदुः

1906 में 'एस एस पर्शिया' नामक जलयान से जब सावरकर जी इंग्लैंड जा रहे थे, तब एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी; 7 जिसका संक्षेप में उल्लेख निम्नवत हैः 'वीर सावरकर के एक सहयात्री अमृतसर के निवासी श्री हरनाम सिंह जी थे-जिनकी पगड़ी व वेशभूषा देखकर यूरोपीय गोरे यात्री व उनके बच्चे उनका उपहास उड़ाते थे। यह देखकर एक अभिजात्य, धनी पंजाबी यात्री ने हरनाम सिंह जी को पगड़ी पहनकर जहाज के डेक पर न जाने की सलाह दी। वीर सावरकर जी ने उस तथाकथित 'शिष्टाचारी' धनी पंजाबी से कहा कि किसी भी सिख के लिए पगड़ी पहनना उसके जीवन-दर्शन का अभिन्न अंग है-उसे पगड़ी उतारने को कहना हमारा राष्ट्रीय अपमान है, (देखें-सम्पत, पृ. 92-94); बल्कि हम सभी भारतीय यात्रियों को इस जहाज पर पगड़ी पहननी चाहिए ताकि यूरोपीय यात्री हमारा उपहास करने का साहस ही ना कर पाएँ। विनायक सावरकर जी ने हरनाम सिंह को गुरु गोबिंद सिंह जी और उनके सुपुत्रओं के अमर बलिदान की कथा सुनाई, जिसके कारण हरनाम सिंह जी का आचरण ही परिवर्तित हो गया-अब वे आत्मविश्वास व वीरता से युक्त होकर जहाज पर भ्रमण करते थे।'

वीर सावरकर जी ने जीवन-दृष्टि व दर्शन के गंभीर अध्ययन के लिए गुरमुखी लिपि सीखी और सिख पंथ के सभी ज्ञान-ग्रंथों का मूल भाषा में (आदि ग्रंथ, पंथ-प्रकाश, सूरज प्रकाश, विचित्र नाटक तथा महान गुरुओं की अन्य रचनाएँ आदि) पढ़ी और उन पर गहन चिंतन किया। कितने भारतीय इतिहासकारों ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि सावरकर जी ने 'खालसा-श्रृंखला' प्रारंभ की जिसके अंतर्गत उन्होंने अपने आलेख पत्रों/ निबंधों को प्रकाशित किया और ब्रिटिश साम्राज्यवादी सेना में कार्यरत सिख-सिपाहियों से अनुरोध

किया कि वे ब्रिटिश सेना को त्याग कर भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित होकर भारत माता को स्वतंत्र करवाएँ। उन्होंने अपने इस 'खालसा-श्रृंखला' के आलेखों में सिख गुरु श्री गुरु गोबिंद सिंह जी की 'खालसा' (धर्म-रक्षार्थ व सामाजिक समानता, समरसता हेतु निर्मित सनातन-धर्मी संगठन-जो सिख पंथ का प्रमुख अंग हो गया है) की जीवंत अवधारणा को केंद्र में रखा। ब्रिटिश सत्ता ने परिणाम स्वरूप 'इंडिया पोस्ट एक्ट' के अंतर्गत सावरकर जी कृत 'खालसा-श्रृंखला' के पत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया।[8]

अपने महत्त्वपूर्ण प्रबंध 'हिंदुत्व' (1923) में 'हिंदुत्व' को किसी भी प्रकार के पंथ-या-मत पर आधारित अवधारणा तथा 'हिंदुइज्म' जैसी अतार्किक संज्ञा से पृथक सिद्ध करते हुए-वीर सावरकर जी ने हिंदुत्व को एक सांस्कृतिक-भौगोलिक जीवन पद्धति बताया जिसके केंद्र में धर्मतत्व है और उसके उदात्त उदाहरण के लिए श्री गुरु तेगबहादुर जी और श्री गुरु गोबिंद सिंह जी को उद्धृत किया-'जब औरंगजेब ने कश्मीरी ब्राह्मणों ने कहा गया कि या तो मुसलमान बनो या मरने के लिए तैयार हो जाओ तब उन्होंने गुरु तेगबहादुर जी से संपर्क किया, तेगबहादुर जी ने निडरता पूर्वक कहा :

तिन ते सुन श्री गुरु तेगबहादुर। धर्म निवारण विषे बहादुर।
उत्तर भनयो कर्म हम हिन्दू। अति प्रिय किम करे निकंदु।
(सूरज प्रकाश ग्रन्थ)

अर्थात् यह शब्द सुनकर गुरु तेगबहादुर जी ने उत्तर दिया-प्राण से भी प्रिय हिंदू धर्म की अप्रतिष्ठा मैं नहीं कर सकता।

उन्हीं के यशस्वी पुत्र गुरु गोबिंद सिंह कवि, दृष्टा तथा हम हिंदुओं के लिए युद्ध करने का प्रण करने वाला योद्धा अपनी कविता में कहता है :

"सकल जगत में खालसा पंथ गाजे,
जगे हिंदू धर्म सकल भंड भाजे।" (विचित्र नाटक)

खालसा पंथ का सर्वत्र प्रसार हो। हिंदू धर्म चिरंजीवी चिरंजीत हो तथा सभी आडम्बरों का नाश हो। [9]

(सावरकर समग्र भाग 9, पृ. 70-71)

अपने इसी महत्त्वपूर्ण प्रबंध "हिंदुत्व" में चार शीर्षकों के अंतर्गत "हमारे सिख बंधुओं का उदाहरण","सिख वास्तविक रूप में हिंदू ही हैं", "स्वतंत्र प्रतिनिधित्व और सिख समाज" हिंदुओं से अलग समझना सिखों के लिए भयंकर हानिकारक होगा" (कृपया देखें सावरकर समग्र भाग 9 पृ. 119-125) सावरकर जी ने सनातन धर्मी विश्व दृष्टिओं के एकत्व (उदाहरणार्थ हिंदू और सिख) को प्रमाणित करते हुए कहा-"आज का सिख कल का हिंदू है। कदाचित हिंदू भविष्य में सिख बन सकता है। रोज के व्यवहार रीति रिवाज तथा पहनावे में फर्क हो सकता है, परंतु इस कारण रक्त अथवा बीज में कोई फर्क नहीं आता है अथवा इतिहास को संपूर्णत: मिटा कर नष्ट नहीं किया जा सकता। हमारे सिख बंधुओं का हिंदुत्व स्वयंसिद्ध है... गुरु ग्रंथ को पवित्र मानकर उनका पठन सिखों के समान सनातनी भी करते हैं।..सिख और सनातनियों में परस्पर अंतरजातीय विवाह रूढ़ हो चुके हैं। वैष्णव जिस प्रकार वैष्णव बने हुए हैं, इसी प्रकार सिख भी सिख बने रहने चाहिए, जैन, वैष्णव या लिंगायत भी अपने को उसी प्रकार अलग समझते हैं, किंतु सांस्कृतिक जातीय अथवा राष्ट्रीय अर्थ में हम सभी लोग एक हैं और अभिन्न हैं,..।। हम लोग सिख हैं हिंदू हैं तथा भारतीय भी हैं, इन दोनों का समन्वय हम दोनों में विद्यमान है तथापि हम लोगों को स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त नहीं है। (सावरकर समग्र, भाग 9, पृ. 120-121)

ध्यान रहे वीर सावरकर जी महान गुरुओं के दर्शन तथा वैदिक दर्शन से प्रेरणा लेकर ही अपनी अद्वितीय विश्व-दृष्टि से हिंदू सिख समुदाय की राष्ट्रीय सन्दर्भों में एकता के सूत्रों को समझने की बात कर रहे थे, जिस दृष्टि की आज के अलगाववादी विमर्श को प्रायोजित करने वाली बाह्य शक्तियों के बढ़ते प्रभाव के सन्दर्भों में महती आवश्यकता है। अपने महत्त्वपूर्ण प्रबंध 'हिंदुत्व' के अंत में वीर सावरकर महान गुरुओं के सार्वकालिक, सार्वभौमिक दर्शन व सनातनी दर्शन से प्रेरणा लेकर 'हिंदू कौन है' का उत्तर देते हैं, जिसकी ओर ध्यान, वैचारिक अतिरेकों के इस युग में, शायद ही किसी ने दिया हो:

"हिन्दू जबतक एक हिंदू ही नहीं बना रहता, तब वास्तविक अर्थ में उच्च अवस्था को प्राप्त हिंदू ही होता है।" (वही,पृ. 134)

इसी प्रकार सावरकर जी अपने प्रबंध "छ: स्वर्णिम पृष्ठ"[10] (पृ. 394-407) में बहुत प्रमुखता, प्रखरता के साथ गुरु गोबिंद सिंह जी की वैश्विक दृष्टि व सिख गुरुओं का भारत की राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने हेतु किए गए त्याग और बलिदान के प्रयासों को रेखांकित किया है। महान सिख गुरु नानक देव जी द्वारा सिख-धर्म की स्थापना को पंद्रहवीं शताब्दी के भारतीय समाज वह इतिहास की पृष्ठभूमि के साथ विश्लेषण करते हुए सावरकर जी स्मरण करना नहीं भूलते कि-"उस समय पंजाब में ऐसा कोई हिंदू नहीं था, जो वहाँ मुस्लिम राज्यसत्ता को कड़ी चुनौती देता। यद्यपि गुरु नानक देव जी संपूर्ण हृदय से यह उपदेश देते थे कि मैं हिंदू मुसलमान का भेद नहीं मानता; तथापि उनके शिष्य वर्ग में क्वचित् हजारों में एक मुसलमान कहीं दृष्टिगत होता था। शेष सभी हिंदू उनके पक्ष में थे श्री गुरु नानक स्वयं वैश्य (बनिया) जाति के थे।" (सावरकर समग्र, भाग 6, पृ. 395)

पांचवे सिख गुरु अर्जुन देव जी द्वारा श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अद्भुत संपादन की प्रक्रिया पर सावरकर जी ने बहुत गंभीरता व तथ्यात्मकता से प्रकाश डाला है और साथ ही गुरु तेगबहादुर जी द्वारा राष्ट्र धर्म, युगधर्म, स्वधर्म की रक्षा किस प्रकार की गई-उसका बहुत ही मार्मिक वह विचारोत्तेजक किंतु समीक्षात्मक तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। दशम गुरु गुरु गोबिंद सिंह को धर्मावतार के रूप में चित्रित करते हुए हिंदुओं के त्राण व धर्मरक्षा हेतु "खालसा" के निर्माण का लोक संग्रहकारी कार्य के सामाजिक-सांस्कृतिक-राष्ट्रीय महत्त्व क्या है-इसे स्पष्टता से रेखांकित करते हैं। कहना न होगा कि श्री गुरु गोबिंद सिंह जी को वीर सावरकर "हिंदू राष्ट्रवीर श्री गुरु गोबिंद सिंह" कहकर ही संबोधित करते हैं।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना अच्छा होगा कि सनातन-धर्मी सिख विश्व दृष्टि से प्रभावित होकर वीर सावरकर ने सिखों का इतिहास 1909 में मैडम भीकाजी कामा के, फ्रांस में स्थित आवास में लिखा था। परंतु दुर्भाग्यवश, वीर सावरकर कहते हैं, "इस इतिहास

की पांडुलिपि संभवत: अंग्रेजों के हाथ पड़ी और नष्ट हो गई। वह दु:ख हमें आज भी व्यथित करता है। यह भी संभव है कि जिसके साथ हमने यह पांडुलिपि प्रकाशनार्थ गुप्त रूप से भारत भेजी थी, उसने ही अंग्रेजी पुलिस के भय से उस पांडुलिपि को समुद्र को अर्पित कर दिया होगा। अर्थात् हमारा वह मराठी ग्रंथ प्रकाशित होने से पूर्व ही नष्ट हो गया।" (सावरकर समग्र: भाग 6, पृ. 475-476)

यहाँ इसे भी स्मरण करना व कराना चाहिए कि लंदन में 22 जनवरी, 1909 को श्री गुरु गोबिंद सिंह जी के प्रकाश उत्सव को राष्ट्रीय उत्सव के आयोजन में वीर सावरकर जी की प्रमुख भूमिका रही थी। सावरकर जी कहते हैं कि "मनुष्य की दैवीय शक्ति का विकास करने के लिए जो प्रयास श्री गुरु गोबिंद सिंह जी ने किए हैं वे सदैव स्मरण किए जाएंगे। अपने व्याख्यान में वीर सावरकर जी ने निशान साहिब के ऊपर लिखे तीन मूल शब्दों "देग-तेग-फतेह" के सनातन-धर्मी अर्थों को उद्घाटित किया। वे कहते हैं-"सिख धर्म एवं श्री गुरु गोबिंद सिंह जी के चरित्र का यह तीन पंखुड़ियों वाला फूल है और इसका उच्चारण भी श्री गुरु गोबिंद सिंह जी ने ही किया था। देग माने तत्व, तेग माने तलवार और फतेह माने विजय होता है। तलवार के बिना तत्व भी लंगड़ा पड़ता है ऐसा देखकर गुरु गोबिंद सिंह ने तलवार उठाई और हिंदू पक्ष अंतत: विजयी हुआ।" (सावरकर समग्र, भाग 6, पृ. 581-582) यहाँ यह भी स्मरण योग्य है कि वीर सावरकर ने पहली बार अंडमान निकोबार की सेल्यूलर जेल में अपना जीवन कार्य कारावास की भयंकर यात्रा को कहते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा की जा रही संकर पीड़ा व अपमान से विचलित न होने के लिए श्री गुरु गोबिंद सिंह जी का प्रकाश पर्व आयोजित किया, जिसमें सभी भारतीय कैदियों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया। तत्पश्चात श्री गुरु गोबिंद सिंह जी का प्रकाशोत्सव प्रतिवर्ष यहाँ आयोजित होने लगा।

जैसा कि उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सिख गुरुओं के सनातन-धर्मी जीवन दृष्टि के उन्मेष की, उनकी पुनर्व्याख्या की, उसके प्रचार-प्रसार की आज के आतंकवाद, अलगाववाद तथा वैचारिक अतिवाद के संदर्भों में महती आवश्यकता है। प्रस्तुत आलेख में वीर सावरकर जैसे प्रखर स्वतंत्रता सेनानी तथा महान चिंतक ने किस प्रकार महान सिख गुरुओं की दृष्टि व दर्शन तथा सनातन धर्म के मूल तत्वों में समवाय स्थापित करते हुए राष्ट्रीय चेतना तथा स्व-धर्म व राष्ट्र धर्म का विश्लेषण किया-उसका एक प्रारंभिक, अपूर्ण, अनुशीलन किया गया है। इत्यलम्

संदर्भ

1. श्री गुरु ग्रंथ साहिब (हिंदी शब्दार्थ) प्रथम भाग, पटियाला पंजाबी यूनिवर्सिटी, प्रकाशन विभाग 1989, प्रस्तुत आलेख में श्री गुरु ग्रंथ साहिब (पृ. संख्या सहित) के इसी संस्करण से गुरबाणी उद्धृत की गई है।
2. छान्दोग्योपनिषद् (स्वामी सर्वानन्द), मद्रास, श्री रामकृष्ण मठ,1956। प्रस्तुत आलेख में छान्दोग्योपनिषद् से उदहारण इसी संस्करण से लिए गए हैं। पृ. सहित लेख में उद्धृत।
3. माण्डुक्योपनिषद (अनु। स्वामी सर्वानन्द), मद्रास, श्री रामकृष्ण मठ,तिथि नहीं
4. ऐतरेय उपनिषद, मद्रास, श्री रामकृष्ण मठ,तिथि नहीं
5. श्री दसम ग्रन्थ साहिब, (पहली सैंची) अनु। जोधसिंह, लखनऊ, भुवन बाणी ट्रस्ट 2010 (आलेख में श्री दसम ग्रन्थ की बाणी को इसी संस्करण से उद्धृत किया गया है)
6. वामन शिवराम आप्टे-संस्कृत हिंदी कोश, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1997
7. देखें विक्रम संपत, सावरकर इकोज फ्रॉम अ फोर्गौटन पास्ट :1883-1924, गुरुग्राम, पेंग्विन वाइकिंग, 2019 (आलेख में सम्पत के नाम से पृ. सहित उद्धृत)
8. वी.डी. सावरकर: "इनसाइड दि इनिमी कैंप" एच टी टी वी :/ सावरकर। आर्ग /एन/एनसिक/2021/6/24 डाउनलोड-सेक्शन्स एच टी एम एल
9. सावरकर समग्र : स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर भाग 9, दिल्ली प्रभात प्रकाशन :2014 : आलेख में सावरकर समग्र (भाग व पृ. संख्या सहित उद्धृत)
10. सावरकर समग्र: भाग छ: (पृ. 394-407)
11. "छ: स्वर्णिम पृष्ठ" (पृ. 13-478)

साका सरहिंद

–तरुण विजय

गुरु गोबिंद सिंह जी भारतीय इतिहास के ऐसे महान राष्ट्रीय नायक हैं, जिनका जीवन हर भारतीय का माथा गर्व से उन्नत कर देता है। उनके आदर्श पिता गुरु तेगबहादुर जी कश्मीरी हिंदुओं की रक्षा के लिए बलिदान हुए तथा हिंद की चादर कहलाए। इस्लामी कट्टरपंथी औरंगजेब जैसे बादशाहों ने दुनिया के इतिहास में क्रूरता और निर्ममता की नई मिसाल कायम करते हुए भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करने वाले महान सिख-गुरुओं और उनके अनुयायियों का बर्बर दमन किया, लेकिन फिर भी सिखों का अप्रतिम प्रतिरोध दबा नहीं।

सिखों ने दिल्ली फतह की। (11 मार्च, 1778)बाबा बघेल सिंह ने लाल किले पर निशान साहब लहराया। मुगल बादशाह को संधि पर विवश किया तथा दिल्ली में गुरुद्वारा शीश गंज साहिब सहित सात गुरुद्वारे बनवाए। सिख-गुरुओं ने जो संघर्ष और बलिदान किए उसने हिंदुस्तान बचाया। उनकी अनगिनत बलिदानी गाथाओं में से एक अत्यंत हृदय द्रावक मर्मान्तक एवं भावी पीढ़ी के लिए प्रेरक गाथा यहाँ दे रहा हूँ।

यह दिसंबर 1704 का प्रकरण है। अक्सर यह तारीखें कहीं ना कहीं दूसरी भी बताई जाती हैं, लेकिन इन 300 साल पहले, भारत माता के दो सपूतों जोरावर सिंह और फतेह सिंह ने विश्व के इतिहास में एक ऐसा महान बलिदानी साका रचा जो हर भारतीय को पढ़ना,हृदयंगम करना तथा उनके सामने मस्तक झुकाना अनिवार्य होना चाहिए। औरंगजेब के क्रूर शासन में झूठ का ही चलन था। जब मुगल सेना आनंदपुर साहब पर जीत हासिल नहीं कर पा रही थी और किले के भीतर गुरु गोबिंद सिंह जी के पराक्रमी सिखों का बाल बांका नहीं हो पा रहा था; तो औरंगजेब ने कुरान की शपथ खाकर गुरु गोबिंद सिंह जी को संदेश भिजवाया कि अगर वे आनंदपुर साहब का किला छोड़ दें, तो फिर उन्हें पूरे हिंदुस्तान में कहीं भी जाने की बेरोकटोक आजादी होगी। गुरु गोबिंद सिंह जी को इस चिट्ठी की मंशा पर शक हुआ लेकिन उनके सहयोगी सिखों ने कहा कि औरंगजेब ने कुरान की कसम खाकर लिखी है इसलिए हम अपना प्रवास जारी रखते हुए किले से बाहर आ जाते हैं। गुरु गोबिंद सिंह जी ने यह बात हिचकते हुए मानी और जैसे ही वे सिख सेना के साथ बाहर आए उन पर मुगल सेना टूट पड़ी।

सिरसा नदी के किनारे भयानक युद्ध हुआ। एक एक सिख ने असाधारण वीरता दिखाते हुए, खुद शहीद होने से पहले दस-दस मुगल सैनिकों को मार गिराया। युद्ध की इस अचानक और विश्वासघात वाली घटना में गुरु गोबिंद सिंह जी का परिवार एक-दूसरे से अलग हो गया और उनके दो छोटे साहबजादे जोरावर सिंह और फतेह सिंह अपनी दादी माता गुजरी जी के साथ बीहड़ जंगलों के रास्ते पर चल पड़े। उस बियाबान और भयानक जंगल में चलते चलते उन्हें अनेक विषैले सर्प और बाघ तथा शेर भी मिले, लेकिन वे डरे नहीं और उनको भी इन हिंसक जंतुओं ने कोई क्षति नहीं पहुँचाई। हर क्षण वे वाहेगुरु का नाम जप रहे थे और श्री गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी का पाठ कर रहे थे। दादी माता गुजरी अपने दोनों पोतों को शेरनी की तरह संभालते हुए चल रही थी, कि कहीं किसी गाँव में सुरक्षित शरण मिल जाए। उधर गुरु गोबिंद सिंह जी के साथ उनके दो बड़े साहिबजादे अजीत सिंह और जुझार सिंह, सिरसा नदी पार करके रात के समय रोपड़ नगर में रुके और अगली सुबह चमकौर के किले में पहुँचे।

विधि की विडंबना देखिए भारत की रक्षा और धर्म की ध्वजा की खातिर गुरु गोबिंद सिंह जी का सारा परिवार युद्ध भूमि में तो था ही, वयोवृद्ध माता गुजरी अपने 7 और 9 साल के पोतों को युद्ध और शत्रुओं की भयानक दृष्टि से बचाते हुए शरण ढूंढ रही थी। एक रात शरण मिली कुम्मा नामक भिश्ती (पानी पिलाने वाले) के यहाँ और दूसरी सुबह उनका एक पुराना गंगू नाम का नौकर उन्हें अपने यहाँ आग्रह करके ले गया। सारा दिन चलकर गंगू के घर पहुँचे। सारे रास्ते दोनों छोटे साहबजादे अपनी दादी से पिता गुरु गोबिंद सिंह जी के बारे में और अपने दोनों भाइयों के बारे में पूछते रहे। सामान रखकर दादी और दोनों पोते शाम की प्रार्थना करके सोए, तो रात में ही कुछ खड़का हुआ और माता गुजरी ने देखा कि गंगू उनके सामान से सोने की अशर्फियाँ चुरा कर बाहर जा रहा है। वे चुप रही। सुबह उससे पूछा तो वह चोर की दाढ़ी में तिनके की तरह कुछ ज्यादा ही शोर मचाने लगा और कहने लगा कि एक तो मैंने आपको अपने घर में शरण दी और आप मुझे ही चोर ठहरा रही हैं। वह चिल्लाता हुआ शहर कोतवाल के पास शिकायत करने चला गया और अपने ही एक विश्वासी ने अपने ही देश की रक्षा करने वाले महापुरुषों के खिलाफ विश्वासघात करते हुए एक कलंक अपने माथे पर ले लिया। स्थानीय गाँव खेड़ी के चौधरी ने अपने सिपाही बैठकर मोरिंडा के सूबेदार को खबर दी और वे गंगू के घर भारी लाव लश्कर के साथ पहुँचकर अचानक माता गुजरी और दोनों साहिबजादों को गिरफ्तार कर सरहिंद के सूबेदार वजीर खान के पास ले आए। वजीरखान ने उन्हें सरहिंद के ठंडा बुर्ज (एक मीनार जैसी इमारत) में रखने का हुक्म दिया अगले दिन वजीर खान ने दोनों साहिबजादों को अपने सामने पेश करने का हुक्म दिया। क्या कोई कल्पना कर सकता है कि उस क्षण दोनों साहिबजादों की दादी अर्थात् माता गुजरी

के दिल में क्या गुजरा होगा? 7 साल और 9 साल के नन्हें शेर बच्चे दादी के साए से खूंखार और अमानवीय मुगल सूबेदार के सामने जब ले जाए जा रहे थे तो दादी ने बहुत विरोध किया लेकिन, मोरिंडा के सूबेदार ने झूठा दिलासा दिया कि वे सिर्फ वजीर खान के सामने बच्चों को एक बार दिखा कर जल्दी ही उन्हें वापस ले आएंगे।

लेकिन बच्चे जो एक बार गए सो गए। जाते हुए दोनों नन्हें साहिबजादों ने अपनी दादी से कहा कि ये तुर्क तो हमेशा हमारे दुश्मन रहे हैं। उनसे कोई बचाव नहीं, इसीलिए हमें सूबेदार के दरबार में जाने दो। दादी ने सिपाहियों से पूछा कि इन दोनों छोटे बच्चों ने तो कोई गुनाह नहीं किया; तुम उन्हें क्यों ले जा रहे हो? उन्होंने अपने पोतों से कहा कि हमेशा याद रखना कि तुम्हारे पिता गुरु गोबिंद सिंह जी हैं और तुम्हारे दादा जी गुरु तेगबहादुर जी थे। चाहे कुछ भी हो जाए उनकी पगड़ी को दाग मत लगने देना।

सूबेदार ने दोनों साहिबजादों को मानसिक संताप देने के लिए कहा कि तुम्हारे दोनों बड़े भाई अजीत सिंह और जुझार सिंह चमकौर की लड़ाई में मारे गए हैं। अब तुम्हारे सामने अपनी जान बचाने का एक ही तरीका है, कि, तुम इस्लाम कबूल कर लो। साहेबजादों ने हिम्मत से कहा कि हमारे पिता दशमेश अभी जिंदा हैं। अकाल पुरख उनकी रक्षा कर रहा है। क्या कभी किसी तूफान में पर्वत डिगा है? क्या कभी कोई अपनी मुट्ठी में सूरज और चंद्रमा को ले सका है? वजीर खान ने उन्हें बहुत लालच दिया और कहा कि अगर वे इस्लाम कबूल कर लेंगे उन्हें बहुत बड़ी जायदाद देगा, बादशाह औरंगजेब उन्हें खिताब देगा। इस पर साहिबजादों ने कहा कि हम मौत से नहीं डरते और अपने पंथ की रक्षा के लिए हम अपनी जान दे देंगे, लेकिन इस्लाम कबूल नहीं करेंगे। हम गुरु गोबिंद सिंह, गुरु तेगबहादुर और गुरु हरगोबिंद सिंह जी के वंशज हैं। वजीर खान ने मलेरकोटला के नवाब से कहा कि गुरु गोबिंद सिंह जी के साथ लड़ाई में तुम्हारा भाई और भतीजा मारे गए थे अब तुम इन दोनों बच्चों से उनका बदला ले सकते हो। तब नवाब मलेरकोटला ने कहा, कि नहीं यह बच्चे बहुत मासूम हैं। आप इन्हें रिहा कर दीजिए। बदला लेना होगा तो इनके पिता से लेंगे। तब वजीर खान ने खूंखार काजी (गिलजाई कौम) से कहा कि तुम अब इन्हें सजा दो। सूबेदार के काजी ने बार-बार साहिबजादों को इस्लाम कबूल करने के लिए बहलाने की कोशिश की और जब वे शेर की तरह दहाड़ते हुए मना करते गए, तो वजीर खान ने उन्हें जिंदा ही दीवार में चुनवाने का हुक्म दिया। सरहिंद के किले में एक स्थान पर साहिबजादों को जिंदा ही दीवार में चिनने का काम काजी ने किया। जल्लाद एक-एक ईंट रखते थे और पूछते थे कि इस्लाम कबूल है या नहीं ? साहेबजादे निडरता से इनकार करते थे। उधर माता गुजरी जी बेहाल थीं। दुनिया में कौन ऐसी मां और दादी होंगी जो अपने नन्हे बच्चों और पोतों को जालिमों के शिकंजे में देखकर एक साँस भी चैन से ले सके। शहर के एक सेठ टोडरमल ने माता गुजरी जी को आकर जब बुरी खबर सुनाने की कोशिश की तो तड़पते हुए माता गुजरी जी ने अपने प्राण त्याग दिए।

टोडरमल वजीर खान के पास गया और उन्हें नन्हे साहिबजादों के पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार करने की इजाजत मांगी। वजीर खान ने अपनी नृशंसता दिखाते हुए कहा, उनके अंतिम संस्कार के लिए जितनी जमीन लगेगी उतनी जमीन को ढक सके, उतनी ही सोने की अशर्फियाँ दोगे तो ठीक है। टोडरमल ने अपनी जिंदगी भर की सारी कमाई वजीरखान को दे दी और साहिबजादों के पार्थिव शरीर तथा माता गुजरी जी का भी अंतिम संस्कार किया।

ऐसा लग रहा था मानो धरती फट जाएगी और आसमान टूट पड़ेगा। यह खबर सुनकर गुरु गोबिंद सिंह जी पर क्या गुजरी होगी? क्या कोई इसकी कल्पना कर सकता है? उन्होंने औरंगजेब को जफरनामा के जरिए चिट्ठी लिखी जिसमें कहा कि मुझे तुम पर और तुम्हारे सूबेदार पर पानी की एक बूंद के बराबर भी अब यकीन नहीं है जिन्होंने कुरान की कसम खाकर विश्वासघात किया इस विश्वास के लिए तुम्हारा सर्वनाश होना निश्चित है।

साहिबजादों के इस बलिदान को पंजाब में साका सरहिंद अर्थात् सरहिंद की शहादत के नाम से जाना जाता है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम है कि जिस हिंदू जाति को साहिबजादों के इस बलिदान की कथा घर-घर सुना कर उनके स्मारक हर शहर में बनाने चाहिए थे। वही कौम आज अपने इतिहास से विस्मृत होकर अपने ही विनाश का लगातार घट रहा दृश्य देख रही है। पूरे देश में ही नहीं पूरे दक्षिण एशिया में भारतीय धरती पर जन्मे पंथों और आस्थाओं पर लगातार आक्रमण बढ़ रहे हैं। साका सरहिंद उन सब के विरुद्ध खड़े होकर भारत और धर्म की रक्षा की अमिट प्रेरणा देता है।

आनंदपुर नगरी की स्थापना और पूर्व की यात्राएँ

डॉ. सुरजीत कौर जॉली

सभ्यता के विकास से लेकर शहरीकरण की प्रक्रिया चलती आ रही है। सिख गुरु इस मंत्र से भलीभांति परिचित थे। गुरु नानक साहिब से लेकर लगभग सभी गुरुओं ने नए शहरों को बसाया और शहरीकरण को विकास के साथ जोड़ा। कुछ इतिहासकार इसे गुरुओं की मजबूरी समझते थे, पर वास्तव में आर्थिक विकास व व्यापार वाणिज्य को बढ़ावा शहरों से ही मिलता है। यह बात सिक्ख गुरुओं की अर्थव्यवस्था में काफी सटीक बैठती है। अमृतसर का विकास इसका बहुत बड़ा उदाहरण है। गुरु तेगबहादुर जी कीरतपुर के वारिस थे, पर वह एक नया शहर बसाना चाहते थे।एक ऐसा अलौकिक शहर जो थोडा अलग हो; जहाँ रिश्तेदारियों की जलन व तृष्णा की अग्नि न पहुँच सके। शहर ऐसा जो रमणीक, सुंदर स्थान पर हो, जहाँ शांति, प्यार व सुख से रहा जा सके. पहाड़ व प्रकृति के सुंदर नजारों से भरा ऐसा स्थल, जो अगम, अडिग व अजीत भी हो।[1]

भाई संतोष सिंह जी के अनुसार-

सुख से बास करहि निज पुर मैं।
मतसर ते न तपै को उर मैं।

माखोवाल ऐसे ही मनोहारी वातावरण से भरपूर था। धौलाधार की बर्फ से ढकी श्रृंखलाएँ, नैना देवी के पहाड़ व पास ही बहती सतलुज नदी एक असीम सुख और आनंद का वातावरण पैदा करते थे।

एक योजनाबद्ध शहर जहाँ मंडियाँ, व्यापारिक केंद्र, मोहल्ले, बाजार सभी व्यवस्थित सुंदर हों, इसके लिए उनके जेहन में एक तस्वीर थी। गुरुजी स्वयं ऐसे स्थान की खोज में आसपास की पहाड़ियों में विचरण करते थे।

इसी बीच बिलासपुर के राजा दीपचंद की मृत्यु हो गई। दीपचंद राजा ताराचंद का बेटा था, जो ग्वालियर के किले में कैद था। गुरु हरगोबिंद जी ने जब वहाँ से 52 राजाओं को 52 कलियों वाला चोला पहनकर रिहा करवाया था, तो राजा ताराचंद भी उनमें से एक था। राज परिवार इसीलिए गुरु जी का एहसान मानता था, सम्मान करता था। रानी चंपावती ने राजा दीपचंद की अंतिम क्रिया में शामिल होने के लिए गुरु जी से विनती की थी। राजा दीपचंद की गुरु घर में अपार श्रद्धा थी। उनके प्यार को देखते हुए गुरुजी इसमें शामिल होते हैं। सभी रस्मों के बाद गुरुजी कहलूर का इलाका खरीदने की बात रानी के साथ करते हैं। रानी चंपावती कहलूर का गाँव गुरु जी को भेंट करना चाहती है; पर गुरु जी इस स्थान को पैसा देकर खरीदना चाहते हैं और इस बात पर सहमति बन जाती है। गुरुजी 500 रूपये राजमाता जुलाल देवी को देखकर माखोंवाल का पट्टा अपने नाम करवा लेते हैं।

जर खरीद कर पट्टे लिखाये।
ले सतगुर निज निकट रखाए।[2]

गुरबिलास पातशाही दसवीं के अनुसार :

आन बसाऊ चक तब अनंदपुर की जाये ।
जर खरीद जगा ले जाणा।
नगर रचियो अच्छा सुखदाना।
माता जी के इसम निधाना।

भट्ट बही सिंधी मुल्तानी खाता जलहाना के अनुसार, "गुरु तेगबहादुर महला नौवाँ बासी कीरतपुर नाल सतैरे सै बाईस असाढ़ इक्कीस सोमवार के दिहु माखोवाल ग्राम के थेह तें बाबा गुरदित्ता जी रंधावा बंस बाबा बुड्ढा जी के दस्ते मुबारक से नौवें गराम की मोदी गड्डी, नाम चक्क नानकी रखा-गुरु की कड़ाही दी।[3] 19 जून, 1665 को गुरु जी ने इस स्थान की नींव बाबा बुड्ढा जी के पोते बाबा गुरदित्ता जी से रखवाई, और इसका नाम अपनी माता जी के नाम पर चक्क नानकी रखा। होशियारपुर जिले के गजेटियर के अनुसार (1883-84) शहर का नाम चक्क नानकी है। नींव पत्थर रखने के स्थान का चुनाव भली-भांति निरीक्षक भाई दरगाह दास जी ने सुझाया था। जब बालक गोबिंद दास जी पटना से चक नानकी आए, तो आपने शहर की सुंदर छटा देखकर आनंद साहिब की पहली पाँच पोड़ियों पढ़ी, "अनंद भया मेरी माए, सतगुरु में पाया।" गुरु तेगबहादुर जी इस शब्द से इतने अभिभूत हो गए, कि इसका नाम ही 'अनंदपुर साहब' रख दिया।

शहर के नक्शा नवीस गुरु जी स्वयं ही थे। शहर की योजना बनाते हुए यह विशेष ध्यान रखा गया कि शहर सुंदर और मुग्ध करने वाला हो, चित्रकार भी बुलाए गए ताकि घर, बाजार व इमारतें मन को मोहने व खींचने वाली हो। मुख्य रूप से माई झंडा जी जो बाबा बुड्ढा जी के वंशज थे, उन्हें निगरानी उसारी का कार्य सौंपा गया। चार चौक अर्थात् सब दिशाओं में कटती सड़कें, पक्की गलियाँ और पक्की सड़कें गुरुजी के नगर निर्माण ज्ञान को दर्शाती हैं। कई तरह के सुघड़ कारीगर एवं मजदूर इस काम में लगाए गए। संगतें भी श्रमदान करके अपना हिस्सा डाल रही थी।

शहर में सबसे पहले तीन मुख्य भवनों का निर्माण कार्य आरम्भ किया गया, गुरु स्थान, एक पूजा व मंदिर का स्थल सराय तथा गुरु के निवास स्थान, आवासीय भवन जो गुरु के महल कहलाये। गुरु दरबार के सभी प्रमुख कार्यकर्ता, महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्वों, अनुयायियों को घर बनाने के लिए जमीन प्रदान दी गई। व्यापारियों और दुकानदारों को जमीन बिना कोई कीमत लिए ही दी गई। वहाँ पर शहर योजना के अनुसार निर्माण कर सकते थे। किसानों को भी

जमीन मुफ्त दी गई; पर उन्हें अपनी पैदावार से कुछ हिस्सा लंगर के लिए देना होता था। रोपड़ के एक सूफी संत अपनी यात्रा के दौरान आनंदपुर में रुके। जब उसने शहर के निर्माण को देखा तो वास्तुकार से पूछा कि इतनी विशाल योजना किस राजकुमार की है? उसको उत्तर मिला कि इस पवित्र शहर का निर्माण हमारे पैगंबर गुरु तेगबहादुर द्वारा एक धार्मिक शहर के रूप में किया जा रहा है। पीर ने कहा जो धार्मिक पुरुष इतने भव्य शहर का निर्माण कर रहा है वह कैसा महापुरुष जो स्वयं इतनी धन दौलत वह महलों के निर्माण में लगा है वह अपने अनुयायियों को किस तरफ ले जा रहा है? वह भवसागर से उन्हें कैसे पार उतारेगा? गुरु जी ने उन्हें दरबार में उपस्थित होने का निमंत्रण दिया। अपने नजदीक एक आसन पर बिठाया और पूछा कि वह किस सूफी धारा से जुड़े हैं? और कहाँ से आए हैं? पीर ने कहा वह रोपड़ के एक सूफी सैयद हैं और वहाँ उनकी अपनी खानगाह है। पीर जी ने कहा कि आप एक प्रसिद्ध धर्म व विश्वास के साथ जुड़े हैं, तो आपको यह भवन महल शहर बनाते देख कर यह लगता है कि आप यह भूल गए हैं कि संसार नश्वर है। इसलिए महल, सराय, रथ, घोड़े क्यों इकट्ठे करते हैं? गुरु जी ने कहा यह संसार नश्वर है यह मेरा पहला पाठ होता है। पर मनुष्यों के समाज में ही सच में प्रभु की दिव्यज्योत रोशनी चमकती है। उसे देखने व महसूस करने के लिए मानवता तथा दान पुण्य का महत्त्व समझने के लिए समाज में रहना जरूरी है। एक गृहस्थ का जीवन जीना आवश्यक है। यह भवन महल सराय कुछ भी मेरे लिए नहीं है। इनका निर्माण संतों व श्रेष्ठ पुरुषों के लिए किया गया है। आने वाली शताब्दियों तक प्रभु का यह मंदिर ईश्वर को प्यार करने वालों का घर होगा। यह शांति व खुशी का घर होगा। यह सुनकर पीर जी के आँसू बहने लगे और उन्होंने सारे शहर को आशीर्वाद दिया।

संगतों ने विनती की कि उनके निवास के लिए भी योजना बनाई जाए, मोहल्ले व घर बनने शुरू हो गए, कुछ लोगों ने स्वयं घर बनवा लिए। माझा मालवा से कई परिवार आ गए। जो स्वयं नहीं बनवा सकते थे उन्हें आर्थिक दी गई व घर भी बनवा कर दिए गए। इस समय कुछ व्यापारी भी गुरुजी के पास आए, ताकि मंडियों के लिए स्थान सुरक्षित किया जाए। इस क्षेत्र में कोई भी बड़ी मंडी नहीं थी, व्यापार के लिए बाजार बनवाए गए। कुछ व्यापारियों को आर्थिक सहायता के द्वारा व्यापार के लिए पूंजी दी गई।

अनंदपुर में संगतों की आमद बढ़ गई। गुरुघर की भेंटा(चढ़ावा) में भी काफी इजाफा हुआ। लंगर तो लगातार चल ही रहे थे। बड़ी हुई भेंट (चढ़ावा) बचाने के लिए नहीं थी, उसे समाज सुधार के कार्यों में खर्च किया जाने लगा। इससे कुएँ खुदवाय जाते, नगर के निर्माण व रखरखाव के लिए या बेघरों को घर बनवा कर देने में खर्च होते थे।

कूप लगावो सदन बनावो।
खराचहु पुर के हेत बसावहु।

नगर व नगर वासियों के विकास की बात ही प्रमुख थी।

'सूरज प्रकाश' के अनुसार गुरु जी ने अनंदपुर के निर्माण व अन्य कार्यों को बेहतर व सुचारू रूप से चलाने के लिए अपने प्रतिनिधियों भाई भागू जी, रामू जी, भाई साधु मुल्तानी, भाई बहलोके तथा देस राज जी को यह कार्य सौंपकर हिदायत दी, जो भी मेरा सिख आए उसे नगर निर्माण व जनहित के कार्यों के लिए खर्चा करना है। यह ध्यान विशेष तौर पर रखना है कि नगर वासियों को ना तो कोई सताए, और ना ही कोई दुखी करें। अगर कोई ऐसा करता है तो उसको रोकना उचित होगा, आवश्यक हो तो सजा भी दी जाए।

पुर को खेद देहिं न कोई.
जे को देहिं, रहै न कोई.[4]

यह एक ऐसे राज्य की परिकल्पना थी, जैसी रविदास जी ने की थी।

कालांतर में अनंदपुर, आनंदपुर साहिब हो गया, यह खालसा की जन्मस्थली बन गया। 1699 की बैसाखी पर खालसा का सृजन यही हुआ और इसका नाम तख्त श्री केशगढ़ साहिब रखा गया। आधुनिक समय में यहाँ भारत सरकार व अन्य संस्थाओं ने यह 'विरासत-ए-खालसा का निर्माण किया। यहीं से कुछ किलोमीटर की दूरी पर शिवालिक पहाड़ियों की गोद में लगभग 163 एकड़ भूमि में दशमेश अकैडमी की स्थापना की गई।

जब शहर अपनी पूरी रौनक व रवानगी पर पहुँच गया, तो गुरु जी ने पूर्व की तरफ यात्रा का मन बना लिया।

गुरु नानक साहिब ने पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थानों तक यात्रा की और वहाँ पर नाम का प्रचार प्रसार किया। आप ने संस्कारों के निर्माण तथा उच्च गुणों के धारणी मानव की संरचना का बीड़ा उठाया था। देश प्रेम उनके अंदर हिलोरे ले रहा था, इसलिए आवश्यक था कि ऐसी भावनाओं को जन- जन तक पहुँचाया जाये। इसके इसलिए आप जहाँ भी गए आपने संगते भी कायम की। अर्थात् समय पाकर नानक नाम लेवा या उस नई सुधार लहर के कई उपासक हो गए, जो व्यर्थ के वहमों, भ्रमों से दूर सादा व समानता का जीवन जीना चाहते थे। जहाँ छुआछूत, जाति प्रथा के बंधन, उच्च नीच का भेदभाव इतना अधिक ना हो कि मानवता उसमें कहीं खो जाए। गुरु नानक साहिब के यह उपासक अपने अपने क्षेत्र में मिल बैठकर सुबह शाम भजन कीर्तन करते थे। मेहनत व ईमानदारी की कमाई को भी साथ बैठ कर खाते थे। गुरु नानक जी द्वारा लगाए गए यह पौधे सूखे नहीं थे, उन्हीं को और सींचने के लिए व हरा-भरा करने की गुरु तेगबहादुर जी पूर्व की यात्रा पर अवश्य ही जाना चाहते थे।

गुरु नानकदेव जी द्वारा स्थापित संगतों का मुखिया उन्हें गुरु उपदेशों के साथ जोड़े रखता था तथा इस तरह से वह गुरु घर से भी जुड़े रहे। कालांतर में यह मसंद कहलाए। दूरस्थ प्रदेश होने के कारण गुरु नानक जी के बाद उन संगठनों तक सिख गुरु नहीं पहुँच पाए। परंपरा के अनुसार मसंदों ने संगतों के साथ गुरु साहिबानों से संबंध बनाए रखे। गुरु तेगबहादुर जी अब उन संगतो तक पहुँचना चाहते थे, संगतों की तरफ से भी यह मांग और बेनती लगातार आ रही थी, "वह लोग दूर देश के कारण पंजाब नहीं आ सकते दर्शन की अभिलाषा लिए बैठे हैं, कोई सुंदर पलंग बनाकर मखमली तकिए सजाकर यह प्रतिज्ञा करके बैठा है कि जब तक उस पर विराजे हुए

गुरु का दर्शन नहीं करेंगे; तब तक हमने चारपाई पर भी नहीं सोना। कईयों ने सुंदर मंदिर (घर) बना कर बैठे हैं, जब तक गुरु चरण नहीं पड़ेंगे, वह उस में विराजेगें नहीं। किसी ने सुंदर पोशाके बनाई, किसी ने घोड़ा पाला, किसी ने सुंदर पालकी बनाई."[5] उनकी श्रद्धा व विश्वास की लाज रखनी भी जरूरी थी।

दूरस्थ प्रदेशों की यात्रा के लिए यह आवश्यक था कि उसकी पूरी योजना बनाई जाए व कई तरह के कार्य भिन्न-भिन्न जनों का को सौंप दिए जाएँ। अग्रिम दल के रूप में भाई संगतिया, भाई सुखानंद और नत्थू को यह जिम्मेदारी सौंपी गई कि गुरु जी व उनके परिवार के पहुँचने से पहले अगले पड़ाव तक तंबू कनातें व लंगर का अन्य आवश्यक सामान लेकर पहुँचा जाए। इस यात्रा में गुरु जी घोड़े पर, माता नानकी जी रथ पर, व माता गुजरी जी पालकी पर सवार थी। मुख्य दीवान भाई मती दास जी को यात्रा का मुखिया बनाया गया। भाई दयाला जी को गुरु के महल अर्थात् माताजी, पत्नी व अन्य स्त्रियों की देखभाल का कार्य सौंपा गया।

फारसी के प्रसिद्ध विद्वान भाई सती दास जी को गुरु द्वारा उपचारित बाणी को फारसी में अनुवाद करने का कार्य सौंपा गया, जिससे सभी मुसलमानों को भी समझने में मुश्किल ना हो .भाई सती दास इस तरह से बाणी को सहेज लेते थे केसर सिंह वंशावली नामा में लिखते हैं-

बाणी जो साहिब करन उच्चार।
सो सतीदास नित करे फारसी अखरां में उच्चार।

प्रचार प्रसार दौरे में फंड या धन की भूमिका भी अहम रहती है। डॉ तरलोचन के अनुसार इस यात्रा का समस्त खर्चा प्रयाग, बनारस, पटना, व ढाका की संगत ने उठाया था। ढाका सबसे समृद्ध केंद्र था अत: उसका योगदान भी सबसे अधिक रहा होगा।[6]

कीरतपुर से चलकर पहला पड़ाव भरत गढ़ गाँव में किया गया। यहाँ पर बारिश के पानी ने लोगों के घरों व फसलों को तबाह कर दिया था, व पीने के साफ पानी की भारी कमी थी। गुरुजी ने मामा कृपाल चंद अपने खजांची को यह हुक्म दिया उस गाँव की धन से सहायता की जाए, लंगर लगाए जाएँ, व उनके लिए दवा का प्रबंध किया जाए।

यहाँ से रोपड़ व कुराली होते हुए गुरुजी का कारवां बहादुरगढ़ या सैफाबाद पहुँच गया। जहाँ नवाब सैफुद्दीन की रिहाइश थी। प्रोफेसर प्यारा सिंह पदम के अनुसार सैफुद्दीन शाहजहाँ के वजीर आसिफ खान का बेटा था, व बेगम नूरजहाँ का भतीजा था। 7 समकालीन इतिहासकारों के अनुसार वह शाही खानदान का खास रिश्तेदार था। सैफुद्दीन गुजरात, दक्षिण ढाका व कश्मीर में उच्च पदों पर आसीन था।

प्रिंसिपल सेवा सिंह के अनुसार, 'वह 1648 में बिहार व 1656 में गुजरात का हाकिम नियत हुआ। 1659 में उसे दक्षिण गवर्नर बनाया गया। 1664 में ढाका का सूबेदार बन गया। 1666 से 1671 तक इसको कश्मीर का गवर्नर बनाया गया और उसे यह हुक्म दिया गया कि वह हिंदुओं को सरकारी नौकरियों से निकाल दे। पर उसने किसी भी हिंदू को बर्खास्त नहीं किया वह औरंगजेब की जबरन तबलीग वाली नीति से सहमत नहीं था। इसलिए सब कुछ छोड़ कर घर आ गया। औरंगजेब ने निर्दयी इफ्तार खान को कश्मीर का गवर्नर बना दिया, ताकि वह सख्ती से हिंदुओं को मुसलमान बना सकें।" [8] सैफुद्दीन उदार व सूफियाना विचारों वाला था, उसे 'फकीर उल्लाह' भी कहते हैं। मूसा रोपड़ी नाम के सूफी पीर ने गुरुजी के बारे में सैफुद्दीन को बताया था। वह गुरु जी के व्यक्तित्व से इतना अधिक प्रभावित था, कि जब उसे गुरु जी के उधर आने की सूचना मिली तो वह स्वयं उनकी अगवानी के लिए गया। शाहीबाग में गुरुजी के कारवां को ठहराया। उसने स्वयं गुरुजी के घोड़े को की लगाम पकड़ कर उनको अपने महलों में ले गया। माता नानकी जी पालकी में ही अंदर पधारी। उसकी बेगम ने माताजी को मत्था टेका व कई बहुमूल्य तोहफे भेंट किए। लंगर के लिए बर्तन तंबू, झोलदारियाँ व ऊँट इत्यादि भी भेंट किए। गुरु जी की सवारी के लिए बढ़िया घोड़ा श्रीधर भी सम्मान से भेंट किया। 9 सैफुद्दीन के साथ गुरु जी का प्यार बना रहा और गुरुजी भी उसको कीमती वस्तुएँ भेंट के रूप में भेजते रहे। एक हुकमनामें में आप मुंगेर की संगत को यह आदेश देते हैं, कि " पाँच खासे बासण (बर्तन) मीनापुर कियाके, सुराही प्याले हच्छे अछे कहारां नूं देणे हन। हच्छे बासण भेजने।" शिष्टाचार व सभ्याचार में परिपक्व गुरु जी के व्यक्तित्व का सुंदर उदाहरण है। गुरु जी गाँव गाँव एक नई अलख जगा रहे थे। एक नया नैरेटिव (वृतांत) लिख रहे थे। कुआँ प्यासों के पास जा रहा था और सदियों पुरानी भारतीय परंपराओं, सोच व दर्शन को स्थापित कर रहे थे। धर्म व अध्यात्म क्या कर सकता है; यह भी तो भूले भटके लोगों को बताना आवश्यक था। गंडू गाँव में आपने भाई मुगलु के घर में रहना तय किया। इसकी मांग साँस निकलने से पहले गुरु दर्शनों की थी।

अली शेर गाँव बेटियों के व्यापार के लिए काफी बदनाम था। लोगों को बेटियों के व्यापारियों के रूप में देखा जाता था, जो धन लेकर बेटी बेच देते थे। आप ने गाँव वालों को बेटियों को बेचने के स्थान पर ब्याहने की बात की; स्वयं उस में योगदान दिया। समाज की इस बुराई के विरुद्ध आवाज उठना स्वयं एक क्रांतिकारी कदम था।

समरावां में भीखी स्थान का चौधरी देसू अपना हिंदू धर्म छोड़कर सखी सरवर सुल्तानियों के पीछे चलने लगा था, जब वह गुरुजी को मिलने आया तो आपने कहा देस राज तुम तो हिंदू चौधरी हो, धर्म का रक्षक होकर, फिर हिंदू धर्म का ही घातक बन गया है। यह क्या बुद्धिमानी है? बाड़ तो खेत की रक्षा के लिए होती है, खाने के लिए नहीं। तुम तुरक की जूठन खाते हो और मानसिक अधीनगी भी कर ली है, इस जाल से बाहर आओ।[10] गुरु जी की ललकार व सलाह पर पूरा गाँव अपने धर्म में लौटा आया। नए मापदंड स्थापित हो रहे थे। नई बहादुरी व ललकार की इबारत गुरु जी समस्त समाज के सामने लिख रहे थे।

कैथल एक ऐतिहासिक नगर है, जो प्राचीन काल से 'कार्य स्थल' के रूप में प्रसिद्ध था। भगतू वंश के भाई देसू सिंह ने 1667 में इसे अपनी राजधानी बनाया, तब कैथल इसका प्रचलित नाम था। भाई उदय सिंह जी की सरपरस्ती के अंतर्गत भाई संतोष सिंह ने गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ व अन्य ऐतिहासिक रचनाओं की रचना कैथल में ही की हुई है। इस महत्त्वपूर्ण स्थल पर जब गुरु जी पहुँचे, तो यह

जानना चाहा कि क्या वहाँ पर सिखों का कोई घर है?

कैथल पुर को हमने जाना।

को सिख है कि नहीं तिस थान।[11]

तब एक बढ़ई सिख ने कहा कि यहाँ पर सिखों के तीन घर हैं-दो बनिए और एक बढ़ई का. गुरुजी की इच्छानुसार वह बढ़ई के घर चले गए, वह बहुत खुश हुआ और खूब सेवा की।

जथा सकत सिख सेवा करी।

गुर परसन्न हुए अपनी हरी।[12]

पिहोवा से होते हुए बारना में यह संदेश दिया कि तंबाकू का सेवन नहीं करना चाहिए। यह बहुत ही गंदा नशा है; जो तन व मन को भ्रष्ट कर देता है और इससे घर में कंगाली आ जाती है .

भाई संतोख सिंह के अनुसार-

गंदा घूम बंस ते तिआगाहु।

अति गिलान इस ते घर भागो।

सिख सन्तान सेवा में लागहु।

अजहु वंड कर कृत अनुरागो।

लहल गाँव जहाँ आज दु:ख-निवारण साहिब सुशोभित है, गुरु जी के आगमन से पवित्र हो गया। यहाँ एक माता करमो दई चेचक रोग से पीड़ित थी। पवित्र सरोवर में स्नान और गुरु जी की चरण धूल से वह निरोग हो गई। जब गुरु जी किसी भी स्थान पर टिकते या पहुँचते थे तो आस-पास की सांगत भी दर्शन व बख्शीश लेने के लिए पहुँच जाती थी। आप टहलपुर, आकड़, लमां, सीमड, रोहटा, जंड मघोली,इत्यादि स्थानों पर गुरु कृपा हुई।

मलोवाल में गाँव के सरपंच ने गाँव निवासियों के साथ प्यार से सेवा की। गाँव के कुओं का पानी पीने लायक नहीं था, पानी दूर से लाना पड़ता था। जब गुरु जी को यह खबर हुई तो उन की दया दृष्टि से पानी मीठा हो गया। यह करिश्मा वास्तव में कई स्थानों पर हुआ। यहीं पर गोदा को भाई कहकर सम्मानित किया गया जो बाद में उनका अनन्य सिख बन गया।

गाँव सोखा में चौधरी मलूका को अहंकार न करने का पाठ पढ़ाया और गाँव वालों में सेवा भाव को भी जागृत किया। फरवाही गाँव जो ताप रोग से ग्रसित था, उन को चमारों की छापड़ी में स्नान करने को कहा, गाँव रोग से मुक्त हो गया। ऊँची-नीची जाति का अभिमान व समाज में पड़ी खाईयों को इस तरह से दूर करने के प्रयास व क्रांति गुरु जी कर रहे थे।

चेचक से ग्रसित गाँव को एक छोटे से तालाब में स्नान के लिए हुक्म दिया, वहाँ सब निरोग हो गए यहीं पर गुरुद्वारा दु:ख निवारण साहिब बन गया जो आज तक रोगों को काटा जा रहा है। कुछ और स्थानों पर होते हुए जब गुरुजी धमतान पहुँचे तो आपको औरंगजेब के आदेशानुसार दिल्ली बुलाया गया आरोप यह था कि गुरु जी हिंदुओं व मुसलमानों में एक नए धर्म का प्रचार कर रहे हैं। साखी नौवें महल की लिखती है:

सुन महिमा आलमगीर रिसाये।

श्री सतगुरु जी कह पठवाये।

तुम हिन्द को गुरु कहावो।

कछु हम को करामत दिखलावो।

सेवा सिंह के अनुसार आलम खान रोहिल्ला एक सैनिक टुकड़ी के साथ आदेश लेकर आया था। सरदार ने घोड़े से उतर कर कहा कि पीर जी तुम्हें देहली में बादशाह ने बुलाया है, तैयारी करिये"[13] गुरुजी को गिरफ्तार नहीं किया गया। वह अपने घोड़े पर ही सवार थे। वह मार्ग में प्रचार करते रहे। हरियाणा के खटकड़ गाँव में पानी खारा था, गुरु जी ने अपनी मेहर की दृष्टि से वहाँ का पानी मीठा कर दिया और नए कुए को खोजने में सहायता भी की।

भट्ट बहियों के अनुसार बादशाह ने गुरुजी का कत्ल करने का हुक्म दिया। कवंर राम सिंह को कत्ल करने का हुक्म दिया गया। कंवर रामसिंह कछवाहा ने ऐसा करने से औरंगजेब को रोक दिया। गुरुजी के महत्त्वपूर्ण सिख रसीना नगरी में रानी पुष्पा देवी को मिलने गए कि कुछ बीच-बचाव किया जाए। राजा राम सिंह ने बादशाह को वस्तुस्थिति से परिचित करवाया, कि गुरुजी निर्दोष हैं; किसी को भड़काना उनका कोई मकसद नहीं है। महिमा प्रकाश के अनुसार औरंगजेब के साथ गुरु जी की मुलाकात मुगल दरबार में हुई। आप को चंदन की ऊँची चौकी पर आदर सहित बैठाया गया व कोई चमत्कार दिखाने को कहा गया। आपने एक ही बात कही-

'न लायक फकर को करामात करना

है निस दिन सदा खौफ मौला के रहना

करै जो करामत मुशरक कहावै

जो मुशरक कहिया लाशरिके न भावै।"[14]

गुरु जी ने औरंगजेब को समझाया कि आपको बादशाही रब ने दी है, इसीलिए अपनी समस्त प्रजा को एक नजर से देखो क्योंकि ईश्वर को जुल्म व जबरदस्ती अच्छी नहीं लगती है।

जुलम जलामी रब न भावै।

जब औरंगजेब ने गुरु गद्दी के झगड़े के बारे में बात की तो गुरुजी ने कहा हमारा न तो कोई दावा है और ना ही कोई झगड़ा है।

हम दावा काहूँ सों नाही।

नहीं लेन देन काहू सो आही।[15]

गुरुजी अजातशत्रु थे, उनकी सेवाएँ बिना किसी भेदभाव के सबके लिए थी। सतबीर सिंह के अनुसार औरंगजेब को भी यह कहना पड़ा :

रहे रजाए में अलह फकीर।

सो मोला के है जग धीर।[16]

गुरु नानकदेव जी के समय जो संगतें भारत के पूर्व की तरफ स्थापित की गई, उन की निशानियाँ आज भी मौजूद हैं। चाहे अन्य गुरु इन क्षेत्रों में फेरी नहीं लगा पाए, पर गुरुओं के प्रतिनिधियों मसंदों के मध्यम से जुड़ाव बना रहा. मसंदों, संगतों, सेवकों, भक्तों की श्रद्धा और प्यार को देखते हुए गुरु तेगबहादुर जी ने पूर्व की यात्रा की थी। सासाराम के चाचा फगु शाह, ढाका के भाई बुलाकीदास, बनारस के भाई जवेरी जी और पटना के भाई दयाल दास जी दिवाली के सालाना समागम में शामिल होने; दसवंध की भेंटा देने तथा गुरु दर्शनों के लिए बकाला पहुँचे. उन्होंने विनती की कि गुरु नानक जी अपनी यात्राओं के समय पूर्व में सिख संगठन कायम कर गए थे अब आपके दर्शनों की चाहत है। भाई संतोष सिंह लिखते हैं:

कब राकापति बदन दिखावै।
ब्रिन्द चकोर सिख हरखावै।

ढाका, बनारस, पटना, मुंगेर व जौनपुर इत्यादि की संगत ने समस्त यात्रा का खर्च उठाने का भी निश्चित किया। गुरुजी व कुछ अन्य सिख घोड़ों पर सवार थे। माता नानकी व गुजरी जी रथ पर सवार थे। दिल्ली से चलकर पहला पड़ाव मथुरा में कंस टीला के पास किया। श्री कृष्ण महाराज की जन्मस्थली मथुरा,, वृंदावन महत्त्वपूर्ण पड़ाव थे इस समय आप ने गोकुल की भी यात्रा की।

आगरा में एक वृद्ध माई भागो गुरु जी के आने की आस लगाकर बैठी थी उसने अपने हाथ से कात कर वस्त्र तैयार किया था, जिसे गुरुजी को भेंट करना चाहती थी। ईश्वरीय आत्मायें तो प्यार से ही पाई जा सकती हैं। गुरु जी ने माई भागो की तड़प का एहसास किया और स्वयं उसके पास पहुँचकर भेंटा स्वीकार की। उस स्थान का नाम ही 'माई-थान' अर्थात् माई का स्थान हो गया।आगरा से इटावा होते हुए कानपुर पहुँचे. रवायत व लोक श्रुति के अनुसार इटावा में आप एक उदासीन आश्रम पूर्वी टोला में ठहरे जिसकी सेवा उदासीन संप्रदाय के पास है। कानपुर से यह काफिला प्रयाग राज पहुँच गया। अहीया पुर मोहल्ले में पड़ाव किया गया। अब यहाँ गुरुद्वारा पक्की संगत एक बहुमूल्य यादगार के रूप में खड़ा है। प्रयाग में गुरुजी लगभग 4 महीने तक रहे। लोगों को भ्रम और कुरीतियों के विरुद्ध उपदेश देते हुए गुरुजी ने दान पुण्य भी बहुत किया। गुरु गोबिंद सिंह जी ने विचित्र नाटक में अपनी आत्मकथा में लिखते हैं:

जब ही जात त्रिबेनी भये।
पुन दान दिन करत बितेये।

गुरुजी ने यात्रियों, संतों व फकीरों के लिए लंगर खोल दिए व जरूरतमंदों को वस्त्र इत्यादि भी दान किए गए। विचित्र नाटक यह रिकॉर्ड करता है :

तात मात मुर अलख अराधा।
बहु बिध जोग साधना साधा।
तिन जो करी अलख की सेवा।
ता ते भये प्रसन्न गुरदेवा।

गुरु गोबिंद सिंह दुनिया में आने का प्रयोजन बताते हुए लिखते हैं कि उनके माता-पिता इतनी कठोर साधना कर रहे थे, निसंदेह समय की मांग को देखते हुए एक बलवान, बली योद्धा पुत्र की कामना थी; जो भारतवर्ष का उद्धार व दुष्टों का संहार कर सके. दूसरी तरफ ईश्वर भी अपने प्राणियों पर और अत्याचार सहन नहीं कर सकता था। गुरु गोबिंद सिंह जी लिखते हैं:

तिन प्रभ जब आयास मोहे दिया।
तब हम जनम कलू में लिया।
तेहि प्रकाश हमारा भयो।
पटना शहर विखे भव लयो।

माता नाम की भी पोते को गोद खिलाने की प्रबल आस्था रखती थी:

सुत के सुत को लेकर गोद।
करो दुलारन पाए प्रमोद।[17]

भाई काहन सिंह नाभा के अनुसार दशमेश माता के गर्भ में यही पर विराजे थे। पटना के स्थान पर आपका जन्म हुआ।

प्रयागराज में गुरु जी का कारवां मिर्जापुर पहुँचा, जहाँ गुरुद्वारा गुरु की संगत है। मिर्जापुर की संगत के प्रति गुरु जी का विशेष स्नेह व मान पता चलता है। भाई बालचंद, भाई हरि कृष्ण, भाई चतुर्भुज, भाई लालू आदि यहाँ के सिख, इतिहास प्रसिद्ध हैं। मिर्जापुर की संगत के नाम गुरुजी का हुकमनामा उपलब्ध है जो बताता है कि संगत का दसवंध या कार भेंटा गुरुजी तक पहुँची और उनके आशीर्वाद भी प्राप्त हुए।

सफेद घोड़े श्रीधर पर सवार होकर ठेठ राजसी वेशभूषा में गुरु जी काशी, बनारस पहुँच गए। कीमती कहीं खाब का यह चोला अंग (अंग-वस्त्र) भूरे रंग का है व गुरुद्वारा बड़ी संगत में सहेज कर रखा गया है। 18 इस क्षेत्र के प्रसिद्ध सिख भाई जवेहरी मल, भाई राम राय, भाई कृपाल दास, भाई शिबू सेठ, दलपत और भाई भिखारी दास आपकी सेवा में हाजिर रहे। बनारस रेशम के काम के लिए प्रसिद्ध है। आपको रेशम के कटरे में ले जाया गया। संगतों का प्यार, श्रद्धा व उल्लास को देखकर गुरुजी ने कहा:

होए प्रसन्न सतगुरु कहियो।
यह कोठा सिखी को आहि।

(महिमा प्रकाश)

गुरु जी के दर्शन के लिए जोगी, संन्यासी, सिख, भक्त कबीर व रविदास जी के अनुयायी उमड़ पड़े. यहीं पर आप ने गंगाजल को प्रकट किया, जिस की निर्मल धारा आज भी केवल डेढ़ दो फुट की गहराई पर गुरुद्वारे के अंदर ही बह रही है।[19]

ज्ञान गोष्टी विचार-विमर्श चलता रहता था.गुरुजी विशेष तौर पर यह कहते थे, कि धर्म में कथनी व करनी में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। जो धार्मिक पोथियों व ग्रंथों में लिखा है, उस पर चलना व उसे जीवन में उतारना ही प्रधान व प्रमुख है। बनारस में गुरु जी का प्यारा घोड़ा श्रीधर बीमार हो गया। आपने वहाँ के मसंद भाई जवेहरी मल जी को उसकी देखभाल की जिम्मेदारी सौंपी और एक हुकमनामा जारी किया।

"गुरसत भाई जवेहरी सरबत संगत गुरु रखेगा। श्रीधर की संगत सेवा करनी। अलूफा श्रीधर नूं देना। श्रीधर जित वेला चंगा होवेगा, तां पटने पहुँचाए देणा, संगत का भला होगा"। (यह हुकमनामा गुरुद्वारा बड़ी संगत बनारस में रखा है।)

जौनपुर की संगत भाई गुरबख्श जी के नेतृत्व में गुरु जी के दर्शनों को आई। भाई गुरबख्श जी पर कीर्तन की मेहर थी। आप संगत को निहाल करते रहते थे। एक दिन गुरुजी उस कीर्तनीए से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने एक मृदंग भाई गुरबख्श जी को दे दी। जिससे जौनपुर की संगत का नाम ही 'मृदंग वाली संगत' पड़ गया।

ससराम ने एक अनन्य प्यारे गुरु सिख व समस्त संगत को मिलने गुरुजी पहुँचे। वहाँ के मसंद का नाम फग्गू शाह था जिसे प्यार से लोग चाचा फग्गू भी कहते थे। उसने अपने घर के द्वार बहुत ऊँचे बनवाए थे, ताकि गुरु जी घोड़े पर सवार होकर वहाँ प्रवेश करें. लोग इस बात के लिए उसकी हंसी भी उड़ाते होंगे। पर भक्त का प्यार गुरु जी को वहाँ ले गया। फग्गू शाह ने दसवंध व कार भेंटा गुरु जी को जब अर्पण की; तो गुरुजी ने पूछा, "कुछ रह तो नहीं गया? या कुछ

याद ना आ रहा हो" तो महिमा प्रकाश के अनुसार फग्गू ने कहा,

"जो कार गुरु जी जुरे फग्गू गृह रखें,

बनाए हुण्डी कराए हुजूर सो देता सदा पठाये"।

जब फग्गू उदास होकर बैठ गया तो, गुरुजी ने कहा तुम्हारे आंगन में जो बेरी का पेड़ है उसका हिसाब नहीं दिया। तब फग्गू को याद आया कि जब वह एक सिख के घर कार भेंटा इकट्ठा करने गया था तो उसकी पत्नी ने कहा कि, 'वह घर पर नहीं हैं और कुछ देने को भी नहीं है'. तो उस ने कहा, 'जो घर पर है वही दे दो' तब उस स्त्री ने कहा, 'मेरे घर में तो केवल कूड़ा है, ले जाओ.' फग्गू धन्यवाद करता हुआ कूड़ा ही उठा लाया था। घर लाकर जब कूड़े को छाना तो उसमें से बेर की गुठली निकली. उसे आंगन में दबा दिया। समय पाकर वह एक बड़ा फलदार वृक्ष बन गया। धर्म जो निस्वार्थ भाव से चलते हैं, उनमें नम्रता का गुण भी उतना ही आवश्यक है। गुरुजी के अनुसार असली सिख का स्वरूप यही है। इसी के अवगुण न निकाल कर, कर्तव्य पथ पर बिना किसी दम्भ व अहंकार के आगे बढ़ते रहना। इससे यह भी पता चलता है कि गुरु भेंटा या दसवंध का क्या अर्थ है। समाज कल्याण हेतु बड़े धार्मिक स्थानों पर लंगर, अस्पताल, वृद्धाश्रम या शिक्षण संस्थाओं को चलाने के लिए आर्थिक संस्थानों की आवश्यकता होती है जो सबकी पवित्र कमाई से ही संपन्न होता है।

गया से होते हुए, गुरुजी पटना पहुँचे। बिहार का प्राचीन शहर जहाँ बुद्ध धर्म भी विकसित हुआ था। एक बहुत ही ऐतिहासिक स्थान है। गुरु जी ने यहाँ पर एक श्रद्धालु चेतराम की हवेली में डेरा डाला, पर यह स्थान छोटा था और गुरु जी का आगमन सुनकर बड़ी संख्या में सिख उनके दर्शनों के लिए कई तरह की भेंट एवं उपहार लेकर पहुँचने लगे। गुरु नानक जी ने जो संगत यहाँ स्थापित की थी, वह काफी बड़ी हो गई थी। भाई जय गोपाल अग्रवाल ने गंगा किनारे अपनी बड़ी हवेली गुरुजी को अर्पण कर दी। यहाँ आज एक विशाल गुरुद्वारा है।[20]

गुरु जी के आगमन व प्रवचनों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि हाकिम नवाब रहीम बक्श व अन्य नवाब भी गुरुजी के नतमस्तक हो गए। सासाराम के नवाब ने 52 बीघे खाम जरीब पट्टा गुरुजी के नाम किया, जिसकी आमदनी से संगत व धर्मसाल की देखभाल होती रहे। एक फरमान के द्वारा पटना की महसूल चुंगी इकट्ठी करने की आज्ञा सिखों को दी गई। जिस बैलगाड़ी में अन्न, घी व मसाला लदा होता था, उस पर महसूल की दर दो दमड़ी की दर से, अन्य सामानों जैसे कि कपड़ा इत्यादि पर एक दमड़ी की दर से वसूली के आदेश प्राप्त हुए। गाँव चूरिया का समस्त इलाका गुरु तेगबहादुर जी के नाम किया गया। जिससे धर्मसाल में ठहरे फकीर वह साधुओं के लिए राशन पानी की कमी ना हो और धर्म व दान के कार्य भी चलते रहे। गुरुजी के नाम कुछ लोगों ने अपने बाग भी कर दिए।[21]

कुछ इतिहासकारों में केवल फारसी के एक स्रोत का हवाला देते हुए गुरुजी को डाकू में लुटेरा कहा है। सियारुल- मुतखरिन का लेखक सैयद गुलाम हुसैन गुरु जी की शहीदी के लगभग 100 साल पश्चात गुरुजी पर लूट खसोट का आरोप लगाता है; जो बिल्कुल आधारहीन था उसी का समकालीन जार्ज फोरस्टर गुलाम हुसैन को कोलकाता में मिलता है लेकिन अपने पंजाब भ्रमण के समय उसे कोई भी ऐसा दस्तावेज नहीं मिलता जिसमें किसी संगीन अपराध का वर्णन हो, जिसके लिए गुरुजी को इतनी बड़ी सजा दी गई। 22 लोग तो अपने प्यार व श्रद्धा से गुरु जी को वोट देते थे क्योंकि उसका खर्च समाज की भलाई में होता था।

एन.सी.ई.आर.टी की किताबों में लगभग 20 वर्ष तक गलत पढ़ाया जाता रहा, किसी भी संस्था ने न तो इसका विरोध किया और ना ही इसे ठीक करने के लिए कोई मुहिम चलाई। गोबिंद सदन के संस्थापक बाबा विरसा सिंह व शिक्षा मंत्री मुरली मनोहर जोशी तथा जे.एस. राजपूत डायरेक्टर एन.सी.ई.आर.टी. के अथक प्रयासों से यह मामला सर्वोच्च न्यायालय में पहुँचा। सर्वोच्च न्यायालय ने धर्म व उनके महापुरुषों को समान आदर देते हुए, सम्मान सहित यह आदेश जारी किया-

"The object for value based education is to have a national fight against all kind of fanaticism, ill will, violence, dishonesty, corruption, exploitation and drag abuses… what is required today is not religious education but education about all religion, their the value inherent in and also a comparative study of the philosophy of all religions. Students have to be given the awareness that the essence of every religion is common, only the practice differ…even if there are differences of in certain areas, people have to learn to co-exist and carry no harted against and religion, one should never forget that all the values are derived from the ultimate reality as Supreme power self-conciousness to which man orients himself. To believe that we have the divine spark in each of us is the most important eternal value in culcayed by the small children even before starting their school life."[23]

अक्टूबर 2002 में गोबिंद सदन में एक प्रेस कॉन्फ्रेंस की गई, जिसमें बाबा विरसा सिंह जी ने कहा, "ईश्वरीय संदेश वाहक के बारे में इस तरह के जहरीले और झूठे आरोप हमारे देश के लिए अच्छे नहीं हैं। इस तरह अवतारों पर आक्रमण करने से कुछ भी अच्छा नहीं होगा, उनकी आलोचना न करो, हम इसे बर्दाश्त नहीं करेंगे।" इस तरह गुरु तेगबहादुर जी के बारे लंबे समय से विकृत इतिहास को शोधित किया गया।

गुरु जी लूटमार कर लंगर पानी या विकास के कार्य नहीं चला रहे थे। उनकी मान्यता व प्रभाव इतना पुरजोर था कि संगत और उनके अनुयायी, गुरु-घर व समाज कल्याण के कार्यों में डालने के लिए तत्पर रहते थे, यह गुरु सेवा थी, जिसे दसवंध भी कहा जाता है।

गुरुजी के जो हुकुमनामें पटना से भेजे गए, वह इस बात के साक्षी हैं कि गुरु जी तपी और त्यागी होने के बावजूद अपनी जिम्मेदारियों से अनभिज्ञ नहीं थे। परिवार के प्रति क्या जिम्मेदारी होती है इसको भी खूब समझते थे, गोबिंद दास (गुरु गोबिंद सिंह) जी के जन्म के समय जो दाई थी उसको बेबे पेड़ी बाई कहकर संबोधित किया गया है। बेबे शब्द पंजाब में आदर सूचक शब्द है। बेबे पेड़ी बाई का परिवार भी गुरु घर के प्रति समर्पित था। इस बात

का पता इस बात से चलता है कि पेडी बाई की बेटी दाई लाडो का वर्णन भी एक हुक्मनामें में मिलता है। दाई लाडो व भाई राम राय के नाम यह संदेश आनंदपुर साहब से लिखा गया, जिसके अनुसार दाई लाडो का प्रतिनिधि दरबारी सोभा चंद आनंदपुर साहिब पहुँचा था।[24]

परिवार के प्रति एक सुघड़ पिता, पति व बेटे के नाते आप ने मुंगेर से पटना की संगत को लिखा,

"कोई अव्वल हवेली होवे, बड़ी होवे
तिस में कबीले हमारे रखणा
संगत के गुरु रुजगार में बरकत करेगा
सेवा का वेला है।"

ढाका के स्थान पर जब गोबिंद दास जी के जन्म की खबर पहुँची तो, गुरु तेगबहादुर ने पटना की संगत को लिखा,

"सरबत संगत पटने की
जिन सिख वाहेगुरु किया है
तिस के मनोरथ पूरे होंवेंगे
गोबिंद दास की बढाई ऊपर
संगत खर्चा किया
गुरु की दरगह थायें पया
रूपये की मोहर थायें पई
आगे जो सेवा करेगा तिस का भला होवेगा
संगत के रुजगार में बरकत होग
भाई जी सिरपाऊ भेजिए है
पटणा गुरु का घर है
संगत का भला होग"

बालक गोबिंद का पालन पोषण बड़े प्यार व दुलार से पटना में हो रहा था। अपनी आत्मकथा में आप स्वयं लिखते हैं-

"भांति भांति दाईयन दुलराये
कीनी अनिक भांति तन रच्छा
दीनी भांति भांति की सिच्छा"

(विचित्र नाटक, गुरु गोबिंद सिंह)

गुरु जी इसका श्रेय भी संगत को देते हैं, उनका धन्यवाद करते हैं और आशीर्वाद भी देते हैं, कि जो सेवा उन्होंने बाल गोबिंद के प्रति की है; वह गुरु जी की दरगाह में कबूल होगी. कुशाग्र, निपुण और सर्व कला संपूर्ण गोबिंद दास के बचपन के खेल कोई साधारण बालक वाले नहीं थे। वह तो समाज में आत्मसम्मान बचपन से ही जगा रहे थे उनके खेल एक नया नरेटिव लिख रहे थे। इतिहास को बदलने की तैयारी दिख रही थी। 'स्व' के लिए गौरव व गरिमा से परिपूर्ण, आपके खेल प्रतिरोध की भूमिका लिख रहे थे। आप बच्चों की दो टोलियाँ बनाकर युद्ध जैसे दृश्य पैदा करते थे। अपने साथियों वह बड़े बुजुर्गों को नवाबों, काजियों व सरकारी ओहदेदारों को सलाम करने से रोकते थे, उनके सामने डटकर खड़े होने का आदेश भी आप देते थे। वास्तव में में जुल्म जबर व अन्याय का प्रतिरोध आपकी रग रग में था। कालांतर में वह प्रतिरोध व प्रतिशोध खालसा सृजन के रूप में प्रकट होता है। 1699 ईस्वी में गुरु गोबिंद सिंह ने बैसाखी के दिन एक ऐसा इंसान पैदा किया उसके धर्म रीति-रिवाजों जीवन के उच्च मूल्यों का धारणी होकर उनका रक्षा करने वाला था, जो देश व राष्ट्र के प्रति कुर्बान होने का जज्बा रखता था, जिसने मुगलों के अफगानों की जड़ों को हिला दिया था।

यह बात माताओं का अन्य सेवकों के दिल में चिंता लगाती थी, पर जब गुरु तेगबहादुर जी को यह खबरें पहुँचती थी तो आपने बाल गोबिंद को ऐसे खेलों से रुकने के स्थान पर कहा,

"जो गोबिंद किया भला किया,
अव्वल तो सरकारी अहलकार को सलाम नहीं करना
गर आए ही बैठे तां पवांदी (पाँव की तरफ) देणी, सिरान्दी नहीं।"[25]

गुरु तेगबहादुर की जी संगठन का काम बड़ी तत्परता के साथ कर रहे थे। गुरु नानक जी द्वारा स्थापित संगतों और सिख सेवकों के मन में नौवें में नानक गुरु तेगबहादुर जी को देखकर अपार हर्ष था। हुक्मनामों से यह पता चलता है कि भाई दयाल दास को पटना का सूबेदार बना दिया गया। पूर्वी प्रांतों में बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में काशी, मिर्जापुर, जौनपुर, प्रयागराज की संगत को एक नेता देकर गुरुजी ने सिखी को संगठित किया, यह आवश्यक था। पंजाब में गुरु जी फेरियाँ करते रहते थे, पर इन दूरस्थ प्रदेशों में सभी गुरु नहीं पहुँच पाए थे। इसलिए इन प्रदेशों को संभालना व संगठित करना आवश्यक था। मुंगेर से आपने भाई दयाल दास जी को लिखा-

"सरबत सिखां दे मनोरथ गुरु पूरेगा। भाई जी असां मंगेर छावनी किती है। भाई जी तुहाडे पुरे के मसंद है। सरबत संगत पारे की लै के दरसन आवना।"

पटने की संगत को यह आदेश दिया-

"भाई दयाल दास कहे गुरु का हुक्म कर मनना।"

"दयालदास कहे सो संगत मनदे रहणा, सिखां का भला होवेगा।" यह हुकुमनामा बनारस की संगत की तरफ है।

ढाका की संगत गुरु जी को आदर सहित लेने के लिए पटना पहुँची थी। उनको फल देते हुए गुरुजी ने उनके साथ चलने की तैयारी कर ली. प्रोफेसर प्यारा सिंह पदम के अनुसार, "बाढ़ कस्बे में तिर्था चौक के पास बालीपुर मोहल्ले में जो गुरुद्वारा बना है, उसमें हस्तलिखित गुरु ग्रंथ साहब की एक बीड़ व पुरातन जन्मसाखी रखी है, जिसमें लिखा है, पैड़े मोखे ने 2 महीने व 17 दिन में इसे तैयार किया था।"

यहाँ से गुरु जी मुंगेर पहुँच गए। महान कोश के अनुसार इस स्थान पर गुरु जी ने पडाव किया, उसे पिपल पाती पक्की संगत मुंगेर कहा जाता है।[26]

भाई संतोख सिंह के अनुसार :
हुतो मुंगेर नगर इक भारे
बसह ब्रिंद त्र गंगा किनारे
श्री सतगुर थ उतरे जाये
संगत सुन आई समुदाय।[27]

मुंगेर से आपने जो हुकमनामा भाई दयाल सिंह जी को भेजा उसमें स्पष्ट रूप से कहा, "हुण समां है सिखी दी सेवा करण दा" डॉक्टर तरलोचन सिंह लिखते हैं, कि एक आसामी इतिहासकार का यह कहना है कि वह बेशुमार ब्राह्मणों व क्षत्रियों के गुरु बन गए.

.. और केवल वाहेगुरु वाहेगुरु ही बोलते थे।"

अगला पड़ाव भागलपुर में था जहाँ आज भी कई गाँव सिखों के बाहुल्य के क्षेत्र हैं। उनकी पोशाक बिहारी है, व भाषा भी मैथिली बोलते हैं पर वह केसाधारी हैं और सिख रस्मों रिवाजों को मानते हैं। यह कई तरह से पंजाब के सिखों से अधिक साफ व पवित्र हैं।[28] यहाँ से गुरुजी मालदा, गोडाकारी, गोपालपुर, पावना व मुर्शिदाबाद होते हुए ढाका पहुँचे।

ढाका उस समय बंगाल की राजधानी था मलमल व सूती कपड़े के लिए विशेष प्रसिद्ध था वह एक बड़ा व्यापारिक केंद्र था। लोग धनी थे, और लेन-देन मोहरें गिन कर नहीं तोल कर दी जाती थी। गुरु नानक देव जी ने अपनी पहली उदासी के समय 1507 ईस्वी में सिख संगत स्थापित की थी। कालांतर में गुरु अमरदास तीसरे सिख गुरु ने जब 22 मंजियों की स्थापना की, तो यहाँ पर एक मंडी स्थापित की थी। गुरु हरगोबिंदजी के समय उदासी भाई अलमस्त जी को यहाँ प्रचार प्रसार के लिए भेजा गया, जिन्होंने भाई नत्था सिंह जी को यह कार्य सौंपा. गुरु तेगबहादुर जी के समय मसंद भाई बुलाकी दास जी प्रचार व संगठन का कार्य कर रहे थे। बुलाकी दास जी की माता गुरुजी पर बहुत श्रद्धा रखती थी। आपने ढाका के बेहतरीन व उम्दा मलमल से गुरु जी की पोशाक बनवाई व उनके विराजने के लिए एक सिंहासन भी बनवाया था। गुरु जी ने वस्त्रों को अंगीकार किया, व सिंहासन पर भी विराजे. माता जी की यह प्रबल इच्छा थी कि गुरु जी की एक तस्वीर उनके पास हो, जो गुरुजी के पास होने का एहसास लगातार होता रहे।

नवाब भाइस्ता खान भी गुरुजी से काफी प्रभावित था, उसने एक प्रसिद्ध चित्रकार तस्वीर बनाने वाले के लिए भेजा. चित्रकार ने गुरुजी के शरीर के सभी अंग और वस्त्र तो बना लिए; पर वह चेहरा नहीं बना पा रहा था। चेहरे का ओज इतना अधिक था, दैवीय तेज इतना प्रबल था, वह उसका चित्र ना बना पाया। गुरु जी ने स्वयं कलम लेकर चेहरा बना दिया। प्रिंसिपल सतबीर सिंह ठीक लिखते हैं कि शायद यह किसी पैगंबर का पहला स्वयं बनाया चित्र (सेल्फ portrait)होगा। ढाका की संगत का प्यार देखते हुए गुरुजी यहाँ लगभग 1 वर्ष तक रहे और कहा "मम सिखी का कोठा ढाका" स्थान पर भाई मेहरचंद, भाई कल्याण दास गुरु गोबिंद सिंह जी के जन्म का शुभ समाचार लेकर पहुँचे। बालक का नाम गोबिंद दास रखा गया। बचपन में गोबिंद राम राय नाम भी प्रचलित रहा होगा, पर गुरु जी के हुकुम नामों में गोबिंद दास ही मिलता है। भाई दयालदास, राजा फतेह चंद मैनी के उत्साह से गोबिंद दास के खेलने व रहने के लिए एक बड़ी हवेली का निर्माण किया गया, जिसमें बाग बगीचे भी बनाए गए। ढाका में भी इस खुशखबरी को उल्लास व खुशी से मनाया गया। रात को दीपमाला की गई तथा कीर्तन का प्रवाह चलता रहा, जरूरतमंदों को कपड़ा दिया व लंगर भी चलते रहे। ढाका से गुरुजी सिलहट संदीप तथा जैतीपुर इत्यादि भी गए। वहाँ सिख संगतें गुरु नानक जी के समय से कायम थी।

सन्दर्भ सूची :

1. प्रि. सतबीर सिंह, इति जिन करी, पृष्ठ 55
2. भाई संतोख सिंह, गुर प्रताप सूरज, अंश 28
3. सेवा सिंह, गुरु तेगबहादुर, पृष्ठ 110
4. सूरज प्रकाश, रास 39
5. सतबीर सिंह, इति जिन करी, पृष्ठ 63
6. DR. Trilochan Singh, GURU TEG BAHADUR : PROFETAND MARTYAR, P. 193
7. गुरु तेगबहादुर : जीवन, सफर व शहादत ; सम्पादक-डॉ तरन सिंह, पृष्ठ 205
8. प्रि. सेवा सिंह कौड़ा,गुरु तेगबहादुर,पृष्ठ 11
9. प्रि. सतबीर सिंह, इति जिन करी, पृष्ठ 43
10. प्रि. सतबीर सिंह, इति जिन करी, पृष्ठ 71
11. भाई संतोख सिंह, गुर प्रताप सूरज, अंश 32
12. भाई संतोख सिंह, गुर प्रताप सूरज, अंश 32
13. गुरु कियाँ साखियाँ, साखी नम्बर 225, पृष्ठ 73
14. महिमा प्रकाश, साखी 5, महला नौवां
15. महिमा प्रकाश, 29
16. प्रि. सतबीर सिंह, इति जिन करी, पृष्ठ, 75
17. भाई संतोख सिंह, गु.प्र.सू. रास 11, अंस 49
18. ज्ञानी ठाकुर सिंह, श्री गुरुद्वारा दर्शन, पृष्ठ 183
19. डॉ तरलोचन सिंह, गुरु तेगबहादुर, (पंजाबी) पृष्ठ 41
20. ज्ञानी ठाकुर सिंह, श्री गुरुद्वारे दर्शन, पृष्ठ 184
21. प्रि.सतबीर सिंह, इति जिन करी, पृष्ठ 97-98
22. A jaurnay from Bengal to England, language department, Punjab 1970, P-300
23. Gobind Sadan Times, nov 2002
24. प्रि. सतबीर सिंह, इति जिन करी, पृष्ठ 94
25. प्रि. सतबीर सिंह, इति जिन करी, पृष्ठ 96
26. महान कोष, पृष्ठ 983
27. भाई संतोख सिंह, गु.प्र.सू. रास 12, अंसु 4
28. वही, पृष्ठ 20

• • •

गुरु तेगबहादुर जी : पूर्वी भारत की यात्राएं

डॉ. परमवीर सिंह

गुरु तेगबहादुर जी सिखों के नौवें गुरु थे, जिनके जीवन और कर्म में सेवा, संयम, भक्ति, वीरता और मानवाधिकारों की सुरक्षा के आदर्श परिलक्षित होते हैं। 15 रागों में 59 शबद और 57 श्लोक मनुष्य के आध्यात्मिक विकास की दिशा निर्धारित करते हैं। गुरु जी की बाणी जीवन के आदर्श से भटके मनुष्य को, उच्चतम आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचाने का मार्गनिर्देश करती है। गुरु जी समझाते हैं कि आसा, मनसा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, निंदा, हर्ष, शोक आदि मनुष्य के मन को चंचल और कमजोर बनाते हैं और जब वह उनसे मुक्त हो जाता है तो मन में निर्भयता और निर्वैर भाव उत्पन्न होता है। सांसारिकता से दिव्य जीवन की यात्रा गुरु तेगबहादुर की बाणी का लक्ष्य है जिसके लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है। यह कार्य असंभव नहीं है लेकिन जीवन में गुरु के मार्गदर्शन को लागू करके इसे संभव बनाया जा सकता है।

गुरु तेगबहादुर जी का जीवन और बाणी गुरु नानकदेव जी की शिक्षाओं और संदेश का विस्तार है। गुर नानकदेव जी ने सुल्तानपुर की भूमि पर प्राप्त दिव्य संदेश को फैलाने और प्रचारित करने के लिए लंबी यात्राएँ कीं। गुरु जी किसी भी व्यक्ति, सत्ता, धर्मगुरु, तपस्वी, योगी, सरेवर के साथ चर्चा करते थे और उन्हें एक ईश्वर-उन्मुख जीवन जीने की प्रेरणा देते थे, यह संदेश उन्हें गुरु जी की संप्रभुता को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता था। गुरु नानकदेव जी की शिक्षाओं का प्रचार उनके उत्तराधिकारी गुरुओं द्वारा किया गया। गुरु नानकदेव जी के बाद, गुरु तेगबहादुर जी ने दिव्य संदेश के प्रसार और प्रचार के लिए लंबी यात्राएँ कीं।

गुरु तेगबहादुर जी ने सबसे अधिक पूर्व की यात्रा की। भट्ट वहियाँ बताती हैं कि गुरुजी ने दो बार पूर्व की यात्रा की और 1656 में, गुरु पद ग्रहण करने से पहले, उन्होंने पहली बार पूर्व की यात्रा की। गुरु हर राय के ज्योति-ज्योत समाने के समय वह अपने परिवार के साथ पटना शहर में मौजूद थे। अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि गुरु साहिब जी की स्मृति में उनके चरण छोह प्राप्त तीर्थ, उनके गुरु-गद्दी अपनाने के बाद हैं। ज्ञानी ज्ञान सिंह ने 'तवारिख-गुरु खालसा' में गुरु तेगबहादुरजी के चरण-छोह प्राप्त जिन स्थानों का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं-युगाना, अटावा, आनंदपुर (मखोवाल), अयोध्या, अली शेर, आगरा, आरा, अमृतसर, समाऊँ, समाना, साहिब गंज, साखी गोपाल, साबो की तलवंडी (दमदमा साहिब), सेखा, सैफाबाद (बहादुरगढ़, पटियाला), सोहिवाल, सासाराम, सुधैल, सुलीसर, सिंग्रेडी, हरिद्वार, हंडिआईया, कहिलगाँव, कटक, कनौर, कबुलपुर, करहाली, कलौड़, काशी (बनारस), कानपुर, कामरूप, कांची पुरी, कीरतपुर, कुंतल नगर, कैथल, कट्टू, कर्रा, खटकड़, खडूर, खरक, ख्याला, खाना, खीवा, गया, गरना, गढ़गंगा, गागा, गुरखंजर पुर, गोइंदवाल, गोकल, गोबिंदपुरा, गंडू, घनोली, चिका, छपरा, जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा), जींद, टहिलपुरा, टेक, ढाका, ढिलवां, तरनतारन साहिब, थानेसर, दमदमा (ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे रंगमाटी नगर के पास), दादू माजरा, धमधान, धरम कोट, धोबिया बंदर, नन्हेडी, नलहट्टी, नौलखा, पहोआ, पटना, प्रयागराज, फरवाही, फर्रुखाबाद, बक्सर, बकाला (बाबा)), बनी बदर, बरहा, बलेउ, बारना, बालेश्वर, बृंदाबन, बछौना, भरतगढ़, भागलपुर, भंदेहर, भीखी ढाब, भूपाल, भुवनेश्वर, मकसूदाबाद (मुर्शदाबाद), मकुरार, मथुरा, मदरापुर, मैसरखाना, मानकपुर (कड़ा), माल दो, मेदानी पुर, मुकारनपुर, मुंगेर, मुरादाबाद, मुणक, मुलोवाल, मिर्जापुर, मोरभंज, मोतीबाग (पटियाला) मौड़, रहेला, राजमहल, रोहतक, रोपड़, लखनऊ, लखनौर (अंबाला), लंग, लखन माजरा, लेल, वल्ला।

ज्ञानी ज्ञान सिंह ने उक्त रचना पाँच भागों लिखी,जिसके पहले तीन भाग 1891 में सियालकोट से प्रकाशित हुए थे। इस काम का हिस्सा जो पाठकों और पुस्तकालयों के लिए आम देखने को मिलता है, वह भाषा विभाग, पंजाब द्वारा 1970 में प्रकाशित किया गया था। गुरु तेगबहादुर जी के चरण स्पर्श किये गये स्थानों का विवरण भी भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित 'तवारीख गुरु खालसा' से लिया गया है। इस कृति में लगभग 120 स्थानों का वर्णन मिलता है। गुरु तेगबहादुर जी ने चरण स्पर्श स्थानों का विवरण दूसरी बार फौजा सिंह की पुस्तक 'गुरु तेगबहादुर: यात्रा के स्थान, परंपराएँ और स्मारक' नामक पुस्तक में मिलता है। इस पुस्तक में गुरु तेगबहादुर जी के लगभग 180 चरण छोह प्राप्त स्थानों का विवरण मिलता है, जैसे-उगानी, अगौल, अजराना कलां, आनंदपुर साहिब, अमानतसर (व्यास किनारे), अयोध्या, अरोड़ा, इलाहाबाद, अलीशेर कलां, अक्कड़, आगरा, आलोरख, अंबाला शहर, अमृतसर, इटावा, सासाराम, सठीयाला, समाना, समानौ, साहिब गंज, साबो की तलवंडी (दमदमा साहिब), सिंभरो, सील, सेखा, सुढल-सुढेल, सोहिवाल, सोनीपत, संघरेरी, शाहपुर, शेखूपुर, हरपालपुर, हरिद्वार, हकीमपुर, हीरो कलां, हंडिआइया, कनकवाल भंगुआं, कबूलपुर-हसनपुर, कमालपुर,करहाली करतारपुर, करहा साहिब, कलूर, कारा मानकपुर, कानपुर, कालेके, कंझला, कीरतपुर साहिब, कैथल, कुराली, कोट धर्मू, कोटली, कंत नगर, कट्टू, खटकड, खरक भूरा, खिआला कलां, खिवा कलां, खेमकरण, गया, गढ़मुक्तेश्वर, गढ़ी नजीर, गागा, गुनिके, गुरने कलां, गोबिंदपुरा, गंडुआं, घराचों, घरुआं, घूकेवाली, चीका, चोला, चक्क गुरु, छाजली, जहांगीरपुर, जींद, जोगा,

जौनपुर, झागुरी, झिवरहेडी, झुनीर (सीतलसर), टहिलपुरा, टल घनौड जट्टां, टाहला साहिब, डरौली भाई की, ड्योढ़ीसाहिब, डिख, ढाका, ढिलवाँ मौड, तरनतारन, तरावडी, थानेसर (कुरुक्षेत्र), खुही, दातनसर, दिल्ली, दिड्बा, दुलमिकी, दुगरी, दोदडा, दौलतपुर मालियान, धम्मधान साहिब, धलेउं (धलेवां), धूबडी, धौला (अडिसर), धरेडा साहिब, नशिमली और बहवालपुर, नागुरा, नन्हेरा, नन्हेडा, नवांशहर, नागरा, नाभा साहिब, निजामाबाद (आजमगढ़), नौलखा, नंदपुर, पटना साहिब, पटियाला, पलाही नगर, पिहोवा, पंढेर, फगुवाला, फरवाही, बस्सी पठान, बहादुरगढ़, बहिर जच्छ, बेहड, बबान गढ़, बरहे, बनी-बदरपुर, बाड गाँव, बाबा बकाला, बारना, बिलासपुर, बीबीपुर खुर्द, बुड़ीया, बछौना, बबनपुर, बौद्ध गया, बुद्मुर, भगड़ाणा, भरतगढ़, भवानीगढ़, भागलपुर, भीखी, भैणी बाग, भैणी मरहज, भूपाल, महिमदपुर जट्टां, मकारपुर, मकोरड साहिब, मथुरा, मैसरखाना, मालदा, मिर्जापुर, मुंगेरबाद, मुंगर,मुनियरपुर, मूणक, मूलोवाल, मौड कलां, मग्गर साहिब, रहेडा माजरा, रायपुर, राज महल, राजो माजरा, रामगढ़ बौडां, रैली, रैलों, रुडे कलां, रोहटा, रोहतक, रोपड़, लखनौर साहिब, लाखन माजरा, लेहल कलां, लंग, लंगरछनी, वाराणसी (बनारस), वल्ला।

भाई संतोख सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह और डॉ. फौजा सिंह ने उन स्थानों के बारे में बहुत विस्तृत जानकारी प्रदान की है जहाँ गुरु तेगबहादुरजी के चरण पड़े थे। इनके अलावा, कुछ अन्य गुरुमुखी स्रोत सामने आए हैं जिनमें गुरु साहिब की यात्राओं के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इन प्रमुख स्रोतों में यह पुस्तकें शामिल हैं-मालवा देश रटन की साखी पोथी (1843 से पहले); तारा सिंह नरोत्तम, श्री गुर तीरथ संग्रह (1884); ज्ञानी ज्ञान सिंह, त्वरिख गुरुद्वारियाँ (तारीख नहीं); ज्ञानी ठाकुर सिंह, गुरुद्वारा दर्शन (1923); भाई काहन सिंह नाभा, गुरु शब्द रत्नाकर, महान कोष (1930); परदुमन सिंह बद्दों, गुरधाम दीदार (1959), संपादक गुरदित सिंह; गुरमुख सिंह, ऐतिहासिक सिख तीर्थ (1995), प्रो. हरबंस सिंह, एड-इन-चीफ, सिख धर्म का विश्वकोश, भाग चार (1992-1998); डॉ.जसबीर सिंह सरना और एस। दिलजीत सिंह, गुरुद्वारा कोष (2016), भाई धन्ना सिंह चहल पटियालवी, गुरु तीरथ साइकल यात्रा (2016) आदि पुस्तकों में गुरु तेगबहादुर जी के चरण छोह प्राप्त स्थानों का विवरण मिल जाता है। गुरु तेगबहादुर मार्ग, पंजाब नामक पुस्तक डॉ. यह सुखदयाल सिंह की कड़ी मेहनत का परिणाम है जिसमें उन्होंने गुरु जी के पंजाब से सम्बन्धित स्थानों का सर्वेक्षण-आधारित विवरण दिया है। स. विशाखा सिंह, सं. जीबी सिंह, डॉ. त्रिलोचन सिंह, एस. जोगिंदर सिंह जोगी, कैप्टन भाग सिंह, ज्ञानी फौजा सिंह, डॉ. कृपाल सिंह जैसे विद्वानों ने भी गुरु जी की यात्राओं के बारे में महत्त्वपूर्ण विवरण प्रदान किए हैं।

इन विद्वानों के लेखन के आधार पर प्राप्त जानकारी के अनुसार गुरु तेगबहादुर जी ने गुरु का पद ग्रहण करने के बाद माझा और दोआबा में बहुत कम समय बिताया। गुरु ने सबसे अधिक मालवा क्षेत्र की यात्रा की। मालवा में एक से अधिक गुरुओं की प्रचार यात्राओं का उल्लेख मिलता है। इस क्षेत्र में शायद ही कोई प्राचीन गाँव हो जहाँ गुरु न गए हों। इनमें से ज्यादातर गाँव मुसलमानों के थे, जिन्हें 1947 के भारत-पाक विभाजन के दौरान खाली कराया गया था और ये पाकिस्तान से आए शरणार्थियों के घर हैं। सैफाबाद, हसनपुर-कबूलपुर, गढ़ी नजीर, समाना, नाभा साहिब आदि मालवा की भूमि पर कुछ ऐसे गाँव हैं जहाँ गुरु तेगबहादुर के पदचिन्ह हैं जो मुसलमानों के साथ गुरु जी के संवाद का प्रतीक हैं।

पंजाब के बाहर, वर्तमान हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, बांग्लादेश और असम में गुरुजी के चरण छोह प्राप्त स्थान हैं। गुरु तेगबहादुर जी ज्यादातर उन क्षेत्रों का दौरा करते थे जहाँ गुरु नानक पहले यात्रा कर चुके थे। जिन क्षेत्रों में गुरु ने पूर्व की यात्रा की थी, उन क्षेत्रों में सिख उपदेश ने गति प्राप्त की थी। गुरु की बाणी हिंदी और ब्रज भाषा से काफी प्रभावित है, जिससे पता चलता है कि गुरु ने अपनी अधिकांश बाणी की रचना उन क्षेत्रों में अपने अभियान के दौरान की थी। दिल्ली के पूर्व में जिन स्थानों पर गुरु के पदचिन्ह पाए जाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है:-

उत्तर प्रदेश

मथुरा: भारत के इस प्राचीन शहर का हिंदू धर्म में खास स्थान है। दिल्ली से दक्षिण की ओर उत्तर प्रदेश से गुजरने वाली सभी ट्रेनें यहाँ रुकती हैं। ऐसा कहा जाता है कि श्री कृष्ण जी का जन्म यहाँ द्वापर युग में हुआ था और उनकी याद में एक प्रसिद्ध मंदिर है। गुरु नानक देव जी से यह शहर सिख धर्म से जुड़ा है। पूर्व की यात्रा के दौरान गुरु तेगबहादुर ने भी इस शहर का दौरा किया था, जिनकी स्मृति में दो मंदिर स्थित हैं:

गुरुद्वारा गुरु तेगबहादुर जी, गौ घाट: मथुरा में यह मंदिर कंस टीला के पास गौ घाट के तट पर स्थित है। इस विषय में जानकारी देते हुए ज्ञानी ज्ञान सिंह कहते हैं कि कड़े मानकपुर से चलते हुए गुरु जी धीरे धीरे मथुरा शहर, कंस टीला के पास पहुँचे, जहाँ अब गुरु जी का स्थान है। साथियों की इच्छा के अनुसार वृंदाबन गोकुल आदि कृष्ण लीला के सभी स्थानों का भ्रमण किया। बिसरांत घाट जमना इसनान-दान किया, तीन रात रुके।"[2] यह स्थान अभी भी मौजूद है लेकिन लुप्त होने के कगार पर है। जिस स्थान पर श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी विराजमान थे, उस स्थान पर बाबा श्रीचंद जी की मूर्ति है। इस जगह पर कुछ कमरे हैं जहाँ उदासी महंत रहते हैं। संगत के अभाव में यह स्थान काफी जर्जर स्थिति में है।

गुरुद्वारा गुरु तेगबहादुर जी श्री गुरु सिंह सभा: यह मंदिर मथुरा रेलवे स्टेशन से लगभग 2 किमी दूर बाजार में स्थित है। सिंह सभा के प्रभाव के कारण, इस गुरुधाम को गुरुद्वारा गुरु तेगबहादुर श्री गुरु सिंह सभा के रूप में जाना जाता है। यह गुरु नानकदेव जी, गुरु हरगोबिंद साहिब जी, गुरु तेगबहादुर जी और गुरु गोबिंद सिंह जी की चरण छोह प्राप्त स्थान है। भाई गुरदास जी भी इस स्थान पर सिख धर्म का प्रचार करने आए थे। गुरु गोबिंद सिंह जी के महल (पत्नी) माता सुंदरी जी और माता साहिब कौर जी भी दिल्ली में अपने प्रवास के दौरान इस स्थान पर आया करते थे। 1942 में, सिंह सभा ने एक उदासी संत से गुरु तेगबहादुर जी के स्मारक का अधिग्रहण किया और यहाँ एक नया भवन बनाया गया। सिंह सभा समिति गुरुधाम का प्रबंधन करती थी लेकिन 1984 के बाद से चीजें बदल गई हैं। वर्तमान में गुरुधाम का प्रबंधन मलिक अरोड़ा की

अध्यक्षता वाली एक स्थानीय समिति द्वारा किया जाता है।

आगराः

यमुना नदी के तट पर बसा एक प्रमुख शहर आगरा, सुल्तानों और मुगलों के शासनकाल के दौरान भारत की राजधानी थी। पूर्व की यात्रा के दौरान गुरु तेगबहादुर इस शहर में पहुँचे। गुरु की स्मृति में दो गुरुधाम हैं:-

1. गुरुद्वारा माईथान : आगरा के घनी आबादी वाले इलाके में स्थित यह गुरुद्वारा माई जस्सी का घर था,जिन्हें दर्शन देने के लिए गुरु तेगबहादुर जी आए थे। उन्होंने गुरु तेगबहादुर को अपने हाथों से बने कपड़े का थान भेंट किया था, जिसके कारण इस स्थान का नाम 'गुरुद्वारा माईथान' प्रसिद्ध हो गया। यहाँ एक प्राचीन ताजे पानी का कुआं भी है। गुरु ग्रंथ साहिब एक बड़े हॉल के कमरे में विराजमान है और एक अन्य बहुमंजिला हॉल संगतों की जरूरतों के अनुसार बनाया गया है। गुरुधाम का प्रबंधन आगरा सिख संगत की एक निर्वाचित समिति द्वारा किया जाता है।

2. गुरुद्वारा गुरु का तालः यह गुरुद्वारा दिल्ली से लगभग 230 किमी दूर दिल्ली-ग्वालियर मुख्य सड़क पर आगरा के बाहरी इलाके में स्थित है। इस जगह से जुड़ा एक किस्सा है कि पास के गाँव कांकरेता में रहने वाले एक मुस्लिम हसन अली की दो बेटियों की शादी हुई थी। वह उनकी शादी को लेकर चिंतित था। एक दिन जब वह पशु चरा रहा था, गुरु तेगबहादुर जी उनके पास आए और भूख का हवाला देते हुए उनसे कुछ खाने के लिए लाने को कहा। गुरु ने उसे अपनी कीमती अंगूठी और शॉल के साथ बाजार भेज दिया ताकि वह इन वस्तुओं को बेच सके और खाने के लिए कुछ ला सके। जब हसन अली दुकान पर पहुँचे और कीमती सामान बेचना चाहा तो दुकानदार हैरान रह गया। चोरी के संदेह पर उसने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई और मामला अंततः गुरु तेगबहादुरजी तक पहुँच गया, जो उस समय की सरकार के अत्याचार और उत्पीड़न के खिलाफ गिरफ्तारी देने आगरा गए थे। गिरफ्तारी करने से पहले, गुरु ने हसन अली से उनकी गिरफ्तारी के लिए निर्धारित पुरस्कार राशि के साथ करने के लिए कहा, जिससे वह अपनी बेटियों की शादी कर सके। गुरु की याद में यहाँ एक सुंदर गुरुधाम सुशोभित है। मुख्य सड़क पर होने के कारण यहाँ बड़ी संख्या में सिख संगत रुकती है। ठहरने और लंगर की समुचित व्यवस्था की गई है। संत बाबा निरंजन सिंह जी और बाबा प्रीतम सिंह जी संगत के सहयोग से इस स्थान की सेवा कर रहे हैं और एक गुरमत संगीत विद्यालय भी चलाया जा रहा है।

इटावाः यमुना नदी के किनारे बसा यह प्राचीन शहर गुरुद्वारा गुरु का ताल आगरा से लगभग 135 किमी की दूरी पर स्थित है। पूर्व की यात्रा के दौरान गुरु तेगबहादुर इस शहर में आए थे। इस स्थान पर दो शिविर हैं जिनका प्रबंधन उदासी द्वारा किया जाता था। डॉ.फौजा सिंह बताते हैं कि "एक डेरे का प्रबंधन महंत बाबा ठाकुर दास के पास था और दूसरे का प्रबंधन महंत भगवान यमना दास के अधीन था। दूसरा डेरे को गुरु तेगबहादुर जी के चरणों की छोह प्राप्त में है।"[3] गुरुमुख सिंह बताते हैं कि "जिस स्थान को गुरुजी के चरण छोह प्राप्त है उसे गुरुद्वारा पूर्वी टोला कहा जाता है।"[4] इसका प्रबंधन स्थानीय संगत द्वारा किया जाता है।

कानपुरः उत्तर प्रदेश का एक शहर, भारतीय रेलवे का एक प्रमुख स्टेशन है। गुरु तेगबहादुर जी ने 1665-66 में पूर्व की ओर प्रचार यात्रा के दौरान इस शहर का दौरा किया था। इस कस्बे में गुरु जी का स्मारक मौजूद है। बीसवीं सदी के शुरूआती दौर में संत प्रद्युमन सिंह ने इसकी देखभाल आरम्भ की और अब यह एक विशाल भवन का रूप ले चुकी है। इसका संचालन स्थानीय कमेटी करती है।

कड़ाः प्राचीन लेखों में कहा गया है कि कड़ा गाँव को गुरु तेगबहादुर जी का चरण स्पर्श मिला है। गुरुमुखी सूत्रों में इसका नाम कड़ा मानकपुर मिलता है। भाई संतोख सिंह बताते हैं कि पूर्व की यात्रा के दौरान गुरुजी इस गाँव में आए थेः

कड़े सु मानिकपुर के काहु।
गमने सतगुरु बेपरवाह। [5]

इस शहर में, गुरु की मुलाकात एक लंबे समय तक रहने वाले वैष्णव संत संत मलुक दास से हुई। यह हिंदू और मुसलमानों द्वारा पूजनीय था। गुरु तेगबहादुर जी को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि गुरु नानक देव जी के ये उत्तराधिकारी शाही पोशाक क्यों पहनते हैं। वे हथियार क्यों रखते हैं? और शिकारी क्यों खेलते हैं? गुरु ने वैष्णव ऋषि को समझाया कि भगवान-आत्मा के सहयोग से किए गए कर्म कल्याणकारी हैं। गुरु के साथ चर्चा करने के बाद, उनके सभी संदेह दूर हो गए। महिमा प्रकाश कहती हैंः

संत बनने के कई तरीके हैं।
यह कलयुग मेरा गुरु अवतार है। [6]

इस नगर में गुरु जी संत मलूक दास को मिले थे, जोकि लम्बी उम्र वाला एक वैष्णव साधू था। हिन्दू और मुसलमान उसका आदर करते थे। गुरु तेगबहादुर जी के दर्शन करके इसके मन में शंका पैदा हुई कि गुरु नानक देव जी के यह उत्तराधिकारी धर्मात्मा पुरुष शाही लिबास क्यों धारण करते है? और शिकार क्यों खेलते हैं? वैष्णव साधू को गुरु जी ने समझाया कि प्रभु-भावना से जुड़ कर किये गये कार्य कल्याणकारी होते हैं। गुरु जी के साथ विचार-चर्चा करके इसकी समस्त शंका दूर हो गई। महिमा प्रकाश में बताया गया है कि
:

निज मुनि मन मो कीन बिचारा।
मिटी संक भई बुध उजियारा।
संतन रहनी अनक प्रकारा।
यह कलजुग मो गुर अवतारा।

यहाँ सिख संगत की स्थापना हो गई थी लेकिन यहाँ कोई गुर-स्थान नहीं है। मलूक दास की समाधि अभी भी है। [7]

अयोध्याः भारत का यह प्राचीन शहर हिंदू धर्म का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है जहाँ कहा जाता है कि श्री रामचंद्र जी का जन्म हुआ था। पूर्व की यात्रा के समय गुरु नानकदेव जी इस नगर में आए थे और आम लोगों को कर्मकांड को त्यागने और भगवान के साथ जुड़ने का आह्वान किया था। इस शहर में गुरु नानकदेव जी के बाद गुरु तेगबहादुर जी और गुरु गोबिंद सिंह जी के आगमन का उल्लेख मिलता है। सरयू नदी के किनारे ब्रह्मकुंड में गुरुओं की याद में

गुरुद्वारा ब्रह्मकुंड मौजूद है। इस स्थान पर गुरु जी ने एक ब्राह्मण भक्त को अपनी खड़ाऊँ दी थीं, जोकि गुरुद्वारा साहिब में संरक्षित हैं।

निजामाबाद: आजमगढ़ जिले में स्थित यह नगर गुरु नानकदेव जी और गुरु तेगबहादुर जी की चरण छोह प्राप्त है और उनकी याद में गुरुद्वारा चरण पादुका साहिब पातसाही पहली और पातसाही नौंवी स्थित हैं। दोनों गुरु साहिब की खड़ाऊँ यहाँ संरक्षित हैं। ऐसा कहा जाता है कि जब गुरु तेगबहादुर जी ने इस स्थान को छोड़ कर जाने लगे तो संगत के अनुरोध पर उन्होंने अपनी खड़ाऊँ यहाँ छोड़ दी। गुरु तेगबहादुर जी की याद में यहाँ 'तप-स्थान गुरु तेगबहादुर जी' भी मौजूद है। एक प्राचीन कुआँ संरक्षित है जिसके बारे में कहा जाता है कि यह गुरु जी द्वारा बनवाया गया था। इस गुरुद्वारा में 30 से अधिक पांडुलिपियाँ हैं, जिनमें गुरु ग्रंथ साहिब और दशम ग्रंथ साहिब शामिल हैं। गुरुधाम का प्रबंधन बाबा प्रीतम सिंह द्वारा किया जाता है, जो स्थानीय लोगों के सहयोग से आगरा में गुरु का ताल की सेवा करते हैं। पुराना रूप बाकी है। लंगर और रहने की व्यवस्था है।

जौनपुर : गोमती नदी के तट पर स्थित यह स्थान बनारस से लगभग 58 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। पूर्व की यात्रा पर इस शहर में आए थे, और उनकी याद में यहाँ गुरुद्वारा तप-स्थान श्री गुरु तेगबहादुर जी सुशोभित है। पंजाब से पूर्व की यात्रा पर जाते हुए गुरु तेगबहादुर ने बनारस में डेरा डाला और जौनपुर की संगत उनके दर्शन करने के लिए आई। संगत में भाई गुरबख्श भी उपस्थित थे जिन्होंने गुरु की उपस्थिति में बहुत मधुर और सुरीला कीर्तन किया। इसका जिक्र करते हुए ज्ञानी ज्ञान सिंह बताते हैं:

> इक गुरबख्श नाम प्रेमी सिख।
> कीर्तन गुरहि सुनायो।
> खुशी होए गुर तिस को बख्स्यो
> निज मिरदंग सुहायो। [8]

पटना साहिब से पंजाब वापस आते समय, गुरु तेगबहादुर इस शहर में आए और इस स्थान पर निवास किया। भोर में गोमती नदी में स्नान करने के बाद, गुरु ने भगवान की बंदगी की, जिससे यह गुरु जी के तप-स्थान के रूप में प्रसिद्ध हो गया। दरबार हॉल के बगल में गुरु जी का तप-स्थान बना हुआ है। इस स्थान पर श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का एक प्राचीन रूप और एक तीर संरक्षित है।

इलाहाबाद: उत्तर प्रदेश में एक प्रसिद्ध हिंदू तीर्थ स्थल है, जिसे मूल रूप से प्रयाग कहा जाता था, लेकिन बादशाह अकबर द्वारा इसका नाम बदलकर इलाहाबाद कर दिया गया। हिंदू धर्म का यह प्रसिद्ध तीर्थ गंगा और यमुना का संगम है और कहा जाता है कि सरस्वती नदी भी गुप्त रूप से यहीं मिलती है। गुरु तेगबहादुर 1666 में पूर्व की यात्रा पर यहाँ आए थे। गुरु जी के समय में यहाँ जो संगत बनी थी, उसे पक्की संगत कहा जाता था जो इस गुरुधाम के नाम से जुड़ी थी। इस स्थान पर एक प्राचीन कुआं है जो गुरु जी के समय का बताया जाता है। भाई कान्ह सिंह नाभा बताते हैं, "इस नगर के अयोध्या महल में श्री गुरु तेगबहादुर जी का गुरुद्वारा 'पक्की संगत' के रूप में प्रसिद्ध है, जिसका प्रबंध निर्मला संतों के अखाड़े द्वारा किया जाता है।" गुरुधाम का रखरखाव निर्मल संप्रदाय के महंत प्रीतम सिंह और महंत दीदार सिंह करते हैं और महंत ज्ञान सिंह वर्तमान में यह सेवा कर रहे हैं।

अहरौरा : बनारस से करीब 50 किलोमीटर दूर मिर्जापुर जिले का एक कस्बा अहरौरा गुरु तेगबहादुर जी की याद दिलाता है। गुरु तेगबहादुर यहाँ पूर्व की यात्रा पर आए थे। गुरु जी ने यहाँ एक पौधा लगाया था जिसने कालांतर में बगीचे का रूप धारण कर लिया। गुरु जी द्वारा लगाए गए बगीचे की याद में यहाँ 'गुरुद्वारा बाग श्री गुरु तेगबहादुर साहिब' यहाँ सुशोभित है।

छोटा मिर्जापुर : मिर्जापुर जिले का यह कस्बा बनारस से करीब 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 1666 में पूर्व में अपने अभियान के दौरान गुरु तेगबहादुर जी कुछ समय के लिए इस स्थान पर रुके थे। उनकी स्मृति में यहाँ गुरुद्वारा श्री श्री गुरु तेगबहादुर नौवीं पातशाही स्थित है।

बनारस: गंगा नदी के तट पर स्थित यह हिंदू धर्म का प्रसिद्ध नगर वाराणसी के नाम से भी जाना जाता है। धार्मिक शिक्षा का केंद्र होने के कारण इसे काशी भी कहा जाता है। इस शहर में गुरु नानकदेव जी और गुरु तेगबहादुर जी के चरण छोह प्राप्त स्थान हैं। 1666 में आनंदपुर साहिब से पूर्व की यात्रा पर जाते हुए गुरु तेगबहादुर जी इस शहर में आए थे। उनकी चरण छोह प्राप्त स्थानों का विवरण इस प्रकार दिया गया है :

गुरुद्वारा बड़ी संगत श्री गुरु तेगबहादुर, नीची बाग: बनारस के नीची बाग इलाके के पास भौरे मुहल्ले में यह गुरुद्वारा स्थित है। जब गुरु तेगबहादुर इस शहर में आए, तो वहाँ पहले से ही एक सिख संगत थी, जिसे बड़ी संगत भी कहा जाता था, भाई कलियाना यहाँ के मसंद थे। स्थानीय परंपरा के अनुसार, यहाँ रहने के दौरान, गुरु जी अमृत के समय स्नान करते थे और फिर प्रभु बंदगी करने के लिए भाई कल्याण द्वारा निर्मित भोरे में चले जाते थे। गुरु जी का यह बंदगी स्थान आज भी मौजूद है। यहाँ गुरु साहिब का एक चोला और खडाऊँ भी यहाँ संरक्षित है जिनके दर्शन संगत को करवाए जाते हैं। भाई कल्याण का घर एक गुरुद्वारा बन गया था, जिसकी सेवा महाराज रणजीत सिंह और पटियाला के महाराजा ने करवायी थी। इस गुरुधाम के बारे में जानकारी देते हुए भाई कान्ह सिंह नाभा कहते हैं, "महाराजा नरेंद्र सिंह पटियालापति ने 1911 में बहुत पैसा खर्च करके एक शीश महल बनाया और दो रुपये का दैनिक लंगर लगवाया। गुरुद्वारे की आमदनी कुछ घरों के किराए से और कुछ लेढूपुरा गाँव से आती है। पुजारी भाई इस्सर सिंह जी निहंग हैं जिन्होंने बड़ी मेहनत से लोगों के हाथ गई गुरुद्वारा की याद को वापस पाने की पहल की है।"[10] पटना साहिब से आनंदपुर साहिब वापस आते समय माता गुजरी जी बाल गोबिंद राय (गुरु गोबिंद सिंह जी) और उनके परिवार के अन्य सदस्य यहाँ आए थे। गुरु गोबिंद सिंह के बचपन के चरणों की जोड़ी भी यहाँ संरक्षित है।

गुरुद्वारा छोटी संगत, बनारस: बनारस में यह गुरुद्वारा एक घर में स्थित है। इस गुरुधाम के बारे में जानकारी देते हुए गुरमुख सिंह का कहना है कि दशाश्वमेध रोड से भूतेश्वर गली तक सड़क पर यह गुरुधाम स्थित है। [11] थोड़ी गिनती में सिख संगत इस स्थान पर आती थी इस कर्ण इसका नाम 'गुरुद्वारा छोटी संगत' पड़ गया।

यह स्थान गुरु तेगबहादुर और बाल गोबिंद राय (गुरु गोबिंद सिंह) की चरण छोह प्राप्त हैं।

1. बिहार

सासाराम

यह बिहार का पहला स्थान है जहाँ गुरु तेगबहादुर जी की चरण छोह प्राप्त स्थान हैं।

1. गुरुद्वारा चाचा फग्गू मल्ल : सासाराम का यह गुरुधाम चाचा फग्गू मल्ल के गुरु तेगबहादुर जी के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है। इसके बुजुर्गों ने गुरु नानक के समय में सिख धर्म अपनाया था और गुरु जी की प्रचार यात्रा के दौरान यह मसंद था। जब गुरु तेगबहादुर जी पूरब की यात्रा पर गए तो वे बहुत बूढ़े हो गये थे लेकिन गुरुजी के दर्शन की उनकी तीव्र इच्छा थी। गुरु ने उनकी इच्छा पूरी कर दी। बनारस से आते हुए गुरुजी ने इसके घर में चरण डाले थे। यहीं पर स्थानीय संगत गुरु जी के दर्शन करने आई थी। कहा जाता है कि यहाँ एक शिला पर बैठ कर गुरुजी ने स्नान किया था। चाचा फग्गू मल्ल का एक सिमराना, एक छोटा स्मारक द्वार (45'X35') और खडाऊँ इस गुरुद्वारे की विरासत का हिस्सा हैं। इसके अतिरिक्त एक ऐतिहासिक बेरी और कुछ प्राचीन हथियार भी हैं। कहा जाता है कि बेरी को गुरु ने अपने हाथों से लगाया था जो वर्तमान समय में एक विशाल रूप ले चुका है और संगत द्वारा इसके बेर प्रसाद के रूप में ग्रहण किये जाते हैं।

2. गुरुद्वारा टकसाली संगत : सासाराम में यह स्थान चाचा फाग्गू मल्ल के गुरुद्वारे के पास स्थित है। स्थानीय परंपरा में उल्लेख है कि यहाँ गुरु जी का घोड़ा रुका था और इस स्थान पर गुरुजी के चरण पड़े थे। यह स्थान माई जियो जी का खेत था जो गुरु जी के स्मारक के रूप में मौजूद है। गुरुद्वारा साहिब में माता जी की तस्वीर के नीचे लिखा है, "स्वर्गीय जीओ माता जी जिन्होंने अपनी भूमि श्री गुरु तेगबहादुर जी के शुभागमन की खुशी में गुरुद्वारा टकसाल संगत के निर्माण हेतु दान किया, सम्वत 1723 विक्रमी। 2016 में कार-सेवा के माध्यम से यहाँ गुरुधाम की नयी ईमारत बनवायी गई।"

3. गुरुद्वारा गुरु का बाग: यह स्थान भी सासाराम में स्थित है। यह स्थान गुरुद्वारा चाचा फाग्गू मल्ल से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। जब गुरु तेगबहादुर जी इस शहर में आए तो उन्होंने इस जगह पर अपना घोड़ा बांधा था। वर्तमान समय में भी संगत की इस स्थान के प्रति बहुत मान्यता है और जब किसी की मनोकामना पूरी होती है तो वे यहाँ घोडा अर्पित करते है। उदासी महंत इसका प्रबंधन करते हैं।

गया: फल्गू नदी के तट पर स्थित यह हिंदू धर्म का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है, यहाँ लोग पितरों के पिंड भरनेके लिए आते हैं।। यह शहर गुरु नानक देव जी और गुरु तेगबहादुर जी के चरण छोह प्राप्त हैं। जब गुरु तेगबहादुर इस शहर में आए, तो पंडितों ने भी उन्हें पितृ क्रिया करने के लिए कहा। यहाँ बाणी को पढ़ने और सुनने का महत्त्व समझाते हुए गुरु जी ने कहा कि गुरबानी से जुड़ने पर किसी भी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। इस स्थान को रखरखाव की जरूरत है।

पटना साहिब

यह पूर्व में सिख धर्म का एक प्रमुख केंद्र है। शहर में तख्त साहिब की मौजूदगी से सिख धर्म का महत्त्व और बढ़ गया है। इस शहर में गुरु नानकदेव जी, गुरु तेगबहादुर और गुरु गोबिंद सिंह के चरण छोह प्राप्त स्थान हैं।

1. गौ घाट: गुरु तेगबहादुर जी जब गया से पटना साहिब गए तो सबसे पहले इसी स्थान पर निवास किया। इससे पहले गुरु नानक देव जी इस स्थान पर आ चुके थे। गुरुद्वार गौ घाट गुरु नानक देव जी और गुरु तेगबहादुर जी की याद दिलाता है। एक छोटी-सी खिड़की, एक पेड़, दो लकड़ी के खंभे और एक प्राचीन चक्की गुरु जी की याद दिलाते हैं। सालिस राय जौहरी के स्थान पर मौजूद मसंद गुरु जी को बेनती कर अपने घर ले गया था।

2. तख्त श्री हरमंदिर जी, पटना साहिब: यह स्थान गुरुद्वारा गाय घाट से लगभग साढ़े तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। तख्त श्री हरमंदिर जी पटना साहिब के नाम से प्रसिद्ध इस स्थान पर गुरु नानकदेव जी की चरण छोह प्राप्त है। सालिसराय जौहरी ने गुरु जी का सिख बन कर अपने घर को एक धरमसाल बना लिया था, जोकि अब तख़्त साहिब के रूप में सिखों के एक केन्द्रीय प्रचार स्थान के रूप में प्रसिद्ध है। यह स्थान गुरु तेगबहादुर जी की चरण छोह प्राप्ति से सम्मानित है। अपने परिवार को यहीं पर छोड़कर गुरु जी असम की यात्रा पर निकल पड़े।

3. गुरुद्वारा गुरु का बाग: यह गुरुद्वारा गुरु तेगबहादुर जी और बाल गोबिंद राय (गुरु गोबिंद सिंह)जी के मिलन की याद दिलाता है। कहा जाता है कि यह पटना के रहीम बख्श और करीम बख्श का बाग था। भाई काहन सिंह नाभा कहते हैं, "यह पटना कब्रिस्तान के पास काजी का बगीचा था। जब गुरु तेगबहादुर साहिब पटना आए, तो काजी ने यह उपहार दिया।[12] बंगाल और असम में अपने अभियान के लगभग चार साल बाद, जब गुरु तेगबहादुर जी ने पटना लौटने के बाद, उन्होंने इस बगीचे में डेरे डाले। बगीचा सूखा था, लेकिन गुरु के निवास के बाद यह हरा-भरा हो गया। यहीं पर पटना साहिब की संगत ने गुरु के दर्शन करना शुरू किया और पहले गुरु तेगबहादुर जी की माता नानकी, महिल (पत्नी) माता गुजरी जी और साहिबजादा गोबिंद राय जी इस बगीचे में पहुँचे थे। यहीं पर गुरु जी की पहली मुलाकात अपने पुत्र (गुरु) गोबिंद (सिंह) से हुई थी। गुरुद्वारा गुरु का बाग यहाँ गुरु जी की स्मृति में सुशोभित है।

मुंगेर : पटना साहिब से बाढ होते हुए गुरु तेगबहादुर जी मुंगेर पहुँचे। उनकी याद में यहाँ गुरुद्वारा पक्की संगत मौजूद है। इस जगह के बारे में जानकारी देते हुए एक पत्थर पर लिखा है कि "इस गुरुद्वारे को 1934 में क्षतिग्रस्त कर दिया गया था और 1935 में इसे महंत बाबा रामदास जी उदासी संत ने फिर से बनवाया था।" इस स्थान पर गुरु ग्रंथ साहिब जी का प्रकाश किया जाता है। गुरु ग्रंथ साहिब जी की दो प्राचीन हस्त-लिखित पांडुलिपियाँ भी हैं जो बहुत पुरानी हैं। सिख आबादी नगण्य है और गुरुधाम का प्रबंधन महंत द्वारा किया जाता है। स्थानीय सिख महंत पर गुरुधाम के रखरखाव को लेकर मुकदमा कर रहे हैं और कहा जाता है कि अदालत ने

स्थानीय सिखों के पक्ष में फैसला सुनाया है।

भागलपुर : गुरु तेगबहादुर जी के मुंगेर से भागलपुर आने का जिक्र मिलता है। यहाँ गंगा नदी के बूडानाथ घाट के दाहिने किनारे पर गुरु जी की याद में गुरुद्वारा श्री गुरु तेगबहादुर बड़ी संगत सुशोभित है। भाई धन्ना सिंह चहल पटियालवी ने 18 मार्च, 1931 में इस गुरुद्वारे के दर्शन किये थे। इस गुरुधाम के बारे में जानकारी देते हुए वे कहते हैं, "भागलपुर शहर का गुरुद्वारा जिसका नाम 'गुरु की बड़ी संगत' है। भागलपुर जिले में गंगा नदी के पार गुसाई गाँव नामक एक सलेम गाँव था। इस गाँव की जमीन 1484 बीघा है। गुरु का गाँव लेने वाले का नाम है-राम गुलाम छाऊ और वह पर्वता कस्बे का रहने वाला है। महंत जी ने गुरुद्वारों की भी नीलामी करने की कोशिश की। लेकिन पंडित (केदारनाथ झा) ने बहस करके रख लिया। गुरु का स्थान मानकर पंडित जी ने अपने आराम के लिए झगड़ा करके उदासी साधक से गुरुद्वारे को रख लिया। क्योंकि पंडित जी मजिस्ट्रेट साहब के पास अहलमद हैं इसलिए गुरुद्वारा का मुकदमा जीत लिया गया है। नहीं तो इसे नीलाम कर दिया जाता।"[13] वर्तमान में सिंधी, सहजधारी और कुछ गुरसिख परिवार मिलकर इस गुरुद्वारे की देखरेख करते हैं।

गुरुद्वारा बड़ी संगत से लगभग आधा किलोमीटर दूर गली मथुरा नाथ, मोहल्ला बुरहाननाथ घाट स्थित है। इसका संचालन महंत करते हैं। यह महंत गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है और यह परिवार अपने पूर्वजों के समय से ही इस स्थान की देखभाल करता आ रहा है। इस गुरुधाम में गुरु ग्रंथ साहिब जी की हस्तलिखित बीड़ (पाण्डुलिपि) विराजमान है जिसका प्रकाश किया जाता है।। गुरु नानक देव जी का ज्योति ज्योत पर्व मनाया जाता है, इस दिन लंगर किया जाता है।

लच्छमीपुर : कटिहार जिले का एक कस्बा लच्छमीपुर गुरु तेगबहादुर की याद दिलाता है। गुरु जी पूरब की यात्रा के दौरान इस शहर में आए थे और उनकी याद में गुरुद्वारा श्री गुरु तेगबहादुर सुशोभित हैं। काहडागोला रेलवे स्टेशन इस गुरुद्वारे से लगभग 2 किमी की दूरी पर अमृतसर-कटिहार रेलवे लाइन पर स्थित है। पंजाब के यात्री इस रेलवे स्टेशन पर उतरते हैं और गुरुद्वारा साहिब के दर्शन करते हैं।

लच्छमीपुर में बड़ी संख्या में सिख संगत होने के कारण इसे सरदार नगर के नाम से भी जाना जाता है। कंत नगर एक प्राचीन शहर है जो गंगा में विलीन हो गया। यहाँ रहने वाली सिख संगत ने वहाँ से मिट्टी लाकर लच्छमीपुर नगर की स्थापना की थी। गुरुद्वारा लच्छमीपुर में सिख विरासत की याद दिलाते हैं ये स्मारक-गुरु गोबिंद सिंह जी द्वारा लिखित तिथि रहित हुकमनामा, तख्त श्री हरमंदिर जी पटना साहिब द्वारा जारी हुकमनामा, गुरु ग्रंथ साहिब जी का लेमिनेशन करवायी 248 पृष्ठों की हस्तलिखित बीर, प्राचीन हथियार (दो खंडे और पाँच छोटी क्रिपाने, अमृत चकाने वाला खंडा, सलोतर-मोटी लकड़ी का डंडा, प्राचीन श्री साहिब, तीन कटारें, तीन चक्र आदि) और श्री गुरु सिंह सभा अमृतसर साहिब द्वारा लिखित एक प्रेरणादायक पत्र। सराए और लंगर के अलावा बच्चों को गुरुमुखी, कीर्तन और अन्य धार्मिक विद्याएँ प्रदान की जाती है।

पश्चिम बंगाल

मालदा: यह शहर बिहार के काहडागोला से कलकत्ता के रास्ते में लगभग 125 किमी की दूरी पर स्थित है। पंडित तारा सिंह नरोत्तम इस शहर में एक गुरुधाम होने की पुष्टि करते हैं। 14 मेजर गुरमुख सिंह कहते हैं कि पुराने मालदा शहर में गुरु तेगबहादुर की स्मृति में 'गुरुद्वारा नीमा सराय श्री गुरु तेगबहादुर' मौजूद था। नदी के उस पार नए मालदा नगर के बसने से पुराने शहर का वैभव जाता रहा और आम लोग उठकर नए शहर में बस गए। रख-रखाव के अभाव में गुरुधाम जर्जर हो गया। 1960 में, एक सड़क निर्माण करने वाले ठेकेदार ने इस गुरुधाम का पुनर्निर्माण किया और उसके चारों ओर एक दीवार का निर्माण किया। जिन गुरसिखों ने बाद में नए मालदा नगर में गुरुद्वारे श्री सिघ सभा का निर्माण किया, उन्होंने भी पुराने गुरुधाम की सेवा करवा दी। इसका नाम श्री प्रयाग साहिब रखा गया।[15]

कलकत्ता : कलकत्ता पूर्वोत्तर भारत का एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र है। यदि पंजाब के स्वतंत्रता सेनानियों को काले पानी से दंडित किया जाता, तो कैदियों को इस शहर से समुद्र के रास्ते अंडमान ले जाया जाता। इसी शहर में कामागाटा मारू जहाज के शहीदों का स्मारक स्थित है। इस शहर को गुरु नानक देव जी और गुरु तेगबहादुर जी की चरण छोह प्राप्त है, जिनकी याद में महात्मा गांधी रोड पर बड़ा बाजार में एक गुरुद्वारा पक्की संगत है। स्थानीय परंपरा बताती है कि गुरु नानक ने 1510 ई० में इस स्थान का दौरा किया था। इसके बाद, असम की यात्रा से लौटने पर, गुरु तेगबहादुर जी ने इस स्थान पर चरण रखे। वर्तमान में यह गुरु धाम सात मंजिला इमारत में स्थित है। लंगर और रहने की व्यवस्था का प्रबंध है और इसकी सेवा-सम्भाल एक स्थानीय समिति द्वारा रखा की जा रही है।

गुरुद्वारों से जुड़े सूत्र पश्चिम बंगाल के मखसूदाबाद में एक गुरुद्वारे का भी प्रमाण देते हैं, लेकिन काफी कोशिशों के बाद भी कोई पुख्ता जानकारी नहीं मिल पाई है।

बांग्लादेश

दिसंबर 1971 में, पश्चिमी पाकिस्तान पूर्वी पाकिस्तान से अलग हो गया। पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश के रूप में उभरा। पूर्वी पाकिस्तान में गुरुधाम को सरकार ने अपने कब्जे में ले लिया, जिसके कारण कई गुरुधाम गायब हो गए। जनवरी 1972 में, ढाका के गुरुद्वारा नानकशाही में, बांग्लादेश के नवनिर्वाचित राष्ट्रपति सैयद नजरूल इस्लाम ने पहला भाषण दिया जिसमें सभी धर्मों के लोगों की धार्मिक स्वतंत्रता की घोषणा की गई थी। गुरुधामों के रख-रखाव का रास्ता खुल गया और कैप्टन भाग सिंह, जोगिंदर सिंह जोगी और अन्य उत्साही सिखों ने जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा से मुलाकात की जिन्होंने बांग्लादेश को आजाद कराया था और धार्मिक स्थलों का रखरखाव शुरू किया था। पाँच गुरुधाम वर्तमान में बांग्लादेश में संरक्षित हैं-गुरुद्वारा नानकशाही रमना, ढाका; गुरुद्वारा संगत टोला, ढाका; गुरुद्वारा सिख मंदिर एस्टेट, चटगाँव; गुरुद्वारा पंजाबी लेन, पहाड़तली और गुरुद्वारा साहिब गुरु नानक मंदिर, मैमनसिंह। बांग्लादेश में धार्मिक स्थलों पर जाने वाले संगतों को उनकी एक झलक दी

जाती है। बांग्लादेश में गुरुद्वारा संगत टोला एकमात्र ऐसी जगह है जिसे गुरु तेगबहादुर जी की चरण छोह प्राप्त है।

गुरुद्वारा संगत टोला, ढाका: यह गुरुद्वारा ढाका के बांग्ला बाजार में स्थित है। यह भाई बुलाकी दास का घर था जहाँ गुरु तेगबहादुर जी ने लंबे समय तक रहे थे। भाई बुलाकी दास और भाई नत्था इस क्षेत्र में गुरु के घर के प्रचारक थे और उनके प्रयासों ने कई लोगों को सिख धर्म में परिवर्तित करने के लिए प्रेरित किया। जब शहर के आसपास रहने वाली संगत को गुरु जी के शहर में आने की खबर मिली, तो बड़ी संख्या में सिख संगत ने उनसे मिलने आने लगे।। संगत के मन में प्रेम की भावना को देखते हुए, गुरु ने शहर को 'सिखी का कोठा' बनाने का वादा किया:

गुर सिखन भजन किया गुर आगे।
बिगसै दियाल किरपा रस पागै।
बरबचन मुखारबिंद सौ भाखा।
मम सिखी का कोठा ढाका। [16]

भाई बुलाकी की बूढ़ी माँ ने गुरु जी को हाथ से बना एक बहुमूल्य वस्त्र भेंट किया। कहा जाता है कि माता जी ने भी गुरु जी का चित्र बनाया था। [17]

असम

असम भारत के उत्तर पूर्व में हिमालय की गोद में स्थित है। इसने चाय, रेशम और तेल के उत्पादन और व्यापार में प्रमुखता प्राप्त की है। मध्य युग में, महिलाओं को तंत्र शिक्षा में कुशल माना जाता था। यहाँ से होकर ब्रह्मपुत्र नदी बहती है, जिसके किनारे पर धुबरी शहर है, जहाँ गुरु नानकदेव जी और गुरु तेगबहादुर जी की चरण छोह प्राप्त स्थान हैं।

गुरुद्वारा श्री गुरु तेगबहादुर साहिब, धुबरी: कहा जाता है कि इस शहर का नाम नेताई धोबन के नाम पर धुबरी रखा गया है। ऐसा कहा जाता है कि जब गुरु तेगबहादुर जी इस स्थान पर आए तो तंत्र शिक्षा की विशेषज्ञ नेताई धोबन ने पहले गुरु जी पर पत्थर फेंका और फिर गुरु जी पर एक पीपल के पेड़ से प्रहार किया लेकिन इससे उन्हें कोई नुकसान नहीं हुआ। आखिरकार, धोबन ने गुरु जी माफी मांगी और उनके नाम पर धुबरी शहर का नाम रखा। पहले गुरु नानक देव जी यहाँ आए थे जिनके बाद इस स्थान को दमदमा साहिब भी कहा जाता है।

गुर तेगबहादुर जी राजा राम सिंह के साथ यहाँ आए और असम के राजा चक्रध्वज के साथ सुलह कर शांति स्थापित की। इस स्थान की सेवा स्वयं गुरु तेगबहादुर जी ने की थी। मैकालिफ ने इस गुरुधाम से संबंधित एक शिलालेख का हवाला देते हुए लिखा "उपायुक्त कामरूप ने मुझे एक पैम्फलेट भेजा है," जिसमें लिखा है कि भाई जय सिंह जी महंत धुबरी गुरुद्वारा असम के पास एक मुगल सम्राट द्वारा जारी फरमान था, जिसमें गुरुद्वारा स्थित जमीन आवंटित की गई थी। लेकिन भाई जय सिंह अपने साथ फरमान को लेकर गुरुद्वारा के पुनर्निर्माण के लिए चंदा लेने अमृतसर गए। कुछ ही समय बाद, भाई जय सिंह का अमृतसर के पास निधन हो गया और आदेश खो गया। कृपया महंत हरिमंदर से पूछें कि क्या वह भाई जय सिंह और फुरमान के बारे में कुछ जानते हैं क्योंकि फुरमान धुबरी के सिखों के लिए एक सनद है।" पूर्व में यह गुरुधाम गुरु तेगबहादुर साहिब जी की चरण छोह प्राप्त अमित याद दिलाता है।

ग्रंथ

1. स्वरूप सिंह कौशिश, गुरु किया सखियाँ, संपादक प्यारा सिंह पदम, पृ. 58.
2. ज्ञानी ज्ञान सिंह, त्वरिख गुरु खालसा, भाग, पृ. 694.
3. फौजा सिंह, गुरु तेगबहादुर: तीर्थ स्थान, परंपराएँ और स्मारक, पृ. 225.
4. Gurmukh Singh, Historical Sikh Shrines,p. 315.
5. भाई संतोख सिंह, श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, रासी 11, 47.2.
6. सरूप दास भल्ला, महिमा प्रकाश, भाग।।, खंड 2, साखियाँ पातशाही नौवीं, साखी 8, पृ. 663.
7. In the middle of the town is the house of the celebrated Mata Maluk Das, otherwise Known as Chandra Maluk Shahi, an ascetic who died in 1682 and is said to have received from. Aurangzeb the village of Sirathu in revenue-free tenure- His disciples have a monastery in Kara the present Mahant being. jodhya Prasad, in whose possession is a book narrating the miraclas of the saint and his adventures with the emperor. H.R. Nevill, ed., Allahabad : A Gazetteer,vol, xxiii, P.250.
8. ज्ञानी ज्ञान सिंह, पंथ प्रकाश, अध्याय 34, बंद 151
9. भाई काहन सिंह नाभा, गुरुशब्द रत्नाकर महान कोष, पृ. 802
10. भाई काहन सिंह नाभा, गुरुशब्द रत्नाकर महान कोष, पृ. 314
11. Gurmukh Singh, Historical Sikh Shrines 320
12. भाई काहन सिंह नाभा, गुरुशब्द रत्नाकर महान कोष, पृ. 550
13. भाई धन्ना सिंह चहल पटियालवी, गुरु तीरथ साइकिल यात्रा, संपादक चेतन सिंह, पृ. 133
14. पंडित तारा सिंह नरोत्तम, गुरु तीरथ संग्रह, पृ. 120
15. Gurmukh Singh, Historical Sikh Shrines 336
16. सरूप दास भल्ला, महिमा प्रकाश, भाग।।, खंड 2, साखियाँ पातशाही नौवीं, संपादक उत्तम सिंह भाटिया, साखी 15, पृ. 689.
17. बडा लिखारी लिखायी माई.
    सतगुरु हजूर ने तसबीर लिखायी।
    सरूप दास भल्ला, महिमा प्रकाश, भाग।।,
    खंड 2, साखियाँ पातशाही नौवीं, संपादक उत्तम सिंह भाटिया, साखी 15, पृ. 691.
18. खालसा समाचार, 18 फरवरी, 1903, पृ. 1

श्री गुरु तेगबहादुर जी के बलिदान की समकालीन प्रासंगिकता

प्रो. रविंदर सिंह

धर्म रक्षा के लिए नौवें पातशाह श्री गुरु तेगबहादुर जी का बलिदान भारतीय इतिहास में सर्वोच्च बलिदानों में से एक है। मध्ययुगीन भारत में जिन परिस्थितियों के कारण मानवाधिकारों का पतन हो रहा था, डर और खौफ का वातावरण था, किसी भी प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रता का अभाव था और एक अत्याचारी शासन का बोलबाला था जिसने पूरे भारतीय समाज को एक रंग में बदल देने का प्रयत्न शुरू कर दिया था। ऐसे चुनौतीपूर्ण दौर में गुरु साहिब एक अद्वितीय शक्ति और उदाहरण बन कर सामने आए जिन्होंने भारत के बहुलतावादी समाज और संस्कृति की धार्मिक विविधता की रक्षा के लिए एक अहिंसक कदम उठाया और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

वर्तमान में कुछ संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों ने समृद्ध सिख विरासत और गुरुओं के बलिदान के इतिहास को संकुचित करने की साजिश रची है जिससे गुरु के सर्वांगीण, व्यापक और बहुआयामी मानव कल्याण प्रयासों को एक सीमित सीमा तक कम करके देखा जाने लगा है। इस तरह के संकीर्ण दृष्टिकोण का एक मुख्य कारण भारत की धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं के बारे में लोगों में जागरूकता की कमी और उसके ऊपर संदेह करना है। वर्तमान परिस्थितियों में इन मुद्दों पर विचार करना बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि धर्म के सही अर्थ की जानकारी के अभाव ने इससे जुड़ी अवधारणाओं में भ्रम पैदा कर दिया है। गुरुओं के समय और इतिहास को ठीक से समझने की जरूरत है क्योंकि गुरुओं के महान कार्यों के मूल्य को केवल उन परिस्थितियों और कारणों को समझने से ही समझा जा सकता है जिनके तहत गुरुओं ने अपने समय में इतने क्रांतिकारी और दीर्घकालिक निर्णय लिए।

मध्यकालीन युग पंजाब और पूरे उत्तरी भारत में उथल- पुथल का समय रहा है। पंजाब अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सदियों से निरंतर उथल-पुथल और परिवर्तन के दौर से गुजरता रहा है। ये सभी संघर्ष इस भूखंड के समृद्ध प्राकृतिक और आर्थिक संसाधनों की लूट और कब्जे के लिए थे। एक समय में, पूरा उपमहाद्वीप अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यता के लिए जाना जाता था, जिसमें अनेक रंगों, नस्लों, मतों-पंथों और भाषाओं की बहुलता थी। कई हजारों वर्ष पुरानी भारतीय सभ्यता में विविधता असामान्य नहीं है, इस सभ्यता की खासियत यह थी कि हर कोई इसमें समा जाता था। सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व जो इस भूमि की सभ्यता को जोड़ता है, वह है यहाँ से उपजी ज्ञान की अटूट परंपरा है, जिसने भारतीय दर्शन के माध्यम से जीव-जगत से सम्बंधित सवालों के जवाब खोजने की कोशिश की है। अपने और दुनिया के बारे में प्रश्न पूछने की प्रथा और इसके उत्तर खोजने के विभिन्न तरीकों और साधनों ने एक संचयी ज्ञान का प्रकाश किया है जिसे सदियों से वैज्ञानिक आधार पर रद्द नहीं किया जा सका है। इसके विपरीत, पश्चिम में दार्शनिक ज्ञान के कई सिद्धांत बिखर गए हैं। भारत की इस सभ्यता की बुनियादी पहचान इसका ब्रह्म- केंद्रित ज्ञान प्रबंध है, जिसने ब्रह्म-केंद्रित जीव-जगत के निर्माण के एक प्रबंध की व्याख्या की है। अद्वैत दर्शन को सत् और ऋत की अवधारणाओं के माध्यम से प्रकट किया गया है। अद्वैत दर्शन के सिद्धांत के माध्यम से, प्राणियों के व्यवहार और धर्म के साथ दुनिया के संचालन के आदर्श स्थापित किए गए हैं। धर्म कोई कर्मकांड की अवधारणा नहीं है बल्कि जीवन के आदर्श व्यवहार यानी आत्म-अनुशासन और मूल्यों की जिम्मेदारियों को निर्धारित करता है। यह धर्म, किसी भी अनुशासन की तरह, स्वयं के अनुभव से उत्पन्न होता है, बल या जबरदस्ती से नहीं। इसलिए भारतीय सभ्यता से प्राप्त धर्म राजनीतिक विचार नहीं बल्कि सभ्य जीवन जीने के आदर्श मूल्य हैं। इस प्रकार भारतीय सभ्यता से उत्पन्न हुए दार्शनिक ज्ञान पर आधारित धर्म के मूल्य भी बदलते रहे हैं लेकिन उनका मुख्य सरोकार ब्रह्म-केंद्रित जीव-जगत के प्रबंधन से रहा है। कर्मकांड के स्तर पर धर्म के आदर्श मूल्यों और उसके मूल्यों की व्यावहारिकता में थोड़ा बदलाव आया है। 'ऋत्' की परिभाषा के अनुसार भी परिवर्तन निरंतर होता रहता है और बार-बार होता रहता है। जीव और जगत का कोई भी रूप स्थिर नहीं है, यह अस्थायी है इसलिए यह नष्ट हो जाता है और समय अपने पूर्व रूप में समा जाता है। इस पूरी सृष्टि के निर्माण का मूल तत्व और इसे बनाने वाली व्यवस्था एक निरंतरता में काम करती है और इस सारी व्यवस्था के पीछे काम करने वाला नियम, हुक्म या प्रबंध ही सत्य या सर्वोच्च सत्य है। इसी अद्वैत के इस सिद्धांत की परिपक्वता गुरबानी में भी मिलती है।

उपरोक्त संक्षिप्त चर्चा का अर्थ है कि वर्तमान में हम जिन घटनाओं और स्थितियों का विश्लेषण करने जा रहे हैं, उनके तत्कालीन संदर्भ का ज्ञान होना भी महत्त्वपूर्ण है। कोई भी घटना अपने काल के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकती वह किसी समय और स्थान में घटित होती है और उसके प्रभाव को आत्मसात भी करती है। इस दृष्टि से मध्य युग में गुरु तेगबहादुर जी के समय और स्थान से संबंधित परिस्थितियों की बात करना आवश्यक है। अतीत की घटनाओं की व्याख्या वर्तमान तक पहुँचते-पहुँचते कई तरह के प्रभाव ग्रहण करके अर्थ परिवर्तन कर लेती है।

मध्यकालीन युग भारतीय धार्मिक परंपराओं के लिए कठिन चुनौतियों भरा समय था। एक ओर, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाओं ने अपना अर्थ और तर्क खो दिया था, और धार्मिक जीवन में कर्मकांड ने आध्यात्मिक जीवन पर कब्जा कर लिया था। ऐसे समय में प्रचलित प्रथाओं के लिए कु-प्रथाएँ बनना एक स्वाभाविक घटना बन जाती है। सामाजिक व्यवहार समय के साथ बदलता है और यह परिवर्तन सहयोग और सहमति में परिणत होता है। भारत में यह मध्यकाल भी भक्ति आंदोलन के नेतृत्व में सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। यह जागृति आंदोलन दक्षिण में उत्पन्न हुआ और समय के साथ पूरे भारत में फैल गया। कबीर संप्रदायों में एक दोहरा प्रचलन में है-

भक्ति द्रविड़ उपजी लाये रामानन्द
प्रकट किया कबीर न, सात दीप नौ खंड-कबीर।

किसी भी समाज-संस्कृति में सुधार की प्रक्रिया उत्पन्न होना बहुत स्वाभाविक है। जब सम्बंधित समाज के भीतर से ही कुछ महान व्यक्ति अपने कुशल नेतृत्व द्वारा समाज में आयी गिरावट को सुधारने के लिए काम करते हैं तो इसका प्रभाव और मान्यता व्यापक होती है। भक्ति आंदोलन ने भारत के इस भाग में उत्पन्न हुई प्राचीन सभ्यता को पुनर्जीवित करने के लिए एक विशाल आंदोलन शुरू किया जो सैकड़ों वर्षों से चल रहा है। इस आंदोलन ने समाज में धर्म के नाम पर फैली कुरीतियों को पहचाना और उन्हें मिटाने के लिए ज्ञान की चेतना पैदा की।

भक्ति आंदोलन भारतीय दर्शन के ज्ञान मार्ग को भक्ति मार्ग से जोड़ता है। भारतीय दर्शन में 'धर्म' का अर्थ स्व-अनुशासन है, अर्थात् धारियते इति 'धर्म', धर्म वह है जो धारण किया जाता है या धारण करने योग्य होता है। 'धर्म' एक कर्तव्य है, इसका अर्थ है, किसी कार्य की जिम्मेदारी का भाव। इसलिए धर्म शब्द का अर्थ बहुआयामी हो जाता है। लेकिन निश्चित रूप से, 'धर्म' का अर्थ केवल 'मजहब' या 'Religion' से नहीं लिया जा सकता है। यह भ्रम पैदा करता है। 'यतो ऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' यानी धर्म जीवन व्यवहार का एक अनुशासन है। भारतीय दर्शन में वर्णित चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में भी धर्म सबसे ऊँचा है और वह प्रथम है जिसके अनुसार अर्थ और काम के चरणों को पार करके ही मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। अर्थात् भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार धर्म का अर्थ किसी भी प्रकार से साम्प्रदायिक नहीं है। यह प्राकृतिक आचार-व्यवहार की एक सांस्कृतिक व्यवस्था है और मनुष्य के भीतर से उत्पन्न होती है, थोपी नहीं जाती। सही और गलत का विवेक भी धर्म का निर्धारण करता है। इस प्रकार धर्म मानव जीवन के हर क्षेत्र का एक मूलभूत तत्व है, जैसे पृथ्वी ने असंख्य लोगों का भार उठाया है, वैसे ही यह उसका धर्म है।

धौलु धरमु दइआ का पूत।
संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति।
जे को बुझै होवै सचिआरु।
धवलै उपरि केता भारु।
धरती होरु परै होरु होरु।
तिस ते भारु तलै कवणु जोरु।

सृष्टि का पालन-पोषण करने वाला एकमात्र निश्चित नियम 'धर्म' है जिसने शक्तिशाली बैल के समान सब को संभाल रखा है। यह धर्म दया का पुत्र है, अर्थात् अकाल पुरख ने अपनी कृपा से सृष्टि को बनाए रखने के लिए धर्म-रूप नियम बनाया है। इस धर्म ने अपनी मर्यादा के अनुसार 'संतोष' को जन्म दिया है। यदि मनुष्य इस विचार को समझ लेता है, तो वह अपने भीतर अकाल पुरख का प्रकाश धारण करने में सक्षम हो जाता है। बैल पर पृथ्वी का अनंत भार है, वह इतना भार कैसे ढो सकता है? यदि पृथ्वी के नीचे एक बैल है, तो उस बैल को सहारा देने के लिए नीचे एक और पृथ्वी है, उस पृथ्वी का भार संभालने को एक और बैल, उसके नीचे पृथ्वी के नीचे एक और बैल, फिर दूसरा बैल, उसी तरह आखिरी का भार वहन करने के लिए बैल। उसके पास क्या टेक होगी? इसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन को व्यवस्थित तरीके से सही दिशा में ले जाने के लिए अनुशासन का निर्माण करता है, वह भी धर्म है।

जब भी धर्म के ऐसे सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत और मौलिक आधार को बहुत खतरा होता है, तो कोई न कोई महान व्यक्ति लोगों के कल्याण के लिए नेतृत्व करने के लिए आगे आता है। जैसा कि भगवत गीता में भी वर्णित है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।4-7।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। 4-8।।

इस श्लोक का अर्थ यह है कि संसार में जब भी धर्म की हानि होती है, अधर्म बढ़ता है, तभी मैं (कृष्ण) अच्छे लोगों की रक्षा करने और दुष्टों का विनाश करने आता हूँ। धर्म की स्थापना के लिए मैं हर युग में पैदा हुआ हूँ।' शाब्दिक अर्थों में, यह अवतारवाद की तरह लग सकता है, लेकिन वास्तव में, यह विचार उन महात्माओं की चेतना की ओर इशारा करता है जो किसी भी युग में धर्म की रक्षा के लिए डट कर खड़े हो जाते हैं। ऐसे लोग जो अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठ सकते हैं और लोगों के कल्याण के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर सकते हैं। उसी सर्वोच्च बलिदान का संकल्प नौवें पातशाह गुरु तेगबहादुर साहिब में भी मौजूद था। धार्मिक स्वतंत्रता के विरुद्ध मिल रही चुनौतियों को स्वीकार करते हुए, जिस के बारे में गुरु नानक देव जी ने भी इंगित किया था, गुरु तेगबहादुर साहिब ने अपना बलिदान दे दिया। बाबर के हमले के समय गुरु नानक ने जो स्थिति देखी, वह उनके अपने शब्दों 'बाबरवाणी' में बहुत प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की गई थी-

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतानु डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ।
एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ।।1।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 360)

गुरु नानक ने महसूस किया कि पश्चिम के ये हमले अब केवल लूटपाट या सत्ता हासिल करने तक ही सीमित नहीं थे बल्कि भारतीय जीवन शैली को बदलने के लिए भी थे। गुरु साहिब संवाद द्वारा परिवर्तन के विरोधी नहीं थे, लेकिन जिस रूप में बाबर जोर-जबर और आक्रामक रूप से सामाजिक- सांस्कृतिक प्रथाओं

पर हमला कर रहा था, गुरु नानक साहिब ने उसके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। भारत को विदेशी आक्रांताओं के इस सांस्कृतिक हमले की चेतावनी भी दी गई। यहाँ हिंदुस्तान से भाव, सिंधु घाटी के आसपास उत्पन्न हुई भारतीय सभ्यता से था, न कि किसी सांप्रदायिक पहचान वाले क्षेत्र से। गुरु साहिब उस समय भारतीय सभ्यता के इस विशाल क्षेत्र को संबोधित कर रहे थे जिसमें प्राचीन सभ्यता से उत्पन्न ज्ञान-केंद्रित धर्म और कर्म की व्यवहारिक एकता कार्यशील थी। यद्यपि उस समय कई पंथ, मत और संप्रदाय मौजूद थे लेकिन धर्म संबंधी चेतना लगभग समान थी। लेकिन बाबर के बाद उस के उत्तराधिकारियों द्वारा स्थापित मुगल सरकार ने धर्म के पारंपरिक अर्थ को एक संस्थागत धर्म के रूप में देखने के विचार का प्रचार किया। इस्लाम के कट्टरपंथी रूप की वकालत करते हुए, उन्होंने जबरन धर्मांतरण शुरू किया और कुछ प्रचलित गलतफहमियों के आधार पर लोगों को आकर्षित करने का भी प्रयास किया। जिस रूप में मुगल जबरन इस्लाम थोप रहे थे, और साथ ही गैर-मुसलमानों और इस्लाम कबूल ना करने वालों को भी परेशान किया जाने लगा था, ऐसे में आम लोगों के मन में डर का माहौल पैदा हो गया था। हिंदुओं के विरुद्ध हिंसा चल रही थी और धर्मांतरण का प्रभाव दिखने लगा था-

गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई।
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई ।
अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई ।
छोडीले पाखंडा नामि लइऐ जाहि तरंदा ।।1।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 471)

ऐसी राजनीतिक स्थिति के कारण लोग मानसिक गुलामी के शिकार होने लगे। कोई भी राजा उनकी रक्षा करने में सक्षम नहीं था। जो उस समय के राजाओं के सैनिक थे, उन्होंने भी अपना क्षत्रिय धर्म छोड़ दिया और आक्रमणकारियों में शामिल हो गए-'खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही। स्रिसटि सभ इक वरन होई धरम की गति रही।।3।। (गुरु ग्रंथ साहिब, 663) इस प्रकार गुरु जी ने लोगों को धर्म के ऊपर आने वाले खतरे से अवगत कराने का भी प्रयास किया और अपनी बाणी के माध्यम से उस समय की वास्तविकता को भी प्रस्तुत किया। धार्मिक स्वतंत्रता पर जोर-जबर गुरुओं को बहुत असहज लग रहा था, इसलिए उस समय के भक्ति काल के दौरान, ऐसी चुनौतीपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिए आवाज उठाई गई। गुरु अर्जन देव जी का समय भी बहुत चुनौतीपूर्ण था, उस समय जहांगीर मुगल बादशाह था और उसने भी इस्लाम के पक्ष में अन्य धर्मों और मान्यताओं का दमन जारी रखा। गुरु अर्जन उस समय पंजाब में मौजूद थे और गुरु नानक के पाँचवें ज्योत के रूप में सिख पंथ का नेतृत्व कर रहे थे। वह भी जहांगीर के आदेश पर शहीद हुए थे। गुरु साहिब की शहादत के लिए विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हुई हैं लेकिन सबसे सटीक जानकारी स्वयं जहाँगीर के शब्दों में दर्ज है। जहाँगीर स्वयं अपनी आत्मकथा "तुजुके जहाँगीरी" में लिखता है, कि, "गोइंदवाल, जो कि बियाह (ब्यास)" नदी पर है, अर्जन देव नाम का एक हिंदू था, जो संत और पवित्रता के परिधानों में था, इतना कि उसने कई सरल हिंदुओं के दिलों पर कब्जा कर लिया था, यहाँ तक कि इस्लाम के अज्ञानी और मूर्ख अनुयायियों ने उसके तौर-तरीकों से आकर्षित कर लिया था, और उन्होंने उसकी पवित्रता का ढोल जोर से बजाया था। उन्होंने उसे गुरु कहा, और हर तरफ से मूर्ख लोग उसकी पूजा करने और उस पर पूर्ण विश्वास प्रकट करने के लिए उमड़ पड़े। कई बार मेरे मन में यह विचार आया कि मैं इस फालतू काम को बंद कर दूं या उसे इस्लाम के लोगों की सभा में ले आऊँ। अंत में जब राजकुमार खुसरो इस रास्ते से गुजरे तो इस तुच्छ व्यक्ति ने उनकी प्रतीक्षा करने का प्रस्ताव रखा। खुसरो वहीं रुके जहाँ वह थे, और उन्होंने बाहर आकर उन्हें प्रणाम किया। अर्जन देव ने खुसरो के साथ कुछ विशेष तरीके से व्यवहार किया, और उनके माथे पर भगवा रंग में एक उंगली का निशान बनाया, जिसे भारतीय (हिंदुवान) कश्का, (तिलक) कहते हैं और इसे शुभ माना जाता है। जब यह बात मेरे कानों में पड़ी और मैं उसकी मूर्खता को स्पष्ट रूप से समझ गया, तो मैंने उन्हें उसे पेश करने का आदेश दिया और उसके घर, निवास-स्थान और बच्चों को मुर्तजा खान को सौंप दिया, और उसकी संपत्ति को जब्त करने का आदेश दिया कि उसे मार डाला जाए।" तो इस तरह गुरु अर्जन साहिब गंभीर रूप से प्रताड़ित होने के बाद शहीद हो गए थे।

मुगलों ने इस्लाम के अलावा किसी अन्य धर्म या विश्वास में आस्था रखने वाले को काफिर घोषित किया, अन्य धर्मों के लोगों पर शुल्क लगाया, उन्हें इस्लाम में परिवर्तित करने के लिए प्रताड़ित किया और लालच का सहारा लिया। धर्म में प्रचलित कुप्रथाओं के साथ जबरन धर्मांतरण जैसी घटनाओं ने मानव जाति को अंधेरे में डुबो दिया था। 'माझ दी वार' में श्री गुरु नानक देव मुस्लिम शासकों के अत्याचार के बारे में कहते हैं:

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिया।
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।
हउ भालि विकुंनी होई। आधेरै राहु न कोई.
विचि हउमै करि दुखु रोई.
कहु नानक किनि बिधि गति होई ।।1।।

(गुरु ग्रंथ साहिब, 145)

ऐसी राजनीतिक चेतना के साथ गुरुओं ने भारतीय सभ्यता के बुनियादी धार्मिक मूल्यों की रक्षा के लिए शास्त्रों के साथ-साथ शस्त्र भी रखने की आवश्यकता महसूस की। गुरु अर्जन की शहादत के बाद, गुरु हरगोबिंद ने मिरी-पीरी की दो कृपाण पहनकर शस्त्र और शास्त्र की आवश्यकता को पूरा करने का प्रयास किया। राजनीतिक स्तर पर ऐसी कठिन परिस्थितियाँ बनी रहीं और गुरुओं के उपदेश में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया गया। लेकिन मुगल सत्ता के इस तरह के अजीबो-गरीब कदमों के बावजूद, ज्ञान गोष्ठी के माध्यम से विरोधी विचारधारा वाले लोगों का भी सम्मान करने की परंपरा इस मिट्टी का ही हिस्सा है, इसलिए गुरु तेगबहादुर जी ने अपनी विरासत की इस पहचान को बनाए रखने के लिए अपना सीस देने की पेशकश की।

गुरु तेगबहादुर के शासनकाल के दौरान, मुगलों ने पूरे उत्तर भारत में गैर-मुसलमानों, सभी हिंदुओं पर अत्याचार और उत्पीड़न जारी रखा। गुरु तेगबहादुर पूरी स्थिति को देख और समझ रहे थे।

जब कश्मीरी पंडितों के एक समूह ने अपनी फरियाद के साथ गुरु साहिब से संपर्क किया, तो वह क्षण भारत के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक बन गया। औरंगजेब की क्रूर नीतियों पर अहिंसक प्रतिक्रिया के रूप में गुरु साहिब अपना सीस देने को तैयार हो गए। गुरु साहिब का यह निर्णय एक अद्वितीय उदाहरण है क्योंकि वे जानते थे कि मुगलों के विरुद्ध हथियार उठाने और उन्हें शस्त्र से समझाने का समय अभी नहीं आया था। मुगल शासक औरंगजेब गुरु साहिब के धैर्य का परीक्षण करना चाहता था जिसमें वह पराजित हुआ और गुरु तेगबहादुर साहिब ने 'धर्म' हेत साका जिनि किया। सीस दीया पर सिररू न दिया।' के अनुसार एक अद्वितीय उदाहरण स्थापित कर दिया। इसलिए गुरु साहिब के इस अनोखे बलिदान को पूरे भारत में याद किया जाता है। धर्म की रक्षा के लिए किए गए इस बलिदान के लिए आभार हेतु देशवासियों ने गुरु साहिब को 'हिंद की चादर, गुरु तेगबहादुर' से संबोधित किया। गुरु तेगबहादुर के बलिदान का आज भी कोई दूसरा उदाहरण नहीं है।

• • •

श्री गुरु तेगबहादुर जी की वैराग बाणी का दार्शनिक संदर्भ

डॉ. गुरजीत कौर

नौवीं पातशाही श्री गुरु तेग बहादर साहिब जी के 400 वर्षीय जन्म शताब्दी के अवसर पर उनके जीवन एवं व्यक्तित्व का स्मरण करना आज के अति-पदार्थवादी युग और असहिष्णुता के दौर में बेहद जरूरी प्रतीत होता है। गुरु तेगबहादुर साहिब की बाणी गुरमत के अनुसार होते हुए भी अपने काव्य स्वभाव से थोड़ा भिन्नता रखती है। हर युग से सम्बन्धित पदार्थवाद में ग्रस्त समाज को सांसारिक मायाजाल से मुक्त होने का प्रवचन देने के साथ-साथ उन्होंने गुरगद्दी पर बिराजमान हो कर धार्मिक असहिष्णुता वाली तत्कालीन मुगल सल्तनत को अहिंसक विरोध की मिसाल देते हुए अपने प्राणों का बलिदान दे दिया। गुरु तेगबहादुर साहिब के ऐसे निर्णय करने के पीछे जो प्रबल भावना और संकल्प कार्यशील था, वह स्वभाव उनके भीतर बचपन से ही मौजूद था। बचपन से ही उनकी मनो-वृति विरक्ति स्वभाव वाली थी। इसका साक्ष्य श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में शामिल उनकी बाणी से भी मिल जाता है। इसलिए उनकी बाणी को वैराग बाणी भी कहा जाता है।

गुरु साहिब जी की बाणी बेशक वैराग्य स्वर में है लेकिन यह जीवन से विरक्ति का समर्थन नहीं करती। उनकी बाणी का एक प्रमुख गुण है कि यह बाणी नाशवान संसार की सत्यता को पहचान कर उससे आत्मिक मुक्ति का प्रवचन देती है। जैसे कि गुरु साहिब कहते हैं-

जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत।
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुनि मीत।25।
जो उपजिओ सो बिनसि है परो आजु कै कालि।
नानक हरि गुन गाइ ले छाडि सगल जंजाल।52।

इंसान को इस रचित संसार की सत्यता का बोध उसी प्रकार करना चाहिए जैसे जल में बुलबुला होता है, जो बहुत तीव्रता से उत्पन्न होता है और उसी प्रकार समाप्त हो जाता है। उसका फिर कोई नामो-निशान नहीं रहता। ऐसे ही यह जगत है, जिस में अनेक प्रकार के जीव और पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। जो पैदा हुआ है उसको आज या कल खत्म होना ही है क्यूँकि वह जगत में उत्पन्न नश्वर रचना मात्र है। ऐसी रचना के साथ जुड़ाव करना व्यर्थ है। अर्थात् यह रचित जगत एक स्वप्न के समान है, और जो भी पैदा होता है और मरता है वह नाशवान रचना असत्य है।

जग रचना सभ झूठ है जानि लेहु रे मीत।
कहि नानक थिरु ना रहै जिउ बालू की भीति।49।

गुरु साहिब कहते हैं कि यह जगत रचना झूठ है। इसका अर्थ है कि इस संसार में जो भी दृष्टमान है वह ब्रह्म का ही पसार है जैसा कि वैदिक सिद्धांत द्वारा स्थापित किया गया है। पर यह ब्रह्म का पासार एक क्रम के अनुसार ही जीव-जगत के रूप में गतिमान रहता है। यह मिथ्य है अर्थात् संकल्पित है, यथा-अर्थ है। इस प्रकार जगत रचना को भी स्वप्न की भाँति देखना चाहिए, तभी यह दु:ख कर कारण नहीं बनता। ऐसी दृष्टि से इंसान नश्वर जगत में डूबे बिना इससे पार उतर सकता है। मोह माया के भ्रम जाल से मुक्ति ही जीवन मुक्ति का मार्ग है।

जिउ सुपना अरु पेखना ऐसे जग कउ जानि।
इन मै कछु साचो नही नानक बिनु भगवान।23।

घट घट मै हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि।
कहु नानक तिह भजु मना भउ निधि उतरहि पारि।12।

गुरु साहिब जीव और जगत की रचना का आधार ब्रह्म-सूत्र के अनुसार ही मानते हैं, जिस में एक ब्रह्म अथवा सृष्टि सृजन की व्यवस्था है और वह स्थिर है इसलिए सत्य है। ब्रह्म से जीव और जगत की उत्पति होती है और विनाश होता है। जो भी जीव पदार्थ उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है वह अस्थिर या असत्य है। जिसे वैदिक सिद्धांत अनुसार सत् और ऋत कहा गया है। सत् अर्थात् ब्रह्म और ऋत अर्थात् जीव और जगत, जो कालचक्र अनुसार बनता बिगड़ता रहता है। ऋतुओं की तरह आना जाना इसका यथार्थ है। इसलिए हर पल प्रवर्तित होने वाला जीव-जगत का क्रम असत्य या अस्थिर माना गया है। इसी सिद्धांत के अनुसार गुरु साहिब भी जगत और जीवों के कालबद्ध अस्तित्व को अस्थिर 'ऋत' मानते हैं जो कि जन्म-मरण के पहले और बाद में ब्रह्म का ही भाग हो जाता है। कालमयी अस्तित्व में रहते हुए वह नश्वर पिंड मात्र है जिस में पारब्रह्म रूपी चेतना उसको जीवन प्रदान करती है। इसको गुरु साहिब ने बहुत सुंदर शब्दों में समझाया है-

साधो रचना राम बनाई.
इकि बिनसै इक असथिरु मानै अचरजु लखिओ न जाई ।1। रहाउ।
काम कोध मोह बसि प्रानी हरि मूरति बिसराई।
झूठा तनु साचा करि मानिओ जिउ सुपना रैनाई।1।
जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाई।
जन नानक जगु जानिओ मिथिआ रहिओ राम सरनाई ।2।2।219।

गुरु तेग बहादर जी भारतीय दर्शन के ब्रह्म, जीव और जगत के सम्बंध अनुसार मनुष्य की सृजना के रहस्य को समझते हैं। ब्रह्म रूपी सृजन शक्ति या व्यवस्था को सर्वोचय मान कर और उसके ही तत्वों से उत्पन्न इस मानव-देह को पाकर भी अगर इंसान अपने आप को बहुत चतुर और अकलमंद समझने लगता है तो यह उसकी नासमझी

ही है। क्यूँकि जिन पाँच तत्वों से इंसान बना है, वह पंच-भूत अपने मूल तत्वों में विलीन हो जाते हैं और इन तत्वों की रचना द्वारा अपने ऊपर अहंकार करने वाले की कोई पहचान नहीं बचती। घट-घट में बसने वाली चेतना अर्थात् आत्मा अपने परम-तत्व में लीन हो जाती है। ऐसा ज्ञान हासिल हो जाने पर ही इस असत्य भव-सागर से पार जाया जा सकता है।

पांच तत को तनु रचिओ जानहु चतुर सुजान।
जिह ते उपजिओ नानका लीन ताहि मै मानु।।11।
घट घट मै हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि।
कहु नानक तिह भजु मना भउ निधि उतरहि पारि।।12।

ऐसे नाशवान जगत में सदैव रहने वाला कोई संबंध नहीं होता। जन्म और मृत्यु के बीच में ही रिश्ते-नाते चलते हैं। यह सामाजिक व्यवहार है और इसके साथ भी मोह का बंधन नहीं रखना चाहिए। शरीर के द्वारा बने रिश्ते भी सदा रहने वाले नहीं हो सकते। लेकिन विपत्ति की स्थिति में आत्मिक सतह पर टिकाव सिर्फ एक रघुनाथ अर्थात् एक परमसत्य से ही मिलता है। इसके लिए जगत को नश्वर समझना और ब्रह्म को ही परमसत्य मानकर चलना और इसका अनुभव प्राप्त करना ही भव-सागर से पार जाने का एकमात्र रास्ता है-

सुख मै बहु संगी भए दु:ख मै संगि न कोइ।
कहु नानक हरि भजु मना अंति सहाई होइ।32।
संग सखा सभि तजि गए कोऊ न निबहिओ साथि।
कहु नानक इह बिपति मै टेक एक रघुनाथ।55।

स्वार्थ हित अपना अपना कह कर लोग अंत काल में अकेले रह जाते हैं जहाँ उनका कोई निस्वार्थ मित्र भी नहीं रहता। इसलिए मनुष्य अगर यह मान कर चलता है कि सिर्फ उसका हित ही सर्वोपरि है तो वह अपने जीवन को ही व्यर्थ गवा देते हैं और इसी भव-सागर रूपी संसार में लिप्त रह जाते हैं-

जगत महि झूठी देखी प्रीति।
अपने ही सुख सिउ सभ लागे किआ दारा किआ मीत ।1।रहाउ।
मेरउ मेरउ सभै कहत है हित सिउ बाधिओ चीत।
अंति कालि संगी नह कोऊ इह अचरज है रीति।।1।
मन मूरख अजहू नह समझत सिख दै हारिओ नीत।
नानक भउजलु पारि परै जउ गावै प्रभ के गीत ।2।3।536।

गुरु साहिब कहते हैं कि नश्वर जगत में स्थापित होने वाले सांसारिक संबंध भी किसी न किसी हित के लिए होते हैं। यह हित एक दूसरे से जुड़ी जरूरतों से निर्धारित होता है और जरूरत के अनुसार परिवर्तित हो जाता है। ऐसा संबंध या रिश्तेदारी भी स्वार्थ को ही बढ़ाती है। इस संदर्भ में उनका एक शब्द है-

बिरथा कहउ कउन सिउ मन की।
लोभि ग्रसिओ दस हू दिस धावत आसा लागिओ धन की ।1।रहाउ।
सुख कै हेति बहुतु दुखु पावत सेव करत जन जन की।
दुआरहि दुआरि सुआन जिउ डोलत नह सुध राम भजन की।1।
मानस जनम अकारथ खोवत लाज न लोक हसन की।
नानक हरि जसु किउ नही गावत कुमति बिनासै तन की ।2।1।411।

सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए लोग बहुत मेहनत करते हैं, सुख के स्थान पर निरंतर दु:ख ही प्राप्त कर रहे हैं। ऐसी स्थिति एक स्वान के जैसी हो जाती है जो द्वार-द्वार भटकता रहता है और कुछ हासिल नहीं कर पाता। इस तरह गुरु साहिब जीव-जगत के संदर्भ में इसकी नश्वरता पर जोर देते हैं और अपना ध्यान परम-सत्य पर ही लगाने का उपदेश करते हैं। इसीलिए शब्द के अंत में गुरु साहिब ऐसे स्वार्थी जीवन और हितों को अकारथ या व्यर्थ बतलाते हैं। अगर मनुष्य अपने जीवन को परमात्मा से जोड़ कर अनुभव करते हैं और सभी लोगों में उसी तत्व को देख कर उनसे अपना संबंध और हित जोड़ते हैं तो वह अपना जीवन संभाल लेते हैं। अन्यथा निज-स्वार्थ में बिताया जीवन अकारण और व्यर्थ चला जाता है-

प्रीतम जानि लेहु मन माही।
अपने सुख सिउ ही जगु फांधिओ को काहू को नाही ।1।रहाउ।
सुख मै आनि बहुतु मिलि बैठत रहत चहू दिसि घेरै।
बिपति परी सभ ही संगु छाडित कोऊ न आवत नेर।1।
घर की नारि बहुतु हितु जा सिउ सदा रहत संगि लागी।
जब ही हंस तजी इह कांइआ प्रेत प्रेत करि भागी।2।
इह बिधि को बिउहारु बनिओ है जा सिउ नेहु लगाइओ।
अंत बार नानक बिनु हरि जी कोऊ कामि न आइओ ।3।12।139।634।

गुरु तेग बहादर जी की बाणी बंधन मुक्ति का प्रवचन है। यह वैराग्य स्वर उदासीनता या संन्यास के लिए अग्रसर नहीं करता बल्कि झूठे सांसारिक बंधनों से मुक्ति का राह प्रश्स्त्र करता है। उनकी बाणी में एक पक्ष जीवन के विनाशी जगत की रचनाओं की व्यर्थता को प्रगट करता है और दूसरा पक्ष इन बंधनों से मुक्ति के लिए पार-ब्रह्म की विराट चेतना में लीन होने का उपदेश देता है-

तनु धनु संपै सुख दीओ अरु जिह नीके धाम।
कहु नानक सुनु रे मना सिमरत काहि न रामु।8।
जिहि माइआ ममता तजी सभ ते भइओ उदासु।
कहु नानक सुनु रे मना तिह घटि ब्रहम निवासु।18।

गुरु साहिब ऐसे मोह-ग्रस्त जगत में एक ऐसे वैराग की संकल्पना करते हैं जिस में मनुष्य इन सभी सांसारिक प्रवृत्तियों से उदासीन हो कर ही परम सत्य की प्राप्ति के रास्ते पर जा सकता है।

बलु छुटकिओ बंधन परे कछू न होत उपाइ।
कहु नानक अब ओट हरि गज जिउ होहु सहाइ।53।
बलु होआ बंधन छुटे सभु किछु होतु उपाइ।
नानक सभु किछु तुमरै हाथ मै तुम ही होत सहाइ।54।

श्री गुरु तेग बहादर जी की बाणी मुख्य रूप से उपदेशात्मक है, वे मन को संबोधन करते हुए सभी लोगों को एक समान उपदेश देते हैं। जिस प्रकार उपरोक्त शब्दों से ही स्पष्ट हो जाता है कि पहले गुरु साहिब स्वयं के बलहीन हो जाने की बात रखते हैं। बंधनों को तोड़ने का कोई उपाय ढूँढने में असमर्थ हैं और परमात्मा से मदद की पुकार करते हैं। तदुपरांत ऐसी स्थिति से निकलने का रास्ता भी सूझा देते हैं। पर जब परमात्मा उपाय करता है तब बल भी आ जाता है और बंधन तोड़ने का उपाय भी मिल जाता है। इसलिए गुरु साहिब का उपदेश भी यही है के जहाँ मनुष्य हर प्रयत्न करके हार जाता है और बलहीन

महसूस करता है, जहाँ उस की मदद के लिए कोई सांसारिक शक्ति उपयोगी सिद्ध नहीं, वहाँ परमात्मा ही सहायक सिद्ध होता है। इस का भावार्थ है कि नश्वर जगत में सभी प्रकार के कार्यकलाप करने के बाद भी कोई जीवन उपयोगी साधन प्राप्त नहीं होता, लेकिन परमात्मा पर अपनी टेक रख कर संसारिकता से भी उभरा जा सकता है। बंधन सिर्फ इस संसार से ही जुड़े हुए हैं, इसके पार कोई बंधन नहीं रहते और इसी अवस्था की प्राप्ति यथार्थ जगत को मिथ्या या स्वप्न मन कर चलने से ही होती है। परम-चेतना का अनुभव ही बंधन मुक्ति की अवस्था है।

कहा नर अपनो जनमु गवावै।
माइआ मदि बिखिआ रसि रचिओ राम सरनि नही आवै ।1।रहाउ।
इहु संसारु सगल है सुपनो देखि कहा लोभावै।
जो उपजै सो सगल बिनासै रहनु न कोऊ पावै।1।
मिथिआ तनु साचो करि मानिओ इह बिधि आपु बंधावै।
जन नानक सोऊ जनु मुकता राम भजन चितु लावै ।2।3।1231।

गुरु तेग बहादर साहिब जी की वैराग बाणी का दार्शनिक पक्ष भी यही है कि संसारिकता के बंधनों से मोहभंग पैदा करना वैराग्य की एक अवस्था है। इसी से मुक्ति की तरफ अग्रसर हुआ जा सकता है। घट-घट में बसने वाली निराकार, निर्गुण और अकाल मूरत ही परमसत्य है। उस शक्ति को किसी भी नाम से अनुभव किया जा सकता है, इसलिए गुरु साहिब कहते हैं कि-

साधो इहु तनु मिथिआ जानउ।
या भीतरि जो रामु बसतु है साचो ताहि पछानो ।1।रहाउ।
इहु जगु है संपति सुपने की देखि कहा ऐडानो।
संगि तिहारै कछू न चालै ताहि कहा लपटाना।1।
उसतति निंदा दोऊ परहरि हरि कीरति उरि आनो।
जन नानक सभ ही मै पूरन एक पुरख भगवानो ।2।1।1186।

जीव-जगत को ऐसी वैराग्य दृष्टि से देखने के अभिप्राय इससे उदासीन होना या विरक्ति मात्र नहीं है, बल्कि इसमें रहते हुए ही संसारिकता के बंधनों से वैराग्य भाव रखना। इसके लिए सभी बंधन छोड़ने के बाद ही आत्मानंद की प्रतीति होती है, और यह अवस्था किसी-किसी गुरमुख को ही प्राप्त होती है, जिस के ऊपर गुरु की कृपा हो-

माई मै धनु पाइओ हरि नामु।
मनु मेरो धावन ते छूटिओ करि बैठो बिसरामु ।1।रहाउ।
माइआ ममता तन ते भागी उपजिओ निरमल गिआनु ।
लोभ मोह एह परसि न साकै गही भगति भगवान।1।
जनम जनम का संसा चूका रतनु नामु जब पाइआ।
त्रिसना सकल बिनासी मन ते निज सुख माहि समाइआ ।2।
जा कउ होत दइआलु किरपा निधि सो गोबिंद गुन गावै।
कहु नानक इह बिधि की संपै कोऊ गुरमुखि पावै ।3।3।1186।

यही स्थिति वैराग भाव के उपरांत जीव-जगत के बारे में अनुभव करनी चाहिए और लोभ-मोह के बंधन से भी मुक्त होना चाहिए। गुरु तेग बहादर साहिब अपनी वैराग बाणी द्वारा सांसारिक बंधनों से मुक्त जीवन जीने का उपदेश देते हैं। ऐसा मनुष्य ही उत्तम भाग्य को प्राप्त करता है-

जिहि बिखिआ सगली तजी लीओ भेख बैराग।
कहु नानक सुनु रे मना तिह नर माथै भागु।17।

• • •

भारतीय ज्ञान-दर्शन परंपरा और गुरु नानक देव

प्रो. पूरन चंद टंडन

गुरु नानक देव जी के लिए समाज में कोई छोटा-बड़ा नहीं था। वह भावपूर्ण संवाद के माध्यम से जनमानस के मध्य सौहार्द व्याप्त करने में विश्वास रखते थे। यही कारण है कि उन्होंने समाज के खांचों को तोड़कर मानव को एक स्तर पर लाने का प्रयत्न किया। सभ्यताओं के सिद्धांत की परिधि में जो बातें होती हैं; कहा जा सकता है कि उसमें सबसे ज्यादा प्रखरता के साथ संवाद गुरु नानक देव जी ने ही किया। चाहे काबा में घटित प्रसंग हो, जहाँ काबा की ओर पैर करके सोने पर उन्हें टोका गया कि आखिर वे अल्लाह की ओर पैर करके कैसे सो सकते हें? इस पर नानकदेव का उस व्यक्ति से अनुरोध करना कि उनके पैर वह उधर कर दे जिधर अल्लाह न हो और फिर उस व्यक्ति का नानक के पैर को घुमाना और हर दिशा में काबा का दिखना, अपने आप में अत्यंत गूढ़ दर्शन को सहज तरीके से समझाने की विधा थी। गुरु नानक देव जी ने कीरत करो, नाम जपो और वंड छको के माध्यम से सामाजिक सामंजस्य की नींव रखी। जिस समय गुरु नानक देव जी का जन्म हुआ, उस समय देश-समाज की स्थितियाँ बहुत खराब थीं। समाज जात-पात, ऊँच-नीच सहित अनेक भेदभाव में बंटा पड़ा था। लेकिन गुरु नानक देव जी ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति से लोगों को इस स्थिति से उबारा। श्री गुरु नानक देव जी ने अपने प्रारंभिक काल में ही सामाजिक बुराइयों पर चोट करना शुरू कर दिया था। उन्होंने स्त्रियों को सम्मान देते हुए स्त्री का पुरुष के जीवन में कितना महत्त्व है, उसे बताया। उन्होंने बताया कि पुरुष का जन्म स्त्री से ही होता है। वह उसी से शादी, उसी से दोस्ती कर, सारा जीवन व्यतीत करता है। ऐसे में जो पुरुष स्त्री के बिना एक पल नहीं रह सकता, अगर वह अच्छा है तो स्त्री कैसे बुरी हो सकती है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि स्त्री एक राजा से लेकर एक सामान्य व्यक्ति को जन्म देती है। अत: उसकी कभी निंदा नहीं करनी चाहिए-

भंडि जंमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगण वीआहु।।
भंडहु होवै दोस्ती भंडहु चलै राहु।।
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु।।
सो किए मंदा आखीऐ जिते जंमहि राजान।।

स्त्री स्वयं स्त्री की भी जननी है। स्त्री के बिना उत्पत्ति असंभव है। वह कहते हैं परमपिता भी स्त्री के बिना अवतरित नहीं हो सकता है-

भंडहु ही भंडु ऊपजै भंडै बाझु न कोइ।।
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ।।

गुरु नानक देव जी की सीख के अनुसार मनुष्य को जन्म के आधार पर नहीं उसके कर्म के आधार पर परखना चाहिए। मनुष्य जैसे कर्म करता है, उसे उस आधार पर ही देखना चाहिए। चाहें उसका जन्म किसी भी कुल में क्यों न हुआ हो। उसके कर्म के आधार पर उसका मूल्यांकन होना चाहिए-

जाति जनमु नह पूछीऐ सच कर लेहु बताइ।
सा जाति सा पति है जेहे करम कमाइ।।

वंचित समाज के प्रति श्री गुरु नानक देव की पीड़ा उनकी बाणी में स्पष्ट झलकती है। वे कहते हैं कि परमपिता की कृपा वहीं बरसती है, जहाँ गरीबों की सेवा होती है। इसलिए मैं अमीरों की बराबरी की संगत करना चाहता हूँ। वह कहते हैं कि सब की जन्म प्रक्रिया एक ही है। तीनों लोकों में एक ही परमात्मा का नूर व्याप्त है, जिससे सबका जीवन चलता है। ऐसे में अगर हम सब को ऊँचा देखेंगे तो हमें कोई भी नीचा दिखाई नहीं देगा। श्री गुरु नानक देव जी का जीवन स्वयं प्रेरणा का सार प्रस्तुत करता है। उन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन में चार यात्राएँ कीं, जो उदासी के नाम से जानी जाती हैं। इस दौरान उन्होंने अपने जीवन में 45,000 किलोमीटर की यात्रा की और उस समय के मत-संप्रदाय के प्रमुखों, सूफी फकीरों आदि से भेंट की। उन्होंने आक्रांताओं के दमन और सामाजिक भेदभाव के कारण आत्मसम्मान खो चुके भारतीय समाज को जाग्रत किया। साथ ही भारत के धर्म और संस्कृति को नष्ट करने वाले आक्रांता बाबर को 'यमदूत' की संज्ञा दी तथा परमात्मा को भी उलाहना दिया। गुरु नानक देव जी के दिव्य व्यक्तित्व के प्रभाव स्वरूप गुवाहाटी की कुख्यात जादूगरनी नूर शाह भी नतमस्तक हुई और भाई मरदाना को अपने जादू से आजाद कर दिया। भगवान की पूजा तो स्वत: प्रकृति निरंतर कर रही है। यह बात उन्होंने इस शबद से समझायी-

गगन मैं थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती।।

शिक्षा अपने अज्ञान की विकसनशील अमूर्त खोज है और भारतीय दर्शन में इसे बखूबी व्यंजनात्मक-आश्रय प्राप्त हुआ है।

यह एक प्रमुख कारण भी रहा है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा (Indian Philosophical Tradition) में प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय (Religion and Sects) ने धार्मिक दर्शन को आधार बनाकर मूलत: विभिन्न शिक्षाओं का ही प्रचार-प्रसार करने का कार्य किया-

"दर्शनाम् मूल: शिक्षादर्शनम्।"

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो अपनी पुस्तक "रिपब्लिक" (Republic) में यह तक लिखते हैं-

"जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करने तथा नई-नई बातों को जानने के लिए रूचि प्रकट करता है तथा जो कभी संतुष्ट नहीं होता, उसे

दार्शनिक कहा जाता है।"

अतः भारतीय दर्शन परंपरा में जिन लीजेंड्स (दिव्य-पुरुषों) का नाम स्वर्णाक्षरों से लिखा गया। उनमें भी गुरु नानक देव सिरमौर संत हैं।

सिक्ख परंपरा के वाहक श्री गुरु नानक देव (जन्म संवत् 1526 विक्रमी/1469 ई.) निर्गुण संत परंपरा के अग्रज के बतौर 'एक ओंकार' का महात्मय बताते हैं-

एक ओंकार सतनाम, करतापुरख, निरभऊ, निर्वैर अकाल मूरति, अजूनी सैभं, गुरु प्रसादि..।। जप।।

आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच।।

इसी प्रकार, "आदर्श पुरुष" की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-

"ऐसे जन विरले जग अंदरि, परखि खजाने पाइआ।
जाति वरन ते भए अतीता, ममता लोभ चुकाइआ।
नामि रते तीरथ से निरमल, दुखु हउमै मैलु चुकाइआ।
नानकु तिंन के रन पखालै, जिन गुरमुखि साचा भाइया।।"

गुरु नानक देव जी ब्रह्म की शाश्वता के विषय में एक-सीधे सच्चे-मार्ग के समर्थक थे-

"अकासी पाताली तूं त्रिभवणि रहिआ समाइ।
तू जल थलि महीअलि भरिपूरि लीणाँ तूं आपे सरब समाणां।।"

गुरु का महात्मय बतलाते हुए, उसके 'ज्ञान' से 'द्वन्द्व-नाश' की प्राप्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं-

"सतगुरु मिलै त दुविधा भागै,
कमल विगासी मनु हरि प्रभ लागै।
जीवतु मरै महा रसु आगै।
गुरि मिलिए मिली अंक समाइया।
करि किरपा धरू महलु दिखाइआ।।"

-(नानक बाणी, गउड़ी सबद-9)

मृत्य को अटल सत्य बताकर श्री गुरु नानक देव जी 'मोह-त्याग' तथा 'जीवन की नश्वरता' का बोध कराते नजर आते हैं-

"खेलु खेह रलाईए ता जीउ केहा होई.
जलिआ सभी सिआणपा उठि चलिआ रोई.।"

लोकमंगल साधना के संदर्भ में आदि गुरु श्री नानक देव जी परमात्मा के नैकट्य का मार्ग प्रशस्त करते दिखते हैं-

"सचु करणि अभ अंतरि सेवा।
मनु तृपतासि अलख अभेदा।।"-

(नानक बाणी, पृ. 111)

ज्ञान-भक्ति तथा कर्म की त्रिवेणी श्री गुरु नानक देव जी द्वारा 'मैं' रूपी "ठग" के त्याग के साथ "मानव-सेवा" का वैश्विक-सूत्र प्रदेय स्वरूप प्रस्तावित किया गया-

"अपने ही सुख सों सब लागे,
क्या दारा क्या मीत।
मेरो मेरो सभी कहत हैं,
हित सों बाध्यों चीत।
अंतकाल संगी नहिं कोऊ,
भह अचरज की रीत।।"

अतः वह इस दिशा में "नाम सुमिरन" की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए कहते हैं-

"जिनी नामु धिआइआ, गए मसकति धालि।
नानक ते मुख उजले, केती छुटी नालि।।"

-(जपुजी)

मध्यकालीन भक्ति युग में जब मानव आक्रमणों से बेहद त्रस्त तथा अपने जीवन मूल्यों के प्रति शंका-भाव से भर चुका था। ऐसे में मानवतावाद के पोषक श्री गुरु नानक देव जी मनुष्य के सात्विक जीवन हेतु प्रेमभक्ति का उपदेश देते हैं-

"भाऊ भगति करि नीचु सदाए।
तऊ नानक मोखतरू पाए।"-

(आसा, म. 1)

अस्तु; सद्गुरु श्री गुरु नानक देव जी संपूर्ण भारतीय संत परंपरा में इस दृष्टि से भी अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं चूंकि वह अत्यंत विषम मध्ययुगीन दौर में "दार्शनिकता" तथा "शिक्षा-प्रेषण" के धरातल पर "व्यावहारिक-ज्ञान" का अमृत छिड़ककर अखिल विश्व जगत को एकता के सूत्र में पिरोने का श्रेष्ठतम् 'पुरुषार्थ' करते नजर आते हैं-

"पवणु गुरु, पाणी पिता, माता धरि महतु।
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ, खेलै सगल जगतु।।"

वर्तमान-जगत में शिक्षा एवं दर्शन की ऐसी प्रासंगिकता अन्यत्र दुर्लभ है। ...

• • •

गुरु तेगबहादुर जी का असम (धुबड़ी) आगमन

हरकीरत हीर

धुबड़ी (असम) में स्थित गुरुद्वारा "गुरुद्वारा श्री गुरु तेगबहादुर साहिबजी"

सिख पंथ के नौवें गुरु श्री गुरु तेगबहादुर, श्री गुरु नानक देव जी महाराज के बाद पहले ऐसे गुरु थे जिन्होंने पंजाब के बाहर धर्म प्रचार के लिए यात्रा की। पूर्व की यात्रा के समय गुरु नानक मिशन का प्रचार करते हुए 1666 ई० में वे पटना साहिब आए। इनके साथ गुरु जी की माता नानकीजी, पत्नी माता गुजरी जी, उनके भाई कृपाल चंद जी व दरबारी भी आए। गुरु जी कुछ समय बडी संगत, गाय घाट ठहरने के बाद परिवार सहित सालिस राय जौहरी की संगत मंजी साहिब में आए। उस समय इस संगत का संचालन अधरकाके परपोते घनश्याम करते थे। गुरु तेगबहादुर जी कुछ दिन रुकने बाद परिवार को यहाँ छोड कर बंगाल व आसाम (असम) चले गए। गुरु जी का पड़ाव हमेशा किसी नदी या गाँव के किनारे होता। इस प्रकार गुरु किरतपुर, सैफाबाद, कैथल, पाहवा, बरना, करनखेड़ा, कुरुक्षेत्र, दिल्ली इटावा, थानपुर, फतेहपुर, प्रयाग, मिर्जापुर, जौनपुर, पटना होते हुए ढाका पहुँचे। दिसम्बर 1667 में औरंगजेब को असम से खबर मिली कि जिले का राजा बागी हो गया है और मुगल फौजों को जबर्दस्त शिकस्त दी है और गुवाहाटी पर कब्जा कर लिया है। असम ही एक ऐसा राज्य था जहाँ मुगल शासकों को अब तक सफलता नहीं मिली थी। जो भी मुगल शासक आगे बढ़ता या तो उसे हार मिलती या मौत के घाट उतार दिया जाता। इसकी वजह वे असम में उस समय प्रचलित तांत्रिक शक्तियों के प्रयोग को मानते हैं। औरंगजेब ने गुवाहाटी पर कब्जा करने के लिए राम सिंग को सेना देकर असम भेजने का फैसला किया। राजा राम सिंह उस समय उसकी हिरासत में था। औरंगजेब ने सोचा अगर यह मर गया तो एक काफिर खत्म हो जाएगा और कहीं जीत गया ती लाभ ही लाभ है। राजा राम सिंह अपनी फौज लेकर पटना पहुँचा। पटना उसे पता चला कि गुरु तेगबहादुर जी अपने परिवार को पटना छोड़ कर यात्रा के लिए ढाका गए हैं। इन्हीं दिनों पटना में गुरु तेगबहादुर जी के एक पुत्र गोबिन्द सिंह का जन्म हुआ। इधर राजा राम सिंह और उसके सैनिक असम में प्रचलित जादू-टोने और तांत्रिक शक्तियों से अति भयभीत थे और वे गुरु जी के तेज और प्रताप से भी परिचित थे। अतः राम सिंह ने सोचा कि अगर वह गुरु जी को अपने साथ असम ली जाने के लिए मना लेता है तो वह इन तांत्रिक शक्तियों से बच सकता है। वह पटना से गुरु जी के पास ढाका पहुँच गया और गुरु जी से अपने साथ असम चलने की बिनती की। गुरु जी तो असम यात्रा का पहले ही मन बना चुके थे क्योंकि वे गुरु नानक के उस स्थान को देखना चाहते थे जहाँ (धुबड़ी) उन्होंने आसन ग्रहण किया था। असम पहुँच कर गुरु जी ने धुबड़ी साहिब में ही डेरा डाला। फौजें 15 मिल दूर रंगमाटी में ठहरी।

ऐसा माना जाता है कि उस समय असम में तांत्रिक शक्तियों का उपयोग बहुत ज्यादा होता था। खुद मुसलमान लेखकों ने भी अपनी लेखनी में इन शक्तियों का आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत किया है। गुवाहाटी का कामख्या मंदिर तो इस तांत्रिक विद्या का केंद्र था।

दुश्मन को हराने के लिए तथा और शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए यहाँ मनुष्यों की बलि दी जाती।

कहते हैं मुगल फौज जब रंगामाटी पहुँची तब तांत्रिक शक्तियों में निर्लिप्त स्त्रियाँ कामाख्या में पूजा अर्चना करने के बाद धुबड़ी के सम्मुख ब्रह्मपुत्र नदी नदी के पार अपने तम्बू गाड़ बैठ गई। उन्हें ज्ञात हुआ कि मुगल सेना के साथ सिखों के गुरु तेगबहादुर भी हैं जो तेज प्रताप वाले महापुरुष हैं। उन्होंने नदी के पार से अपनी तांत्रिक शक्तियों का प्रयोग करना शुरू कर दिया। मन्त्र चलाये, शक्तियाँ दिखीं पर गुरु जी विचलित न हुए और सबको आदेश दिया कि ईश्वर का नाम स्मरण करें और भजन बंदगी में लीन रहे क्योंकि हमें करामत या बल नहीं दिखाना है। जब इस जादूगरनियों के तन्त्र-मन्त्र काम न आए तब इन्होंने अपनी तंत्र शक्ति द्वारा एक भारी पत्थर गुरु जी की ओर चलाया। जो गुरु जी के इशारे पर कुछ दूरी पर ही गिर गया। यह पत्थर 13 फुट धरती के अन्दर और 13 फुट धरती के ऊपर है।

यह पत्थर 26 फुट लम्बा और इसका घेरा 26X28 फुट तथा 33 फुट करीबन चौड़ा है। यह पत्थर धुबड़ी साहिब गुरुद्वारे में आज भी अवस्थित है। इसके बाद उन क्रोधित जादूगरनियों ने एक पेड़ भी उठा कर गुरु जी की ओर मारा पर गुरु जी ने उसे भी रोक दिया। उसके बाद उनहोंने तीर चलाये, जौहर दिखाए पर गुरु जी पर कोई असर न हुआ। गुरु जी के तेज प्रताप के आगे उनकी समस्त शक्तियाँ नष्ट हो गईं।

तांत्रिक मत के अनुसार जिनकी शक्तियों के ऊपर कोई दूसरा हावी हो जाता है उनकी समस्त शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उसकी मौत हो जाती है। अब जादूगरनियाँ घबरा गई उन्हें ज्ञात हो गया कि गुरु तेगबहादुर एक पहुँचे हुए संत हैं जो साक्षात् ईश्वर का रूप हैं। वे गुरु जी के चरणों पर गिर पड़ीं और क्षमा याचना करने लगीं गुरु जी ने उन्हें मुस्कुराते हुए क्षमा कर दिया और तंत्र-मन्त्र का कुमार्ग त्याग देने का वचन लिया।

इधर असम के राजा चक्रध्वज ने जब सारा वृत्तांत सुना तो उसने गुरु जी को अपने निवास पर दर्शन देने का किया। गुरु जी स्वयं चल कर राजा चक्रध्वज के निवास पर गए और उनके आग्रह पर गुरु जी ने राजा राम सिंह को गुवाहाटी पर आक्रमण न करने के लिए मना लिया और दोनों की संधि करवा दी।

इस अमन शान्ति के लिए गुरु जी की दोनों शासकों ने शुक्र गुजारी की और दोनों के सैनिकों ने रंगमाटी से लाल मिटटी लाकर गुरु जी के स्थान पर एक ऊँचा टीला बनवाया। आज भी यह टीला धुबड़ी साहिब में मौजूद है जिसे घेर कर रखा गया है और जिसकी मिटटी लोग श्रद्धावश लाकर अपने घर के पवित्र स्थानों पर रखते हैं।

इस प्रकार धुबड़ी साहिब असम का एक ऐतिहासिक धर्म-स्थल बन गया। प्रतिवर्ष गुरु तेगबहादुर के शहीदी दिवस पर यहाँ तीन दिनों तक भारी मेला लगता है। तीनों दिन यहाँ कडाह प्रसाद, लंगर व दूध की सेवा मुफ्त होती है। रहने और नहाने की विशाल व्यवस्था की जाती है। यहाँ देश भर से संगत एकत्रित है। गुवाहाटी गुरुद्वारे से भी स्पेशल बसें चलायी जातीं हैं। इस ऐतिहासिक गुरुद्वारे में इन तीन दिनों तक शब्द कीर्तन, कथा-वाचन, और नगर कीर्तन होता है। देश केअन्य धार्मिक गुरुद्वारों से महापुरुषों को शब्द-कीर्तन व प्रवचन के लिए बुलाया जाता है।

• • •

पूर्वोत्तर भारत और सिख गुरुओं का इतिहास

डॉ. आलोक सिंह

प्रकृति की रमणीय गोद में बसा पूर्वोत्तर विशाल भारतवर्ष का एक अभिन्न अंग है,जो असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम-इन आठ प्रदेशों का समुच्चय है। नाना जाति-उपजातियों की मिलन-भूमि कहलाने वाला यह पूर्वोत्तर भारतवर्ष के मूल भू-भाग से दूर पर स्थित होते हुए भी प्राचीनकाल से ही सांस्कृतिक दृष्टि से सम्बद्ध रहा है। पुण्यभूमि भारतवर्ष की मूल सार्वभौमिक संस्कृति की अविरल धारा के प्रवाह से यह पूर्वोत्तर सदा प्रेरित-प्रभावित रहा है। 'सात बहनें और एक भाई' के रूप में प्रसिद्ध इस पूर्वोत्तर भारत के उक्त आठों प्रान्तों के निराले एवं वैचित्रपूर्ण समुच्चय में सभी प्रदेशों का अपना प्रमुख एवं विशिष्ट स्थान है। यहाँ के समाज में व्याप्त लोक गीत, लोक कथा, लोकनीति, लोकविश्वास इस समाज को नया आकाश प्रदान करते हैं द्य इसकी यही विशेषता हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करती है। इस भूखंड को अगर हम पौराणिक दृष्टि से देखें तो महाभारत काल से ही इसका सांस्कृतिक ऐतिहासिक संबंध रहा है। हम देखते हैं कि महाभारत काल से ही भगवान कृष्ण, अर्जुन, भीम का पूर्वोत्तर के साथ एक पारिवारिक नाता भी रहा है। श्री कृष्ण का अरुणाचल प्रदेश के साथ, अर्जुन का मणिपुर के साथ और भीम का नागालैंड के साथ। भारतवर्ष के विशाल फलक पर लगभग तेरहवीं शती से सत्रहवीं शती तक परिव्याप्त अखिल भारतीय भक्ति-आन्दोलन मध्यकालीन धर्म-अध्यात्म-साधना के इतिहास की अन्यतम उल्लेखनीय घटना है। साम्य, मैत्री, दया, करुणा, प्रेम, अहिंसा, सह-अस्तित्व, विश्वात्मबोध एवं लोक-तांत्रिक मूल्यों पर आधारित इस उदात्त भक्ति-आन्दोलन की प्रबल धारा से पूर्वोत्तर भारतकी भूमि भी आलोड़ित एवं आन्दोलित हुई। जिसके कर्णधारों में विष्णु-भक्त महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव (ई. 1449-ई. 1568) का नाम बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने सर्वग्राहिणी भारतीय संस्कृति के मुखपत्र-सदृश 'श्रीमद्भागवत् पुराण' और 'श्रीमद्भगवत् गीता' के आधार पर 'एकशरण भागवती वैष्णव धर्म' ('एकशरण नाम धर्म' या 'महापुरुषीया धर्म') का प्रवर्तन कर सार्वभौमिक भ्रातृत्वबोध एवं मानवतावाद के सर्वत्र प्रचार-प्रसार के द्वारा असमीया समाज-जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन लाने का सराहनीय प्रयास किया। उनके द्वारा प्रवर्तित इसी नव-वैष्णव आन्दोलन के व्यापक परिदृश्य में 'नामघर' एवं 'नामघरीया संस्कृति'समाविष्ट हैं। 15वीं-16वीं शती में प्रवाहित होने वाली सत्रीया एवं नामघरीया संस्कृति की वेगवती धारा ने मध्यकालीन असम-भूमि में सांस्कृतिक नवोत्थान का एक ऐसा ज्वार उठाया जिसकी लहरें वर्तमान समय तक विद्यमान हैं। इस नामघरीया संस्कृति ने न केवल धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्वसाधारण असमीया जनता को आलोकित किया, वरन् सामाजिक- सांस्कृतिक दिशा में भी अपना विशिष्ट योगदान दिया। कुल मिलाकर पूर्वोत्तर भारत अपनी सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक धार्मिक भौगोलिक और ऐतिहासिक महत्त्व के कारण हमारे देश में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ के सभी राज्यों में कमोबेश सभी धर्मावलंबी के लोग रहते हैं और सभी का अपना ऐतिहासिक और पौराणिक इतिहास भी है।

पूर्वोत्तर भारत में सिख धर्म एवं सिख गुरुओं के इतिहास पर प्रकाश डालें तो असम राज्य के साथ सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव और सिख धर्म के नवें गुरु, गुरु तेगबहादुर का ऐतिहासिक संबंध रहा है। ऐतिहासिक विवरणों से ज्ञात होता है कि सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव अपने विश्व भ्रमण के दौरान बांग्लादेश के ढाका से होते हुए असम के धुबड़ी जिले में स्थित गुरुद्वारा दमदमा साहिब स्थल पर आकर ठहरे थे। इसी दौरान सन् 1505 ई. में उनकी भेंट श्रीमंत शंकरदेव से भी हुई थी और उस समय गुरु नानक देव की उम्र 36 वर्ष तथा शंकरदेव की 56 वर्ष थी। गुरु नानक देव और श्रीमंत शंकरदेव के विचार स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए सूर्यकुमार भुइआ अपनी पुस्तक 'बैकग्राउंड ऑफ असमीज कल्चर' में लिखते हैं कि-"दोनों महापुरुषों में गहनचिंतन-मनन हुआ कि असम में प्रचलित तंत्र-मंत्र और शाक्तधर्म के कुप्रभाव से स्थानीय लोगों का उद्धार कर उन्हें किस तरह संस्कारित किया जाए? जनता को किस प्रकार जादू-मंत्र के अभिशाप से मुक्त करा भगवद्भक्ति में लगाया जाए-आदि।"

इसके बाद कहा जाता है कि गुरु नानक देव असम के धुबड़ी से रंगामाटी, जोगीगोफा, ग्वालपाड़ा, कामाख्या हाजो, सदिया, अरुणाचल प्रदेश के परशुराम कुंड से होते हुए तिब्बत चले गए। वहाँ से चीन, जापान, फिलीपींस, जावा, सुमात्रा और वर्मा की यात्रा करते हुए मणिपुर की राजधानी इंफाल के रास्ते पुनः भारत लौटे। सिख धर्म के नवेंगुरु, गुरु तेगबहादुर जब असम के धुबड़ी में आते हैं तो वे वहाँ पर एक गुरुद्वारे का निर्माण करवाते हैं। नवम सिख गुरु तेगबहादुर के असम आने के बारे में वर्णन मिलता है कि अहोम राजा चक्रध्वज सिंह के मुगल विद्रोह को नष्ट करने के लिए मुगल सेनापति राम सिंह को औरंगजेबअसम जाने हेतु प्रतिनियुक्त करता है। राम सिंह अपनी इस यात्रा में अपने साथ गुरु तेगबहादुर को भी असम आने के लिए अनुरोध करते हैं और गुरु तेगबहादुर इस अनुरोध को स्वीकार भी कर लेते हैं। इस संबंध में सांवरमल सांगानेरिया अपने यात्रा वृतांत 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे' में लिखते हैं कि-"असम आते समय शुरू से ही राम सिंह यहाँ के जादू-टोने से भयभीत था, इसलिए उसने सर्वप्रथम नवम सिख गुरु तेगबहादुर से मिलकर उन्हें अपनी सेना के साथ असम आने के लिए राजी

किया था। राम सिंह के नेतृत्व में मुगल सेना ने धुबड़ी से 24 कि. मी. दूर रंगा माटी में अपनी छावनी बनाई। गुरु तेगबहादुर जब धुबड़ी आए,तब स्वयं यहीं दमदमा साहब में रुके, जहाँ गुरु नानक देव ने विश्राम लिया था।"

फरवरी 1669 ई. के शुरुआती माह में कामरूप पहुँचने पर गुरु तेगबहादुर ने धुबड़ी में अपना डेरा डाला जबकि मुगल सेनापति राम सिंह और उनकी सेना ने रंगमती किले में डेरा डाला। हालांकि मुगल सेना आश्वस्त थी लेकिन यह सुनिश्चित नहीं थी कि उनके साथ गुरु तेगबहादुर असमियों के जादू और टोने के बुरे प्रभाव को नष्ट करने में सक्षम होंगे या नहीं। असम के जादू टोने के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए सांवरमल सांगानेरिया लिखते हैं कि-"मुगल आक्रमणकारियों को पराभूत करने के लिए अहोम राजा चक्रध्वज सिंह ने अपने राज्य की जादू विद्या में पारंगत महिलाओं को भी तैनात कर रखा था। उनमें से एक नेताई धुबिनी की वंशधर थी। वह समझ गयी कि उसके जादू को निष्क्रिय करने का सामर्थ्य केवल गुरु तेगबहादुर में ही है। इसलिए उसने उन पर तरह-तरह से अपनी विद्या का प्रयोग किया। सब वार निष्फल चले गए तो उसने क्रोधित होकर गुरुदेव को मारने के लिए 26 फुट लंबी एक बड़ी शिला की मूठ चलाई, जो गुरु की आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से दो टुकड़े होकर जमीन में धंस गई। इस बार उसने एक बड़े पीपल के पेड़ मूठ को धोबिन गुरु जी पर छोड़ा, जो आज भी गुरुद्वारे में भक्ति टीला पर जस-का-तस खड़ा है। धोबिन ने और भी तरह-तरह से अपने काले जादू को उन पर प्रयोग किए परंतु उसके सभी वार बेकार गये। आखिर हारकर वह गुरु की शरण में आयी। उनके पांवों पर गिरकर उसने क्षमा मांगी और उनसे आशीर्वाद मांगा कि वे ऐसा वर दें, जिससे उसका नाम सदा के लिए अमर हो जाए। गुरुजी ने भविष्य में अपनी काली विद्या का प्रयोग न करने का उससे वचन लेकर कहा कि यह जगह आगे से उसके नाम से जानी जाएगी।"

गुरु तेगबहादुर ने जादू विद्या में पारंगत महिलाओं को आश्वासन दिया कि वह राजा राम सिंह और अहोम राजा के बीच शांति लाने के लिए कार्य करेंगे, जिसके लिए उन्हें दोनों पक्षों का हृदय परिवर्तन करना आवश्यक था। नतीजतन, उन्होंने राम सिंह को शांतिपूर्ण बातचीत के माध्यम से अपने शासन के उद्देश्यों को प्राप्त करने की सलाह दी और कहा कि जब तक जादू विद्या में पारंगत महिलाएँ उन पर हमला न करें तब तक वह भी हमला नहीं करेंगे। बाकी कहानी इतिहास का एक हिस्सा है कि कैसे वह मुगल सेनापति राम सिंह और असम के अहोम राजा के बीच मतभेदों को दूर करने में सफल रहे। इस कार्य के लिए कृतज्ञ अहोम राजा ने गुरु तेगबहादुर को कामाख्या मंदिर में आमंत्रित किया जहाँ उनका बहुत सम्मान किया गया।

गुरु तेगबहादुर के प्रयासों से लाए गए शांति समझौते की खुशी का अवसर मुगल और अहोम सेनाओं द्वारा गुरु नानक की दरगाह पर संयुक्त श्रद्धांजलि के रूप में मनाया गया। कहा जाता है कि धुबड़ी की शांति का टीला दोनों सेना के सैनिकों द्वारा अपनी ढालोंपर रखी लाल मिट्टी के साथ खड़ा किया गया था। गुरु तेगबहादुर के सफल शांति प्रयासों का यह स्थाई स्मारक आज भी धुबड़ी में स्थित है। इस संदर्भ पर अपने विचार रखते हुए 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे' अपने यात्रा वृतांत में सांवरमल सांगानेरिया लिखते हैं कि-"घटना जिस रूप में भी हुई होगी किंतु इस गुरुद्वारे में एक घेरे में रखी एक विशाल लंबी शिला के बारे में मान्यता है कि यह वही शिला है जिसे धुबिनी ने मूठ के रूप में गुरु तेगबहादुर पर चलाया था। दमदमा साहब गुरुद्वारा आज भव्य रुप में खड़ा है। शुरुआत में यह माटी का एक टीला मात्र था। उस टीले को गुरु तेगबहादुर और उनके साथ आए सिख सैनिकों ने माटी लाकर बनाया था। इसी स्थान पर गुरु तेगबहादुर को पटना से अपने पुत्र गोबिंदसिंह के जन्म का शुभ समाचार प्राप्त हुआ था। इसी स्थान पर गुरुदेव ने त्रिपुरा के राजा रामराय को पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया और कहा कि होने वाले उस पुत्र के मस्तक पर उनकी अंगूठी के निशान की तरह का चिन्ह होगा।"

(असम के धुबड़ी में स्थिति दमदमा साहब गुरुद्वारा)

इन सबके अतिरिक्त यह उल्लेख मिलता है कि गुरु तेगबहादुर के साथ आए सैनिकों में से कुछ यहीं रुक गए थे, जिनके वंशज आज भी धुबड़ी में रहते हैं। दमदमा साहब को आज धुबड़ी साहब भी कहा जाता है। इसी गुरुद्वारे में पूर्वोत्तर में पहली बार सिख धर्म के रीति-रिवाज के अनुसार निशान साहब फहराया गया था। यहाँ से मानव कल्याण के अनेक कार्य भी चलते हैं। आज यहाँ देश के हर कोने से सिख मत्था टेकने आते हैं।

असम में सिख समुदाय के विकास-यात्रा के संदर्भों के बारे में कई असमिया साहित्यकारों के साहित्य से भी जानकारी मिलती है। इनमें लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का उपन्यास पोदुमकुँवारी (1890), जोनाकीदाईबचंद्र तालुकदार का नाटक हरदत्त (1935) और रजनीकांत बरदलोई का उपन्यास मनोमती (1900) एवं दंडुआ द्रोह (1919) आदि हैं। कुल मिलाकर पूर्वोत्तर भारत के साथ सिख समुदाय का एक पुराना नाता रहा है। पूर्वोत्तर भारत के आठों राज्यों असम, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम और सिक्किम राज्यों में पवित्र स्थल गुरुद्वारा आपको देखने को मिलेगा।

(मेघालय राज्य की राजधानी शिलांग में स्थिति गुरुद्वारा)

जो समय-समय पर जरूरतमंदों को लंगर के माध्यम से तथा अन्य जरूरी सेवाओं के द्वारा एक दूसरे की सहायता करते रहते हैं। इसके साथ-साथ आठों राज्यों में व्यवसाय क्षेत्र में भी सिख समुदाय के लोग अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे, सांवरमल सांगनेरिया, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ-322
2. वही, पृष्ठ-322
3. वही, पृष्ठ-322-323
4. वही, पृष्ठ-323

• • •

गुरु नानक जी की बाणी मे तीर्थ की अवधारणा

-डॉ. रुचिरा ढींगरा

गुरु नानक देव जी के अनुसार भक्ति बिना भाग्य के संभव नहीं है। यह एक आंतरिक मानसिक स्थिति है जिसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को निरंतर प्रयत्न करना पड़ता है। गुरु नानक देव जी ने अपनी 'बाणी' में विभिन्न कर्मकांडों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों का विरोध करते हुए गुरु भक्ति और हरिनाम स्मरण पर बल दिया है। उनका मानना है कि गुरु सबसे बड़ा तीर्थ है जिसके सानिध्य में व्यक्ति सत्मार्ग पर चलता हुआ ईश्वर की प्राप्ति करता है। आत्माभिमान, पाखंड, आडंबर से कलुषित मन को गुरु सानिध्य व हरि नाम स्मरण से पवित्र, निर्मल किया जा सकता है। सच्चे मन से हरि स्मरण करना तीर्थ स्नान सदृश मुक्ति दायक है। गुरु नानक देव जी का मत है कि ईश्वर ने तन मन धन परहित सेवा के लिए दिए हैं। मन की विनम्रता और संतोष मनुष्य को प्रभु भक्ति की ओर प्रेरित करने में सहायक होते हैं। वे मानते थे कि प्रभु समभाव से सबको देखते हैं। जिस प्राणी के हृदय में प्रभु की लगन लग जाती है वे उसे अपनी शरण में ले लेते हैं। संसार का प्रत्येक जीव उस परमपिता की संतान है अत: मनुष्य को जीवमात्र से स्नेह करना चाहिए।

'तरन्ति जना दु:खेभ्यौथेस्तानि तीर्थानि ' समस्त क्लेशों से मुक्त कराने वाले तीर्थ की परिकल्पना अत्यंत प्राचीन है। इसका साक्ष्य वेदों, पुराणों, महाभारत आदि में उल्लिखित मिलती है। वेदों में तप और यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त तीर्थ शब्द ऋषि मुनियों द्वारा सम्पन्न यज्ञ धूम से सुवासित पवित्र नदियों के ऐसे संगम स्थल का वाचक है जहाँ व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रयोजनों की सिद्धि होती है। पुराण (पद्म पुराण) में संतान के लिए अभिभावकों, पतिव्रता नारी के लिए पति तथा योगी भौतिकता से विरत ऋषि गणों के पवित्र आश्रमों, नदियों, समुद्रादि से संयुक्त स्थलों को तीर्थ की संज्ञा दी गई है। महाभारत में अनुसूया तीर्थ, सुतीक्ष्ण तीर्थ, अगस्त्याश्रम तीर्थ को अत्रि पत्नी अनुसूया, शरभंग एवं अगस्त्य ऋषि के तपस्वरुप निर्मित माना गया है। युधिष्ठिर ने विदुर महाराज को तीर्थ रुप माना है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से तीर्थ ती+र्थ शब्दों के योग से निर्मित है जिसका अर्थ है-जहाँ की यात्रा समस्त कलुष का हरण कर धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष प्रयोजनों को सिद्ध करती है। इनमें से अर्थ तीर्थाटन, धार्मिक कृत्यों में व्यय हो जाने पर भी शेष तीन मानव जीवन के लिए सुदृढ़ सम्बल सिद्ध होते हैं।

गुरुदेव नानक जी भारतीय सन्त परंपरा के स्वर्णिम हस्ताक्षर हैं। उनके सामयिक युग में भी तीर्थों के प्रति आस्था थी। नानक जी ने 68 तीर्थों की उपस्थिति स्वीकार करते हुए भी व्यर्थ के कर्मकांडों की अपेक्षा गुरु प्रदत्त ज्ञान को सर्वोपरि तथा हरि नाम स्मरण को तीर्थों सदृश महत्त्वपूर्ण माना है।

"अठसठि तीरथ हरिनामु है, किलविख काटणहारा।"(1)

नानक देव जी गुरु को तीर्थ सदृश पूज्य मानते हैं-

"नानक गुर समानि तीरथु नहीं कोई साचे गुर गोपाला"।(2)

उनके मतानुसार तीर्थाटन द्वारा आत्म या ब्रह्म की प्राप्ति का प्रयास निरर्थक है क्योंकि आत्म (ब्रह्म) तो घट घट वासी है। पंचविकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर से मुक्ति तीर्थाटन की अपेक्षा अधिक अनिवार्य है और उसके लिए तीर्थ यात्रा पर जाने की अपेक्षा गुरु अथवा हरिनाम स्मरण उपयोगी है। गुरु नानक देव जी ने तीर्थ में स्नान के वास्तविक स्वरूप को भी स्पष्ट करते हुए कहा कि गुरु दर्शन अड़सठ तीर्थों में स्नान करने से अधिक फलदायक है। उन्होंने गुरु की समता समुद्र व उनकी शिक्षा को नदी मानते हुए जीव को उसमें स्नान अर्थात् उसका अनुसरण करने के लिए प्रबोध किया है। धर्म के बाह्य प्रपंचनात्मक कर्मकांडों का विरोध करते हुए कबीरदास ने भी तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा, जप छाप तिलकादि का तीव्र विरोध किया तथा गुरु को गोबिंद से मिलाने का माध्यम मान उसके दर्शन, वन्दन पर बल दिया। हरि गुणगान करने वाले को सत्यवादी होना चाहिए।नानक देव जी ने मनुष्य को सत्य रुपी तीर्थ में अवगाहन करने व सत्संगति में जीवन व्यतीत करने की सम्मति दी।

"सचु तीरथि नावहु हरि गुण गावहु।"(3)

उन्होंने हरि रुपी मित्र की संगति को भी पूर्ण स्नान स्वीकार किया है।

"संगति मीत मिलापु पूरा नावणो।"(4)

गुरु नानकदेव जी के कथनानुसार तीर्थ स्नान से मानसिक शुद्धता, अहंकार दंभ पाखंड से मुक्ति मिले तभी उसकी उपयोगिता है अन्यथा लोक दृष्टि में धर्मात्मा और पुण्यात्मा समझा जाने वाला व्यक्ति मन के कालुष्य के कारण अशुद्ध ही रहता है। तीर्थाटन, तीर्थ स्नान, गुरु व हरिस्मरण, सत्यवादिता, सत्संगति के साथ ही नानकदेव जी ने मनुष्य में जीव मात्र के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा, कायिक-आर्थिक, निष्काम सेवा भाव से सुख पहुँचाने को भी उत्तम गुण माना है। सेवा का कोशीय अर्थ है परिचर्या, उपासना, भक्ति, आराधना, उपचार, सेवन इत्यादि।गुरु नानकदेव जी का अभिमत है कि गुरु सेवा भक्त को आवागमन के चक्र से मुक्त करती है तथा परमपद प्रदान करती है।यह उल्लेख्य है कि नानक देव जी की कथनी और करनी में कोई भेद नहीं था। उन्होंने पूर्ण समर्पण से गुरु सेवा करके परमपद प्राप्त किया।मानापमान रहित हो स्वयं को पहचानने की सामर्थ्य प्राप्त की थी। अहर्निश गुरु चरणों की सेवा में संलग्न भक्त को हरि की भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है क्योंकि गुरु के सेवक भगवतानुग्रह के पात्र होते हैं। उन्हें यम का भय नहीं

सताता और वे मुक्ति/मोक्ष को प्राप्त करते हैं। सेवा बिना योद्धा, योगी, संन्यासी भी फल का उपभोक्ता नहीं हो सकता। गुरु नानक देव जी ने स्पष्ट कर दिया है कि गुरु एवं प्रभु सेवा का मार्ग दुस्साध्य होता है। स्वयं को प्रभु का सेवक मानने वाले नानक देव जी ने अपना संपूर्ण जीवन गुरु सेवा और नाम प्रभु सेवा में व्यतीत किया। यह उनके व्यक्तित्व के निर्मायक तत्व थे।

गुरु नानक देव जी की तीर्थ की अवधारणा में श्रम को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। वे स्वयं परिश्रमी और ईमानदार थे और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करते थे। वे निर्वाण प्राप्ति के लिए भी अथक परिश्रम को अनिवार्य मानते थे। उनके मतानुसार ईश्वर दयालु है और उसकी अनंत अपार कृपा के सब भागी हैं। असंभव को संभव कर देने वाली भगवत कृपा या अनुग्रह का गुणगान सभी भक्तों ने किया है। मानवीय दुर्गुणों, दुर्बलता से मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति भी भगवत दया से ही संभव है अत: मनुष्य को पर पीड़ा से दयार्द्र होकर पीड़ित की सहायता करने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

गुरु नानक जी अत्यंत दयालु थे। उनके अनुसार सेवा का भाव दान से जुड़ता है। ऐसा व्यक्ति निष्काम भाव से श्रद्धा और दयावश अन्न,वस्त्रादि जरूरतमंद लोगों को देता है। वस्तुत: भगवान से बढ़कर दाता और प्राणी मात्र से बढ़कर याचक कोई है ही नहीं। गुरु राम नाम का दान देकर अपने शिष्य का जीवन सफल बनाते हैं। गुरु से प्राप्त दान ही शिष्य को परमात्मा से दान पाने का अधिकारी बनाता है। यह दान अपरिमित है, कभी समाप्त नहीं होता। प्रभु गुरु के माध्यम से अपना दान प्राणियों में वितरित करता है इसलिए गुरु को गोबिंद के समकक्ष पूजनीय मानना चाहिए। नानक देव जी के कथनानुसार समृद्ध और सनाढ्य व्यक्ति भी दान देते हैं किंतु अपने किए का अभिमान भी करते हैं। कुछ व्यक्ति समय पर सहायता अवश्य करते हैं किंतु निश्चित अवधि के पश्चात दी गई राशि वापस मांगने लगते हैं। गुरु द्वारा प्राप्त हरि नाम के ज्ञान रूपी दान को कभी लौटाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। निर्ब्याज, मुक्त हस्त प्राप्त यह दान अव्यय और मुक्ति का प्रदाता होता है।

सामान्यत: नेत्रों से प्राप्त बोध दर्शन होता है, किंतु नानक देव जी ने इसे ईश्वरीय साक्षात्कार के अर्थ में प्रयुक्त किया है। गुरु द्वारा हरि नाम का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त प्राणी उस ईश्वर के दर्शन के लिए लालायित हो जाता है।

"बिनु दरसन कैसे जीवउ मेरी माई।

हरि बिनु जीअरा रहि न सकै खिनु सतिगुरि बूझ बुझाई।"(5)

निर्गुणोपासक संतों कबीर, रहीम, दादू आदि के सदृश ही मीरा, सूर, तुलसी इत्यादि भक्त कवियों ने भी ईश्वर दर्शन की उत्कट इच्छा को व्यक्त किया है और उसके लिए निराभिमानता, सर्वस्व समर्पण तथा गुरु कृपा को अपरिहार्य माना है। गुरु के मार्ग दर्शन के बिना ईश्वर से साक्षात्कार असंभव है।

भारतीय संत मानवतावादी थे। उनकी दृष्टि में ऊँच-नीच जाति-कुजाति, अमीर-गरीब सब बराबर थे। गुरु नानक देव जी के लिए तो मानवता ही परम धर्म था। सबका हित चिंतन उनका कर्म और जीवन लक्ष्य था। मंदिर-मस्जिद में अंधश्रद्धा रखने वाले हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के कर्मकांडों का विरोध करने वाले कबीर की भांति नानक जी ने भी हिंदुओं के उत्थान के साथ ही उन्हें यह समझाया कि सूर्य देव को अर्घ देने से उनके पूर्वजों तक वह नहीं पहुँच सकता। मक्का के काजियों को भी उन्होंने बताया कि कण-कण में निवास करने वाला ईश्वर/खुदा केवल उनकी मस्जिद में ही नहीं रहता। उनके निधनोपरांत हिंदू और मुस्लिमों में उनके अंतिम संस्कार को लेकर उठने वाले विवाद का अंत भी काशी छोड़कर मगर में प्राण त्यागने वाले कबीर की भांति ही हुआ। गुरु नानक देव जी का अंतिम संस्कार दोनों धर्मानुयायी अपने अनुसार करना चाहते थे।निर्णय हुआ कि दोनों धर्म वाले उनके पार्थिव शरीर के साथ अपने श्रद्धा सुमन रख दें। जिसके फूल वैसे ही रहेंगे वह अपने रीति रिवाज के अनुसार संस्कार कर सकेगा। जब नानक जी के ऊपर से चादर उठाई गई तो वहाँ देह नहीं थी। गुरु नानक देव जी ने की निष्क्रियता अथवा अकर्मण्यता का पक्ष कभी नहीं लिया तथापि वे अपरिमित इच्छाओं का दमन अनिवार्य मानते थे। उनके अनुसार तभी परमात्मा के निर्मल परम पद को व्यक्ति पहचान सकता है। कबीर दास ने भी नानकदेव जी सदृश अपनी इच्छाओं का दमन किया था।

"हम घर जाला आपनां, लिए मुराड़ा हाथि।

अब घर जालों तास का, जो चलै हमारे साथि।"(6)

नानक देव जी को कामनाजित ईश्वरानुरक्त व्यक्ति ही प्रिय था। उनके अनुसार-

"सो जनु ऐसा मैं मनि भावे।

आपु मारि अपरंपरि राता गुर की कार कमावै।"(7)

सीमाहीन इच्छाएँ वासनाओं को जन्म देती हैं जिनसे पंच विकार-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि उत्पन्न होते हैं और मनुष्य कुकर्मों में प्रवृत्त होता हैअत: इनके मूल इच्छा का दमन आवश्यक है। अहंकार अथवा हाउमै को गुरु नानक ने पाँच विकारों में सर्वाधिक प्रचंड और विनाशकारी माना है। इसके वशीभूत जड़-चेतन, तीनो लोक तथा त्रिदेव भी संयम खोकर कर्म करते हैं। ईश्वर की प्राप्ति के लिए इससे त्राण पाना अति आवश्यक होता है। अहंकार भी नाना प्रकार का संभव है। साधना और संयम में महारत प्राप्त योगियों सन्यासियों ब्रह्मचारिओं में अपनी आत्मशक्ति का अहंकार हो जाता है। गुरु नानक देव की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण कार्य भी अहंकार पूरित होने पर निम्न और निंदनीय हो जाता है। अध्ययन मनन, उच्च कोटि की मानसिकता और विज्ञता प्राप्त व्यक्ति भी अहंकार ग्रस्त होने पर अपनी उत्कृष्टता से वंचित हो जाता है। गुरु नानक देव की दृष्टि में उसका सारा अध्ययन चिंतन मनन और लेखन उपेक्षणीय होता है। कर्मकांडियों, तांत्रिकों, नागा मौनियों आदि द्वारा अपनाए गए विभिन्न आचार व्यवहार जन सामान्य को भ्रमित करने और अपने द्वारा फैलाए रहस्यालोक से अभिभूत करने के स्वांग मात्र होते हैं। दुर्बल आत्मशक्ति वाले व्यक्ति उनसे प्रभावित होते हैं। गुरु नानक देव इन्हें उनका अभिमान प्रदर्शन मानते हैं और उनसे बचने का सत्परामर्श देते हैं। उनके मतानुसार सतगुरु की शरण में जाकर ही प्राणी उनसे बच सकता है।

कुलीनता का अहम् सांप्रदायिक भेदभाव का कारण बनता है। नानक देव जी जाति पाति को नहीं मानते थे। वे स्वयं को अछूतों में परिगणित कर संतुष्ट होते थे। सनाढ्य समृद्ध व्यक्तियों को अपनी संपन्नता का गर्व होता है। वे निर्धनों पर अत्याचार करना अपना

अधिकार समझने लगते हैं। उनके जीवन का ध्येय ही उचितानुचित रीति से धन अर्जित करना और उसका अपव्यय करना होता है। आवश्यकता से अधिक धनी व्यक्तियों में मदिरा सेवन, वेश्यावृति आदि कुव्यसन होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्धनों की भांति हाड़ तोड़ मेहनत नहीं करनी पड़ती। आर्थिक संपन्नता के बल पर वे अयोग्य होते हुए भी समाज में प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर लेते हैं। गुरु नानक देव के मतानुसार परिस्थितिवश धनसंपदा खो जाने पर इनकी दशा अत्यंत दयनीय हो जाती है अतः इन्हें समय रहते चेत जाना चाहिए। परिवार में लिप्त प्राणी सांसारिक पारिवारिक जनों को अपना सहोदर मान अन्य लोगों के प्रति उपेक्षा की दृष्टि अपनाता है, किंतु नानक देव जी मनुष्य को चेताते हैं कि जन्म और मृत्यु दोनों के समय व्यक्ति अकेला होता है। अपने कहे जाने वाले व्यक्ति भी मृतक से शीघ्रतातिशीघ्र छुटकारा पाने के लिए प्रयासरत होते हैं। संसार में रहते हुए व्यक्ति जिन वस्तुओं का अर्जन-संग्रह करता है वह सब यहीं रह जाता हैं। नानक देव जी ने राज, माल, रूप, जाति और यौवन की गणना ऐसे पाँच ठगों से की है जो मनुष्य का सर्वस्व हरण कर लेते हैं।

"राजु मालु रुपु जाति जोबनु पंजे ठग।
एनी ठगीं जगु ठगिआ किनै न रखी लज।"(8)

इनके वशीभूत हुआ व्यक्ति कभी उबर नहीं पाता। राम नाम का स्मरण जो मनुष्य के जीवन का प्रधान कार्य होना चाहिए उसकी दृष्टि में सर्वथा गौण हो जाता है। सद्गुरु ही हऊमै के इस विनाशकारी रूप से भक्तों को बचा सकते हैं अतः उसे शीघ्र ही उनकी शरण में जाना चाहिए। निराभिमानी व्यक्ति अपने जीवन को सफल बनाने के साथ ही आपने संपर्कागत व्यक्तियों के जीवन को भी सुधार लेता है। जब मनुष्य पंच विकारों से मन को हटा कर भगवत भक्ति में लगा देता है तो उसे किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु की इच्छा नहीं रहती। केवल प्रभु की स्मृति में वह लिप्त रहता है। नानक देव जी भौतिक तत्वों से मुक्त हो ईश्वर की स्मृति में इस प्रकार लीन रहते थे कि उन्हें खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती थी। परिवार जन उन्हें बीमार समझ वैद्य को बुलवाते थे जिनकी दवा को पीड़ा वर्धक बताकर नानक जी कहते हैं-

"वैद न भोले दारु लाई
दरदु होवे दुखु रहै सरीर।ऐसा दारु लगै न बीर।"(9)

मीराबाई भी कृष्ण प्रेम में ' पानां ज्यूं पीली पड़ी रे, लोग कहें पिंड रोग 'तथा संत रविदास को प्रभु प्रेम की पीड़ा से मुक्त होने के लिए राम रसायन रुपी औषधि की आवश्यकता थी-'राम रसायन जउ मिलहिं, तउ हरै हमारौ पीर'। गुरु नानक देव जी का युग पाखंड और कर्मकांडों की प्रबलता से विभिन्न मत मतान्तरों के मध्य विभेद और संघर्ष का युग था। गुरु नानक देव जी किसी धार्मिक संप्रदाय से नहीं जुड़े। उनकी दृष्टि में सभी धर्म और उनके अनुयायी एक समान थे। उन्होंने उन्हें अपने-अपने विश्वासानुसार धर्म का अनुपालन करने की प्रेरणा दी। कबीर के समान उन्होंने हिंदुओं-मुसलमानों दोनों का उनके धार्मिक अंधविश्वासों के लिए विरोध किया। अपवित्र मन से पढ़ी गई नमाज खुदा को कभी स्वीकार नहीं हो सकती उसी प्रकार हिंदुओं द्वारा श्राद्ध के नाम पर किया जाने वाला दान मृतकों तक नहीं पहुँच सकता। स्त्री को माया का प्रतिरूप, भगवत भक्ति में बाधक मान उससे दूर रहने की धारणा भी नानक देव जी को स्वीकार नहीं थी। उनके अनुसार संत महात्माओं, पीरों पैगंबरों, विद्वानों और राजाओं की जननी नारी का अपमान करना महान पाप कर्म है। उन्होंने समाज में उसे उच्च और सम्मानीय पद प्रदान किए जाने की प्रेरणा दी। मुगल शासकों के काल में पर्दा प्रथा, अपहरण, कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि के चलते नारी का जीवन अत्यंत विषाक्त था जिससे गुरु नानक देव जी भी व्यथित थे। अपने सामयिक ब्राह्मण वर्ग के कर्मकांडों-जनेऊ, तिलक का भी उन्होंने खंडन किया और संतोष, सत्य, दया इत्यादि गुणों को अपनाने की सम्मति दी। हठयोग द्वारा परमेश्वर को अपने अनुकूल करने के स्थान पर लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्गुणों को बलपूर्वक त्याग कर सात्विक वृत्ति से युक्त होकर ईश्वर आराधना करने की सम्मति दी। गुरु नानक देव जी के मतानुसार जप, माला,तिलक, जनेऊ, शरीर पर भस्म लगाकर, सिर मुंडवाकर, शृंगी बजाकर ईश्वर का सानिध्य प्राप्त करना असंभव है। कुरान नमाज पढ़ने किंतु गौ हत्या करने से ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकता है? सतगुरु के द्वारा दिया गया मार्गदर्शन और नाम स्मरण रुपी ज्ञान से ही आत्मिक शुद्धता संभव है। समाज में व्याप्त अनाचार के लिए उत्तरदायी स्वार्थ पूर्ति में संलग्न हिंदू-मुस्लिम-वाममार्गी आदि सभी वर्गों की नानक जी ने घोर विगहर्णा की है। उनकी 'बाणी' इस दृष्टि से मानव के उद्धार का सशक्त माध्यम है। सदाचार और मानसिक शांति के लिए प्राणी का विनम्र होना अनिवार्य है। कटुभाषी किसी को भी प्रिय नहीं हो सकता। नानक देव जी की विनम्रता के कारण व्यक्ति निशंक होकर उनसे अपनी समस्यायें निवेदित करते थे। एक महान संत के रूप में उनकी लोकप्रियता से वे आक्रान्त अथवा संकुचित नहीं होते थे।

ध्यातव्य है कि गुरु नानक देव जी स्वयं गृहस्थ थे और उन्होंने मनुष्य के लिए गृहस्थ धर्म को वर्जित नहीं किया। यह अवश्य है कि माता पिता भाई बहन पति पत्नी पुत्र आदि जितने भी संभावित संबंध हैं सभी नश्वर हैं अतः उनमें अत्याधिक लिप्तता के कारण गुरु का विस्मरण सर्वथा अनुचित है। गुरु निर्देशन बिना ईश्वर प्राप्ति व मुक्ति असंभव है। गुरु नानक देव जी की बाणी में तीर्थ की यही सम्यक परिकल्पना मिलती है जिसका पठन पाठन और अनुगमन प्राणी को तीर्थ यात्रा के पुण्य का प्रदाता है।

सन्दर्भः

1. जयराम मिश्र, नानक बाणी, सं. 2018, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 585
2. वही, पृष्ठ 317
3. वही, पृष्ठ 631
4. वही, पृष्ठ 420
5. वही, पृष्ठ 476
6. सीताराम चतुर्वेदी, कबीर संग्रह, प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1971, पूर्वोक्त, पृष्ठ 83
7. जयराम मिश्र, नानक बाणी, सं.2018, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 695
8. वही, पृष्ठ 768
9. वही, पृष्ठ 750

• • •

प्रकाश पर्व के प्रतीक गुरु रामदास

डॉ. साधना गुप्ता

सिख पंथ के प्रवर्तक गुरु नानक देव हैं जिन्होंने तत्कालीन समय (15वी. सदी) में समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, जर-जर होती रूढ़ियों और पाखंडों को दूर कर प्रेम, सेवा, परिश्रम, परोपकार और भाईचारे की दृढ़ आधारशिला पर इस पंथ की स्थापना की। उन्होंने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए सभी धर्मों की अच्छाइयों को इसमें समाहित कर सार-सार को गहि रहे का उदाहरण प्रस्तुत किया। 'ईश्वर एक है', इस मूलमंत्र को उपदेश के रूप में अपनाते हुए कहा, सभी को उसी ईश्वर ने बनाया है, सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं चाहे वह स्वयं को हिंदू कहे या मुसलमान। ईश्वर के लिए सभी समान ही है। उन्होंने यह भी बताया कि ईश्वर सत्य है। मनुष्य को अच्छे कार्य करने चाहिए ताकि उस परमात्मा के दरबार में लज्जित ना होना पड़े। उन्होंने यहाँ तक कहा कि परमात्मा उसी तरह व्यापक है जैसे सभी वनस्पतियों में आग समाई हुई है, एवं दूध में घी समाया हुआ है इसी तरह परमात्मा की ज्योति ऊँच-नीच सभी में व्याप्त है। परमात्मा घट घट में व्याप्त है।

सगल वनस्पति महि वसंतरु, सगल दूध महि घीआ।
ऊँच-नीच महि जोति समाणी, घटि-घटि माथउ जीआ। [1]

सिख पंथ को बल प्रदान करने और मर्यादा सम्पन्न बनाने के लिए उन्होंने 'आदिग्रंथ' का संपादन किया, जिसमें 6 सिख गुरु क्रमशः गुरु नानक, गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर को, 15 संतो क्रमशः शेख फरीद, जयदेव, त्रिलोचन, सधना, नामदेव, वेणी, रामानंद, कबीर, रविदास, पीपा, सेठा, धन्ना, भीखन, परमानंद और सूरदास तथा 15 रचनाकारों हरिबंस, बल्हा, मथुरा, गयंद, नल्ह, भल्ल, सल्ह भिक्खा, कीरत, भाई मरदाना, सुंदरदास, राइ बलवंड, सत्ता डूम, कलसहार और जालप को स्थान देकर धर्म, जाति, क्षेत्र एवं भाषा की सीमाओं को अमान्य कर मानवता का संदेश दिया। इन्हीं में से यहाँ हमारे विवेचन का विषय गुरु रामदास है।

गुरु रामदास-गुरु रामदास (जेठा जी) का जन्म चूना मण्डी, लाहौर जो अब पाकिस्तान में है, में कार्तिक वदी 2, (25वाँ आसू) संवत् 1591 (24 सितम्बर, 1534) को हुआ था। इनकी माता दयाकौर जी (अनूपकौर जी) एवं बाबा हरीदास जी सोढी खत्री थे। इनका यह पुत्र बहुत ही सुंदर एवं आकर्षक था। कहा जाता है कि रामदास जी का परिवार बहुत गरीब था। उन्हें उबले हुए चने बेच कर अपनी रोजी-रोटी कमानी पड़ती थी। जब वे मात्र 7 वर्ष के थे, उनके माता-पिता का देहावसान हो गया। तब उनकी नानी उन्हें अपने साथ बसर्के गाँव ले आयी। उन्होंने बसर्के में 5 वर्षो तक उबले हुए चने बेच कर अपना जीवनयापन किया। एक बार गुरु अमरदास साहिब जी, रामदास साहिब जी की नानी के साथ उनके दादा की मृत्यु पर बसर्के आए और उन्हें रामदास साहिब से गहरा लगाव सा हो गया। रामदास जी अपनी नानी के साथ गोइन्दवाल आ गये एवं फिर वहीं बस गये। आजीविका का सवाल अपनी जगह था अतः यहाँ भी वे अपनी रोजी-रोटी के लिए उबले चने बेचने लगे। परन्तु साथ ही साथ गुरु अमरदास साहिब जी द्वारा धार्मिक संगतों में भी भाग लेने लगे। उन्होंने गोइन्दवाल साहिब के निर्माण की सेवा की। बाद में इनका विवाह अमरदास जी की पुत्री बीबी भानी जी के साथ हुआ। पृथ्वीचन्द, महादेव और अरजन इनके तीन पुत्र हुए। गुरु अमरदास के प्रिय शिष्य होने के कारण ये उन्हीं के साथ रहने लगे एवं यात्राओं पर जाने लगे।

चतुर्थ नानक के रूप में स्थापित-अपनी प्रतिभा, निष्ठा, सेवा और भक्ति से रामदास जी ने शीध्र ही अमरदास जी के समक्ष स्वयं को गुरु बनने के योग्य सिद्ध कर दिया। परिणामस्वरूप 10 सितंबर 1574 को को इन्हें गुरु की उपाधि प्रदान करते हुए चतुर्थ नानक के रूप में स्थापित किया गया।

गुरु रामदास जी के कार्य-

रामसर (अमृतसर) का निर्माण-उन दिनों जब विदेशी आक्रमणकारी एक शहर के बाद दूसरा शहर तबाह कर रहे थे, तब इन्हीं 'चौथे नानक' गुरु रामदास जी महाराज ने एक पवित्र शहर रामसर का निर्माण करवाया जो कि अब अमृतसर के नाम से जाना जाता है। इस उद्देश्य के लिए गुरु साहिब ने तुंग, गिलवाली एवं गुमताला गाँवों के जमींदारों से संतोखसर सरोवर खुदवाने के लिए जमीनें खरीदी। बाद में उन्होंने संतोखसर का काम बन्द कर अपना पूरा ध्यान अमृतसर सरोवर खुदवाने में ही लगा दिया। इस कार्य की देख रेख करने के लिए भाई सहलो जी एवं बाबा बूढा जी को नियुक्त किया गया।

जल्द ही यह नया शहर (चक रामदासपुर) अंतरराष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र बन चमकने लगा। यह शहर व्यापारिक दृष्टि से लाहौर की ही तरह महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। गुरु रामदास साहिब जी ने स्वयं विभिन्न व्यापारों से सम्बन्धित व्यापारियों को इस शहर में आमंत्रित किया। समय आने पर आपका यह कदम सामरिक दृष्टि से बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ। यहाँ सिक्खों के लिए भजन-बन्दगी का स्थान बनाया गया। इस प्रकार एक विलक्षण सिक्ख पंथ के लिए नवीन मार्ग तैयार हुआ।

स्वर्ण मंदिर का निर्माण-गुरु हरमंदिर साहिब यानी 'स्वर्ण मंदिर' की नींव भी इनके कार्यकाल में रखी गई। इन्होंने ही विशेष प्रयोजन

से स्वर्ण मंदिर के चारों ओर की दिशा में द्वार बनवाए थे। वह प्रयोजन था कि यह मंदिर हर धर्म, जाति, लिंग के व्यक्ति के लिए खुला है और कोई भी यहाँ कभी भी किसी भी वक्त आ जा सकता है।

मसंद पद्धति का शुभारम्भ-गुरु रामदास साहिब जी ने मंजी पद्धति' का संवर्द्धन करते हुए मसंद पद्धति' का शुभारम्भ किया। यह कदम सिक्ख धर्म की प्रगति में एक मील का पत्थर साबित हुआ। "मसंद" एक फारसी शब्द है। जिसका अर्थ है "उच्च स्थान या स्थिति" क्योंकि गुरु साहिब द्वारा नियुक्त किए गए सेवकों और प्रेरकों की अन्य सिखों की तुलना में उच्च स्थिति थी, इसलिए उन्हें मसंद कहा जाता था। मसंद प्रणाली को शुरू करने के मुख्य कारणों में रामदासपुरा में अमृतसर और संतोखसर नाम के सरोवरों के निर्माण के लिए एवं लंगर प्रथा को चलाने के लिए धन की आवश्यक्ता के संग सुचारू रूप से दूर-दूर तक धर्म प्रचार करना माना गया है।

विशेषताएँ-मसंद प्रणाली के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में गुरु साहिब मसंद (गुरु द्वारा नियुक्त प्रमुख) नियुक्त किए जाते थे जो गुरु साहिब के विशेष प्रतिनिधि के रूप में अपने इलाके में प्रचार करते थे और पैसा इकट्ठा करके गुरु साहिब को भेजते थे। यह पैसे बैसाखी के दिन अमृतसर में "गुरु गोलक" में जमा किये जाते थे और मसंदों को इसकी रसीद भी मिलती थी। दूर के स्थानों में जहाँ ये मसंद नहीं जा सकते थे, उनके प्रतिनिधि संगतों से धन इकट्ठा करते थे और उसे मसंदों के पास भेजते थे और वे इसे गुरु साहिब के पास जमा करते थे। गुरु साहिब ने सभी सिखों को यह कहा हुआ था कि वे अपनी आय का दसवाँ हिस्सा (दशवन्ध) धार्मिक उद्देश्यों के लिए दें, इसे जबरदस्ती नहीं लिया जाता था। सिख अपनी इच्छा से धन दान करते थे।

सिख धर्म के प्रारंभिक विकास में मसंद प्रथा का महत्त्वपूर्ण योगदान था। मसंद उच्च आचरण और त्याग का जीवन बिताते थे। उनके उपदेश से लोग बहुत प्रभावित होते थे। इसलिए यह संस्था सिख धर्म के प्रचार में बहुत मददगार साबित हुई। इनके माध्यम से इकठ्ठे किए गए धन से अमृतसर, संतोखसर, तरनतारन, हरगोबिंदपुर, करतारपुर और अन्य स्थानों पर निर्माण कार्यो को पूरा करने में सफलता मिली। इस पैसे से लंगर का काम भी बहुत सफलतापूर्वक जारी रहा, लेकिन इस प्रथा का नुकसान भी हुआ। मुगल बादशाहों को गुरु साहिब का लोगों से कर वसूलना, एक राज्य के भीतर एक और राज्य स्थापित करना लगा। इसलिए यह गुरु अर्जुनदेव जी की शहादत का एक प्रमुख कारण भी बना। लेकिन यहाँ रेखांकित तथ्य यह है कि लोग यह धन (पैसे) अपनी इच्छा (खुशी) और धार्मिक भावना से दिया करते थे। यह लोगों से कर की तरह जबरदस्ती वसुला नहीं जाता था और दूसरा इस धन का उपयोग गुरु साहिब किसी राजनीतिक उद्देश्य या अपनी निजी आवश्यकता के लिए नहीं करते थे। बल्कि इसका उपयोग धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता था।

परन्तु गुरु अर्जुन देव जी के बाद मसंद प्रणाली में कई दोष आ गये। मसंदों के व्यवहार में गिरावट आ गई। अत: गुरु गोबिंदसिंह जी ने मसंद प्रणाली में घर कर गयी बुराईयों को ध्यान में रखते हुए इस संगठन को खत्म कर दिया और इसकी जगह पर 1699 ई.में खालसा पंथ की स्थापना की।

'चार लावों' (फेरों) की रचना-गुरु रामदास साहिब जी ने सिख धर्म को 'आनन्द कारज' के लिए 'चार लावों' (फेरों) की रचना की और सरल विवाह की गुरमत मर्यादा को समाज के सामने रखा। दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी की धर्म प्रचार कमेटी द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'आनंद कारज' में कमेटी के वरिष्ठ सलाहकार कुलमोहन सिंह लिखते हैं कि,-सिख धर्म में विवाह की 'आनंद कारज' रस्म सिखों के तीसरे गुरु, गुरु अमरदास जी (1552) के समय से अब तक लावों के रूप में चलती आ रही है। सिख कौम इसका पूरी मर्यादा के साथ पालन कर रही है।

'लावां' चार शब्दों से जुड़कर बना है, जिसकी रचना गुरु अमरदास जी के दामाद और उत्तराधिकारी गुरु रामदास साहिब जी ने की।

वह लिखते हैं कि आनंद कारज केवल तभी माना जाएगा, जब यह गुरु ग्रंथ साहिब जी की उपस्थिति में होगा। आनंद कारज न तो कोई ठेका है और न ही किसी तरह का कोई समझौता। यह केवल एक धार्मिक रस्म है, जिसे गुरु साहिबानों ने पवित्र बताया है। सिख धर्म के अनुसार आनंद कारज दो आत्माओं का मिलाप है। यह मिलाप धरती पर नहीं बल्कि वाहेगुरु की ओर से स्वर्ग में बनाया जाता है। सिख धर्म में केवल आनंद कारज की मर्यादा के अनुसार हुए विवाह को ही प्रमाणित किया जाता है। गुरुद्वारे में फेरे शुरू होने से पहले गुरु ग्रंथ साहिब के पवित्र शबद का पाठ किया जाता है,-

राग सुही महला पहला
एक ओंकार सतगुर प्रसाद।
हम घर साजन आए। साचे मेल मिलाए।
सहज मिलाए हर मन भाए पंच मिले सुख पाइआ।
साई वसत परापत होई जिस सेती मन लाइआ।
अनदिन मेल भइआ मन मानिआ घर मंदर सोहाए।
पंच सबद धुन अनहद वाजे हम घरि साजन आए।

अर्थात् वाहेगुरु सिर्फ एक है और वही माफ करने वाले हैं। मित्र मेरे घर आए हैं। सच्चे गुरु की कृपा ने मुझे उनकी संगत में मिला दिया है। आज मैंने वही वस्तु हासिल कर ली है, जिसके साथ मैंने मन जोड़ा था। इनके मेरे घर आने से पाँचों संगीत साजों का स्वयं ही सुरीला राग गूंजने लगता है।

'लोक पाँचवी पातशाही के अनुसार, मैंने आज से किसी भी व्यक्ति की बुराई करना छोड़ दिया है। दूसरों की मदद करने का प्रण लिया है। मेरे स्वामी, मैंने सभी संबंधियों को झूठा ही देखा है इसलिए आपके साथ जुड़ रही हूँ। इन शबद के बाद फेरे शुरू होते हैं।

पहला फेरा-

सूही चौथी पातशाही

हरि पहिलड़ी लाव परविरती करम द्रिड़ाइआ बलि राम जीउ।
बाणी ब्रहमा वेद धरम द्रिड़ह पाप तजाइया बलि राम जीउ।
धरम द्रिड़ह हरि नाम धिआवहु सम्रिति नाम द्रिड़ाइआ।
सतगुरु गुरु पूरा अराधह सभि किलविख पाप गवाइया।
सहज आनंद होआ वडभागी मन हर हर मीठा लाइआ।

जन कहै नानक लाव पहली आरंभ काज रचाइआ।

पहली लावाँ के अनुसार, स्वामी ने गृहस्थ के जीवन के फर्जों को जाना और उन्हें अपनाया है। इसके अनुसार, अपने दुख-दर्द मिटाने के लिए गुरु की बाणी का उच्चारण करो और अपने जीवन को सुखद बनाओ। सच्चाई को अपनाओ,-यह कहा है।

नानक कहते हैं कि पहले फेरे द्वारा 'आनंद कारज' शुरू हो जाता है।

दूसरा फेरा-

हर दूजड़ी लाव सतगुरु पुरख मिलाइआ बलि राम जीउ।
निरभउ भै मन होइ हउमै मैलु गवाइआ बलि राम जीउ।
निरमल भउ पाइआ हर गुण गाइआ हर वेखै राम हदूरे।
हर आतम राम पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे।
अंतर बाहर हर प्रभु एको मिल हर जन मंगल गाए।
जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद सबद वजाए।

दूसरे फेरे के अनुसार, मुझे सच्चे गुरु के साथ मिला दिया है। वाहेगुरु का नाम जपने और उनका यश गायन करने से वाहेगुरु मुझे हर जगह विद्यमान दिखते हैं। वाहेगुरु हर जगह विद्यमान है अत: परमात्मा की घट-घट में व्याप्ति को स्वीकार किया है।

नानक कहते हैं कि दूसरा फेरा खत्म हो गया है और ईश्वरीय कीर्तन गुंजता है।

तीसरा फेरा-

हर तीजड़ी लाव मन चाउ भइआ बैरागिआ बलि राम जीउ।
संत जना हर मेल हर पाइआ वडभागीआ बलि राम जीउ।
निरमल हर पाइआ हर गुण गाइआ मुख बोली हर बाणी।
संत जना वडभागी पाइआ हर कथीए अकथ कहाणी।
हिरदै हर हर हर धुन उपजी हर जपीए मसतक भागु जीउ।
जन नानक बोले तीजी लावे हर उपजे मन बैराग जीउ।

तीसरे फेरे में नानक कहते हैं कि इस फेरे से वाहेगुरु का प्रेम मेरे मन में उप्तन्न हो गया है। मन के अंदर स्वामी के प्यार की खुशी का जन्म हो गया है। यह परमात्मा के एहसास की स्वीकृति है।

नेक व्यक्तियों से मिलकर परम भाग्य द्वारा मैंने स्वामी और वाहेगुरु को प्राप्त कर लिया है। मैं गुरु ग्रंथ साहिब और लावाँ को ध्यान में रखते हुए इस पवित्र रिश्ते के साथ जुड़ रहा/रही हूँ।

चौथा फेरा-

हर चउथड़ी लाव मन सहज भइआ हर पाइआ बलि राम जीउ।
गुरमुख मिलिआ सुभाइ हर मन तन मीठा लाइआ बलि राम जीउ।
हर मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिन हर लिव लाई.
मन चिंदआ फल पाइआ सुआमी हर नाम वजी वाधाई.
हर प्रभ ठाकुर काज रचाइआ धन हिरदै नाम विगासी।
जन नानक बोले चउथी लावै हर पाइआ प्रभ अवनासी।

चौथे फेरे के अनुसार, गुरु रहमत के कारण बेहद आसानी से मैंने अपने स्वामी को प्राप्त कर लिया है, जो मेरी जिंदगी और देह को मीठा लगता है। मैं अपने स्वामी पर कुर्बान जाता हूँ। यह परमात्मा से मिलन की स्वीकृति है।

वाहेगुरु ने आनंद कारज पूर्ण कर दिया है। यहाँ से मैं मेरी नई जिंदगी की शुरुआत करता हूँ और वाहेगुरु की कृपा से उम्र भर इस पवित्र रिश्ते को निभाने का वादा करता हूँ।

फेरों के बाद अंतिम रस्म-

जब गुरु ग्रंथ साहिब को अंग-संग मानते हुए जोड़े के चार फेरे हो जाते हैं, तो इसके बाद श्री राग चऊथी पातशाही की आखिरी रस्म होती है, जिसका अर्थ होता है कि वाहेगुरु केवल एक है।

आज मेरा विवाह हो गया है। वह गुरु ग्रंथ साहिब जी के सामने प्रतिज्ञा लेते हुए उम्र भर एक साथ रहने, दूसरों की मदद करने और सदैव गुरु के चरणों से लगे रहने का वादा करते हैं।

इस आखिरी रस्म को पूर्ण करने के बाद जोड़ा शादी के बंधन में बंध जाता है और इसी के साथ 'आनंद कारज' संपूर्ण हो जाता है।

इस प्रकार उन्होंने सिक्ख पंथ के लिए एक विलक्षण वैवाहिक पद्धति दी जिसने समाज को रूढ़िवादी परंपराओं से दूर किया, साथ ही बाबा श्रीचंद जी के उदासी संतों व अन्य मतावलम्बियों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित किये।

रागों के ज्ञाता-उन्होंने 30 रागों में 638 शबद् (भजन) लिखे जिनमें 246 पौउड़ी, 138 श्लोक, 31 अष्टपदी और 8 वारां हैं और इन सब को गुरु ग्रन्थ साहिब जी में अंकित किया गया है। उनके गीतों में से लावन एक ऐसा गीत है जिसे सिख विवाह समारोह के दौरान गाया जाता है।

गुरु रामदास साहिब जी ने अपने गुरुओं द्वारा प्रदत्त लंगर प्रथा को आगे बढ़ाया। अन्धविश्वास, वर्ण व्यवस्था आदि कुरीतियों का पुरजोर विरोध किया। गुरु रामदास जी ने धार्मिक यात्रा के प्रचलन को बढ़ावा दिया। मधुर स्वभाव के व्यक्ति होने के कारण सम्राट अकबर भी उनका सम्मान करता था।

उन्होंने अपने सबसे छोटे पुत्र अरजन साहिब (अर्जुन) को पंचम् नानक' के रूप में स्थापित किया। इसके पश्चात् वे अमृतसर छोड़कर गोइन्दवाल चले गये। भादौं सुदी 3 (2 आसू) सम्वत 1638 (1 सितम्बर 1581) को उनकी आत्मा ज्योति जोत में समा गई।

सार रूप में रामदास जी ने जीवन में आस्था को माला के पुष्पों के मध्य विद्यमान धागे के समान समाहित कर दिया जिससे जीवन भोग का नहीं मानवता का प्रतीक बन सके, व्यक्ति में प्राणी मात्र के प्रति करुणा हो। अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि गुरु रामदास एक महान गुरु थे, परमात्मा के सच्चे भक्त थे और इन सब से पूर्व एक सच्चे इंसान थे, जिनके जन्मदिवस पर प्रकाश पर्व या गुरुपर्व मनाया जाता है।

सन्दर्भ-

1. आदिग्रन्थ-अर्जुनदेव 617

• • •

दिल्ली फतेह

-कुलमोहन सिंह

सरदार बघेल सिंह 1725-1802 उन महान योद्धाओं में से थे, जिन्होंने पंजाब व उससे बाहर शासन की नींव रखी। किंतु 1783 में दिल्ली में विजय हासिल की एवं तत्पश्चात राजधानी में 7 ऐतिहासिक गुरुद्वारों की स्थापना की; जो कि सदा के लिए दिल्ली में सिखों की विरासत बन गई।

करोरा सिंह के आकस्मिक निधन के बाद, सरदार बघेल सिंह, करोरा मिसल के 1765 में उत्तराधिकारी बने। 1765, 1767 के मध्य सिखों ने 15 बार दिल्ली में प्रवेश किया एवं सरदार बघेल सिंह ने अधिकतर हमलों को अंजाम दिया था।

बाबा बघेल सिंह ने जत्थेदार जस्सा सिंह आहलूवालिया, जत्थेदार जस्सा सिंह रामगढ़िया, जत्थेदार तारा सिंह घेबा एवं जत्थेदार महासिंह शुक्रिया के साथ मिलकर 8 मार्च, 1783 को जमुना नदी पार करते हुए 40000 योद्धाओं के साथ सरदार बघेल सिंह ने दिल्ली में बुराड़ी घाट से प्रवेश किया। उन्होंने अपनी सेना को 3 भागों में विभाजित किया-5000 सैनिकों को मजनू का टीला पर छोड़ दिया, 5000 सैनिकों की टुकड़ी को अजमेरी गेट भेजा गया एवं 30,000 जिसमें अधिकतर घुड़सवार थे, को सब्जी मंडी व कश्मीरी गेट के बीच भेजा गया जो आज तीस हजारी के नाम से जाना जाता है। इस स्थान को आज तीस हजारी इसलिए कहा जाता है, क्योंकि लाल किला पर आक्रमण से पूर्व 30,000 सैनिक यहाँ रुके थे। यह विशाल सिख सेना मलका गंज, मुगलपुरा एवं सब्जी मंडी के क्षेत्रों में फैली हुई थी।

शासक शाहआलम द्वारा 8 मार्च 1783 को मिर्जा शिकोह के नेतृत्व में भेजे गए मुगलों ने सिखों के आक्रमण को रोकने का प्रयास किया, किंतु मेहताबपुर के किले में सिखों द्वारा पराजित हुए और पुनः लाल किला में भाग गए। 9 मार्च को फजल अली खान का प्रयास भी उन्हें रोकने में सफल नहीं हो सका। सिख सेना ने लाल किला की तरफ रुख किया, दूसरी टुकड़ी ने अजमेरी गेट से शहर पर आक्रमण किया एवं हौज खास क्षेत्र पर अधिकार जमाया। आगे बढ़ते हुए सिखों द्वारा पराजय को अवश्यंभावी मानकर मुगल सेना लड़ाई का सामना करने के स्थान पर लाल किला की विभिन्न इमारतों में छिप गई। 11 मार्च, 1783 को सरदार बघेल सिंह ने अपनी विजयी सेना के साथ लाल किले में प्रवेश करते हुए, लाहौरी गेट, मीना बाजार एवं नक्कारखाना होते हुए अंततः दीवान-ए-आम पहुँचे, जहाँ मुगल शासक अपनी अदालतें लगाते थे।

11 मार्च, 1783 को जब सेना ने दिल्ली के लाल किला में प्रवेश किया और दीवान-ए-आम पर कब्जा किया, तब मुगल शासक शाह आलम द्वितीय ने उनके साथ एक संधि की; जिसके अंतर्गत बघेल सिंह को दिल्ली में ऐतिहासिक स्थानों पर गुरुद्वारे स्थापित करने की आज्ञा दी गई एवं चुंगी कर के रूप में छःआना, मुगल राज्य से लेने की संधि हुई।

दीवान-ए-आम पर अधिकार हासिल करने के बाद, लाल किला के प्रवेश द्वार पर खालसा झंडा फहराया गया। दीवान-ए-आम में सिख जरनैलों की अपनी पहली बैठक में विजयी सेना में से 5 सेनापतियों को चुना जिन्हें 'पंज प्यारा' के नाम से जाना गया। 67 वर्ष पूर्व जहाँ बंदा सिंह बहादुर एवं उनके 740 सिपाही शहीद हुए थे, आज वही स्थान सिख-सेना द्वारा अधिग्रहित कर खालसाई निशान लालकिला पर झुलाया गया। अधिकार के पश्चात, मुगल शासक शाह आलम ने अपने अधिवक्ता रामदयाल एवं बेगम समरू के साथ सरदारों के साथ समझौते का निवेदन किया। बेगम समरू एक अत्यंत होशियार दूरदर्शी एवं सक्षम राजनीतिज्ञ थी, एवं मुगलों में उसका अच्छा प्रभाव था। बड़े ही मान एवं सम्मान के साथ बेगम समरू ने सरदार बघेल सिंह को अपना भाई माना एवं दो चीजों के लिए निवेदन किए-शाह आलम को जीवनदान एवं लाल किला सामान्य नियंत्रण में।

उपर्युक्त दो रियायतों के स्थान पर सरदार बघेल सिंह सिख गुरु की याद में दिल्ली में गुरुद्वारों की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने 4 शर्तें रखी थी- मुगल उन स्थानों को वापस कर दें जो कि सिख गुरु के दर्शन से पवित्र हुए थे, जहाँ गुरु तेगबहादुर जी शहीद हुए थे, वह स्थान जहाँ गुरु नानक देव जी, गुरु हरगोबिंद साहिब गुरु हरकिशन जी एवं गुरु गोबिंद सिंह जी गए थे एवं वे स्थान भी जहाँ माता सुंदरी एवं माता साहिब कौर लंबे समय तक रूकी थी।

सरदार बघेल सिंह ने मांग की कि शाह आलम एक अधिसूचना जारी करें जिसमें सिख सेना को गुरुद्वारे बनाने की आज्ञा दी जाए, इस संबंध में जिन स्थानों पर गुरुद्वारों की स्थापना करनी थी वे सात स्थान थे।

उनकी तीसरी शर्त थी कि दिल्ली कोतवाली को सिख सेना के सपुर्द दिया जाए और शाह आलम प्रत्येक रुपए में से छः आना राजस्व के रूप में दे, एवं उस कोष का ऐतिहासिक गुरुद्वारों को बनाने एवं शिवसेना के वेतन के भुगतान के रूप में उपयोग किया जाए।

सरदार बघेल सिंह की चौथी शर्त थी कि जब तक ऐतिहासिक गुरुद्वारों की स्थापना का कार्य पूरा ना हो जाए सिख सेना की 4000 सैनिकों की टुकड़ी दिल्ली में तैनात रहेगी, और इसका खर्चा शाही

खजाने से किया जाएगा।

उपर्युक्त सभी से निवेदन विदित होता है कि सिख जरनैलों की गुरुओं एवं अपने धर्म के प्रति अपार श्रद्धा थी। उन्होंने विजित दिल्ली पर शासन करने की अपेक्षा ऐतिहासिक गुरुद्वारों को बनाने व स्थापना करने की प्राथमिकता पर जोर दिया।

पंजाब ऑफिस आने से पहले सरदार बघेल सिंह अंतिम बार नवंबर 1783 में शाह आलम द्वितीय से मिले थे। जब सरदार बघेल सिंह लाल किला छोड़ रहे थे तब शाह आलम ने उपहारों से लदा हुआ हाथी, 5 घोड़े, हीरे जवाहरात से जड़ा हार एवं अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ देकर सम्मानित किया। सरदार बघेल सिंह पत्थर की वह सिल भी अपने साथ ले गए, जिस पर बैठकर औरंगजेब हुक्म सुनाया करता था। वह सिल आज भी हरिमंदिर साहब की परिक्रमा में है।

सरदार बघेल सिंह जनवरी 1785 में सरदार गुरदित्त सिंह एवं सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया के साथ एक बार फिर दिल्ली आए। मराठा सरदार अंबाजी शाह आलम की मदद के लिए आगे आए किंतु सरदार बघेल सिंह ने उनकी सेनाओं को पराजित कर दिया। इसके बाद समझौते के अनुसार शाह आलम ने प्रतिवर्ष सरदार बघेल सिंह को 10 लाख रूपये देने स्वीकार किए।

• • •

गुरु गोबिन्द सिंह का साहित्य-कर्म एवं उसकी सामाजिक उपादेयता

डॉ. नीतू गुप्ता

रीतिकालीन साहित्य शृंगार एवं कला का पर्याय माना जाता है। इस काल में लगभग सभी कवि अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने एवं निज पांडित्य-प्रदर्शन की लालसा हेतु काव्यांगों पर विस्तृत विवेचन करते रहे। जिसके चलते शृंगार इन्हें ऐसा मुख्य विषय लगने लगा जिसके अन्तर्गत दोनों प्रयोजन सिद्ध होते प्रतीत हुए। परिणाम स्वरूप शृंगार के वर्णनों की ऐसी बाढ़ आई जिसमें सभी कवि सहज एवं प्रसन्न चित्त से डूबते- उतरते रहे।

राजनीति दृष्टि से रीतिकाल वह समय था जब केन्द्र में मुगल शासन स्थापित था तथा छोटे-छोटे राज्यों पर सामंतों एवं नवाबों का बोल-बाला था। सम्पूर्ण देश की जनता बुरे संकट के दौर से गुजर रही थी, हिन्दुओं के मन्दिर नष्ट किए जा रहे थे, उन्हें धर्म-परिवर्तन के लिए भी विवश किया जाता था, इतना ही नहीं प्रतिदिन उन पर नए-नए कर लगाकर उनसे धन की भी वसूली की जाती थी। ऐसे समय में भोग-विलासी सामंतों की कामुकता में वृद्धि के दृष्टिकोण से सभी दरबारी कवि नायिकाओं के अलग-अलग रूप, वृत्ति और प्रकार को पूरे मनोयोग से गिनाने में लगे हुए थे। केशवदास ने तो शृंगार को केवल रसों का नायक मात्र माना था।

"नवहु रस को भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
सबको केसवदास हरि, नायक है सिंगार"

किन्तु देव कवि ने तो मूल रस शृंगार ही माना है बाकि वीर और शान्त जैसे मुख्य रसों को भी शृंगार में ही विलीन करके रीतिकालीन साहित्य में अपनी मौलिकता में विशिष्ट उद्‌भावना की है।

"भूलि कहत नव रस सुकवि, सकल मूल शृंगार।"

इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्पष्ट मानना है, कि-"शृंगार के वर्णनों को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रूचि नहीं, आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रूचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।"

अधिकांश रीतिकालीन कवि अपनी आजीविका की प्राप्ति हेतु एवं कवि-कर्म की सिद्धि हेतु एक राजा से दूसरे राजा के आश्रय में घूमते रहते थे और जहाँ कहीं उनके उद्देश्य की पूर्ति होती थी वहीं रहकर उसकी रूचि के अनुसार ये अपनी काव्य-रचना का विषय सुनिश्चित करते थे।

रीतिकाल के सभी महत्त्वपूर्ण कवि चिंतामणि, बिहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र और देव आदि सभी औरंगजेब के समकालीन थे किन्तु यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि राजदरबारों से इतने गहरे ढंग से जुड़े रहने के बावजूद किसी भी कवि ने तत्कालीन युग की राजनीतिक स्थिति का वर्णन अपने काव्य में नहीं किया। इस संबंध में डॉ. महीप सिंह जी का मत स्पष्ट है कि "सन् 1680 ई। में औरंगजेब ने जयपुर के हिन्दू मंदिर तुड़वा दिए परन्तु जयपुर के महाराजा रामसिंह के दरबारी कवि कुलपति मिश्र ने अपनी किसी रचना में उसके विरुद्ध रोष प्रकट नहीं किया।" इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन दरबारी काव्य में राजनीतिक विषमताओं एवं सामाजिक अन्तर्विरोधों के प्रति स्वीकारोक्ति का भाव था।

तत्कालीन युग की राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को पृष्ठभूमि में रखने के पश्चात् ही गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य कर्म एवं अवदान का सही मूल्यांकन किया जा सकता है। सिक्ख गुरुओं की यदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन किया जाए तो यह ज्ञात होगा कि सभी सिक्ख गुरुओं ने समाज के प्रति अपने दायित्व का पूर्णतया निर्वाह किया है वहीं सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोबिन्द सिंह एक कुशल योद्धा, राष्ट्र-प्रेमी एवं त्यागी संत के रूप में विख्यात हैं किन्तु एक महान योद्धा एवं राष्ट्र-भक्त अनेक भाषाओं का विद्वान एवं ब्रजभाषा का एक महान कवि भी हो सकता है, इस तथ्य की जानकारी केवल उनके द्वारा विभिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य से ही प्राप्त की जा सकती है।

गुरु गोबिन्द सिंह जी का ब्रजभाषा, पंजाबी और फारसी भाषाओं पर समान अधिकार था। उन्होंने वार श्री भगौती जी दी पंजाबी भाषा में लिखा। औरंगजेब को लिखे पद्यबद्ध पत्र जफरनामा की भाषा फारसी है। इसके अतिरिक्त उनके बहुचर्चित ग्रंथ चंडी चरित्र उक्ति विलास, चंडी चरित्र (द्वितीय), बचित्र नाटक (आत्मकथा) जापु, अकाल स्तुति आदि की भाषा ब्रजभाषा है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि अनेक भाषाओं में रचना करने का एक मुख्य कारण यह भी रहा कि सभी भाषा-भाषी समुदाय के लोगों को अपने साथ जोड़ा जा सके। गुरु गोबिन्द सिंह का पदार्पण ऐसे समाज में हुआ जब उत्तर भारत-विशेषतया पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की साधारण जनता मुगल साम्राज्य की अनीतियों के कारण पूर्णतया असहाय एवं असुरक्षित होकर रह गई थी। उसके भीतर अपने प्रतीक चिन्हों की रक्षा करना तो दूर अपनी जमीनों की रक्षा एवं घर की सुरक्षा करना भी दूभर हो चला था। मुगल शासन के समक्ष कहने को तो अनेक राजा, नवाब और सामंत शक्तिशाली हो चले थे बावजूद इसके उनकी वीर गाथाएँ केवल साहित्य एवं शयन कक्ष तक ही सीमित होकर रह गई थी। सभी राजदरबारों में साहित्य कला अपने चरम पर थी किन्तु उसका कौशल शृंगार एवं दरबारदारी को ही विकसित कर रहा था, साधारण जनता के लिए ये कला पूर्णतया अनावश्यक एवं अनुपयोगी थी। ऐसे वातावरण में यदि कोई आवश्यकता थी तो ऐसे साहित्य की

जिसमें भक्ति की महत्ता आचरण की शुद्धता, कर्म की पराकाष्ठा एवं वीरत्व का समायोजन हो। साथ ही साथ आत्मगौरव, आत्मविश्वास तथा सांस्कृतिक-राष्ट्रीय चेतना का आह्वान हो। यह महत्त्वपूर्ण कार्य गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य द्वारा ही संभव हो पाया। उन्होंने सामान्य जन भाषा में प्राचीन साहित्य को आधार बनाकर एक ऐसे साहित्य की रचना की जिसमें साधारण जनता स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस कर सके।

राम और कृष्ण की गाथाएँ तो लंबे समय से साहित्य का विषय बनकर जनमानस पर अपनी पैठ बना चुकी थी। किन्तु शिव और शक्ति को साहित्य के नायक के रूप में अथवा लोक रक्षक के रूप में उतना स्थान नहीं मिल पाया था जितनी लोकप्रियता विष्णु के अवतारों को प्राप्त हुई थी। हिंदी साहित्य में एक स्थान पर तुलसीदास राम को शिव का भक्त बनाकर अथवा शिव को राम के प्रिय के रूप में प्रस्तुत कर चुके हैं-

"सिव द्रोही मम दास कहावा
सो नर मोहि सपनेहुँ नहिं भावा।"

तुलसीदास के पश्चात् ब्रजभाषा में इस कार्य को बढ़ावा दिया गुरु गोबिन्द सिंह ने। उन्होंने अन्यायी शासन के विरुद्ध जन-साधारण के मनोबल को ऊँचा उठाने हेतु शक्ति का आह्वान किया। इस संबंध में डॉ. ओमप्रकाश का यह कथन उपयुक्त है कि "संस्कृत भाषा सर्वजन-सुलभ नहीं रह गई थी, इसलिए दशमेश ने उस सप्तशती का राष्ट्रभाषा-करण कर दिया और क्योंकि यह काव्य पारायण के निमित्त भी होता है, इसलिए इसकी पद्य संख्या मूल (सात सौ) की तिहाई अर्थात् दो सौ तैंतीस कर दी।"

गुरु गोबिन्द सिंह के सम्मुख यह भाव स्पष्ट था कि यदि लक्ष्य को बड़ा रखना है तो प्रयास भी उतने ही ऊँचे स्तर पर जाकर करना होगा। इसलिए उन्होंने साहित्य को माध्यम बनाया, जिससे साधारण जन समूह को अपने साथ जोड़ा जा सके। एक तरफ वे जितनी तीव्र गति से सैन्य का संगठन कर रहे थे उतनी ही तीव्रता से साहित्य का निर्माण कार्य भी चल रहा था। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे साहित्य की समाज सापेक्षता से अनभिज्ञ नहीं थे। उनकी रचना चंडी चरित्र उक्ति विलास इसी बात का स्पष्ट प्रमाण है जिसमें कवि ने जहाँ एक ओर चण्डी देवी के चरित्र का गान किया है, वहाँ उसने विलक्षण उक्तियों का प्रयोग कर आनन्द-लाभ भी किया है। इस संबंध में एक स्थान पर गुरु जी स्वयं उल्लेख करते हैं-

"एक ते एक रसाल भयो नख तें सिख लौं उपमा सुभली है।"

इसका अभिप्राय है कि रचना में आरम्भ से लेकर अन्त तक अनेक मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। तथा सभी उपमाएँ एक से बढ़कर एक मधुर और आकर्षक हैं जो सहज ही पाठक को आनंद और प्रेरणा दोनों ही प्रदान करेंगी।

गुरु गोबिन्द के काव्य की सार्थकता इसी तथ्य में विहित है कि एक ओर ये भक्तिकाव्य है, तथा दूसरी तरफ इसमें वीरता एवं ओज का भाव कूट-कूटकर भरा है। वस्तुत: काव्य में प्रतिपादित भक्ति कर्तव्य-पालन का सोपान है। इसीलिए कवि ने युद्ध-क्षेत्र में रक्त रंजित होने की तुलना सरस्वती नदी में स्थान करने से की है, साथ ही साथ इसका प्रयोजन पूर्वजन्मों के अथवा पूर्वजों के किए कर्मों से मुक्ति बताते हुए कहते हैं कि- "सु मनो भट सारसुती-तट न्हात हैं पूरब पाप उतारन कौं।"

अनेक कविताओं में पूर्वजों का एवं अतीत का गौरवशाली वर्णन किया गया मिलता हैं किन्तु यहाँ पूर्वजन्म एवं पूर्वज दोनों के लिए हुए कर्मों का उल्लेख किया गया है। साथ ही युद्ध की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए उसे सरस्वती नदी में स्नान करने के समान बताया गया है। गुरु जी का मानना है कि गंगा और यमुना में स्नान करने से केवल वर्तमान जीवन के पाप ही धुल पाएँगे लेकिन युद्ध में अपना रक्त बहाने से पूर्वजन्मों के और यदि पूर्वजों ने देश को गुलाम बनाने में जो भी भागीदारी की हो अर्थात् कहीं बाहरी शक्तियों से समझौते का रास्ता अपनाया हो तो उनके वंशज होने के नाते उनके पापों का प्रायश्चित भी हमें ही करना है।

तत्कालीन समाज में जनता स्वयं को पूर्णतया विवश एवं असहाय मानकर बेचारगी का जीवन जीने को विवश थी। ऐसे समय में जनता के भीतर यह विश्वास जगाना बहुत ही कठिन कार्य था कि अत्यंत ताकतवर शत्रु का विनाश भी संभव है यदि सभी जन, समूह में आकर एकजुट हो जाएँ। इसी आधार पर गुरु जी ने जन-साधारण में प्रचलित भागवत की कथा को लोक-भाषा में रूपांतरित करते हुए उसको धर्मयुद्ध बतलाया-

"दसम कथा भागौत की, भाषा करी बनाइ।
अउर वासना कछु नहीं, धरम जुद्ध के चाइ।"

समाज में हो रहे अत्याचार एवं अनीति के विरोध में जनता को एकजुट करने का सबसे सटीक उपाय यही है कि जनक्रांति को धर्मयुद्ध में परिवर्तित कर दिया जाए। यह सर्वविदित है कि जब भी कभी देवताओं पर अत्याचार हुआ और आसुरी शक्तियाँ बलशाली होकर अत्यधिक उत्पात मचाने लगी तभी ब्रह्मा जी को साथ लेकर सभी यक्ष, गंधर्व और देवतादि, देवी की शरण में जाकर अपनी रक्षा की याचना करते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि अन्याय पूर्ण आचरण का अन्त शक्ति द्वारा ही हो सकता है। चंडी चरित्र में अनीतिकारी असुरों के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने और उन पर विजय पाने में जनता के सम्मुख यही उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। काव्य का मुख्य उद्देश्य युद्ध को सर्वाधिक महत्त्व देना रहा है, किन्तु यह युद्ध केवल देवताओं एवं दैत्यों के बीच लड़ा जाने वाला मायावी युद्ध नहीं है बल्कि इसमें तत्कालीन लोक-जीवन से गृहीत उपमानों को मुख्य तौर पर सम्मिलित किया गया है। इसके अन्तर्गत एक स्थान पर वर्णन किया गया मिलता है कि दैत्यों ने देवताओं के खेतों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया है और भोले-भाले निरीह देवता इधर से उधर मारे-मारे फिर रहे हैं-

"खेत जीति दैतन लियौ, गये देवते भागि।
इहै विचारैं मन विषै, लेहि सिवा तें राजि।।"

यहाँ सीधे तौर पर खेत का उदाहरण प्रस्तुत करके बेसहारा किसानों की अवस्था और समकालीन शासकों की क्रूरता का वर्णन किया गया है, जिससे जबरन अधिकार छीनने की प्रवृत्ति को उजागर करना ही कवि का मुख्य लक्ष्य प्रतीत होता है। जिस प्रकार देवगण अपना अधिकार छिन जाने पर शक्ति की शरण में गए उसी प्रकार उस युग के किसानों और मजदूरों को भी अपने अधिकार से वंचित

कर दिए जाने पर जनक्रांति अथवा धर्मयुद्ध का आश्रय लेना होगा।

इसी प्रकार साधारण जनता के भीतर ओज का संचार करने के लिए कवि ने देवी की तुलना कहीं धोबी से तो कहीं दर्जी से की है जिससे साधारण जनता इस दैवीय संग्राम को केवल अत्यधिक कष्टदायक न समझकर सामान्य जीवन में बहुत ही सरल एवं जमीनी स्तर पर लड़ा जाने वाला युद्ध समझे। क्योंकि यह बहुत ही असाधारण सी बात है कि देवी कभी भी दैत्य को धोबी के समान पटक-पटकर ऐसे नहीं पछाड़ेंगी किन्तु यह कवि की विशेषता है कि यदि धोबी या तेली जब भी इस काव्य को पढ़ें तो उन्हें अपने भीतर की शक्ति का अहसास हो एवं वे जब भी युद्ध में प्रवृत्त हों तभी उन्हें यह कार्य बहुत ही सरल प्रतीत हो। सामान्य जनता के भीतर जोश का संचार करने का यह प्रयास सचमुच गुरु गोबिन्द सिंह जी की मौलिक उद्‌भावना मानी जा सकती है।

भक्त और साहित्यकार दोनों कल्पनाजीवी होते हैं। एक अपने मानस में कल्पना द्वारा ईश्वर की मूर्ति को साकार करता है तो दूसरा कलम द्वारा उस कल्पना को काव्य के रूप में प्रस्तुत करता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यदि ये दोनों एक ही बिन्दु पर आकर मिल जाए तो उस साहित्य में ईश्वरीयता के नए आयाम देखने को मिलते हैं। गुरु गोबिन्द सिंह इस दृष्टि से एक भक्त भी हैं और साहित्यकार भी साथ ही तत्कालीन समाज में व्याप्त मानसिकता से वे भली-भाँति परिचित थे जहाँ स्त्री को केवल मनोरंजन या उपभोग की वस्तु समझा जाता था। ऐसे समय में गुरु जी ने ईश्वर की संकल्पना स्त्री रूप में की है। हालाँकि वे जानते थे कि राम और कृष्ण की छवि जन-मानस में लोक रक्षक और लोकरंजक के रूप में पहले ही स्थापित हो चुकी थी, बावजूद इसके उन्होंने दुर्गा सप्तशती को आधार बनाकर चण्डी चरित्र उक्ति विलास, चण्डी चरित्र (द्वितीय), वार श्री भगौती जी दी आदि ऐसे ग्रन्थों की रचना की जिनमें नारी, शक्ति का रूप धारण करके महाबलशाली दैत्यों का संहार करती हैं। आगे कवि यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि इतना भयंकर युद्ध देवी किसी शासन की स्थापना अथवा राज्य विस्तार के लिए नहीं करती बल्कि असहाय और निरीह देवताओं के साथ हो रहे अत्याचार को मिटाने के लिए करती हैं, उसके पश्चात् वह सभी दूसरे देशों के राजाओं को इंद्र के अधीन बनाकर देवी भवानी, बागम्बर धारी शिव के पास वापस लौट जाती हैं। क्योंकि उनका उद्देश्य केवल साधु- संतों एवं दीन-दुखियों का हित साधन था न कि समस्त सृष्टि पर शासन करना-

देस देस के नरेस डारे हैं सुरक्ष पाँव,
कीनौ अभिषेक सुर मंडल सिचारिकै।
इहाँ भई गुपति, प्रकट जाइ तहाँ भई,
जहाँ बैठे हर हरि अंबर कै डारिकै।"

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन जन हित के कार्यों में ही समर्पित कर दिया। उन्हें यह कतई स्वीकार नहीं था कि सिख सम्प्रदाय के अनुयायी गद्दी को लेकर आपस में कलह करें। इसी आधार पर उन्होंने गद्दी पर किसी गुरु की स्थापना न करके गुरु ग्रंथ साहिब की ही स्थापना की और ये नियम बना दिया कि सिख सम्प्रदाय को मानने वाले सभी शिष्य गुरु ग्रन्थ साहिब के समक्ष अपना शीश नवाएँगे। इस संबंध में डॉ. रामचन्द्र वर्मा जी का कथन दृष्टव्य है-"वे गुरु नानक देव की परंपरा को आगे बढ़ाकर चरमोत्कर्ष प्रदान करने वाले तो थे ही, उसमें आ गई बुराइयों को भी इन्होंने 'गुरु ग्रन्थ साहिब को ईश्वरत्व एवं गुरुत्व प्रदान करके, पनप रही महन्तशाही (मसनदशाही) और छोटी-बड़ी गद्दीशाहियों को अवैध घोषित करके संशोधित, परिष्कृत एवं (बुराइयों को) दूर किया।" गुरु जी को अनेक आलोचकों ने 'महान् सन्त-सिपाही' कहकर परिभाषित किया है। किन्तु इसके अतिरिक्त उनका विलक्षण कवि एवं साहित्यकार का रूप भी अधिक मुखर होकर हमारे सामने आता है। गुरु जी ने अपना समस्त जीवन पूर्णतया समाज को ही समर्पित कर दिया था। वे तत्कालीन समाज में फैली कुरीतियों एवं अन्यायी शासन सत्ता से विक्षुब्ध थे इसलिए वे अपने साहित्य एवं कर्म दोनों में ही युद्ध की अनिवार्यता को घाषित करते हैं और माँ पार्वती से ये वर माँगते हैं कि उनका समस्त जीवन युद्ध करते हुए एवं अन्यायी शासक का दमन करते हुए ही व्यतीत हो। चाहे कोई भी परिस्थिति आए पर वे अपने दृढ़ निश्चय से कभी भी पीछे न हटें और अपनी जीत को सुनिश्चित करें-

"बर देहि सिवा नित मोहि इहै,
सुभ कर्मन तें कबहूँ न टरौं।
न डरौं अरि सौ जब जाइ लरौं,
निसचौ करि आवनि जीत करौं।"

• • •

वर्तमान काल में सिख सम्प्रदाय की प्रासंगिकता

-डॉ. विदुषी शर्मा

विनय-

भारत वर्ष में प्रत्येक धर्म का अपना एक विशिष्ट स्थान है। सिख धर्म अपने आप में बहुत कुछ समेटे हुए है। सिख धर्म को, उसके त्याग, बलिदान, समर्पण आदि को एक निश्चित शब्द सीमा में बांध पाना एक असंभव सा कार्य प्रतीत होता है। उनका सम्पूर्ण विश्व में इतना अधिक प्रचार-प्रसार है कि उस पर एक आलेख तो क्या बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन भी किया जा सकता है। इसलिए हम अग्रिम क्षमा याचना करते हैं कि यदि उक्त विषय पर कुछ त्रुटि रह जाए, तो विज्ञ पाठक उसे हृदय से स्वीकार करेंगे; क्योंकि समग्रता किसी भी विषय के लिए अंतिम परिणति है। परंतु यह मुझ अल्पज्ञ की परिधि से बाहर है। अत:

पाठक वृंद से यह अनुरोध है कि आप सभी इस आलेख को इस प्रकार ग्रहण करेंगे जैसे

"संत हंस गन गन्हहि पय, परिहरि वारि विकार।"

सिख धर्म का परिचय

सिख शब्द संस्कृत के शब्द 'शिष्य' से लिया गया है, जिसका अर्थ है जो सीखता है।" सिख किसी भी समय और किसी भी स्थान पर प्रार्थना कर सकते हैं और जल्दी उठकर स्नान करके दिन की शुरुआत भगवान के ध्यान से करते हैं।

1469 ईस्वी में पंजाब में जन्मे नानक देव जी ने गुरमत को खोजा और गुरमत की सिक्ख्याओं (शिक्षाओं) को देश-देशांतर में खुद जा कर फैलाया था। सिख उन्हें अपना पहला गुरु मानते हैं। गुरमत का परचार(प्रचार-प्रसार) बाकि 9 गुरुओं ने किया। 10वें गुरु गोबिन्द सिंह जी ने ये प्रचार खालसा को सोंपा और 'ज्ञान-गुरु ग्रंथ साहिब' की शिक्षाओं पर अम्ल करने का उपदेश दिया। इसकी धार्मिक परंपराओं को गुरु गोबिन्द सिंह ने 30 मार्च, 1699 के दिन अंतिम रूप दिया। विभिन्न जातियों के लोगों ने सिख गुरुओं से दीक्षा ग्रहणकर खालसा पन्थ को सजाया। पाँच प्यारों ने फिर गुरु गोबिन्द सिंह को अमृत देकर खालसे में शामिल कर लिया। इस ऐतिहासिक घटना ने सिख पन्थ के तकरीबन 300 साल इतिहास को तरतीब किया। संत कबीर, धना, सधना, रामानंद, परमानंद, नामदेव इत्यादि, जिन की बाणी आदि ग्रंथ में दर्ज है, उन भक्तों को भी सिख सद्‌गुरुओं के सामान मानते हैं और उनकी सिक्ख्याओं पर अमल करने की कोशिश करते हैं। सिख एक ही ईश्वर को मानते हैं, जिसे वे एक-ओंकार कहते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर अकाल और निरंकार है।

सिक्खों का भगवान के प्रति दृष्टिकोण

एक सिख का जीवन परमात्मा को याद करते हुए, ईमानदारी से गृहस्थ जीवन जीकर अपनी जीविका अर्जित करते हुए और जरूरतमंदो की मदद करते हुए व्यतीत होता है। उनके लिए उस परमात्मा के नाम का सुमिरन अन्य किसी भी कार्य से ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है। उनका मानना है कि इससे कई आत्माओं का उत्थान हुआ है और यह अशांत मन की इच्छा को शांत करता है। यह समदृष्टि प्रदान करता है।

गुरु की महिमा

सिख मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के मानव जीवन में एक गुरु होना चाहिए और बाकी सभी से ऊपर एक परमात्मा है। सिख धर्म की बुनियादी मान्यताओं को पवित्र ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहिब में व्यक्त किया गया है। पवित्र ग्रंथ के अनुसार सामान्य दार्शनिक अवधारणाएँ जैसे कर्म, धर्म, माया और मुक्ति का पालन किया जाता है। गुरुद्वारा में सामूहिक सिख पूजा का आयोजन किया जाता है।

गुरु ग्रन्थ साहिब, राग आसावरी, महला 1 के कुछ अंश-
साहिब मेरा एको है। एको है भाई एको है।
आपे रूप करे बहु भांती नानक बपुड़ा एव कह।। (पृ. 350)
जो तिन कीआ सो सचु थीआ, अमृत नाम सतगुरु दीआ।। (पृ. 352)
गुरु पुरे ते गति मति पाई। (पृ. 353)
बूडत जगु देखिआ तउ डरि भागे।
सतिगुरु राखे से बड़ भागे, नानक गुरु की चरणों लागे।। (पृ. 414)
मैं गुरु पूछिआ अपणा साचा बिचारी राम. (पृ. 439)

उपरोक्त बाणी में, गुरु नानक जी स्वयं स्वीकार कर रहे हैं, कि साहिब (भगवान) केवल एक हैं, और मेरे गुरु जी ने नाम जाप का उपदेश दिया। उनके अनेक रूप हैं। वो ही सत्यपुरुष हैं, वो जिंदा महात्मा के रूप में भी आते हैं, वो ही एक बुनकर (धानक) के रूप में बैठे हुए है, एक साधारण व्यक्ति यानी भगत की भूमिका करने भी स्वयं आते हैं।

सिख धर्म (खालसा या सिक्खमत; पंजाबी:सिखी) 15वीं सदी में जिसकी शुरुआत गुरु नानक देव जी ने की थी। सिखों के धार्मिक ग्रन्थ श्री आदि ग्रंथ या गुरु ग्रंथ साहिब तथा दसम ग्रन्थ हैं। सिख धर्म में इनके धार्मिक स्थल को गुरुद्वारा कहते हैं। आमतौर पर सिखों के दस सतगुर माने जाते हैं, लेकिन सिखों के धार्मिक ग्रंथ में छ: गुरुओं सहित तीस भगतों की बाणी है, जिन की सामान सिक्ख्याओं(शिक्षाओं)

को सिख मार्ग पर चलने के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

सिख धर्म पूरी तरह से एकेश्वरवादी है अर्थात केवल एक ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं। गुरु नानक देव जी ने एकेश्वरवाद के विचार पर जोर देने के लिए, ओंकार शब्द के पहले "इक" का उपसर्ग दिया।

इक ओंकार सतनाम करतापुरख निरभउ,
निर्वैर अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसाद।

यहाँ केवल एक ही परम पुरुष है, शाश्वत सच, हमारा रचनहार, भय और दोष से रहित, अविनाशी, अजन्मा, स्वयंभू परमात्मा। जिसकी जानकारी कृपापात्र भगत को पूर्ण गुरु से प्राप्त होती है।

एकेश्वरवाद की उनकी सामान्य मान्यता के अनुसार; सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता, और संहारकर्ता एक ही है। वे एक ही परमात्मा के नाम का ध्यान करते हैं और निस्वार्थ सेवा में मग्न रहते हैं। गुरु नानक देव जी का अनुसरण करते हुए हर सिख पगड़ी पहनता है। सिख अपनी पगड़ी को सिख होने की पहचान के रूप में संरक्षित करता है।

तीन कर्त्तव्य जिनका पालन सिक्खों द्वारा किया जाना चाहिये-प्रार्थना, कृत्य या कार्य और दान।

1. नाम जपना:

हमेशा ईश्वर का सुमिरन करना।

2. कीरत करना:

ईमानदारी से आजीविका अर्जित करना। चूँकि ईश्वर सत्य है, एक सिख ईमानदारी से जीवन जीना चाहता है। इसका अर्थ केवल अपराध से दूर रहना नहीं है बल्कि जुए, भीख, शराब व तंबाकू उद्योग में काम करने से भी बचना है।

3. वंड छकना:

शाब्दिक रूप से इसका अर्थ है, दूसरों के साथ अपनी कमाई साझा करना अर्थात् दूसरों को दान देना और उनकी देखभाल करना।

कोरोना काल मे इस तीसरे कर्तव्य का पालन जो सिख समुदाय द्वारा पूरे विश्व भर में किया गया वह न केवल मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण रहा, अपितु वह आने वाले समय के लिए स्वर्णिम इतिहास का भी साक्षी है; जो हम सभी के लिये न केवल वंदनीय, अभिनन्दनीय है बल्कि संसार के सभी धर्मों के लिए अनुकरणीय भी है।

गुरु ग्रन्थ साहिब (आदि ग्रंथ) विचार और विशेषताएं

भारत में सिख पंथ का अपना एक पवित्र एवं अनुपम स्थान है। सिखों के प्रथम गुरु, गुरुनानक देव जी सिख धर्म के प्रवर्तक हैं। उन्होंने अपने समय के भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, जर्जर रूढ़ियों और पाखण्डों को दूर करते हुए समाज मे समानता एवं मानवता एवम मानव धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ माना। उन्होंने प्रेम, सेवा, परिश्रम, परोपकार और भाई-चारे की दृढ़ नीव पर सिख धर्म की स्थापना की। ताज़ुब नहीं कि एक उदारवादी दृष्टिकोण से गुरुनानक देव ने सभी धर्मों की अच्छाइयों को समाहित किया। उनका मुख्य उपदेश था कि ईश्वर एक है, उसी ने सबको बनाया है। हिन्दू-मुसलमान सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं और ईश्वर के लिए सभी समान हैं। उन्होंने यह भी बताया है कि ईश्वर सत्य है और मनुष्य को अच्छे कार्य करने चाहिए ताकि परमात्मा के दरबार में उसे लज्जित न होना पड़े। गुरुनानक देव जी ने अपने एक सबद में कहा है, 'कि पण्डित पोथी (शास्त्र) पढ़ते हैं, किन्तु विचार को नहीं बूझते। दूसरों को उपदेश देते हैं, इससे उनका माया का व्यापार चलता है। उनकी कथनी झूठी है, वे संसार में भटकते रहते हैं। इन्हें सबद के सार का कोई ज्ञान नहीं है। ये पण्डित तो वाद-विवाद में ही पड़े रहते हैं'।

''पण्डित वाचहि पोथिआ न बूझहि बीचार।
आन को मती दे चलहि माइआ का बामारू।
कहनी झूठी जगु भवै रहणी सबहु सबदु सु सारू।''

(आदिग्रन्थ, पृ. 55)

गुरु अर्जन देव तो यहाँ तक कहते हैं कि परमात्मा व्यापक है, जैसे सभी वनस्पतियों में आग समायी हुई है एवं दूध में घी समाया हुआ है। इसी तरह परमात्मा की ज्योति ऊँच-नीच सभी में व्याप्त है परमात्मा घट-घट में व्याप्त है-

"सगल वनस्पति महि बैसन्तरु सगल दूध महि घीआ।
ऊँच-नीच महि जोति समाणी, घटि-घटि माथउ जीआ"

(आदिग्रन्थ, पृ. 617)

सिख धर्म को मजबूत और मर्यादासम्पन्न बनाने के लिए गुरु अर्जुन-देव ने आदि ग्रन्थ का संपादन करके एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक एवं शाश्वत कार्य किया। उन्होंने आदि ग्रन्थ में छ:सिख गुरुओं के साथ 15 भक्तों, 11 भट्ट और 4 गुरुसिखों की बाणी को भी ससम्मान शामिल किया। इन पाँच गुरुओं के नाम हैं-गुरु नानक, गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जन देव और गुरु तेगबहादुर। शेख फरीद, जयदेव, त्रिलोचन, सधना, नामदेव, वेणी, रामानंद, कबीर साहेब, रविदास, पीपा, सैठा, धन्ना, भीखन, परमानन्द और सूरदास 15 संतों की बाणी को आदिग्रन्थ में संग्रहीत करके गुरुजी ने अपनी उदार मानवतावादी दृष्टि का परिचय दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने हरिबंस, बल्हा, मथुरा, गयन्द, नल्ह, भल्ल, सल्ह भिक्खा, कीरत, भाई मरदाना, सुन्दरदास, राइ बलवंड एवं सत्ता डूम, कलसहार, जालप जैसे भक्तों और गुरुसिखों की बाणी को आदिग्रन्थ में स्थान देकर उन्हें उच्च स्थान प्रदान किया। यह अद्‌भुत कार्य करते समय गुरु अर्जुन देव के सामने धर्म जाति, क्षेत्र और भाषा की किसी सीमा ने अवरोध पैदा नहीं किया।

उन्हें मालूम था इन सभी गुरुओं, संतों एवं कवियों का सांस्कृतिक, वैचारिक एवं चिन्तनपरक आधार एक ही है। उल्लेखनीय है कि गुरु अर्जुनदेव ने जब आदिग्रन्थ का सम्पादन-कार्य 1604 ई0 में पूर्ण किया था तब उसमें पहले पाँच गुरुओं की वाणियाँ थीं। अपने देहावसान के पूर्व गुरु गोबिन्द सिंह ने सभी सिक्खों के आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए अपने पिता गुरु तेगबहादुर जी की बाणी को सम्मिलित किया। गुरु ग्रन्थ साहब और उनके सांसारिक दिशा-निर्देशन के लिए समूचे खालसा पंथ को 'गुरु पद' पर आसीन कर दिया। उस समय से आदिग्रन्थ गुरु ग्रन्थ साहब के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

यह कोई श्रेय लेने-देने वाली बात नहीं है कि सिख गुरुओं का सहज, सरल, सादा और स्वाभाविक जीवन जिन मूल्यों पर आधारित

था, निश्चय ही उन मूल्यों को उन्होंने परंपरागत भारतीय चेतना से ग्रहण किया था। देश, काल और परिस्थितियों की माँग के अनुसार उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ढालकर तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन को गहरे में प्रभावित किया था। सिख गुरुओं ने अपने समय के धर्म और समाज-व्यवस्था को प्रभावित किया था। सिख गुरुओं ने अपने समय के धर्म और समाज-व्यवस्था को एक नई दिशा दी। उन्होंने भक्ति, ज्ञान, उपासना, अध्यात्म एवं दर्शन को एक संकीर्ण दायरे से निकालकर समाज को उस तबके के बीच पहुँचा दिया, जो इससे पूर्णतः वंचित थे। इससे लोगों का आत्मबोध जागा और उनमें एक नई दृष्टि एवं जागृति पनपी, वे स्वानुभूत अनुभव को मान्यता देने लगे। इस प्रकार निर्गुण निराकार परम शक्ति का प्रवाह प्रखर एवं त्वरित रूप से प्राप्त हुआ।

सिख धर्म में गुरुओं के लिए पर्याय

गुरु नानक-नम्रता

गुरु अंगद-आज्ञाकारिता

गुरु अमर दास-समानता

गुरु राम दास-सेवा

गुरु अर्जन-आत्म बलिदान

गुरु हरगोबिंद-न्याय

गुरु हर राय-दया

गुरु हरकृष्ण-पवित्रता

गुरु तेगबहादुर-शांति

गुरु गोबिंद सिंह-शाही साहस

सिख धर्म की सार्वकालिक शिक्षाएं

सिख मत की शुरुआत ही ''एक" से होती है। सिखों के धर्म ग्रंथ में ''एक" की ही व्याख्या हैं। एक को निरंकार, पारब्रह्म आदिक गुणवाचक नामों से जाना जाता हैं। निरंकार का स्वरूप श्री गुरुग्रंथ साहिब के शुरुआत में बताया है जिसको आम भाषा में 'मूल मन्त्र' कहते हैं।

1. ओंकार, सतिनामु, करतापुरखु, निरभऊ, निरवैरु, अकालमूर्त, अजूनी, सैभं गुरु प्रसादि। जपु। आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु। पर मूल मन्त्र समाप्त होता है।

तकरीबन सभी धर्म इसी "एक" की आराधना करते हैं, लेकिन "एक" की विभिन्न अवस्थाओं का जिक्र व व्याख्या श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में दी गई है वो अपने आप में निराली है।

सिख धर्म की एक अन्य विशिष्टता यह है कि सिख गुरुओं ने मनुष्य को उद्यम करते हुए जीवन जीने, कमाते हुए सुख प्राप्त करने और ध्यान करते हुए प्रभु की प्राप्ति करने की बात कही।

उनका मानना था कि परिश्रम करनेवाला व्यक्ति सभी चिन्ताओं से मुक्त रहता है। गुरु नानक ने तो यहाँ तक कहा है कि जो व्यक्ति मेहनत करके कमाता है और उसमें कुछ दान-पुण्य करता है, वही सही मार्ग को पहचानता है।

सिख धर्म के अनुसार इंसान खुद कुछ कर ही नहीं सकता। इंसान सिर्फ सोचने तक सीमित है, करता वही है जो "हुक्म" में है, चाहे वो किसी गरीब को दान दे रहा हो चाहे वो किसी को जान से मार रहा हो। यही बात श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी के शुरू में ही दृढ़ करवा दी थी :

"हुक्मे अंदर सब है बाहर हुक्म न कोए।"

जो होता है हुकम में ही होता है। हुक्म से बाहर कुछ नहीं होता।

इसी लिए गुरमत में पाप पुण्य को नहीं मन जाता। अगर इंसान कोई क्रिया करता है तो वो अंतर आत्मा के साथ आवाज मिला कर करे। यही कारण है की गुरमत कर्म कांड के विरुद्ध है। श्री गुरु नानक देव जी ने अपने समय के भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, जर्जर रूढ़ियों और पाखण्डों को दूर करते हुए जन-साधारण को धर्म के ठेकेदारों, पण्डों, पीरों आदि के चंगुल से मुक्त करने की कोशिश की।

कोरोना काल मे सिख धर्म की प्रासंगिकता

पंजाबी संस्कृति राष्ट्रीयता का मेरुदण्ड है। इसके प्राण में एकत्व है, इसके रक्त में सहानुभूति, सहयोग, करुणा और मानव-प्रेम है। पंजाबी संस्कृति आदमी से जोड़ती है और उसकी पहचान बनाती है। विश्व के किसी कोने में घूमता-फिरता पंजाबी स्वयं में से एक लघु पंजाब का प्रतिरूप है। प्रत्येक सिख की अपनी स्वतंत्र चेतना है, जो जीवन-संबंधी समस्याओं को अपने ही प्रकाश में सुलझाने के उद्देश्य से गम्भीर रूप से विचार करती आई है। सिख गुरुओं का इतिहास उठाकर देख लीजिए, उन्होंने साम्राज्यवादी अवधारणा कतई नहीं बनाई, उल्टे सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक सामंजस्य के माध्यम से मानवतावादी संसार की दृष्टि ही करते रहे।

अगर हम इतिहास की ओर रुख करें तो देखेंगे कि सिख धर्मगुरुओं ने कैसे बलिदान देकर दूसरों की रक्षा की। हथियार अगर उठाये भी तो निहत्थे और कमजोर लोगों पर नहीं, बल्कि उन जालिम लोगों पर जो इंसानियत भूल चुके थे। जब भी इस देश को, समाज को जरूरत हुई, सिख समाज के लोग आगे आए हैं। सिख गुरुओं द्वारा प्रारंभ की गई 'लंगर' (मुफ्त भोजन) ''वण्ड छकना" यानी बाँटकर खाना नामक प्रथा विश्वबन्धुत्व, मानव-प्रेम, समानता एवं उदारता की अन्यत्र न पाई जाने वाली एक 'बेमिसाल' मिसाल है।

करोना काल में जहाँ पूरा विश्व इस महामारी से त्रस्त था। हर जगह बहुत तरह की परेशानियाँ थी। वही सभी ने यथासंभव, यथाशक्ति एक दूसरे की मदद की जिससे मानव धर्म को प्रबलता मिली। परंतु सिख समुदाय ने इस काल में जो कार्य किया वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। करोना काल में भोजन आवास, दवाइयाँ इत्यादि की मदद जितनी पूरे विश्व में सिख समुदाय के द्वारा प्रदान की गई वह किसी और समुदाय के द्वारा संभव नहीं हो पाया। यह तक कि जब लोग अपने ही परिजनों के शव का अंतिम संस्कार करने से हिचकिचाते थे तो वह अत्यंत कठिन कर्तव्य भी सिखों ने ही अपनी जान जोखिम में डालकर, सहर्ष निभाया। सिख समुदाय हमेशा से ही मानव जाति की मदद करता रहा है। विश्वप्रसिद्ध अमृतसर के स्वर्ण मंदिर गुरुद्वारे में 24 घंटे लंगर की व्यवस्था अपने आप में एक अनोखी प्रथा है जो बहुत लंबे समय से लगातार चलती ही आ रही है।अमृतसर का स्वर्ण मंदिर गुरुद्वारा पूरे विश्व में सबसे बड़ा गुरुद्वारा है और यह 24 घंटे खुला रहता है।इसकी इन्हीं विशेषताओं के कारण ही यह गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है। विश्व भर में कोई भी ऐसा गुरुद्वारा नहीं होगा जहाँ पर लंगर आदि की व्यवस्था ना

हो। सिख धर्म बिना किसी भेदभाव के सभी को लंगर प्रसाद वितरित करते हैं तथा उनका सेवा भाव देखते ही बनता है। प्रत्येक गुरुद्वारे में 'जोड़ा घर' जहाँ पर आपकी जूते चप्पलों को न केवल तरतीब से रखा जाता है बल्कि उनकी पॉलिश भी की जाती है और उन्हें साफ किया जाता है। ऐसा सेवाभाव शायद ही कहीं और देखने को मिलता हो।

यहाँ पर लंगर व्यवस्था में सभी एक पंक्ति में जमीन पर बैठकर एक साथ खाना खाते हैं जहाँ किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाता। चाहे वह वह व्यक्ति किसी भी बड़ी पोस्ट पर हो या वह कोई भिखारी हो। सभी एक ही पंक्ति में बैठकर एक साथ, एक जैसा खाना खाते हैं। यह अपने आप में अनूठी पहल है जिसकी शुरुआत गुरु नानक देव जी द्वारा की गई थी और जिसका निर्वहन अभी तक सिख समुदाय द्वारा बहुत ही श्रद्धा और निष्ठा के साथ किए जा रहा है।

इसी सिख समुदाय द्वारा कोरोना काल के पहले लॉक डाउन में स्थानीय असहाय व जरूरतमंदों के साथ-साथ बाहर से आए प्रवासी मजदूरों को लगातार रात-दिन भोजन कराया गया। जिला प्रशासन को भी जहाँ भोजन उपलब्ध कराने में दिक्कत हुई वहाँ पर सिख समुदाय नहीं किसी भी व्यक्ति को भूखा नहीं रहने दिया।

दूसरी कोरोना लहर के कहर में लोगों को भोजन से भी ज्यादा जिस चीज की जरूरत थी वह थी ऑक्सीजन। ऑक्सीजन की कमी से लोगों की जान तक जाने लगी, प्रशासन के पास मांग के मुताबिक ऑक्सीजन नहीं थी। तब फिर से एकबार सिख धर्म इस संकट का सामना करने के लिए सामने आया। निजी प्रयास से लाखों रुपये की ऑक्सीजन सिलिंडर, ऑक्सीमीटर, रेगुलेटर रांची व अन्य शहरों से मंगवा कर जरूरतमंदों को उपलब्ध कराया। कुल मिलाकर इस संकट की घड़ी में जो काम सिख समुदाय द्वारा किया गया वह निश्चित ही स्तुत्य है, प्रणम्य है।

इस प्रकार करोना काल या इस वैश्विक महामारी से अभी भी पूरा विश्व पूरी तरह से आजाद नहीं हुआ है और अभी हम कोरोना की तीसरी लहर के आने को लेकर भयभीत ही हैं।लॉकडाउन और करोना काल में जिस प्रकार इतने मुश्किल समय हम स्वयं को, अपने परिवार को सुरक्षित रख पाए हैं उसमें ईश्वर की कृपा के साथ-साथ सरकारी मदद तो है ही। परंतु उससे भी अधिक जिस निष्ठा और आत्मीयता के साथ सिख धर्म ने पूरे विश्व में जो कार्य किया है वह निश्चय ही इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित किया जाएगा। मुसीबत के समय जो काम आए महत्त्वपूर्ण वही है। यह कौम ऐसी है जो हमेशा जरूरत पड़ने पर सामने खड़ी होती है।

मैं सादर प्रणाम करती हूँ उन सभी गुरुओं को जिन्होंने संसार को एक नई दिशा प्रदान की कि किसी भी मुसीबत में डटकर सामने खड़े होना है और पूरी मानवता का उपकार करना होता है।

"सवा लाख से एक लड़ाऊँ,
चिड़ियन ते मैं बाज तुड़ाऊँ,
तबै गुरु गोबिंद सिंह नाम कहाऊँ"

जरूरत के समय जो काम आए वही महत्त्वपूर्ण होता है।

कोरोना काल मे सबसे अधिक जिसके द्वारा मानव धर्म के लिए, मानवता के लिए कार्य किया गया वह है सिख धर्म।

आशा है ये समुदाय ऐसे ही अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर बना रहेगा।

इतिशुभम अस्तु।

वाहे गुरु जी का खालसा वाहे गुरु जी की फतेह।

सतनाम श्री वाहे गुरु।

संदर्भ

1. गुरुग्रंथ साहिब, आदिग्रंथ

• • •

इतिहास भी रोया था शहीद अजय सिंह की कुर्बानी पर

-डॉ.अवधेश कुमार अवध

जिसकी किलकारियों से गूँजा हो जम्मू, जिसके वैराग से पावन हुआ हो माँ गोदावरी का कूल, जिसकी बहादुरी का साक्षी हो माँ सतलज और जिसके बलिदानों के समक्ष बौना हो गयी हो गगनचुम्बी कुतुबमिनार। उस बंदा बहादुर वैरागी के एकलौते सपूत का नाम था अजय सिंह जिसकी कुर्बानी के जज्बे पर स्तब्ध हो जाता है इतिहास। ...पुनरावृत्ति लगती है गुरु गोबिन्द सिंह के जाबाज नन्हें बेटों की।

सन् 1716 के जून माह में धरती तवे के समान जल रही थी। बंदा वैरागी के सभी साथियों की 9 दिनों में प्रतिदिन 100 की दर से हत्या कर दी गई जिसका गवाह मार्च का रात-दिन समान होना था। वैसे तो दिल्ली ने बहुतेरे अमानुषों को, दुर्दातों को देखा था किंतु इस बार का मंजर सबसे भयावह था। दिल्ली क्रूर मुगलों के अत्याचार से विधवा विलाप करने को विवश थी। धधकती लाल आग में दर्जन भर चिमटे धधकाए जा रहे थे। जल्लाद की भूमिका में दर्जनों खूँखार मुगल अट्टहास कर रहे थे। शायद यम दूत भी रंचमात्र इंसान की तरह होते होंगे लेकिन ये तो बस।। उस वक्त बंदा वैरागी की वीरता को चुनौती दे रहा था उनका ही नन्हा सा पुत्र। बाप से बढ़कर बेटा। दोनों आमने-सामने। जालिम जल्लाद जलते हुए चिमटों से बंदा वैरागी के माँस नोचते। अंगद पाँव जमाए वीर अजय सिंह अटल रहता। एक जल्लाद दोनों हाथों में गर्म सलाखें लिए अजय के पास आकर फिर वही सवाल दुहराता है, 'इस्लाम कुबूल कर लो। हम दोनों को आजाद कर देंगे।' तब तक उसकी दाढ़ी अजय सिंह की थूकों से भींग गई थी। घृणा और स्वाभिमान से थूक ही तो दिया था नन्हें वीर से उस मुगलिया जल्लाद के मुख पर। गुस्से को जब्त करता हुआ वह मुगल बंदा वैरागी से पूछा,' अब तुम कैसे मरना चाहते हो?' बंदा वैरागी की रोबीली आवाज गूँजी, 'अब मैं मौत से नहीं डरता, यह शरीर ही दु:ख का कारण है। ...' बाप-बेटे की अद्वितीय वीरोचित प्रतिस्पर्धा ने कसाइयों की हैवानियत को परास्त कर दिया। लाचार दिल्ली की सल्तनत ने बंदा वैरागी के फौलादी जिस्म को नोच नोचकर माँस विहीन कर दिया था किन्तु न बाप डिगा न बेटा। अन्ततः मुगलों ने इब्राहिम के बलिदान का खेल बंदा के साथ खेला। बाप की गोद में बेटे को लिटा दिया और बाप को छुरी पकड़ाकर बेटे का कत्ल करने का फरमान हुआ। बाप ने फरमान को मानने से इंकार कर दिया। अब जो खेल खेला गया वह किसी भी हैवानियत से भयानक था, अमानवीय था। निर्भीक अजय सिंह को बाप की गोद से घसीटकर हवा में लहरा दिया गया और जालिम तलवार ने उस नन्हें से शिशु के दो फाँक कर दिए। यह बर्बरता यही नहीं रुकी। फिर शहीद बेटे के शव से माँस नोचकर बाप के मुँह में ठूँस दिया गया किन्तु वहाँ रोने वाला कोई नहीं था। बंदा तो फिर से वैरागी हो गया था..।।। विदेह हो गया था। भारत माता का अद्भुत लाल वीर अजय सिंह गुरु गोबिन्द सिंह के नौ और सात वर्षीय शहीद पुत्र जोरावर सिंह और फतह सिंह की पंक्ति में शामिल हो गया था। इन्हें इतिहास में अमर करने का श्रेय न केवल इनकी बहादुर बल्कि जालिम औरंगजेब को भी जाता है।

27 अक्टूबर, 1670 को राजौरी, जम्मू में श्री रामदेव के घर एक अद्भुत बालक ने जन्म लिया जिसका नाम लक्ष्मन दास रखा गया। 15 वर्ष का लक्ष्मन दास बहुत होनहार था और शिकार खेलने का शौकीन भी। एक दिन उसका तीर एक गर्भवती हिरनी को जा लगा। बच्चा बाहर आया और इहलीला समाप्त। पल भर में सब कुछ इस बालक के सामने घटा। सब कुछ अप्रत्याशित था, असहनीय था। गुरु जानकीनाथ से सलाह लेकर लक्ष्मन दास निकल पड़ा वैराग के पथ पर। पंचवटी (नासिक) से होता हुआ गोदावरी के तट पर सन्यासी बन गया। माधोदास के नाम से ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। यह सच है कि बालपन की विरक्ति प्रायः अटल होती है। स्थापनाएँ मजबूत होती हैं। निर्णय अडिग होते हैं।

गुरु गोबिन्द सिंह एक ऐसे बहादुर का नाम है जिसने न सिर्फ अपने पिता गुरु तेगबहादुर को बल्कि अपने चारों पुत्रों को भी शहादत के पथ पर वक्त के तकाजे पर भेजा। गुरु तेगबहादुर लोगों को संगठित करने के लिए देश के कोने-कोने तक जाते थे। आज के पूर्वोत्तर के असम में भी आए थे। उस समय औरंगजेब की सेना अहोम राजा पर चढ़ाई की थी। सराईघाट आज भी इसका गवाह है। इस युद्ध में अहोम सेनापति महावीर लाचित बरफूकन के शौर्य की गाथा और मुगलों के पराजय की कहानी हर असमिया की जुबान पर है। इस युद्ध में अहोम सेना के साथ परोक्ष रूप से गुरु तेगबहादुर का सहयोग अति महत्त्वपूर्ण है। सिखों के प्रथम गुरु गुरुनानक देव भी असम की धुबड़ी में आए थे। गुरुद्वारे का बुर्ज आज भी गुरु तेगबहादुर की असम यात्रा की याद दिलाता है। पूर्वोत्तर के हर राज्यों में एकाधिक गुरुद्वारों का होना यहाँ सिखों की सकारात्मक भूमिका और लगाव की परिचायक है।

विशालकाय आततायी मुगल सेना से लोहा लेते हुए बहुतों को खो चुके थे गुरु गोबिन्द सिंह। औरंगजेब उनकी वीरता और युद्ध कौशल का कायल था। सन् 1708 में गोदावरी परिक्षेत्र के नांदेड़ में घूमते हुए गुरु गोबिन्द सिंह को सन्यासी माधोदास के बारे में पता चला और वे चल दिए मिलने। मुलाकात के दौरान गुरु ने माधोदास को दीक्षा देते हुए कहा, 'स्वमुक्ति छोड़कर देशमुक्ति करो। आज से

तुम्हारा नाम बंदा बहादुर वैरागी होगा।' इसके साथ ही वर्तमान राजनीति को समझाते हुए गुरु गोबिन्द सिंह ने बंदा को पाँच तीर, एक निशान साहिब, एक नगाड़ा और एक हुक्मनामा देकर कुटिया से विदा किया कर्मभूमि में। नवें गुरु तेगबहादुर का हत्यारा जलालुद्दीन और गुरु गोबिन्द सिंह के दो छोटे बेटों को दीवार में चिनवाने वाला सरहिन्द का नवाब वजीर खान से बदला लेना बंदा वैरागी की प्राथमिकता थी। बंदा वैरागी उसी लक्ष्य पर उन्मुख हुए।

हजारों शिष्यों के साथ बंदा बहादुर का काफिला चला। साधक के हाथों में शस्त्र ने दुश्मनों को गाजर-मूली बनाकर खेत कर दिया। जलालुद्दीन और वजीर खान के साथ वे सब भी मारे गए जो नरभक्षी मुगलों के हिमायती और हिन्दुओं के विश्वासघाती थे। गुरु गोबिन्द का सपना साकार हुआ और लोहगढ़ की स्थापना हुई। सरहिंद पर कब्जा हुआ। खालसा को मूर्त रूप मिला। बहादुर शाह प्रथम और फिर फर्रुखसियार से युद्ध की आँख मिचौली चलती रही। बंदा बहादुर की तूती से औरंगजेब की चूलें हिलने लगीं।

यद्यपि बंदा बहादुर वैरागी का शासनकाल बहुत छोटा था किन्तु उसने गुरुनानक देव और गुरुगोबिन्द के नाम पर सिक्के चलवाए। किसानों और मजदूरों की दशा सुधारने के लिए जमींदारी उन्मूलन का सूत्रपात किया। जन कल्याण इस सन्यासी वीर के भीतर कूट कूटकर भरा था। सन् 1715 में कुपित बादशाह फर्रुखसियार की लाखों की फौज ने इस वीर को किसी भी हाल में पकड़ने का बीड़ा उठाया। एक विश्वासघाती के सहयोग से शाही सेना अब्दुल समद खाँ के नेतृत्व में गुरुदासपुर के गुरुदास नंगल गाँव को घेर ली। महीनों तक चले गोरिल्ला युद्ध के कारण रसद समाप्त हो गया और बंदा वैरागी के सैनिक भूखों मरने लगे। अन्ततः दिसम्बर 1715 को बंदा बहादुर वैरागी को गिरफ्तार होना पड़ा। लोहे के पिंजरे में बंद किया गयाउन्हें। भूखे-प्यासे गर्म सलाखों से बोटियाँ नोचते हुए हाथी पर लादकर शाही सेना पंजाब से दिल्ली की ओर कूच की।

दिल्ली की हार्डिंग लाइब्रेरी की भूमि देख चुकी है सैकड़ों सरदारों की कुर्बानी। 9 जून, 1716 को वीर शहीद अजय सिंह की अद्वितीय कुर्बानी के पश्चात् मुगल हार मान चुके थे धर्मान्तरण कराने में। माँस विहीन बंदा बहादुर वैरागी को हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया गया। जब-जब इतिहास मुगलकाल का पन्ना पलटेगा तब-तब बहादुर बंदा वैरागी के सपूत वीर अजय सिंह को कुतुबमीनार झुककर सलाम ठोकेगी और बंदा बहादुर सेतु गौरवशाली अतीत से वर्तमान को जोड़ेगा।

• • •

सच्चे बादशाह : गुरु नानक देव जी

-विवेक शर्मा

शिक्षा अपने अज्ञान की विकसनशील अमूर्त खोज है और भारतीय दर्शन में इसे बखूबी व्यंजनात्मक-आश्रय प्राप्त हुआ है।

यह एक प्रमुख कारण भी रहा है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय ने धार्मिक दर्शन को आधार बनाकर मूलत: विभिन्न शिक्षाओं का ही प्रचार-प्रसार करने का कार्य किया-

"दर्शनाम् मूल: शिक्षादर्शनम्।"

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में यह तक लिखते हैं-

"जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करने तथा नई-नई बातों को जानने के लिए रूचि प्रकट करता है तथा जो कभी संतुष्ट नहीं होता, उसे दार्शनिक कहा जाता है।"

अत: भारतीय दर्शन परंपरा में जिन लीजेंड्स (दिव्य-पुरुषों) का नाम स्वर्णाद्वारों से लिखा गया। उनमें भी गुरु नानक देव सिरमौर संत हैं।

सिक्ख परंपरा के वाहक श्री गुरु नानक देव (जन्म सम्वत् 1526 विक्रमी/1469 ई.) निर्गुण संत परंपरा के अग्रज के बतौर 'एक ओंकार' का महात्म्य बताते हैं-

एक ओंकार सतनाम, कर्तापुरख, निरभउ, निर्वैर
अकाल मूरति, अजूनी सैभं, गुरु प्रसादि।।
आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच।।

इसी प्रकार, 'आदर्श पुरुष' की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-

"ऐसे जन विरले जग अंदरि, परखि खजाने पाइआ।
जाति वरन ते भए अतीता, ममता लोभ चुकाइआ।
नामि रते तीरथ से निरमल, दुखु हउमै मैलु चुकाइआ।
नानकु तिंन के रन पखालै, जिन गुरमुखि साचा भाइया।।"

गुरु नानक देव जी ब्रह्म की शाश्वता के विषय में एक-सीधे सच्चे-मार्ग के समर्थक थे-

"अकासी पाताली तूं त्रिभवणि रहिआ समाइ।
तू जल थलि महीअलि भरिपूरि लीणाँ तूं आपे सरब समाणां।।"

गुरु का महात्म्य बतलाते हुए, उसके 'ज्ञान' से 'द्वन्द्व-नाश' की प्राप्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं-

"सतगुरु मिलै त दुविधा भागै,
कमल विगासी मनु हरि प्रभ लागै।
जीवतु मरै महा रसु आगै।
गुरि मिलिए मिली अंक समाइया/
करि किरपा धरू महलु दिखाइआ।।"

-(नानक बाणी, गउड़ी सबद-9)

मृत्यु का अटल सत्य बताकर श्री गुरु नानक देव जी 'मोह-त्याग' तथा 'जीवन की नश्वरता' का बोध कराते नजर आते हैं-

"खेलु खेह रलाईए ता जीउ केहा होई.
जलिआ सभी सिआणपा उठि चलिआ रोई.।"

लोकमंगल साधना के संदर्भ में आदि गुरु श्री नानक देव जी परमात्मा के नैकट्य का मार्ग प्रशस्त करते दिखते हैं-

"सचु करणि अभ अंतरि सेवा।
मनु तृपतासि तृपतासि अभेदा।।"

-(नानक बाणी, पृ. 111)

ज्ञान-भक्ति तथा कर्म की त्रिवेणी श्री गुरु नानक देव जी द्वारा 'मैं' रूपी "ठग" के त्याग के साथ "मानव-सेवा" का वैश्विक-सूत्र प्रदेय स्वरूप प्रस्तावित किया गया-

"अपने ही सुख सों सब लागे,
क्या दारा क्या मीत।
मेरो मेरो सभी कहत हैं,
हित सों बाध्यों चीत।
अंतकाल संगी नहिं कोऊ,
भह अचरज की रीत।।"

अत: वह इस दिशा में "नाय सुमिरन" की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए कहते हैं-

"जिनी नामु धिआइआ, गए मसकति धालि।
नानक ते मुख उजले, केती छुटी नालि।।"

-(जपुजी)

मध्यकालीन भक्ति युग में जब मानव आक्रमणों से बेहद त्रस्त तथा अपने जीवन मूल्यों के प्रति शंका-भाव से भर चुका था। ऐसे में मानवतावाद के पोषक श्री गुरु नानक देव जी मनुष्य के सात्विक जीवन हेतु प्रेमभक्ति का उपदेश देते हैं-

"भाऊ भगति करि नीचु सदाए।
तऊ नानक मोखत: पाए।"

-(आसा, म. 1)

अस्तु; सद्गुरु श्री गुरु नानक देव जी संपूर्ण भारतीय संत परंपरा में इस दृष्टि से भी अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं चूंकि वह अत्यंत विषम मध्ययुगीन दौर में "दार्शनिकता" तथा "शिक्षा-प्रेषण" के धरातल पर "व्यावहारिक-ज्ञान" का अमृत छिड़ककर अखिल विश्व जगत को एकता के सूत्र में पिरोने का श्रेष्ठतम् 'पुरुषार्थ' करते नजर आते हैं-

"पवणु गुरु, पाणी पिता, माता धरि महतु।

दिवसु राति दुइ दाई दाइआ, खेलै सगल जगतु।।"

वर्तमान-जगत में शिक्षा एवं दर्शन की ऐसी प्रासंगिकता अन्यत्र दुर्लभ है।...।।

गुरु नानक देव जी द्वारा समाज में व्याप्त स्वार्थ एवं लिप्सा की भावना का कड़ा विरोध अपनी शिक्षाओं के माध्यम से किया गया-

"लबु पापु दुइ राजा महंता कूडु होआ सिकदारु।
कामु नेबु सदि पूछीऐ बहि बहि करे बीचारु।।"

अर्थात् लोभ और पाप आज राजा बन बैठे हैं और झूठ उनका चौधरी है। काम इनके दरबार का नायब है जिसके साथ बैठ-बैठ कर ये सलाह-मशविरा करते हैं।

गुरु नानक देव जी द्वारा एक ऐसे समय में राजाओं की निरंकुश नीतियों का विरोध किया गया जब राजाओं को दैवीय अधिकार प्राप्त थे। ऐसे में नानक देव जी अपनी बात बेहद बेबाकी के साथ सम्मुख रखते नजर आते हैं-

दरसनि देखिऐ दइआ न होइ।
लए दिते विणु रहै न कोइ।।
राजा निआउ करे हथि होइ।
कहै खुदाइ न भानै कोइ।।

-(पन्ना 350)

गुरु नानक जी ने 'सच्ची शिक्षा' के संदर्भ में कहा है-

"पण्डित बांचे पोथियाँ, ना बूझहिं न विचारु।
अन्य कइ मति दे चलहिं, माया का व्यापारु।।"
"काजी हो कै करे न्यायी।
फेरे तसबी करे खुदाई.
वड्डी लै के हक्क गंवाइ।
जे को पुच्छे, पढ़ सुणाई."

इसके पीछे कथा यह है कि मौलवी मुहम्मद हसन की अपनी कोई संतान नहीं थी, अत: बालक नानक को ही पुत्र-सम प्रेम करते थे। वह बालक नानक को फारसी पढ़ाते थे। एक दिन वे बच्चों को फारसी के अक्षर पढ़ा रहे थे-अलिफ, बे, पे। अन्य बालक चुपचाप तख्ती पर लिख रहे थे किंतु नानक ने पूछ लिया-मौलवी जी, अलिफ का क्या अर्थ है?

मौलवी बोले-'अलिफ का अर्थ कुछ भी नहीं, वह तो केवल एक अक्षर मात्र है।'

नानक बोले-"आपको नहीं आता तो लीजिये मैं बताऊँ-अलिफ-अल्लाह को याद कर, गफलतु मनहिं बिसारा।"

यह सुन सब अवाक् रह गए।

गुरु नानक देव जी यह शिक्षा देते हैं कि सच्चा मनुष्य वह है जो सच्ची शिक्षा ग्रहण करता है, जो दूसरों के दु:ख देखकर उन पर दया करता है और कुछ दान-पुण्य करता है-

"सच तांपर जानिये जा सिख सच्ची लेइ।
दया जाने जीव की, किछ पुन्न दान करेइ।।"

एक जगह वह यह भी कहते है।-

"संपऊ संचयी भये विकार"

अर्थात् धन इकट्ठा करने से मन में विकार घर कर जाता है।

गुरु नानक देव गुरु को ही "सच्चा साथी" मानते हैं। वह कहते हैं कि-'मैं अपने गुरु पर बलिहारी जाता हूँ जिसने मुझे सच्चा रास्ता बताया। उसनें मुझ जैसे मामूली मनुष्य को भी देवता बनाने में देर नहीं की। यथा-

"बलिहारी गुरु आपने दिऊँहाडी सदवार।
जिन्हि मानस ते देवते किये, करत न लागी बार।।"

गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा इस बात की इस रूप में बानगी दी गई-

"सम सिखन को सुख दियो जिह तिह भये सहाय"

गुरु नानक देव जी का 'दर्शन' अनूठा है। मात्र शिक्षा ही नहीं अपितु दर्शन के क्षेत्र में भी अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक हो जाता है।

एक बार प्रश्न उठता है-अहम् का वह संसार क्या है जिसका निर्माण मानव-पतन तथा ईश्वर से विलगता के कारण आत्मा करती है? तब बाबा नानक देव जी कहते हैं-

"तितु सखरड़ै भईले निवासा
पाणी पावकु तिनहि कीआ।
पंकजु मोह पगु नहीं चालै
हम देखा तह डूबी अले।
न एकु न चेतसि मूड़ मना।
हरि विसरत तेरे गुण गलिआ।"

(1 रहाउ : 2 : 29, राग आसा म. 1, आ.ग्रं. पृ. 357)

अर्थात्, अहम-जगत् पीड़ा का जगत् है। यह अग्नि-लोक है-अग्नि, जो कि कामनाओं तथा असन्तुष्ट कामनाओं के परिणामस्वरूप हिंसा, स्वार्थ, लोलुपता तथा क्रोध की चार अनैतिकताओं की प्रतीक है। अहम् की दुनिया आसक्ति, स्वार्थ, लोभ तथा मोह की दुनिया है।

दर्शन के क्षेत्र में गुरु नानक देव जी 'मनन' तथा 'आत्म मूल्यांकन' पर बल देते हुए कहते हैं कि मनन तथा नाम की साधना मनुष्यता की दिव्यता प्रदान करती है-

"सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ।
कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ।
सचु ता परु जाणीऐ जा सचि घरे पिआरु।
नाउ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआरु।
सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ।
धरती काइआ साधि कै विचि देइ करता वीउ।
सचु ता परु जाणीऐ जा सिख सची लेइ।
दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनुदानु करेइ।
सच ता परु जाणीऐ जा आतम तीरबि करे निवासु।
सति गुरु नो पुछि कै वहि रहै करे निवासु।
सचु सभना होइ दारु पाप कढै धोइ।
नानकु वरवाणै बेनती जिन सचु पलै होइ।"

(श्लोक म. 1, वार आसा, आदि, ग्रंथ, पृ. 468)

कबीर जिसे "अनहद नाद", "गगन दमामा बाजै" इत्यादि संबोधन देते हैं। गुरु नानक देव जी को वह दिव्य संगीत 'रुणझुण का आत्मसंगीत' अनुभव होता है। वह कहते हैं कि-

"अनहदो अनहदु बाजै, रुणझुण कारे राम।।

मेरा मनो, मेरा मनु राता, लाल पियारे राम।।
अनदिनु राता मनु वैरागी, सुन मण्डली धरु पाइआ।।
आदि पुरखु अपरंपरु पियारा, सतिगुरु अलखु लखाइआ।।
आसणि वैसणि धिरु बीचारे, नानक नाभि रते वैरागी।।
अनहद रुणझुण कारे।"

अर्थात्, अनाहत शब्द अनाहत चाल से रुणझुण बज रहा है। हे प्यारे राम! मेरा मन तेरे ही रंग में पूरी तरह से रंग गया। दुनिया की ओर से मैंने आंखें मूंद ली है और मेरा ध्यान दिन-रात राम की ओर लगा है। अब शून्य मण्डल में मेरा मन डूबा हुआ है। सतगुरु ने उस आदि पुरुष परमेश्वर की झलक दिखा दी है। अब मेरा मन डांवाडोल होने की स्थिति से ऊपर उठ चुका है और वह चिन्तन करने लगा है, जो वैरागी पुरुष नाम में डूब जाता है उसे रुणझुण का आत्मसंगीत सुनाई देता है। कबीर जिस प्रेम का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि-

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।"

-संत कबीरदास

जायसी जिसकी व्याख्या एक बड़े फलक पर करते हैं-

"मानुष प्रेम भएउ बैकुण्ठ, नाहिं ते काह छार एक मुट्ठी।"

गुरु नानक देव जी उसे व्याख्यायित करते समय 'गागर में सागर' भरने का कार्य कर दिखाते हैं-

"जिन्हीं न पायो प्रेम-रस, कंत न पायो साऊ।
संझे घर का पाहुना, जिऊ आया तिऊ जाऊ।।"

अर्थात्, जिन्होंने अपने ह्रदय में प्रेम का विकास नहीं किया और जिन्होंने प्रियतम प्रभु का साथ नहीं निभाया। वे दो घरों के एक अतिथि के समान हैं जो भूखा आता है और भूखा-प्यासा ही चला जाता है..।।

वास्तव में यह गुरु नानक देव जी के दर्शन एवं शिक्षाओं की सच्ची उत्तरजीविता भी है..।।

• • •

मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'गुरु तेगबहादुर' का कश्मीरी अनुवाद

अग्निशेखर

सुपरिचित कश्मीरी कवि कुमार अशोक सर्राफ 'घायल' ने मुझे दिल्ली से फोन पर जब यह सूचना दी कि उन्होंने हिंदी के यशस्वी कवि मैथिलीशरण गुप्त की ऐतिहासिक कविता 'गुरु तेगबहादुर' का कश्मीरी अनुवाद किया है, मैंने उन्हें बधाई दी। फोन पर ही उनसे कुछेक चुनिंदा पदों का कश्मीरी रूपांतर सुनकर मैं दंग रह गया। मूल पाठ के इतना निकट कश्मीरी रूपांतरण, मुझे अतिरिक्त खुशी हुई। यह उनके तीन वर्ष के परिश्रम का सुफल है,ऐसा उन्होंने बताया।

"मैंने इस अनुवाद को एक निर्वासित कश्मीरी कवि के नाते भी एक ऐतिहासिक कृतज्ञता के साथ किया है। आप जानते हैं हम लोगों पर अलग से कितना ऋण है श्री गुरु तेगबहादुर का! मेरा अनुवाद सफल कहा जा सकता है या नहीं, यह मैं सुधी पाठकों पर छोड़ता हूँ ..।" कुमार अशोक घायल की आवाज श्रद्धा विगलित थी।

मैंने उनसे पूछा, "आपको दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त) की इस कविता का खयाल कैसे आया और यह रचना मिली कहाँ आपको?"

"निर्वासन के कुछ ही बरस बाद जब हम कश्मीरी पंडित हजारों की संख्या में एक कृतज्ञता-यात्रा के रूप में आनंदपुर साहब गये थे, उससे पहले दिल्ली में गुरुद्वारा शीषगंज में भी कृतज्ञता अर्पित की थी हमने। तभी से कुछ लिखने की बात थी मन में। फिर एक दिन यह हिंदी कविता हाथ लगी। मैथिलीशरण गुप्त की कविता पढ़कर मैं अभिभूत हो गया और बस... ठान ली इसका कश्मीरी में अनुवाद करने की।"

मेरे मन में कई प्रश्न उठे। हम कश्मीरियों में भी कितने लोगों को पता है कि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने समय के अप्रतिम इतिहास-पुरुष श्री गुरु तेगबहादुर के धार्मिक आस्था की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तथा औरंगजेबी फासीवाद के खिलाफ किए विलक्षण आत्म-बलिदान को लेकर काव्य रचा है।

कितने लोगों को पता होगा कि मैथिलीशरण गुप्त से भी पहले अट्ठारहवीं शताब्दी में रीतिकाल के आरंभिक दिनों में ब्रजभाषा के एक महत्त्वपूर्ण कवि सेनापति ने गुरु तेगबहादुर के अद्वितीय प्राणोत्सर्ग को लेकर लिखा था-

"सगल स्रिसटि पै ढापी चादर
करम धरम की जिनि पति राखी
अटल करी कलजुग में साखी।।
सगल स्रिसटि जा का जस भयो।
जिह ते सरब धर्म बंचयो
तीन लोक में जै जै जै भई.
सतिगुरि पैज राखि हम लई.।
तिलक जनेऊ अरि धरमसाला
अटल करी गुरु भए दिआला।।"

इसी तरह कितने लोगों को पता होगा कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बंदा वीर वैरागी पर 'बंदी वीर' शीर्षक से एक मार्मिक कविता लिखी है जो इस तरह आरंभ होती है :

"पंच नदी तीरे वेणी
पकैया शिरे
देखिते देखिते गुरुर मंत्रे
जागिया उठिछे सिख
निर्मम निर्भीक..।"

संभवतः मैथिलीशरण गुप्त की इस रचना 'गुरु तेगबहादुर' की पर्याप्त चर्चा और जानकारी के अभाव के कारण ही डॉ. आशानन्द वोहरा 'गुरु तेगबहादुर जी : जीवन और व्यक्तित्व' नामक आलेख में कहते हैं कि गुरु तेगबहादुर जी के जीवन और व्यक्तित्व पर हिंदी में स्वतंत्र ऐतिहासिक महाकाव्य अभी तक नहीं लिखा गया है। (गुरु तेगबहादुर : जीवन,दर्शन और विवेचना, सं. प्रेम प्रकाश सिंह, पृ. 1)। मैथिलीशरण गुप्त की यह रचना भले ही महाकाव्य न हो, लेकिन हिंदी में उन पर किसी ने कुछ न लिखा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

कुछ दिनों के बाद कवि कुमार अशोक 'घायल' के प्रकाशक उत्पल पब्लिकेशंस के मालिक मित्र उत्पल कौल ने मैथिलीशरण गुप्त के मूल हिंदी काव्य सहित कश्मीरी अनुवाद की पांडुलिपि मेरे पास भूमिका लिखने के लिए साग्रह भेजी। मैं ना नहीं कर सका। लोभ भी संवरण न कर पाया।

यूनिवर्सिटी के दिनों पढ़ी 'गुरु तेगबहादुर' कविता आज बरसों बाद मेरे हाथ में थी। मैंने इसे पढ़ना क्या शुरू किया कि अंत तक पढ़ता ही चला गया :

"तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे गुरु पदवी के पात्र, समर्थ।
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
गुरु पदवी थी जिनक अर्थ
... ...।"

यह लंबी प्रबंधात्मक कविता गुरु तेगबहादुर के बलिदान की गाथा तो है ही, साथ ही यह उत्पीड़ित, शोषित और पद-दलित जनता के साथ कवि की पक्षधरता का भी परिचायक है।

राजनीतिक दमन, संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना, अत्याचार और बलात् धर्मांतरण के विरुद्ध गुरु तेगबहादुर का तत्कालीन शक्तिशाली मुगलिया सलतनत के विरुद्ध डटकर खड़े होना मानवधर्म,

सह-अस्तित्व और सौहार्द के उदात्त धर्मनिरपेक्ष।

जीवन-मूल्यों की रक्षा में जान की बाजी लगाने की स्वर्णिम गाथा है। लोकमंगल की भावना से प्रेरित उनका जीवन-आदर्श है उनका बलिदान।

यह विडंबना ही है कि स्वतंत्रता के बाद हमने लोकतांत्रिक भारत के सच्चे धर्मनिरपेक्ष महानायक के रूप में गुरु तेगबहादुर को ऐतिहासिक नायकत्व नहीं दिया। उल्टे में हम मैकालिफ, ट्रप, कनिंघम और पिंकाट जैसे विदेशी विद्वानों के पूर्वाग्रह जनित लेखन को महत्त्व देते रहे। परदु:ख-कातर संत कवि गुरुतेग बहादुर को लेकर क्या क्या नहीं लिखा गया।

।। कवि मैथिलीशरण गुप्त।।

महावीरप्रसाद द्विवेदी के शिष्य, मैथिलीशरण गुप्त हिंदी में राष्ट्रीय चेतना, गौरवशाली भारतीय अतीत के साथ ही साथ सांस्कृतिक, सामाजिक तथा भाषाई संवेदना और सौहार्द के प्रतिनिधि कवि हैं। गांधीवादी दर्शन से प्रेरित और प्रभावित मैथिलीशरण गुप्त स्वाधीनता आंदोलन में भी सक्रिय रहे।

इसलिए उनके काव्य-संसार में हम उनकी तत्कालीन भारतीय समाज की चिंताओं से उबरने की गंभीर छटपटाहट देखते हैं। वे इतिहास,पुराण, मिथक से परंपरागत सौहार्द, नैतिकता, मानवीय संबंधों की पवित्रता और समानता की बहाली हेतु समाज में ऐसे पारंपरिक प्रतीकों, आदर्शों को केंद्रीयता देते हुए मिलते हैं। 'भारत भारती', 'पंचवटी', 'यशोधरा' 'साकेत', 'मेघनाद वध', 'नहुष' जैसी उनकी अनेक मौलिक काव्य कृतियों तथा उनके द्वारा अनूदित रचनाओं को इसी दृष्टि से देखा जाता है। उनकी कविता 'गुरु तेगबहादुर' की रचना-प्रक्रिया के पीछे भी यही दृष्टि है।

।। 'गुरु तेगबहादुर' का आख्यान।।

डॉ. रमेश कुंतल मेघ के अनुसार, "इतिहास की यह भी 'विडंबना' (पैराडाक्स) है कि गुरु तेगबहादुर द्वारा गुरुगद्दी पर बैठने (1665)के कुछ साल पहले वह (औरंगजेब) अपने भाई दाराशिकोह का सर कटवा कर वैसा ही कत्ल करवा चुका था; अपने भाइयों और पिता को (गद्दी के उत्तराधिकार के संदर्भ में) कैद में डाल चुका था। इसके अलावा उसने सतनामियों की साधु जमात पर तेग चलाई और सरमद जैसे सूफी दरवेश को भी कत्ल कर दिया।"

"कट्टरता की दशाओं में गैर-इस्लामी के बागी होने पर दो विकल्प थे-या तो वह इस्लाम कबूल करे अथवा मौत। गुरु तेगबहादुर की शहादत (भी) इसकी मिसाल है।"(गुरु तेगबहादुर : जीवन, दर्शन और विवेचन,-सं. प्रेम प्रकाश सिंह, पृ. 127)

स्वभावगत कट्टरता, क्रूरता और करामातों में विश्वास के कारण इतिहास में औरंगजेब एक शक्तिशाली शासक के साथ ही एक दयनीय पात्र के रूप में भी जाना जाता है।

कार्ल मार्क्स उसे 'नोट्स ऑन इंडियन हिस्टरी' (मास्को, पृ. 51,53) में तो 'गधा' और 'बैल' तक कह देते हैं। डॉ. रमेश कुंतल मेघ अपने ऊपर्युक्त आलेख (पृ. 128) में लिखते हैं, 'कार्ल मार्क्स ने सन् 1666 वर्ष की डायरी में नोट किया है कि 'अपने खुदगर्ज स्वभाव के बावजूद औरंगजेब मराठों के साथ शुरू से ही एक 'गधे' की तरह तथा बाद में (1680)... 'एक बैल' की तरह व्यवहार करता चला।'

अर्थात् यह औरंगजेब की पाश्विक प्रवृत्ति है जिसके धर्मांध रूप को विवेच्य कविता में गुरु तेगबहादुर का आध्यात्मिक संत व्यक्तित्व चुनौती देता है।

मैथिलीशरण गुप्त की कविता में 'औरंगजेब' और 'गुरु तेगबहादुर' हमारे लिए रूपक में बदलते हैं।

इस तरह आज भी गुरु तेगबहादुर का जीवनादर्श, समकालीन भारतीय समाज-जीवन में सौहार्द की स्थायी प्रतिष्ठा की दृष्टि से, और अधिक प्रासंगिक हो उठता है।

।। मैथिलीशरण गुप्त की यह कविता।।

इस कविता के एक सौ उन्नीस पद हैं। सरस, सहज और करुण शब्द प्रवाह के साथ गुरु तेगबहादुर के जीवन,दर्शन और अप्रतिम बलिदान का ओजपूर्ण प्रतिपादन! 'गुरु तेगबहादुर' कविता सिख-गुरु परंपरा में नवमें गुरु तेगबहादुर के स्वभाव, वैराग्य, समभाव का निरूपण करती है।

ऐतिहासिक और राजनीतिक घटनाक्रम में उनका बलिदान प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार डॉ.महीप सिंह के अनुसार (गुरु तेगबहादुर जी के बलिदान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, पूर्वोक्त संपादित पुस्तक, पृ. 44) एक वृहत्तर विद्रोह की भूमिका का काम करता है और विद्रोह के बीज 'अस्वीकार' में से अंकुरित होते हैं।

अन्याय का यह 'अस्वीकार' अन्याय के प्रति विरक्ति या पलायन की स्थिति के बदले उससे सीधे जूझने में दिखता है। कविता 'गुरु तेगबहादुर' में कवि मैथिलीशरण गुप्त बताते चलते हैं कि औरंगजेब की सुविचारित धार्मिक असहिष्णुता की हिंसक नीति के सताए कश्मीरी पंडितों के फरियादी जत्थे की हृदयविदारक गुहार सुनकर गुरु तेगबहादुर कैसे द्रवित हुए। कैसे जीवन के मोह को त्याग उन्होंने मृत्यु का सहर्ष वरण किया, उदात्त मानवीय जीवन मूल्यों की रक्षा करते किस तरह आसुरी अत्याचार सहे और अपने प्राणों का उत्सर्ग किया।

इतिहासकार जदुनाथ सरकार (हिस्टरी ऑफ औरंगजेब, पृ. 313) के शब्दों में उन्होंने (गुरु तेगबहादुर ने) कश्मीर के हिंदुओं को इस्लाम में जबरदस्ती दीक्षित करने का खुला विरोध किया था। दिल्ली बुलाए जाने पर उन्हें इस्लाम कबूल करने के लिए पाँच दिन तक यातनाएँ देने के बाद उनका शीश धड़ से अलग कर दिया गया।

इस स्तब्धकारी घटना पर गुरु गोबिंद सिंह की ओजपूर्ण काव्य-अभिव्यक्ति रोंगटे खड़े करने वाली है-

"ठीकरि फोरि दिलीस सिरि,
प्रभुपुर कियो पयान।
तेगबहादुर-सी क्रिया करी
न किन हूँ आनि।।
तेगबहादुर के चलत भयो
जगत है है है सभ जग भयो
जै जै जै सुरलोक।।

(दशम ग्रंथ, पृ. 54)

अक्सर गुरु तेगबहादुर के बलिदान के संदर्भ में उद्धृत किया जाता हैं कि उन्होंने सीस दिया पर-सी न उचरी। हमें उनसे दो सौ

बरस पूर्व गुरु नानक देव की वो बाणी याद करनी चाहिए जिससे सिख गुरुओं की बलिदानी मानसिकता बनी मालूम होती है :

"जो तउ प्रेम खेलन का चाउ
सिरधर तली गली मेरी आउ
इत मारगि पैर धरीजै
सिर दीजै काणि न कीजै"

अर्थात् यह कठिन मार्ग है। मेरी इस गली में आना चाहो तो सिर हथेली पर रखकर आना होगा। सिर देना होगा, पर उफ् न करनी होगी।

देखा जाए तो मैथिलीशरण गुप्त इस कविता में कामरूप (असम) बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब और कश्मीर आदि की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में गुरु तेगबहादुर के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, उनके जीवन और व्यक्तित्व, उनकी बाणी की तत्त्व-मीमांसा और कुलमिलाकर उनकी सक्रियता, उनकी दसियों प्रचार-यात्राएँ, ऐतिहासिक कर्तारपुर की लड़ाई में उनकी शानदार भागीदारी पर अपने पिता हरगोबिंद जी से मिली प्रशंसा आदि की पृष्ठभूमि में कथ्य को विशद और बहुरेखीय बना सकते थे।

कविता में एक स्थान पर संकेत भर मिलता भी है-"शासन था औरंगजेब का /चारों ओर मचा था त्रास।" लेकिन कवि इस अवसर को शायद जानबूझकर हाथ से जाने देते हैं। गुरु तेगबहादुर जी के जीवन-चरित्र से संबंधित जरूरी ऐतिहासिक दस्तावेजों के अध्ययन से एक बड़े परिप्रेक्ष्य का निर्माण हो सकता था। यह ऐतिहासिक कविता सच में एक बड़ी रचना बनती। लेकिन कवि एक विस्तृत फलक को दुःख-कातर भाव से लिखकर इसे, मेरे मतानुसार, "मैथिलीशरण गुप्त उतनी बड़ी रचना नहीं बना पाए हैं। इसके बावजूद इस कविता का अपना और ऐतिहासिक महत्त्व है, साहित्यिक तो है ही।"

यह कविता अपने कथ्य में मात्र इतनी-सी बात न कहती कि समय के सताए कश्मीरी पंडित आनंदपुर चले आए। गुरु तेगबहादुर से फरियाद की। उन पर ढाए जा रहे जुल्मो-सितम से चिंतित गुरु ने उन्हें बादशाह (औरंगजेब) को जाकर चिट्ठी लिखने को कहा कि यदि एक गुरु तेगबहादुर को मुसलमान बना सकते हो तो सब कश्मीरी हिंदू इस्लाम कबूल करेंगे।

यहाँ से कविता आगे सरपट दौड़ती हुई गुरु के साथ दिल्ली आए उनके शिष्य 'सचिव, विप्र, बुधवर मति दास' का उल्लेख करते हुए वध स्थल की ओर बढ़ती है जहाँ पर धर्मांतरण के प्रलोभनों, छलों, धमकियों तथा यातनाओं को अस्वीकार करने पर गुरु तेगबहादुर का शिरच्छेद कर दिया जाता है।

वहाँ पर गुरु तेगबहादुर के एक शिष्य पिता सहित नाटकीय ढंग से प्रकट होते हैं। पिता अपने सिर को धड से अलग कर बेटे के लिए यह संभव करता है कि वह गुरु के शव को ले भागे और उसकी जगह उसका धड रखे। यह काल्पनिक मोड़ सारी कथा के प्रभाव को कम कर देता है।

उस दौर में सिर्फ कश्मीरी पंडितों पर ही धार्मिक उत्पीड़न नहीं हो रहा था। औरंगजेब ने भारत को 'दारुल हरब' से 'दारुल इस्लाम' बनाने हेतु पहले उज्जैन पर तलवार चलाई, फिर वाराणसी पर, फिर हरिद्वार और कुरुक्षेत्र पर। सबने कहा कि यदि कश्मीरी पंडित इस्लाम कबूल करेंगे तो पूरे हिन्दुस्तान के हिंदू धर्मांतरण करेंगे।

औरंगजेब ने इफ्तिखार खान को इस काम के लिए 1671 ई. में चौदहवें गवर्नर के रूप में कश्मीर भेजा। उसने कश्मीरी हिंदुओं पर बेइंतहा अत्याचार किए। ऐसे में मटन (मार्तण्ड) अनंतनाग के पं. कृपाराम दत्त के नेतृत्व में पाँच सौ कश्मीरी पंडितों का फरियादी जत्था चक्क-नानकी (आनंदपुर) गुरु तेगबहादुर के पास पहुँचा। उसके साथ उसका भाई सन्मुख दत्त भी था।

कवि सेवा सिंह ने 'साहिब विलास' में इस घटना का एक सुंदर और सघन बखान इन शब्दों में किया है :

"दुखी विप्र चल के आए पुरी आनंद
बांह असाडी पकडिए, गुरु हरगोबिंद के चंद
तेगबहादुर जगतगुरु, सुन इम हाहाकार
रछक गौ गरीब का,कलजुग का अवतार
हाथ जोरि कहियो किरपाराम
दत्तज ब्राह्मण मटनग्राम
हमरो बल अब रहियो नहि काई
हे गुरु तेगबहादुर राई!"

मैथिलीशरण गुप्त इस प्रसंग को इस तरह रचते हैं :

"देव यथा दैत्यों के भय से
आए थे दधीचि के द्वार।
कुछ कश्मीरी ब्राह्मण आकर
गुरु से करने लगे गुहार।।
डूब न जाए हाय! हे गुरुवर
निज नंदनवन-सा कश्मीर।
बरसाते हैं नयन-काल-घन
धेनु-रुधिर-धारा का नीर।।"

और कुमार अशोक 'घायल' इसे कश्मीरी में ऐसे रखते हैं:

"राख्यस बयि निश त्रहरेमित्य
आमित्य रेष्य दरवाजस प्येठ।
केंह कॉशिर्य ब्रेहमन व्येसरेमित्य
द्रख विलजार आस्य आमित्य हेथ।।
युथ न सॉ जायि गछ्यि ही गुरुवर
लूबवुन शूबवुन सोन कश्मीर।
खॅहरनि खॅतिमत्य तिख्य मोकल सख्त
स्योद सादन यिनॅ दिनॅ हटि चीर।।"

महत्प्रयोजन की सिद्धि के लिए गुरु तेगबहादुर के प्राणोत्सर्ग की विक्षोभकारी घटना को मैथिलीशरण गुप्त अनासक्त भाव के साथ इन शब्दों में निरूपण करते हैं :

"ध्यानमग्न गुरु छोड़ चुके थे
मानो पहले ही निजी देह।
सिर कट गया और ऊपर को
बरसा उष्ण रुधिर का मेह।।"

कुमार अशोक 'घायल' ने इसे कश्मीरी में इस तरह पिरोया है :

"गुरु श्री अमि ब्रोंठुय ऑस्य जन
त्यॉगिथ शरीर तॅ दुनियॉही श्रेह।
म्वख गर्दनिगंड़ सोश्त सोश्त प्येव
तॅ रूदन वाहरोव सोश्त सोश्त श्रेह।।"

गुरु तेगबहादुर की अंतिम वेला में उनके ब्रह्मलीन योगी रूप का जो कारुणिक वर्णन मैथिलीशरण गुप्त ने किया है वैसा ही वर्णन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी 'बंदी वीर' कविता में बंदा वीर बैरागी के बर्बर अंत के समय उनकी भावातीत अवस्था का किया है। बोटी बोटी कटने पर भी एक कातर शब्द का उच्चार न करना उनके इसी योगीरूप का परिचायक है। देखें :

"सभा होलो निस्तब्ध
बंदार देहो छिंरिलो घातक
सरांशी करिया दग्ध
स्थिर होए वीर मरिल,
ना करी
एकटी कातर शब्द
दर्शन जन मुदिल नयन
सभा होलो निस्तब्ध"

अंत में कवि कुमार अशोक सर्राफ 'घायल' को मैं बधाई देता हूँ कि उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की कविता गुरु तेगबहादुर के अप्रतिम बलिदान पर लिखे काव्य का पूरी निष्ठा और सामर्थ्य के साथ का सार्थक रूपांतरण किया है। अनुवाद जितना सहज और संप्रेषणीय होता है उतना ही सफल भी होता है। बर्तोल्ट ब्रेष्ट के अनुसार कुछ लोग अनुवाद करते हुए कुछ ज्यादा ही अनुवाद करते हैं जो कुमार अशोक 'घायल' ने नहीं किया है। उनके अनुवाद में देशज महक है।

• • •

पूर्वोत्तर भारत में सिख गुरुओं की परंपरा और गुरु गोबिन्द सिंह का योगदान

संतोष बंसल

प्राचीन काल से ही पूर्वोत्तर भारत यानी मगध एवं पाटलीपुत्र जैसे नगर, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के मुख्य केंद्र थे। इन स्थानों पर सिख गुरुओं के योगदान को जांचने से पूर्व हमें नानक पंथ एवं इनकी गुरु परंपरा में दस गुरुओं के विषय में जानकारी लेनी होगी। सिख धर्म के आधार एवं नानक पंथ के प्रवर्तक गुरु नानकदेव जी भ्रमणशील साधु थे और उन्होंने पटना समेत भारत की सभी दिशाओं में यात्राएँ की थी। जिसके फलस्वरूप उनकी बाणी में सत्यता और यथार्थ का बोध है एवं समाज और धर्म के संबंध में उनकी विचारधारा अनुभूति तथा समन्वय पर आधारित है। संत कबीर की भांति उनके काव्य में भी निर्गुण ब्रह्म के प्रति उच्च कोटि की भक्ति भावना विधमान है तथा धार्मिक रूढ़िवाद, जाति के संकीर्ण बंधनों तथा अनाचारों के प्रति उन्होंने सदैव विरोध का स्वर उठाया। डॉ. तारकनाथ बाली के अनुसार, "नानक पंथ की स्थापना राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हुई, किन्तु उसका स्वरुप धार्मिक तत्वों के रंग से अनुरंजित है। नानक देव समन्वयशील और उदार प्रवृति के व्यक्ति थे, उनमें अद्‌भुत संगठन शक्ति, क्षमाशीलता और दूरदर्शिता विधमान थी।" (निर्गुण भक्तिकाव्य-हिंदी साहित्य का इतिहास, सम्पादक-डॉक्टर नगेंद्र) वास्तव में समाज में मानव की समरसता और समन्वयात्मकता में गुरु नानक देव की महान बाणी एवं लंगर अवधारणा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके कार्यों को उनके शिष्य गुरु अंगद देव और उनके बाद गुरु अमरदास, गुरु रामदास ने निरंतर चलाये रखा। सन् 1604 ईसवीं में नानक पंथ के पाँचवे गुरु अर्जन देव जी ने 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में संत कवियों तथा गुरु वाणियों को एकत्रित किया। इनके पश्चात गुरु हरगोबिंद सिंह, गुरु हरराय, गुरु हरकिशन साहिब ने भी इस परंपरा को जारी रखा। नौवें गुरु तेगबहादुर भी गुरु नानक द्वारा बताये मार्ग का अनुसरण करते रहे और उनके द्वारा रचित 115 पद्य 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित हैं। लगभग एक शताब्दी के बाद दसवें सिख गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने सबद जोड़े और 'गुरु ग्रन्थ साहिब 'को अपने बाद सिख धर्म का अनंत गुरु बताया।

वस्तुत गुरु गोबिन्द सिंह जी अपने पिता के व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए थे। विश्व इतिहास में धर्म एवं मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं सिद्धांतों की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने वालों में गुरु तेगबहादुर साहब का स्थान अमर है। उन्होंने कश्मीरी पंडितों तथा अन्य हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने का विरोध किया, जिस के कारण सन 1675 ईसवीं में मुगल शासक औरंगजेब ने सबके सामने उनका शीश कटवा दिया था। गुरुद्वारा शीशगंज साहिब उसी स्थान पर है, जहाँ गुरु जी ने कहा था शीश कटवा सकते हैं, केश नहीं। आततायी शासक की धर्म विरोधी और वैचारिक स्वतंत्रता का दमन करने वाली नीतियों के विरुद्ध गुरु तेगबहादुर जी का बलिदान एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना थी। यह गुरुजी के निर्भय आचरण, धार्मिक अडिगता और नैतिक उदारता का उच्चतम उदाहरण था। उस समय गुरु गोबिन्द सिंह की आयु केवल नौ वर्ष थी, जब उन्होंने अपने पिता को बाल सुलभता में कह दिया था, " आप से अधिक महापुरुष इस समय कौन होगा?" ऐसे जन्मजात तेजस्वी बालक का जन्म माता गुजरी जी की कोख से 22 दिसंबर, 1666 ईस्वीं को पटना में उसी स्थान पर हुआ था, जहाँ गुरु नानकदेव जी ठहरे थे। चूँकि उनके पिता गुरु तेगबहादुर उस समय अपने परिवार को यहाँ छोड़ आगे चले गए थे और असम में धर्म प्रचार के लिए कार्य कर रहे थे। दरअसल गुरु साहिब बंगाल व् असम की फेरी के दौरान, सासाराम और गया होते हुए यहाँ आए थे, इसीलिए माता गुजरी को प्रसवकाल निकट होने से उन्हें पटना में ही विश्राम करने के लिए कहा। यहाँ गुरु नानक की बाणी से प्रभवित पटना के श्री सलिल चौधरी ने अपने भवन के एक हिस्से को धर्मशाला बनवा दिया था, जहाँ बालक गोबिन्द राय ने अपने जीवन के प्रथम चार वर्ष बिठाये। तत्पश्चात महाराजा रणजीत सिंह ने गुरुद्वारे का निर्माण करवाया, जो तख़्त श्री हरिमंदर जी पटना साहिब के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान पर गुरु गोबिन्द सिंह के बचपन का पंगुरा (पालना), लोहे के चार तीर, तलवार, पादुका तथा हुकुमनामा गुरुद्वारे में सुरक्षित रखा हुआ है एवं माता गुजरी जी का कुआं आज भी यहाँ मौजूद है।

गुरु गोबिन्द सिंह जी का नेतृत्व सिख समुदाय के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिस समय उनका जन्म हुआ, तब मुगल शासक औरंगजेब की पंथक नीति बड़ी कट्टर थी। वह पंजाब की उस महान आध्यात्मिक परंपरा का घोर विरोधी था, जिसमे गुरुनानक देव जैसी महान आत्माओं का अवतरण हुआ था। गुरु गोबिन्द सिंह ने सत्य, न्याय और स्वतंत्रता के लिए अपने समूचे परिवार का बलिदान किया। उनके दोनों छोटे बेटों को सरहिंद के सूबेदार ने धोखे से पकड़ लिया और धर्म परिवर्तन के लिए राजी ने होने पर उन्हें दीवार में चिनवा दिया था। बड़े दोनों पुत्र पिता द्वारा लड़े चमकौर के युद्ध में काम आये, इस प्रकार उनका निजी बलिदान अकथनीय है। गुरुजी ने मुगल शासक को चुनौती देते हुए 'जफरनामा' के माध्यम से धर्म और मानवता का पाठ पढ़ाने का दुस्साहस किया। उसे स्पष्ट शब्दों में लिखा, ''तुम्हारा धर्म से कोई सरोकार नहीं है और न ही तुम मुहम्मद पर विशवास रखते हो। न तुममे ईमान परस्ती है और न ही मैं तुम्हारी किसी शपथ में विश्वास करूँगा।" कहते हैं इस पत्र को

पढ़ने के बाद औरंगजेब का हृदय परिवर्तन हुआ और उसने गुरु साहिब को उचित सम्मान दिया। मुक्तसर के घोर युद्ध के बाद गुरुजी दिल्ली आगरा होते हुए दक्षिण की ओर जा रहे थे, तो दिल्ली के निकट ही उन्हें औरंगजेब की मृत्यु की सूचना मिल गयी थी। वहाँ से नांदेड़ पहुँचे तो वहीं सन 1707 ईस्वीं में गोदावरी नदी के तट पर गुरु गोबिन्द सिंह की भेंट एक वैरागी साधु माधोदास से हुई। अतः मुगलों से टकराहट को बनाये रखने तथा अन्याय के उन्मूलन के लिए गुरुजी ने माधोदास को 'बंदा बहादुर' बनाकर अपने उत्तराधिकारी के रूप में पंजाब भेज दिया। उन्होंने भविष्य में एक आदमी के किसी प्रभाव, मोह, दबाव या संबंध भाव से ग्रस्त होकर दिए जाने वाले निर्णय से 'खालसा पंथ' को हमेशा के लिए मुक्ति दिला दी। अपनी इसी धारणा के अंतर्गत उन्होंने मानवीय गुरु परंपरा समाप्त करके 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' की ही गुरु का दर्जा दे दिया-'गुरु मान्यों ग्रन्थ।'

वास्तव में गुरु गोबिंद सिंह ने सन् 1699 में ही बैसाखी के दिन खालसा समूह की स्थापना की थी और पंज प्यारे भी नियुक्त किये थे। इसके लिए उन्होंने शंखनाद करते हुए अपने सेवकों में से पाँच बलिदानियों की मांग की, जो अपना शीश गुरु को भेंट करने को तैयार हों। जिनमें लाहौर का क्षत्रिय दयाराम, दिल्ली का जाट धर्मदास, द्वारका का धोबी हुकुमचंद, जगन्नाथपुरी का कहार हिम्मतराय और विदर का नाई साहबचन्द आगे आए एवं इन्होंने अपना सर्वस्व गुरु के हवाले कर दिया। गुरुजी ने इन्हे मीठा जल अमृत के रूप में सेवन करवाया और इनके हाथों स्वयं वही जल ग्रहण किया। तथा इनको पाँच प्यारों का नाम दिया और इन्हे पाँच चिन्हों को धारण करने की अनिवार्यता बताई। इसके बाद उन्होंने अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए खालसा के लोगों को तैयार किया एवं उन्हें पाँच ककारों का महत्त्व समझाया। क्योंकि इन पाँच संज्ञाओं का नाम 'क' अक्षर से था, इसीलिए इन्हे पाँच ककार कहा गया। सबसे ऊपर निरीह जीवों की रक्षा तथा शत्रु से लोहा लेने की वृति के प्रतीक रूप में 'कृपाण' धारण करने का नियम बनाया। 'कच्छ' धारण का अभिप्राय था संयम और केश धरना, जो भारतीय ऋषि-मुनियों की परंपरा का प्रतीक था। कंघा केशों को नित्य स्वच्छ रखने के लिए, तो दाहिने हाथ में 'कड़ा' धारण करना अपने की गुरु के बंधन को स्वीकारने का प्रतीक है। गुरु गोबिन्द सिंह जहाँ एक ओर असहाय, भयभीत,लोगों को उनकी सुप्तावस्था में पड़ी शक्ति को जागृत करने के लिए प्रेरित कर रहे थे, वहीं उनके हाथों में खड्ग उठवा कर उन्हें वीर सैनिक की मन:स्थिति में ला रहे थे। सिख गुरुओं की परंपरा में उनके उल्लेखनीय प्रयास और ऐतिहासिक योगदान को आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी ने व्यक्त करते हुए लिखा, ''गुरु गोबिन्द सिंह ने अद्भुत चमत्कार कर दिखाया। जनता निराश थी, उसमें किसी प्रकार का आत्मसम्मान नहीं रह गया था। ऐसे ही लोगों में उन्होंने महान शूरवीर पैदा कर दिए। मृत्यु के भय को मानों मन्त्र के बल से उड़ा दिया। सिर हथेली पर रखकर इन वीरों ने अन्याय को ललकारा और देखते-देखते इतिहास पलट दिया।" (दशम ग्रन्थ, कृष्णावतार)

भगवान राम (लव) के वंशज माने जाने वाले गुरु गोबिन्द सिंह में तलवार और लेखनी, शस्त्र और शास्त्र, दुर्गा और सरस्वती, संत और सिपाही तथा धर्म और वीरता का मणि-कांचन संयोग हुआ था। संवत 1723 से संवत् 1765 तक मात्र 42 वर्षीय उनका जीवन संघर्ष, त्याग और सेवा का अप्रितम संगम था। इतिहास में जिन महापुरुषों को वीर के विशेषण से नवाजा गया है, उनमें वे अग्रणी पुरुष थे। आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी के शब्दों में," गुरु गोबिन्द सिंह का नाम लेते ही, आज का भारतीय एक अपूर्व गौरव और उल्लास का अनुभव करने लगता है। 'वीर' शब्द के अंदर जितनी भी गरिमा, परंपरा-क्रम से, हमारे चित्त में संचित है, वह सब साकार हो उठती है। पवित्र चरित्र, अडिग उत्साह, अकुण्ठ साहस, अकृत्रिम औदार्य, अकुतोभय मनोबल, दीन-दुखियों का निश्चित सहाय, अत्याचार का असंदिग्ध प्रतिरोध, विद्या और तपस्या का नियत संरक्षण और मनोबल का अक्षय भण्डार ही 'वीर' है। गुरु गोबिन्द सिंह इन सब गुणों के मूर्तिमान रूप थे।" अगर आधुनिक शब्दावली में कहा जाए तो उनकी लोकतांत्रिक तत्वों और मूल्यों में गहन आस्था थी। उनका कथन 'पंच ही परमेश्वर और जनता ही जनार्दन है,' उनके इसी विश्वास को इंगित करता है। सामान्य लोगों के प्रति उनके हृदय में अपार स्नेह, दया, करुणा और सहानुभूति की भावना विद्यमान थी। वे सही अर्थों में गरीब नवाज थे, जो नीची जातियों में आत्म-गौरव और शौर्य का भाव भर रहे थे और उनके उत्थान एवं उत्कर्ष के प्रति सचेष्ट थे। इस कारण उनके समकालीन राजपूत राजा और ब्राह्मण सलाहकार उनसे रुष्ट रहते थे, "लेकिन गुरुजी ने इन तथा ऐसी अन्य विपरीत-विरोधी क्रिया-कलापों की चिंता किये बिना पतितों, दलितों, अनाथों, शोषितों और पीड़ितों को सहारा दिया, ऊपर उठाया। उनमें प्राण-शक्ति संचारित करके उन्हें तनकर खड़ा होना सिखाया। कहना न होगा कि हाशिए पर पड़े धूल-धूसरित लोगों को देवता बना दिया।" (लेख-गुरु गोबिन्द सिंह की वर्तमान प्रासंगिकता, लेखक डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल') गुरु गोबिन्द सिंह ने एक ओर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए कृपाणधारी खालसा की स्थापना की, वहीं राष्ट्र की संस्कृति, शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्म को चिरंजीवी रखने के लिए उन्होंने खालसा के समानांतर 'निर्मला' का अभियान भी चलाया। खालसा गुट योद्धा था तो निर्मला गुट ज्ञानवान। खालसा का प्रशिक्षण अस्त्र-शास्त्र से होता, तो निर्मला का प्रशिक्षण भाषा, संस्कृति, दर्शन और अध्यात्म के ज्ञान से होता। गुरुजी ने पाँच शिष्यों को चयनित करके संस्कृत भाषा एवं देश की संस्कृति और दर्शन के अध्ययन हेतु वाराणसी भेजा, ताकि वहाँ के शिक्षा केंद्रों में वे लोग ज्ञान प्राप्त कर सकें। उन्होंने स्वयं भी हिंदी भाषा में कई अच्छे और साहित्यिक ग्रंथों की रचना की, जिनमे-सुनीति प्रकाश, सर्वलोह-प्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धिसागर और चंडी चरित्र हैं। चण्डी चरित्र में दुर्गा सप्तशती की कथा बड़ी सुन्दर कविता में कही गयी है एवं प्रौढ़ साहित्यिक भाषा का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त गुरु गोबिन्द सिंह जी ने जापु साहिब, अकाल अस्तुति और ज्ञान प्रबोध जैसी रचनाओं को शब्द बद्ध करके जनता को ईश्वर के विराट रूप से परिचित करवाया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके साहित्यिक अवदान को रीतिकाल में रेखांकित करते हुए लिखा, ''यद्यपि सब गुरुओं ने थोड़े-बहुत पद भजन आदि बनाए हैं पर ये महाराज काव्य के अच्छे

ज्ञाता और ग्रंथकार थे। सिखों में शास्त्रज्ञान का अभाव इन्हें बहुत खटका था और इन्होंने बहुत से सिखों को व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि के अध्ययन के लिए काशी भेजा था। ये हिन्दु भावों और आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए बराबर युद्ध करते रहे। 'तिलक' और 'जनेऊ' की रक्षा में इनकी तलवार सदा खुली रहती थी। यद्यपि सिख-सम्प्रदाय की निर्गुण उपासना है पर सगुण स्वरूप के प्रति इन्होंने पूरी आस्था प्रकट की है और देवकथाओं की चर्चा बड़े भक्ति भाव से की है। यह बात प्रसिद्ध है कि ये शक्ति के आराधक थे।" (लेख-रीतिकाल के अन्य कवि, हिंदी-साहित्य का इतिहास) अगर हम इतिहास के एक कालखंड में किसी व्यक्ति विशेष के योगदान का आकलन करते हैं तो उसमे उसका सर्वागीण सहयोग शामिल होता है। वैसे भी एक कवि का लेखन और उसके शब्द जो व्यापक क्रांतिकारी प्रभाव पैदा करते हैं, वह उस काल, स्थान के लिए उसका अनन्य अनुदान होता है। उसी सहित्य के श्रवण व पठन से राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक बदलाव होता है। गुरु गोबिन्द सिंह स्वयं तो अच्छे कवि थे ही, अन्य कवियों के आश्रयदाता भी थे। उन्होंने साहित्य की रचना करने, करवाने और श्रोताओं को श्रवण करवाने के जो प्रयत्न किये, वह अद्वितीय है। गुरुजी अरबी, फारसी, पंजाबी, संस्कृत, ब्रज के श्रेष्ठ विद्वान थे। उन्होंने और उनके अनुयायियों ने गुणात्मक और गुणात्मक आधार पर बहुत सारा साहित्य रचा, जिसने भारत के पीड़ित लोगों का मनोबल ऊँचा करने में क्रांतिकारी भूमिका निभाई। गुरुजी के परलोक गमन के पश्चात माता सुंदरी जी ने भाई मनी सिंह जी को गुरुजी की बाणी एकत्र करने को कहा और काफी प्रयत्न करके उनका संकलन किया गया। इसी ग्रन्थ का नाम 'दशम ग्रन्थ' दिया गया, जिसमे जापु, बचित्र नाटक, अकाल उसतति, चण्डी चरित्र, चउबीस अवतार, रूद्र अवतार, खालसा महिमा, जफरनामा इत्यादि बाणी शामिल है। जहाँ गुरुजी शास्त्रों के प्रेमी थे, वहीं श्रेष्ठ शस्त्रों के भी प्रेमी थे। वे उत्तम रचना लिखने वाले कवियों के साथ, शस्त्र विद्या में निपुण लोगों का सम्मान करते थे। इसके विषय में डॉक्टर नरेंद्र सिंह विर्क अपने लेख में लिखते हैं, "जहाँ शास्त्र मनुष्य को ज्ञान देने के साथ आत्मिक बल व मनोबल प्रदान करते हैं, वहीं शस्त्र भी स्वयं रक्षा के लिए मनुष्य के मनोबल को ऊँचा करते हैं और वह भय रहित जीवन व्यतीत करता है। गुरुजी ने शास्त्र और शस्त्र से भारतवासियों को भय रहित कर ऊँच-नीच व् जात-पात की खाई को खत्म करके सम्मान से जीवन जीने की प्रेरणा दी।" ('गुरु गोबिंद सिंह : शब्द साधक', लेखक-उपाध्यक्ष पंजाबी साहित्य अकादमी) इस प्रकार उन्होंने जो भी साहित्य का सृजन किया, उसकी बाणी का आमजन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे दो टूक शब्दों में समाज में फैले भेदभाव का खंडन करते और इसके लिए सभी लोगों को चेताते। वे कहते कि ईश्वर को पाने के लिए मनुष्य तरह-तरह के भेष धारण करता है, किन्तु फिर भी उसे पहचानता नहीं। दोनों धर्मों की किताबों में एक ही स्वरुप का बखान है, उनके लिए ईश्वर-अल्लाह में कोई भेद नहीं। जिसके लिए गुरु गोबिन्द सिंह ने 'एक ओंकार' का अलख जगाते हुए कहा-अलह अभेख सोई पुरान अउ कुरान ओई एक ही सरूप सभी एक ही बनाउ है।' इसीलिए उनके समग्र योगदान की देखते हुए आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद को यह कहना पड़ा, ''हिन्दू और मुसलमान, दोनों उनके पैरोकार बने। ऐसे उदाहरण भारत के इतिहास में बहुत कम हैं।" फिर भी हिन्दू-मुस्लिम दोनों धरम के नाम पर कर्मकांडों में उलझे रहे, जिसे लक्षित करते हुए उन्होंने कहा-

कोउ भइओ मुंडीआ संनिआसी कोउ जोगी भइओ
कोउ ब्रह्मचारी कोउ जती अनुमानबो।

हिंदू तुरक कोउ राफजी इमाम साफी
मानस की जाति सबै एकै पहिचानबो।

मनुष्य बिना ज्ञान के 'काल फास के अधीन 'होकर जगत की चाकरी में लगा रहता है। वह लाख उपाय करता है-

तीरथ कोट कीए इसनान दीए बहु दान महा ब्रत धारे।
देस फिरिओ कर भेस तपोधन केस धरे न मिलै हरि पिआरे।

संत कबीर की तरह मूर्ति-पूजा के विरोध में भी उनका स्वर उठा-

काहे कउ पूजत पाहन कउ कछु पाहन में परमेसुर नाही।
ताही को पूज प्रभु करिकै जिह पूजत ही अघ ओघ मिटाही।
आधि बिआधि के बंधन जेतक नाम के लेत सभै छुटि जाही।
ताही को धयानु प्रमान सदा इन फोकट धरम करे फलु नाही।

वे धर्म के आडंबरों को लक्षित कर कहते हैं-कोउ बुतान को पूजत है पसु कोउ म्रितान को पूजन धाइओ। कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग स्री भगवान को भेदु न पाइओ।

उनका कहना था कि जीव संसार से प्यार करता है और गुरु उसके मन में परम चेतन के लिए प्यार उपजाता है। यह आध्यात्मिक प्रेम संसारिक प्रेम से अधिक मधुर और आकर्षक होता है, अतः जीव धीरे-धीरे प्यार से ही प्यार को तोड़ता है। अर्थात् नश्वर प्रेम को छोड़कर शाश्वत प्यार के साथ जुड़ता है। परमात्मा के साथ प्यार करना ही भक्ति है और यहीं से मनुष्य की आध्यात्मिक यात्रा शुरू होती है। परम प्रेम का एक अनन्य उदाहरण गुरु गोबिन्द सिंह के इस प्रसिद्ध ख्याल में मिलता है-

मित्र पिआरे नूं हाल मुरीदां दा कहिणा।
तुधु बिनु रोगु रजाईआं दा ओढ़ण नाग निवासां दे रहिणा।
सूल सुराही खंजरु पिआला बिंग कसाईआं दा सहिणा।
यारडे दा सानूं स्थरु चंगा भठ खेड़िआं दा रहिणा।

गुरु गोबिन्द सिंह जी भी संत कबीर की भांति 'ढाई आखर प्रेम' का प्रचार करते हुए, पाखंडों पर प्रहार करके ललकार कर कहते हैं-

कहा भयो जो दोउ लोचन मूंद के
बैठि रहिओ बक धिआन लगाइओ।
न्हात फिरिओ लीए सात समुद्रनि
लोक गयो परलोक गवाइओ।

बास कीओ बिखिआन सो बैठ कै
ऐसे ही ऐसे सु बैस बिताइओ।
साचु कहों सुन लेहु सभै
जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ।

उनका मानववादी-मानवतावादी जीवन दर्शन अत्यंत स्पष्ट था-मानस की जात सबै एकै पहचानबो,-एक ही सरूप सबै, एकै जोत जानबो।'

वे अपने पदों में गुरु नानक की बाणी 'इक ओंकार सतिनामु, करता पुरखु, निरभउ, निरवैरु, अकाल मूरति, अजूनी, सैभं, गुरु प्रसादि 'का ही उद्घोष करते हैं।-जागति जोत जपै निस बासुर एक बिना मन नैक न आनै।

पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत गोर मड़ी मट भूल न मानै।
तीरथ दान दइया तप संजम एक बिना नह एक पछानै।
पूरन जोत जगै घट मैं तब खालस ताहि नखालस जानै।

अंततः उपरोक्त शोध एवं अध्ययन द्वारा सिख गुरुओं की परंपरा एवं सन्दर्भ में दशम् गुरु गोबिंद सिंह के योगदान में हमने देखा कि मध्यकाल में न केवल पूर्वोत्तर भारत, बल्कि सम्पूर्ण आर्याव्रत क्षेत्र में इन के गुणों और कार्यों का अमिट प्रभाव पड़ा। वे अपने व्यक्तित्व में धर्म सुधारक, समाज सुधारक, कवि, देशभक्त और विश्व बंधुत्व के गुणों को समेटे हुए थे। यही कारण है कि श्री गुरु नानक देव जी के 550 प्रकाशोत्सव की शुरुआत गुरु गोबिंद जी की जन्मस्थली 'पटना साहिब' से की गयी, जहाँ सारे विश्व से सिख समुदाय के लोग पहुँचे। इस प्रकार सिख गुरुओं की बाणी का प्रचार-प्रसार हुआ एवं उनके आदर्शों को पुनः अपनाने की बात हुई। उनके द्वारा स्थापित मानवीय मूल्यों की पहचान हमें 'कोविड महामारी' के दौरान देखने को मिली, कि कैसे सभी सिख बन्धुओं ने गुरुद्वारों में लंगर तथा ऑक्सीजन का आवंटन किया? न केवल भारत, बल्कि विश्व के सभी देशों में बिना किसी भेदभाव के मानव सेवा का अद्भूत उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने ऊँच-नीच, जात-पात, देशी-विदेशी में फर्क न करते हुए इंसानियत की 'प्रेम पताका' का 'निसान' फहराया। गुरु गोबिंद सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पुस्तक का सम्पादन करते हुए प्रसिद्ध लेखिका कुमुद बंसल जी ने लिखा," इस मनुज-अवतार का हृदय विशुद्ध प्रेम से सराबोर था। उस कालखंड में प्रचलित कुरीतियों को दूर कर गुरु गोबिंद सिंह ने ऐसे समाज-सुधारक की प्रतिष्ठा पाई, जिसका सुधार पक्की तासीर वाला था। प्रेमपूर्ण मानव की भुजाएँ जब तलवार उठाती हैं, तब नीतियों की ऐसी कौंध भी साफ दिखाई पड़ती थी कि घनघोर युद्ध भी धर्म, प्रेम और सदाचार के दायरे में हो। नीतिपरक युद्ध करने वाला योद्धा अपनी प्रजा का न्यायोचित लालन-पालन करता था। गुरु गोबिंद सिंह की आनंदपुरी में कवि, पंडित, फकीर, सूफी, दुःखी-सुखी सभी पनाह लेते थे। गुरु गोबिंद सिंह यह सब इसीलिए कर पाते थे, क्योंकि वे आत्म-तत्ववेत्ता व ब्रह्मज्ञानी थे। इस ब्रह्मज्ञान का उपयोग आपने सांसारिक कार्यों को करने में किया।"

(भूमिका-दशम गुरु : जीवन दर्शन, पुस्तक)

• • •

पूर्वोत्तर भारत में सिख धर्म का उद्भव एवं विकास

-पपिंदर सिंह

"जित्थे जाए बहे मेरा सतगुरु, सो थान सुहावा राम राजे"

अविभाज्य पूर्वोत्तर, जो केवल असम के नाम से जाना जाता था, में सिख धर्म के मात्र दो गुरुओं, श्री गुरु नानक देव जी और श्री गुरु तेगबहादुर जी का पदार्पण और फिर सात राज्यों, असम, मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड तथा अरुणाचल प्रदेश आदि में विभाजित होने वाले सम्पूर्ण राज्यों में तेजी के साथ फैल रहे सिखों की शान उपरोक्त पंक्ति को ना केवल पूर्णतय: चरितार्थ करती है, बल्कि गुरुओं की सिखों पर बनी अपार कृपा को भी दर्शाती है। यह उन्हीं की कृपा का सदका है, जहाँ उनके चरण पड़े, वे स्थल तो तीर्थ स्थलों में परिणत हो गये पर जहाँ उनकी दया का एक कण भी पहुँचा, वहाँ गुरुद्वारे सुशोभित हो उठे और निशान साहब दूर से ही गुरुओं की उस महिमा का गुणगान कर अपनी शोभा को चतुर्दिक बिखेरने लगे।

श्री गुरु नानक देव जी की उदासियाँ (यात्राएं)

पूर्वोत्तर में तीर्थ स्थलों में परिणत होने का सौभाग्य जिन स्थलों को प्राप्त हुआ, जानने के लिए इस बात पर गौर करना अति अनिवार्य होगा कि सिख गुरुओं ने अपनी उदासी के दौरान किन-किन स्थलों की यात्रा की। श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी पहली उदासी (यात्रा) सन 1500 ईस्वी में शुरू की, जो सात साल लम्बी थी। 1506 ईस्वी में वे अपनी उदासी पूर्ण कर वापस पंजाब पहुँचे। अपनी इस यात्रा के दौरान उन्होंने 1505 ईस्वी में कामरूप (जो कि आज असम के नाम से जाना जाता है) का दौरा किया। इस दौरान वे कामाख्या मंदिर भी गए थे। कामाख्या मंदिर में पहुँचने का उनका मकसद वहाँ चल रही बलि प्रथा को बंद करवाना था। जन्म साखी में इस बात के साक्ष्य मौजूद हैं।

स्थानीय लोगों का मत है कि अपनी ढाका यात्रा के समय, मध्य असम में उनकी मुलाकात श्रीमंत शंकर देव जी से भी हुई थी। उन्होंने उन्हें अपने साथ चलने का न्यौता दिया। इस पर श्रीमंत शंकर देव ने कहा था कि विधि के विधान को आप भी जानते हैं और मैं भी जानता हूँ। हम दोनों एक ही काम कर रहे हैं, जो उस प्रभु ने हमें बख्शा है। परंतु हमारे रास्ते अलग हैं। अत: मुझे पूर्वोत्तर में रहकर ही अपना कार्य करना होगा। बाकी आपके जिम्मे है। इस तरह दोनों ही अपने-अपने रास्ते निकल पड़े थे। नौगाँव के बरखोला नामक स्थल पर बना श्री गुरु शंकर नानक महा विद्यालय उनकी इस बात की पुष्टि करता है।

अपनी ढाका यात्रा के उपरांत श्री गुरु नानक देव जी मौजूदा धुबड़ी के धानपुर नामक स्थान पर भी गए थे। रानी नूर शाह, (जिसका जिक्र गुरु प्रताप सूरज पृ. 803 में स्पष्ट तौर पर मिलता है) वहाँ की रानी थी। वह काले जादू में भी माहिर थी। उसने श्री गुरु नानक देव जी पर अपना जादू चलाना चाहा पर वह सफल नहीं हो पाई, जिससे उसने समझ लिया था कि श्री गुरु नानक देव जी कोई मामूली इंसान नहीं, बल्कि सिद्ध पुरुष हैं अत: वह उनकी शिष्या बन गई।

जब गुरु जी वहाँ से जाने लगे, उसने उनसे उनकी कोई यादगार वस्तु उसे देने का अनुरोध किया, जिसे कि वह सदा अपने पास रख सके। श्री गुरु नानक देव जी जंगलों में सफर के लिये अपने साथ सदा एक बर्च्छा रखा करते थे। वही बर्च्छा गुरुजी ने उसे दे दिया। उस स्थल पर आज बर्च्छा साहब गुरुद्वारा है। वहाँ का तालाब गुरुजी की इच्छा के अनुरूप बनाया गया था।

सौजन्य सिखनेट डॉट कॉम में डॉ. दविंदर सिंह ग्रेवाल के कॉलम के माध्यम से पता चलता है कि श्री गुरु नानक देव जी असम के नाजिरा (शिवसागर जिला) में भी गए थे, जहाँ उनके एक अनुयायी अलूनिया बाबा रहा करते थे। उनके नमक का सेवन न करने के कारण उनका नाम अलूनिया पड़ा था। अलूनिया बाबा की समाधि आज भी वहाँ मौजूद है। वहाँ एक उदासी संप्रदाय (पंथ विशेष) हुआ करता था, जो काफी लम्बी अवधी तक लोगों की सेवा करता रहा। उदासी संप्रदाय की साजना श्री गुरु नानक देव जी के द्वारा की गई थी, जिसका सारा जिम्मा उन्होंने महापुरुष बाबा श्रीचंद

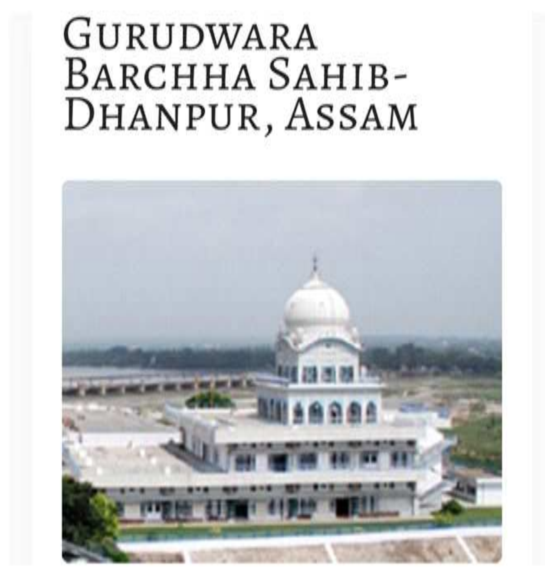

जी को सौंप दिया था। नाजिरा में आज भी इस संप्रदाय के लोग मौजूद हैं।

साथ ही यह जानकारी मिलती है कि इस स्थान का नाम नाजिरा भी श्री गुरु नानक देव जी के सम्मान में ही रखा गया। श्री गुरु नानक देव जी एवं श्री मंत शंकर देव जी के विचारों पर वहाँ काफी चर्चा हुई, जिसमें वहाँ के लोगों को काफी सामन्यजस्य देखने को मिला। चर्चा-आलोचना के लिये 'नानक-जीरा' शब्द का प्रयोग किया गया था। अत: श्री गुरु नानक देव जी के नाम के पहले अक्षर 'ना' तथा 'जीरा' को लेकर इस स्थल को 'नाजिरा' नाम प्रदान कर दिया गया।

श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी तीसरी उदासी सन 1514 से

सन 1518 के दौरान की जिसमें उन्होंने अरुणाचल का रुख किया, जहाँ उन्होंने मचूका से प्राय: 9 किलोमीटर दूर तपोस्थान में उस अकाल पुरख हेतु कड़ी तपस्या की। कहते हैं कि तपस्या में लीन श्री गुरु नानक देव जी पर एक भालू ने हमला कर दिया था जिससे वह पत्थर अचानक ऊपर उठ गया था, जिस पर गुरु जी बैठे हुए थे, जिससे भालू डरकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ। परंतु उस पत्थर पर उसके पंजों के निशान पड़ गये थे। उस स्थान पर गुरुजी के चरणों और पगड़ी के पड़े निशान भी हैं, जो आज भी देखे जा सकते हैं। इस स्थान पर 'माचूका साहिब' गुरुद्वारा है, जो चारों ओर से घिरे जंगलों एवं झरनों के बीच स्थित है। यह बहुत ही रमणीक क्षेत्र है। इस ऐतिहासिक गुरुद्वारे के पीछे एक लम्बी कथा है, जो आप "लोनली इंडिया डॉट कॉम" पर प्राप्त कर सकते हैं, और अगर साक्षात दर्शन करना चाहते हों, तो आप अंत मे दिए गए लिंक[1] पर जा सकते हैं। दर्शन करें और अपने जीवन को सफल बनाएँ।

अपनी इसी उदासी के समय वे तावांग से प्राय: 25-30 किलोमीटर आगे लो टाइगर हिल्स की दुर्गम पहाड़ियों पर चाइना बोर्डर के पास भी पहुँचे थे।

इस स्थान पर अस्थाई ढांचे की शक्ल में गुरुद्वारा

तीसरी उदासी स्थित है, जिसकी देख-भाल पंजाब रेजिमेंट की 27वीं बटेलियन करती है। यह स्थान ऐसा है कि जहाँ आज भी पहुँच पाना टेढ़ी खीर है क्योंकि इस तक पहुँचने के लिये खड़ी चढ़ाई का सामना करना पड़ता है। इस गुरुद्वारे की ऊँचाई मात्र 8 फुट, चौड़ाई 8 फुट तथा लम्बाई 30 फुट है जिसके साथ ही बुध मंदिर भी स्थापित है। अगर आप इस पावन स्थल के साक्षात दर्शन करना चाहते हों, तो आप अंत में दिए गए लिंक 2 पर जा सकते हैं।

श्री गुरु नानक देव जी अपनी इसी तीसरी उदासी में सन् 1516 ईस्वी में सिक्किम के चुंगथांग नामक जगह पर भी गए थे। चुंगथांग एक बंजर इलाका हुआ करता था। गुरुजी ने कुछ बीज हाथ में लेकर

वहाँ बिखेर दिये, जिससे वहाँ की बंजर जमीन भी उर्वर हो उठी थी। वहाँ के लोग इस चमत्कार को देखकर काफी खुश हुए। गुरु नानकदेव जी वहाँ के लोगों के लिए नानक लामा बन गए। अत: उस जगह आज एक ऐतिहासिक गुरुद्वारा स्थापित है, जो कि नानक लामा के नाम से जाना जाता है। इसका साक्ष्य उसी गुरुद्वारे में रहने वाले भाई जी हैं, जो सारा इतिहास स्वयं ही बताते हैं।

श्री गुरु तेगबहादुर जी की उदासियाँ (यात्राएं)

सन 1666 ईस्वी में श्री गुरु तेगबहादुर जी अपनी पहली उदासी (यात्रा) के दौरान उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए असम आए, जिस मार्ग से श्री गुरु नानक देव जी ने अपने पवित्र चरण असम की धरती पर रखे थे। अपनी इस यात्रा में वे ग्वालपड़ा (नई धुबड़ी) आए जहाँ उन्होंने एक धोबिन, जिसका नाम निताई था; और राजा राम राय (जो कि बाद में राम सिंह के नाम से जाना गया) के लम्बे समय से चल रहे विवाद का समाधान किया।

जब गुरुजी ने इस विवाद को समाप्त करने की कोशिश की, तो सबसे पहले निताई धोबिन ने अपनी जादुई शक्ति के द्वारा ब्रह्मपुत्र के पानी के जल स्तर को बढ़ाकर उसमें भयंकर हलचल मचाकर गुरुजी को डराने की कोशिश की। परंतु जब इसका गुरुजी पर कोई असर नहीं हुआ, तब उसने ब्रह्मपुत्र के दूसरे छोर से ही पत्थर की एक बहुत बड़ी शिला, जिसका प्रयोग कपड़े धोने के लिये किया जाता था, उठाकर गुरुजी पर दे मारी। गुरुजी के केवल हाथ दिखा देने मात्र से ही वह वहीं रुक गई। क्रोध में आई धोबिन ने तब पीपल का एक वृक्ष उठाकर गुरु जी पर दे मारा।

गुरु जी के पास आकर वह वृक्ष भी वहीं हवा में ही लटक गया। साक्ष्य के तौर पर ये सारी चीजें आज भी धुबड़ी साहिब गुरुदवारे में मौजूद हैं।

हारकर उसने गुरुजी के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। साथ ही उसने गुरुजी से कहा कि उन्होंने धोबिन की सारी शक्तियाँ नष्ट कर दी हैं, अब उसे कौन पूछेगा। तो गुरु साहिब ने उससे कहा कि वह चिंता ना करे। आज के बाद उसका नाम रहती दुनिया तक कायम रहेगा। लोग उस स्थल को धोबड़ी (धोबिन के नाम से दिया गया नया नाम) से जानेगी। आज वहाँ गुरु तेगबहादुर साह्ब के नाम का मशहूर ऐतिहासिक गुरुद्वारा है, जिसे धूबड़ी साहिब के नाम से भी जाना जाता है। इस गुरुद्वारे में श्री गुरु तेगबहादुर जी के शहीदी दिवस के अवसर पर बहुत भारी मेला लगता है। केवल अपने देश से ही नहीं बल्कि कुछ लोग विदेशों से भी इस पवित्र स्थल के दर्शन करने आते हैं।

अपनी इस यात्रा के दौरान श्री गुरु तेगबहादुर जी श्री राम सिंह जी के साथ कामाख्या मंदिर भी गए थे। कामाख्या मंदिर के पुजारी, श्री जगन्न नाथ जी के घर इस बात के साक्ष्य मौजूद हैं। यदि आप दर्शन करना चाहें तो अंत में दिए गए लिंक 3 पर जा सकते हैं।

राम राय (सिंह) के उपरांत जब उसका सुपुत्र रतन राय (सिंह) राजा बना, तब उसकी माता ने उसे बताया कि उसका जन्म श्री गुरु तेगबहादुर जी के दिए वरदान की ही देन है, जिसे सुनकर वह गुरुजी से मिलने के लिए आतुर हो उठा। वह श्री गुरु तेगबहादुर

जी से मिलने के लिये श्री अनंदपुर साहिब जा पहुँचा। पर श्री गुरु तेगबहादुर जी तो मुगलों द्वारा किए जा रहे जुल्मों को लिटाने के लिए पहले ही शहादत प्राप्त कर चुके थे, जिसकी खबर उसको नहीं थी। रतन राय गुरुजी के लिए अपने साथ कई उपहार लेकर गया था, जिसमें प्रशादी हाथी (हाथी पर बैठे गुरु जी को जिससे चंवर किया जाता था)

एक कला शस्त्र (जिसमें पाँच किस्म के हथियार) आदि थे। वहाँ पहुँचने पर उसने श्री गुरु गोबिंद सिंह जी महाराज को गद्दी पर शोभायमान पाया था। गुरुजी की शहादत की खबर पाकर वह अत्यन्त दुखी हुआ था। (इस तथ्य के साक्ष्य पंथ प्रकाश नवीन ग्रंथ के अध्याय 49 में मौजूद हैं)।

साधु-महात्माओं तथा अन्य सिखों की उदासियाँ (यात्राएं)

श्री गुरु नानक देव जी के उपरांत भी सिख अपनी उदासी (यात्रा) के दौरान असम आये। असम में अहोम राजाओं के शासन काल में सन 1820 ईस्वी में बर्मीज (जो उस वक्त मान के नाम से जाना जाता था) राजा की फौज ने असम राज्य पर हमला कर दिया था। उस वक्त असम के राजा चंद्रकांता सिंह हुआ करते थे। उन्होंने पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह से सहायता मांगी थी। उस वक्त के अकाल तख्त के जत्थेदार अकाली बाबा फुल्ला सिंह जी महाराज ने हुकमनामा प्राप्त कर बाबा चेतन सिंह जी के नेतृत्व में 500 निहंग सिंहों की सशस्त्र फौज असम के लिये रवाना की थी। यह लड़ाई इतिहास की बहुत ही भयानक लड़ाइयों में से एक थी, जो कि हादिराचक्की नामक स्थान पर लड़ी गई। आज यह क्षेत्र ब्रह्मपुत्र नदी का एक छोटा-सा टापू है। बाबा चेतन सिंह जी की शहादत के उपरांत इस युद्ध का नेतृत्व उनकी पत्नी माताजी (सम्मानसूचक शब्द) ने किया था, जिसमें प्राय: चार सौ सैनिकों ने शहादत पाई थी। इस युद्ध में असम अपनी रक्षा करने में सफल रहा। युद्ध के उपरांत बचे सैनिकों ने यहीं बस जाने का निर्णय लिया। इनमें कुछ नौजवान अविवाहित थे। उन्होंने यहीं स्थानीय कन्याओं से शादी कर ली। माताजी ने उन्हें बाटे वाला अमृत छ्काया और सिंह बनाया, परंतु उनकी भाषा असमीया रह गई। नगाँव जिले के चापरमुख नामक स्थान पर सन 1820 ईस्वी में निर्मित माताजी का गुरुद्वारा है, जो अपने आप में इस घटना का साक्ष्य है। दो तोपें, अमृतवाला बाटा और अन्य निशानियाँ आज भी वहाँ मौजूद हैं। यदि आप और जानना चाहें तो अंत में दिए गए लिंक 4 पर जा सकते हैं।

वर्तमान समय में यहाँ अच्छी खासी संख्या में असमिज सिख रहते हैं, जो रहत के पक्के हैं। इनमें से काफी लोग अमृतधारी हैं। सुबह-शाम नितनेम करते हैं। देखा जाए, तो ये लोग गुरमुखी भी जानते हैं, पर बोल नहीं पाते। अत: ज्यादातर असमिया ही बोलते हैं, परंतु श्री गुरु ग्रंथ साहब जी का पाठ उतने ही सही ढंग से करते हैं, जितना कि कोई कर सकता है। इनकी यह विशेषता सबको हैरान कर देती है।

सिख धर्म का उद्भव एवं विकास

उपरोक्त तथ्य इस बात को पूरी तरह से स्पष्ट कर देते हैं कि श्री गुरु नानक देव जी महाराज के असम आगमन से सिख सम्प्रदाय की नींव तो यहाँ पड़ चुकी थी। यह बात अलग है कि वे जहां-जहाँ गए, तात्कालिक रूप से केवल वहीं उनके शिष्य बनें, जिनमें अलूनीया बाबा, रानी नूर शाह, अरुणाचल प्रदेश एवं सिक्किम के कुछ लामा ही प्रमुख थे। परंतु यहाँ आकर असम में चल रहे काले जादू से जिस तरह उन्होंने असम वासियों को मुक्ति दिलाई, बलि प्रथा का विरोध किया। इन सबका बहुत बड़ा दूरगामी परिणाम देखने को मिला। श्री गुरु नानक देव जी महाराज के यहाँ से लौटने के उपरांत अनेक सिख साधु-महात्माओं की उदासियाँ हुई। जब-जब वे यहाँ आए, उनको भरपूर सम्मान दिया गया और उनकी बातों को ध्यान से सुना गया। उस वक्त के लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे। अत: ये साधु-महात्माओं की संगत करते और वे उन्हें जपुजी साहिब, रहरास साहिब आदि का पाठ कंठस्थ करवा दिया करते थे।

श्री गुरु तेगबहादुर जी के पदार्पण ने अविभाजित असम में सिख सम्प्रदाय की जड़ें पूरी तरह से जमा दी थीं। राम राय (सिंह) के उपरांत जब उसका सुपुत्र रतन राय (सिंह) राजा बने। ना केवल वह बल्कि उसकी कुछ प्रजा भी इस सम्प्रदाए की ओर आकर्षित हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि असमिज सिख परिलक्षित होने लगे। हांलाकि इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं थी।

उसके उपरांत पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने युद्ध में चंद्रकांता सिंहा की जो मदद की। इस युद्ध में ज्यादातर सैनिक तो शहीद हो गए और जो बचे, उन्होंने यहीं पर अपनी गृहस्थी बसाने की सोची। उनके इस फैसले ने भी यहाँ अमृतधारी असमिज सिखों को जन्म दिया। धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ने लगी, तो ये रोजगार की तलाश में असम के दूसरे हिस्सों में जाने लगे। ये मूलत: खेती-बाड़ी पर ही निर्भर थे। आज इनकी सबसे ज्यादा तादाद बरखोला नामक स्थान में निवास करती पाई जाती है। वहाँ एक बहुत बड़ा गुरुद्वारा है, जो हमारे पूर्व प्रधान मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह जी के सहयोग से बनाया गया है। वहाँ बच्चों को गुरमुखी सिखाने का भी कार्य किया जाता है। इसके अलावा लंका, होजाई, नगाँव आदि में भी अच्छी संख्या में इनका निवास है।

सिख सम्प्रदाय के विस्तार का अगला कारण था, हरदत्ता चौधुरी; जो एक क्रांतिकारी नेता था। 18वीं सदी की बात है, उसने तात्कालिक अहोम राजा के राज्य में चल रही उथल-पुथल के चलते उसके खिलाफ युध्द छेड़ना चाहा था, जिसके लिये उसे सिख सैनिकों की जरूरत पड़ी। सिख सैनिकों का नेता कुमदन सिंह था। शुरू में उन्होंने अहोम राजा के खिलाफ मिलकर लड़ाई लड़ी परंतु जिन शर्तों पर हरदत्ता चौधुरी उन्हें लेकर आया था, जब पूरी ना कर सका, तो सिख सैनिक उसी के खिलाफ हो गये और अहोम राजा से जा मिले थे। इसका साक्ष्य दायबाचन्द्र के हरदत्ता (1935) के नाटक में मिलता है, जो 1993 में साहित्य प्रकाश प्रकाशक द्वारा प्रकाशित किया गया था।

सिख सम्प्रदाय के विस्तार में अंग्रेजों की भी भूमिका अहम रही। 20वीं सदी में अंग्रेजों ने मेघालय में अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

नए गठित प्रशासन ने शिलांग को पूरी तरह से साफ एवं स्वच्छ रखने की योजना बनाई थी। इस काम के लिये अमृतसर के गुरदासपुर से सफाई कर्मियों को यहाँ लाया गया था। वे अपनी सारी सम्पत्ति पीछे छोड़कर यहाँ आकर बस तो गए, परंतु बाद में इन्हें ना स्थानीय लोगों ने और ना पंजाब के लोगों ने ही अपनाया। वे बिल्कुल अलग-थलग होकर यहाँ रहने को बाध्य हो गये।

अंग्रेजों ने मौजूदा असम राज्य में जब अपनी महती योजनाओं को पूरा करने की सोची, तो यहाँ रोजगार के काफी अवसर पैदा हो गए। जंगली इलाका होने के कारण यहाँ आने को कोई तैयार नहीं होता था। इस समय पंजाब के बहुत से युवा यहाँ आकर बस गए। कुछ तो अंग्रेजों की नौकरियों में लग गए और कुछ ने अपने खुद के व्यवसाय खोल लिए, जो आज बड़े-बड़े कारखानों तक में परिणत हुए नजर आते हैं। इन्हें भी स्थानीय लोग बाहरी मानते रहे।

शुरू-शुरू में असमिया सिखों को भी स्थानीय लोग बाहरी मानते रहे बाद में उन्हें स्वीकार कर लिया लेकिन पंजाब के उन सफाई कर्मियों को नहीं। असमिया सिख जहाँ एक ओर सिख धर्म की हर शर्तों को निभाते हैं, तो वहीं दूसरी ओर उन्हें असमिया संस्कृति और सभ्यता का भी पूरा ध्यान रहता है।

1971 के बंगलादेश युद्ध के दौरान असम में घुस आए शरणार्थियों के खिलाफ चले आंदोलन में असमिया सिक्खों ने स्थानीय लोगों का साथ दिया और उनके हक के लिए संघर्ष किया था। तब से ये इस राज्य का अभिन्न अंग बन गए।

सिख धर्म के विस्तार का मूल कारण श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी महाराज में परिलक्षित होने वाला सर्व-धर्म समभाव तथा इस धर्म की नीतियाँ भी रही हैं। जिस तरह से किसी एक वृक्ष का पौधा लगा दिया जाये और वह पौधा कोई स्वादिष्ट फल देने वाला हो, तो हर व्यक्ति उसका ध्यान रखना चाहता है। सिख धर्म के इस पौधे को पूर्वोत्तर की धरती पर श्री गुरु नानक देव जी ने ना केवल रोपने का काम किया, बल्कि समय से पहले ही उसके फल का स्वाद भी लोगों को चखा गए थे।

अव्वल अल्ला नूर उपाया, कुदरत से सब बंदे
एक नूर ते सब जग उपजया, कौन भले, को मंदे?

पूरी तरह से विसंगतियों से भरे पूर्वोत्तर के समाज को सिख धर्म की ऐसी ही बातें काफी रास आई क्योंकि इसमें ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव नहीं है। गुरुद्वारों के अंदर हो, या फिर लंगर करते वक्त; सभी एक साथ जमीन पर ही बैठते हैं। अमीर गरीब, राजा-रंक कहीं कोई अंतर नहीं। ऐसे ही न जाने और कितने ही सिद्धांतों ने अपने आप ही यहाँ के लोगों को अपनी ओर खींचना शुरू कर दिया।

पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों में बसे सिख और गुरुद्वारे

सन् 2011 में हुई भारतीय जनगणना के अनुसार असम, मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम, नगालैण्ड तथा अरुणाचल प्रदेश आदि राज्यों में विभाजित होने वाले सम्पूर्ण पूर्वोत्तर में सिखों की संख्या निम्न प्रकार से दिखने को मिली है-

राज्य	कुल जनसंख्या	राज्य का प्रतिशत
1. असम	20,672	0.07%
2. अरुणाचल प्रदेश	3,287	0.24%
3. मिजोरम	286	0.03%
4. मणिपुर	1,527	0.05%
5. नागालैंड	1,890	0.10%
6. त्रिपुरा	1,070	0.03%
7. मेघालय	3,045	0.10%

यों तो पूर्वोतर का शायद ही कोई कोना बचा हो, जहाँ गुरुद्वारों में निशान साहिब झूलते नजर ना आते हों। परंतु उपरोक्त ऐतिहासिक गुरद्वारों के अलावा पूर्वोतर के अन्य गुरदवारों की सूची, जितनी हमें प्राप्त हुई है, जो कि यहाँ के स्थलों पर बरसी गुरुओं की कृपा दृष्टि को प्रदर्शित करती है, निम्न है-

क्र.सं.	गुरुद्वारों के नाम	स्थल
1.	श्री गुरु सिंह सभा	बोंगाईगाँव
2.	गुरुद्वारा साहिब	बरपेटा रोड
3.	गुरुद्वारा साहिब	लाल माटी, गौहाटी
4.	गुरुद्वारा फैंसी	बाजार गौहाटी
5.	गुरुद्वारा श्री गुरु सिंह	सभाबेलतला
6.	गुरुद्वारा श्री गुरु सिंह	सभा जागी रोड़
7.	सैंट्रल गुरुद्वारा	(1825ईस्वी) बोरखोला
8.	श्री गुरु सिंह सभा	नानकसर, बोरखोला
9.	पुराना गुरुद्वारा	बोरखोला
10.	श्री गुरु सिंह	सभाहाथीपाड़ा
11.	श्री गुरु सिंह	सभा नौगाँव
12.	श्री गुरु सिंह	सभा लंका
13.	श्री गुरु सिंह	सभा होजाई
14.	लामडिंग	गुरुद्वारा साहिब लामडिंग
15.	श्री गुरु सिंह	सभा डिफू
16.	श्री गुरु सिंह	सभा दीमापुर
17.	श्री गुरु सिंह	सभा डेर गाँव
18.	श्री गुरु सिंह	सभा हांसीमारा
19.	श्री गुरु सिंह	सभा गोलाघाट
20.	गुरुद्वारा	रामगड़िया साहिब जोरहाट

21.	श्री गुरु सिंह	सभा शिव सागर
22.	श्री गुरु सिंह	सभा मोरान हाट
23.	श्री गुरु सिंह	सभा सोनारी
24.	श्री गुरु सिंह	सभा डिब्रूगढ़
25.	श्री गुरु सिंह	सभा तिनसुकिया
26.	श्री गुरु सिंह	सभा तिनसुकिया (कॉलोनी)
27.	श्री गुरु सिंह	सभा माकुम
28.	श्री गुरु सिंह	सभा दुमदुमा
29.	श्री गुरु सिंह	सभा तालाप
30.	श्री गुरु सिंह	सभा चारअली, डिगबोई
31.	श्री गुरु सिंह	सभा तेलखाद, डिगबोई
32.	श्री गुरु सिंह	सभा मार्घेरिटा
33.	श्री गुरु सिंह	सभा (सैनिकों का) लेखपानी
34.	श्री गुरु सिंह	सभा नामरूप
35.	श्री गुरु सिंह	सभा नाहरकटिया
36.	श्री गुरु सिंह	सभा दुलियाजान
37.	श्री गुरु सिंह	सभा हेल्म
38.	श्री गुरु सिंह	सभा तेजपुर
39.	श्री गुरु सिंह	सभा विश्वनाथ चारआली
40.	श्री गुरु सिंह	सभा ढेकिया जूली
41.	श्री गुरु सिंह	सभा पासीघाट
42.	श्री गुरु सिंह	सभा शिलांग
43.	श्री गुरु सिंह	सभा इम्फाल

यह सूची अंतिम नहीं है, हो सकता है कि इसके बाहर भी कुछ गुरुद्वारे हों, जिनकी जानकारी हमें ना हो। जानकार सज्जन इस सूची में यदि चाहे तो नाम जोड़ सकता है।

ये गुरुद्वारे गुरुओं के वे द्वार हैं, जहाँ से कोई कभी खाली हाथ नहीं लौटता। इनमें विराजमान प्रत्यक्ष गुरु श्री गुरु गुरुग्रंथ साहिब जी महाराज सभी की सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं, बशर्ते कि सच्चे हृदय से अपनी बात केवल उन तक पहुँचा दी जाए। यही कारण है कि एक साधक यहाँ साधना करने, एक अनुयायी अपने गुरु के दर्शन करने, एक मंगता अपनी झोली भरने, और ना जाने कैसी-कैसी मन्नतें पूरी करवाने लोग यहाँ आते हैं। गुरुद्वारों के बारे में भाई कानू सिंह जी ने एक बात बड़ी पते की कही है," सिखों के गुरुद्वारे विद्यार्थियों के लिए स्कूल, आत्म जिज्ञासा वालों के लिये उपदेशक, रोगियों के लिए दवाखाना, भूखों के लिए अन्नापूर्णा तथा मुसाफिरों के लिए विश्राम स्थल है।

गुरुद्वारे सिख गुरुओं की वह शान हैं, जो उन्हें सीधे तौर पर नाम जपो, किरत करो और वंड छको (बाँटकर खाओ) का आदेश देते हैं। कोरोना महामारी के दौरान गुरुओं के इस आदेश का पालन करने में पूर्वोत्तर के सिखों ने कोई कोताही नहीं बरती। गुरुओं के इसी आदेश के पालन ने उन्हें उस ऊँचे मुकाम पर ला खड़ा किया, जिसकी उम्मीद शायद कम ही थी।

उपलब्धि

पूर्वोतर के सिख यहाँ के स्थानीय लोगों में उसी तरह रच-बस, अथवा घुल-मिल गए हैं, जैसे दूध में पानी मिल जाता है। जहाँ एक ओर यहाँ के सिख यहाँ की स्थानीय भाषा को बिना रुके बोल जाते हैं, वहीं दूसरी ओर स्थानीय लोग भी उनकी भाषा को सीखने में रुचि दिखाते हैं। यहाँ मनाए जाने वाले हर गुरु पर्व में स्थानीय लोगों की भीड़ उमड़ती देखी जा सकती है।

वे केवल त्यौहारों में हिस्सा ही नहीं लेते, बल्कि गुरुओं पर अच्छा खासा व्याख्यान भी देते हैं। यहाँ के लोगों के हृदय बिल्कुल मोम के समान होते हैं, जो तनिक तीली के दिखने पर जल तो उठती है, परंतु उसमें उठने वाली प्रकाश की किरणों की भी कोई कमी नहीं होती।

यह उसी अकाल पुरख की कृपा ही है कि जिन सिखों को एक समय जिस स्थान पर अपने अस्तित्व को बचाने के लिये संघर्ष करना पड़ा था, उन्हीं सिखों द्वारा गुरुजी के दिखाए मार्ग का अनुसरण कर मानव सेवा में लिप्त होने के कारण मंचों से सम्मनित किया जाता है। हो भी क्यों न? कोई भी सिख जब अरदास करता है, तो वह अंत में यही कहता है," नानक नाम, चढ़ती कला; तेरे भाणे, सरबत दा भला। कुदरत के नियम के अनुसार, सभी का भला चाहने वालों का तो भला खुद ही होता है। यही कारण है कि आज यह कौम केवल पूर्वोत्तर में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में फल-फूल रही है।

संदर्भ सूची

1. जन्म साखी-पुरातन
2. गुरु प्रताप सूरज सिरोमणी कवि संतोख सिंह पृ. 803
3. सौजन्य सिखनेट डॉट कॉम डॉ. दविंदर सिंह ग्रेवाल के कॉलम
4. https://k/kyoutuAbe/kwiHca8cYEmk
5. https://k/kyoutuAbe/k&wXgsOimV&4
6. https://k/kyoutuAbe/khafY5BpgkDM
7. https://k/kyoutuAbe/kDntFMFQbU1c
8. हरदत्ता (1935) नाटक दायबाचन्द्र 1993 में साहित्य प्रकाश प्रकाशक द्वारा प्रकाशित।
9. सूरज प्रकाश ग्रंथ गुरु प्रताप
10. पंथ प्रकाश (नवीन) ज्ञानी ज्ञान सिंह जी निहंग नवीन ग्रंथ का अध्याय 49
11. असम के रहने वाले सिखों की रचनाएँ
12. सारी तस्वीरें नेट अथवा यूट्यूब वीडिओ के स्क्रीन शॉट द्वारा संग्रह की गई है, तस्वीरों का ब्यौरा निम्न है-
13. गुरुद्वारा बर्च्छा साहिब ऐतिहासिक गुरुद्वारा 10.लोनली इंडिया डॉट कॉम
14. अलूनिया बाबा की समाधि
15. अरुणाचल का मचूका साहिब ऐतिहासिक गुरुद्वारा
16. तावांग का तीसरी उदासी ऐतिहासिक गुरुद्वारा
17. सिक्किम के चुंगथांग में स्थित नानक लामा ऐतिहासिक गुरुद्वारा
18. धुबड़ी साहिब गुरुदवारा (गुरु तेगबहादुर जी)
19. धोबिन द्वारा गुरुजी पर फैंकी गई शिल
20. श्री गुरु तेगबहादुर जी के हाथ का लिखा पत्र
21. गुरुद्वारा माताजी, चापरमुख

शब्द सूर-कर्मन का सूर से 'सरबत दा भला'

आदित्य नाथ तिवारी

समाज के विकास क्रम में अवधारणाएँ एवं परिभाषाएँ बनती बदलती रहती हैं। इन्हीं अवधारणाओं से विचार का मूर्त रूप निर्मित होता है। यह विचार धीरे-धीरे सामाजिक संस्कार बन जाते हैं। संस्कृति निर्माण एवं व्यक्ति निर्माण में इन सामाजिक संस्कारों की अहम् भूमिका होती है। जब यही संस्कार स्वीकृत रूप से पीढ़ियों में स्थानांतरित होने लगते हैं तो परंपरा का विकसित रूप दिखाई देता है। प्रत्येक पीढ़ी का कर्त्तव्य है की सामाजिक संस्कारों में आने वाली परंपरा और रूढ़ि की पहचान करें और अपनी चेतना, विवेक से उसे अलग करें। परंपरा में जब निरंतरता आती है तभी आधुनिकता का प्रवाह बनता है। परंपरा + निरंतरता = आधुनिकता। परन्तु जब यही परंपरा समयानुसार देश, काल, स्थान के अनुसार परिवर्तित नहीं होती तो वह जड़ हो जाती है जिसे रूढ़ि कहते हैं। जब परंपरा में एकाधिकार या वर्चस्व के कारण स्थिरता आ जाती है तब रूढ़ि की भावना जनमानस की मानसिकता को कुंद कर देती है। परंपरा + स्थिरता (वर्चस्व) = रूढ़ि।

परन्तु जहाँ रूढ़ि को ही परंपरा मान लिया जाए तो फिर कर्मकांड, अंधविश्वास, अंधश्रद्धा, आडम्बर आदि का स्वरुप फैलने लगता है। भारतवर्ष में 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यही रूढ़िगत अवधारणाएँ समाज ढो रहा था। कोई ज्ञान से, कोई कर्मकांड से, सभी अलग-अलग यंत्र-तंत्र से समाज को डरा रहे थे और अंधकार की ओर ले जा रहे थे। यह समय भारत में सांस्कृतिक संक्रमण का था। जहाँ एक ओर आम जनमानस बाह्य आक्रमण से शोषण का शिकारथा तो दूसरी ओर आतंरिक शोषण से। गुरु नानक जी मध्यकालीन विकृतियों एवं अमानवीय आचरण को उजागर करते हुए कहतें हैं-"सत्य का अंत हो गया है, झूठ का चारों ओर विस्तार है। लोभ राजा है और पाप उसका मंत्री, झूठ सेनापति है और काम नायक है। प्रजा अंधी और ज्ञान विहीन है। वह मुर्दों की तरह कर भर रही है। शासक गण कसाई बन गए हैं। बेरहमी की छुरी उनके हाथ में हैं धर्म पंख लगाकर उड़ गया है। चारों ओर झूठ की काली अमावस छाई हुई है उसमें सच्चाई का चन्द्रमा कहीं नहीं दिखाई देता है।"[1]

सचि कालु कूड़ू वरतिआ कलख बेताल,
लबु पापु दुइ राजा महता कुड़ू होआ सिकदारु,
कामु नेबु सदि पूछिए बहि बहि करे बीचारु,
अंधी रयति गियान बिहूणी भाहि भरे मुरदारु।
(आसा दी वार म. 1 पृ. 468-469)
कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिया,
कुड़ू अमावस संचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।

ऐसे समाज में जब सारी अवधारणाएँ एवं परिभाषाएँ अपना अर्थ खो चुकी हों। समाज में जहाँ चारों तरफ भय, हिंसा और भयावह हानि की स्थितियाँ हों वहाँ गुरु जी की बाणी किस प्रकार अपनी भूमिका निभाती हैं; यह अन्वेषण का प्रश्न है। इस अन्वेषण में अनेक प्रश्न हमारे सामने आते हैं-नानक जी ने किस प्रकार तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया। यह व्यावहारिक समाधान क्या है? नानक जी की बाणी में योगी कौन है? इसमें निहित मुक्ति की क्या संकल्पना है? इसमें कौन धर्म का सार्थक अनुयायी है? यह सभी प्रश्न गुरु जी की बाणी के प्रति जिज्ञासा तो उत्पन्न करते ही हैं साथ ही इस संकल्पना की ओर भी ध्यान आकृष्ट करते हैं।

नानक बाणी में जीवन का आधार 'शब्द सूर-कर्मन का सूर' को माना गया है। अर्थात् जीवन में वचन का पालन करने वाले वीर एवं कर्त्तव्य का पालन करने वाले वीर ही सामाजिक आदर्श हो सकते हैं। इस आदर्श को प्राप्त करने वाला ही योगी हो सकता है। बाणी में तीन तरह के योगियों की चर्चा की गयी है ज्ञानयोगी, कर्मयोगी, राजयोगी।[2]

1. किरत कमाई

नानक बाणी में उद्यम करने वाले को कर्मयोगी कहा गया है। गुरु नानक जी स्वयं जीवन में व्यावसायिक कार्यों में संलग्न रहते थे साथ ही उद्यम को बढ़ावा देते थे। इसके माध्यम से गुरु जी ने पहली बार योगी की परिभाषा ही बदल दी। योगी वह नहीं है जो जीवन की सारी समस्याओं से दूर एकांत को प्राप्त करता है और भोजन के लिए गृहस्थों पर आश्रित रहता है साथ ही गृहस्थ धर्म की आलोचना भी करता है। बल्कि योगी वह है जो उद्यम कर अर्जन करता है। अपनी सभी सामाजिक एवं पारिवारिक आवश्यक्ताओं को पूरा करता है इसके साथ ही प्रभु स्मरण करता है वही सच्चा योगी है

तत्कालीन समाज में योगियों पर गुरु जी कहते हैं"
जोगी बसि रहहु दुबिधा दुखु भागै
धरि धरि मांगत लाज न लागैआदि ग्रन्थ (पृ. 903)

अर्थात् हे योगी! तुम ईश्वर से एकाकार होने का दावा करते हो और तुम्हें कोई चिंता व कष्ट नहीं है तो क्या तुम्हें भिक्षा के लिए दर दर की ठोकरें खाते लाज नहीं आती)। गुरु जी को अपनी तीसरी भारत यात्रा के दौरान योगियों से संवाद करने का अवसर मिला। तिब्बत की यात्रा के दौरान योगियों से संवाद का वर्णन मिलता है

गृहस्थ जीवन के महत्त्व को गुरु जी ने इस प्रकार बताया है-
पुत्र कलत्र विचे गति पाई, गृहु बनु समसरि सहजि सुभाइ,
बाणी में जीवन मुक्ति का स्वरूप एक ही है की जीवन को सम्पूर्णता

में जीना ही कर्मयोगी का लक्षण है।

2. नाम स्मरण (ज्ञान योगी)

भारतीय संस्कृति की परंपरा में शब्द ब्रह्म की अवधारणा विद्यमान रही है। शब्द से ही सृष्टि का कण-कण सम्बद्ध है। इस परंपरा का व्यापक प्रसार नानक बाणी का आधार है। बाणी में मूर्तिपूजा अर्थात् धर्म के बाह्य स्वरुप से निकल कर, नाम स्मरण अर्थात् मनुष्य की आंतरिक चेतना को उद्बुद्ध किया गया है। स्वयं को जाने बिना जगत सत्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए नानक बाणी में आत्मज्ञान एवं आत्मचिंतन को नाम स्मरण के माध्यम से प्राप्त करने का मार्ग सुझाया गया है ज्ञान के चार स्वरुप निम्न हैं-

पहला, नाम स्मरण,

सुख सहजे जपि रिदै मुरारी,

नामि रते सदा तपु होइ,

जो सदा अपने हृदय में नाम प्रेम की ज्योति जलाए रहते हैं-वे पूर्ण शांति और आनंद का उपभोग करते हैं। नाम जपना वास्तव में आतंरिक सुदृढ़ता एवं आत्मविश्वास से भरे होने का प्रतीक है। स्वयं को जाने बिना जगत से जुड़ना श्रेयस्कर नहीं है।

दूसरा चरण अंतर प्रकाश का है।

'सब कुछ घर में बाहर नाहीं, जो बाहर ढूंढें सो भरम भुलाई'

डॉ. सीताराम बाहरी कहते हैं" गुरु नानक ने सहज योग को सामान्य, स्वाभाविक और व्यावहारिक जीवन स्वीकार किया है, जिससे मानसिक संतुलन और सामाजिक समता प्राप्त होती है।[3]

तीसरा चरण' स्थित प्रज्ञ' रूप है जो गुरुमुख को प्राप्त होता है और चौथे चरण में जीते जी ही मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है। वास्तव में यह संकल्पना जीवन को साधारण से असाधारण की ओर ले जाने का मार्ग है। कोई भी व्यक्ति इस मार्ग पर चलकर जीवन मुक्त हो सकता है उसके लिए किसी आडम्बर और विशेष क्रियाकलाप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि डॉ. गुरुमीत सिंह अपने लेख" वैदिक धर्म और गुरु नानक बाणी में उक्त पंक्ति को रेखांकित करते हैं-

"एकम एकंकारु निराला, अमरु अजोनी जाति न जाला"

सभी धर्म एक से हैं। एक परमात्मा ही देवताओं का देवता है तथा उसी से सभी आत्माएँ पैदा होती हैं। उस की कोई जाति नहीं है। यह संकल्पना उस अवधारणा को निराधार बताती है जो कहता है कि निम्न भौतिक क्रियाकलापों से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। नाम स्मरण को नानक बाणी में तीर्थ और दशहरा पर्व की संज्ञा दी गयी है।

3. राज योग (सेवा धर्म)

मानव एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक होने के साथ ही उस पर समाज का दायित्व भी है जो वह भिन्न-भिन्न माध्यमों से पूरा करता है। नानक बाणी में समाज की इकाई होने के कारण व्यक्ति को सेवा धर्म करने हेतु प्रेरित किया गया है।

घालि खाइ किछु हथहु देइ, नानक राहु पछाणहि सेई,

अर्थात् मनुष्य को चाहिए की वह स्वयं जीविकोपार्जन करे तथा उस में से कुछ दूसरों को दान करे तभी वह वास्तविक मार्ग को पहचान सकता है। सिख धर्म में दसवंद की परंपरा इसी सेवा भाव का परिणाम है।' पहले बाँटो फिर खाओ' की परंपरा ने लंगर सेवा की श्रृंखला आरम्भ कर दी। जहाँ तत्कालीन धर्मों में संसार को त्यागने का भाव दीखता है वही नानक बाणी में सेवा के माध्यम से राज योग को प्राप्त करने का योग प्रस्तुत होता है। धर्म का मार्ग सहज है और जीतना सहज है उतना ही भावपूर्ण। धर्म जीने की पद्धति है जिसको स्वयं गुरु जी जीते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी पीढ़ियाँ उस मार्ग पर चल देती हैं। यह योग है, साधना है, जीवन है सबका घुला-मिला रूप यह राज योग है-

सेवा सुरति सबदि विचारि, जपु तपु संजमु हउमै मारि।

जीवन मुकतु जा सबद सुनाए, सची रहत सचा सुखु पाए।।

गुरु नानक देव जी की बाणी सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार तो करती ही है साथ ही समाज की संकल्पना को बेहतर बनाने हेतु समानांतर एक मार्ग भी प्रशस्त करती है। यह मार्ग जिसका आधार शब्द सूर-कर्मन का सूर का है। इस मार्ग में सन्यास के बजाय गृहस्थ जीवन का योग है, आडम्बर के बजाय नाम स्मरण है, और हिंसा के बजाय सेवा है। डॉ. सीतराम बाहरी कहतें हैं" नानक ने जनता के सामने यह सिद्धांत रखा की पवित्र जीवन स्वयं सत्य से भी अधिक मूलयवान है। वस्तुत: वह सामाजिक जीवन से सभी प्रकार की तन्द्रा, खिन्नता तथा निराशा को निकल फेंकना चाहते थे और जनता को कथनी और करनी-दोनों में सत्यपूर्ण एवं क्रियाशील बनाना चाहते थे" इसी दृढ़ शक्ति से गुरु जी ने नगर बसाये, जीवन पर्यन्त यात्राएँ की और सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्वों को पूरी तरह निभाया। यही कारण है उनकी संकल्पना-ज्ञानयोगी, कर्मयोगी एवं राजयोगी पीढ़ियों द्वारा अनुसरित हुआ। इन तीनो के पूर्ण योग में ही जीते जी मुक्ति है अर्थात्" नानक नाम चढ़ती कला तेरे भाणे सरबत दा भला।"[4]

गुरु जी की बाणी मानव जीवन की सार्थक इकाई बनने हेतु प्रेरित करती है। एक ऐसा समाज जहाँ उद्यमशील लोग, नाम जप, ज्ञान, तप एवं गृहस्थी से समृद्ध जीवन को उसकी सम्पूर्णता में जियेंगे जहाँ लोगों का आत्मबल आत्मविश्वास से भरा होगा वहाँ अंधविश्वास, पाखण्ड एवं अज्ञानता का वास नहीं होगा। जहाँ लोग इतने सशक्त होंगे कि कोई आक्रांता नजर उठा कर देखने का साहस न कर सकेगा। उनकी बाणी को पीढ़ियों ने जिया है। अब यह बाणी जनमानस की चेतना का अंग बन गयी है। सिर्फ प्रान्त ही नहीं देश-विदेश में यह संस्कार विविध माध्यमों में भ्रमण कर रहे हैं। यह नानक बाणी की कीर्ति का ही विस्तार है। डॉ. इकबाल कहते हैं-

"फिर उठी आखिर सदा तौहीद की पंजाब से,

हिन्द को एक मर्द कामिल ने जगाया ख्वाब से"

आधार ग्रन्थ : श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी

संदर्भ :

1. लेख-डॉ. जयभगवान गोयल, गुरुओं का मानवतावाद और आधुनिक सन्दर्भ में उसकी सार्थकता, सिक्ख चिंतन का आधुनिक संदर्भ,पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला (पृ. 16-17)
2. प्रो. प्यारा सिंह पदम्, सिख इतिहास,
3. सं. डॉ. शोभा कौर, भारतीय समाज और सिख गुरु, शंकर पब्लिकेशन, दिल्ली, 2016 (पृ.69)
4. लेख-समता और मुक्ति के अग्रदूत-गुरु नानक : डॉ. सीताराम बाहरी (पृ-62)

• • •

गुरु के आर्थिक विचार : आज के युग में प्रासंगिकता

जयरामदास

आज की स्थिति

गुरुओं ने जिस सामाजिक-आर्थिक वातावरण में अपने विचार व्यक्त किए थे उसमें कोई बड़ा परिवर्तन नहीं आया है। आज भी स्थिति लगभग वैसी ही है। यदि कोई परिवर्तन हुआ है तो वह इससे बुरा ही है। बिगड़ी हुई स्थिति के तीन कारण है: (क) शिक्षा के प्रसार के साथ भगवान, दैवी शक्ति या परलोक में नर्क का भय मुक्त हो गया है। इसने किसी भी प्रकार आर्थिक, नैतिक या अन्य कोई भी अपराध करने में लोगों के हौसले को बढ़ाया है, (ख) अपराध करने के लिए काम में लाए जाने वाले उपकरण और अधिक परिष्कृत हो गए हैं जिसमें कानून और व्यवस्था की स्थिति खराब हुई है, (ग) वैज्ञानिक प्रगति के कारण धर्म का प्रभाव कम हो गया है। इसके फलस्वरूप नैतिक स्तर में गिरावट आ गई है जिससे चरित्र का निरंतर पतन हो रहा है।

जब गुरु नानक ने त्यागी व्यक्ति का विकास करने का प्रचार किया था वैसे हमारे ग्रह में दुर्लभ था और आज जिन व्यक्तियों से हमारा समाज बना है वह गुरमुख की अपेक्षा पशु ही हैं। वे वासना, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार जैसी बुराइयों से भरे पड़े हैं। परिणामस्वरूप वे त्यागी होने की बजाय अपने में ही अधिक केंद्रित हैं। धन अपने पक्ष में करने की प्रजातांत्रिक प्रणाली ने व्यक्तियों के निहित स्वार्थों का पूरा समर्थन किया। व्यक्ति और सामान्य जनता के कल्याण के बीच संघर्ष आड़े आ गया है और समाज का विघटन न केवल धर्म, जाति और रंगभेद के कारण हो रहा है। बल्कि बढ़ती हुई आर्थिक विषमताओं के कारण भी हो रहा है। संपत्तिशाली लोगों और संपत्तिहीन लोगों के बीच संघर्ष ने जोर पकड़ लिया है। दोनों पक्षों के बीच एक बड़ा संघर्ष होने के स्पष्ट आधार तैयार हो गए हैं। राजाओं और नवाबों के बीच होने वाले झगड़ों का स्थान राजनीतिक अस्थिरता और राज्य के विघटन ने ले लिया है। आगजनी, लूट, डाके, कत्ल और बलात्कार आज आम होते जा रहे हैं। आर्थिक शक्ति जो अब औद्योगिक और व्यापारिक वर्ग के हाथ में है वह सरकार और प्रेस को अपनी स्थाई सिद्धि के लिए बांधे हुए है। प्रशासन तंत्र ऊपर से लेकर नीचे तक पूरा भ्रष्ट है और काहिल अधिकारी वर्ग अपने दही-बैंगन के पीछे भाग रहा है। प्रतीत होता है कि जैसा कि गुरु नानक ने भविष्यवाणी की थी कि स्थिति पूरी तरह से बिगड़ चुकी है। गुरु का कहना था कि उनके समय कलयुग शैशवावस्था अवस्था में था। अब यह बढ़कर बालकपन की अवस्था में आ गया है। गुरु नानक की शिक्षाएँ, जो आधुनिक अवधि के अग्रचेता थे, विद्यमान स्थिति में पहले के किसी भी काल की अपेक्षा अधिक संगत है।

उपभोग : आज के युग की उत्पादन प्रक्रिया में मशीन प्रधान भूमिका अदा कर रही है और इसने श्रम को लाभकारी बना दिया है। श्रमिक वर्ग के शोषण और कम मजदूरी की अदायगी के कारण श्रमिकों के उपभोग का स्तर घटकर अवमानवीय हो गया है। नियोक्ता या उद्यमकर्ता श्रमिक वर्ग को उससे कहीं कम अदायगी करते हैं जो वह नियोक्ता से अर्जित करता है। फलस्वरुप श्रमिक वर्ग की मजूरी किशोरी की जाती है और उसे उद्यम करता की पूंजी में बदल दिया जाता है। इस प्रकार कमाये गए लाभ में श्रमिक को हिस्सा नहीं मिलता। परिणामस्वरुप अमीर और गरीब के उपभोग स्तर के बीच अंतर अकल्पनीय अंतर हो गया है। उत्पादक वर्ग केवल श्रमिकों को भुगतान नहीं करता बल्कि एक या दूसरे आधार पर करों से भी बच रहा है। इस प्रकार वह उस उच्च उपभोग-स्तर का भोग करता है जो 'घल्ल खाई' का परिणाम नहीं हो सकता।

गुरु नानक कभी नहीं चाहते कि कोई भी आदमी भूख से मरे। दूसरी ओर उन्होंने विलासिता पूर्ण जीवन और एवं अवमानवीय जीवन के बीच एक संतुलन स्थापित किया था। उचित उपभोग स्तर का वर्णन करने के लिए उन्होंने शब्द 'चखो' का प्रयोग किया। इसका अर्थ यह है कि हमारी वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति उचित रूप में होनी चाहिए जिससे कि हम अपने स्वास्थ्य का उचित स्तर बनाए रख सकें और त्यागी व्यक्ति बन सके। ऐसे व्यक्ति से जो पहले ही भूख से पीड़ित हो किसी त्याग की आशा नहीं की जा सकती। जब नानक ने त्याग करने वाले व्यक्ति की बात कही थी, तब आशय कैसे न्यूनतम जीवन स्तर से अधिक का त्याग करने से था जिसका प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उपभोग करने की अपेक्षा की जाती थी

नानक जी ने आवश्यकताओं की बहुलता और उनमें बढ़ोतरी करने के विरुद्ध चेतावनी दी थी क्योंकि यह दु:ख का स्त्रोत है। असंतुष्ट इच्छा से समाज में निराशा, असंतोष और संघर्ष होता है। इसके अतिरिक्त उपभोग के स्तर को सभी समय के लिए अनियंत्रित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती। समाज के एक वर्ग के स्तर में वृद्धि का अर्थ अंतिम विश्लेषण करने पर समाज के एक अन्य वर्ग को जीवना आवश्यक वस्तुओं से वंचित करना होगा। उपभोग का अधिक ऊँचा स्तर समाज को अकर्मण्य,सुस्त, उत्पादक, फिजूलखर्च और दूसरों पर निर्भर बना देता है। ऐसे किस्म का समाज स्थिर, गतिशील और जीवन के प्रति ढीला बन जाता है। जीवन में कोई चुनौती नहीं रहती इसमें कोई रोमांच, उत्साह और संघर्ष नहीं रहता। इस प्रकार की स्थिति में पहुँचे हुए राष्ट्र का शोषण का शिकार होना आवश्यभावी है।

दूसरी ओर उच्च स्तर के उपभोग से प्राकृतिक साधनों का प्रयोग न्यूनतम समय में होगा जिसके फलस्वरूप अंततोगत्वा पावर या दूसरी सामग्री की कमी पैदा हो जाएगी।

विभिन्न देशों में वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों ने अपनी ही मानव जाति के सीमित प्राकृतिक साधनों के अति प्रयोग और दुरुपयोग के विरुद्ध चेतावनी दी है। उनका कहना है कि यदि हमने विद्यमान ज्ञात स्रोतों का उपयोग की मौजूद दर से करना जारी रखा तो पेट्रोल का भंडार विद्यमान सदी से अधिक नहीं चलेगा। कोयला भी अधिक से अधिक 50 वर्षों तक और चल सकेगा। अन्य वस्तुगत स्रोत भी असीमित नहीं है। यदि हमने अपने को अनुशासनबद्ध न किया तो संभवत: दो सदी के पश्चात हमारे वंशजों को पुन: मानवीय इतिहास का श्रीगणेश करना पड़ेगा। उन्होंने, विशेषकर गुरु रामदास तथा इनके बाद अन्य गुरुओं ने आर्थिक विकास पर जोर दिया और व्यापार तथा उद्योग को प्रोत्साहित किया। दूसरी ओर उन्होंने नैतिक सिद्धांतों पर आधारित व्यापार को बढ़ावा दिया तथा अपने अनुयायियों को इसे गरीबों के साथ बांटने का उपदेश किया। इस प्रकार प्राप्त धनराशि सार्वजनिक प्रयोजनों पर खर्च की जाती थी, व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति पर नहीं। यदि हम नानक जी के उपदेशों पर चले तो उत्पादन अनेक गुना बढ़ जाएगा और कमी होने की संभावना नहीं होगी। कोई भी वर्ग परोपजीवी नहीं बनेगा। कोई भी दूसरों का शोषण नहीं करेगा, जिससे सद्‌भावपूर्ण समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

विनिमय के क्षेत्र में गुरु नानक ने व्यापारियों को हिदायत दी थी कि वे अपने व्यापार में ईमानदारी बरतें, माप-तौल ठीक से करें, जमाखोरी न करें और समाज को उचित दाम पर सामग्री मुहैया करें। उन्होंने साहूकारों और उधार देने वालों को उपदेश दिया कि वह अत्याचार न करें बल्कि गरीबों के प्रति दयालुता बरतें। गुरु की शिक्षाएँ आज भी इतनी प्रासंगिक हैं कि आधुनिक राज्य ने माप-तौल मिलावट जमाखोरी आदि के बारे में अनेक कानून बनाकर उपभोक्ता की रक्षा करने और व्यापारी पर अनुशासन बनाए रखने का उत्तरदायित्व स्वयं संभाल लिया। गुरुओं ने खासतौर से संपत्ति न रखने की सलाह दी। 'यह मेरा है और यह तेरा है' इसे भूल जाना चाहिए। उनके अनुसार संपत्ति उत्पादन के साधनों के स्वामियों द्वारा इनका प्रयोग सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाना चाहिए। आज भी यदि व्यापारी गुरु के परामर्श का अनुसरण करें और व्यापक समाज के प्रति अपने दायित्वों की भावना महसूस करें तो राज्य के दमनकारी कानूनों की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

सिख गुरुओं ने धन संपत्ति के उपयुक्त/ उचित वितरण के बारे में अधिक कहा है। अमीरों और गरीबों के बीच असमानताएँ उस समय भी इतनी स्पष्ट थी और व्यापक थीं कि गुरु उस स्थिति पर खेद पूर्ण उद्‌गार प्रकट करते हुए बिना नहीं रह सके। जब नानक जी लाहौर में थे तब उन्होंने उसका वर्णन अत्याचारपूर्ण नगर के रूप में किया था और दिल्ली के समीप बेघर गरीबों के मुकाबले में अमीरों की अट्टालिकाओं पर खेद व्यक्त किया था। शोषण के उपकरणों के पूर्ण परिष्कृत हो जाने से असमानताएँ और अधिक व्यापक व्यापक हो गई हैं और राज्य गरीबों के प्रति अपनी जिम्मेदारी के विषय में अधिक सावधान हो गया है। इसलिए इस प्रकार की असमानताओं के समाधान के लिए नानक जी ने उस समय जो सुझाव दिए थे वह आज भी बहुत उपयोगी हैं। गुरुओं ने हमारे उपभोग स्तर के लिए एक शर्त लगा दी और यह शर्त थी'प्राथमिकता के अनुसार वितरण'। एक व्यक्ति द्वारा अच्छे स्तर के उपभोग का आनंद भी उठाया जा सकता जब उत्पादित माल को उत्पादन के कारकों में उपयुक्त रूप में वितरित किया गया हो। 'वंड के छको' वितरण को उपभोग से वरीयता दी गई है। इसी के साथ, नानक जी का अमीरों को उपदेश था कि वे यह न सोचें कि उनके पास जो धन संपत्ति है वह उनकी अपनी है बल्कि उन्हें यह सोचना चाहिए कि यह सब की है।

कराधान के क्षेत्र में गुरु नानक ने खेद प्रकट किया कि राज्य भी स्वयं अपनी प्रजा का शोषण करने वाली संस्था के रूप में कार्यरत है। किसानों, दस्तकारों और व्यापारियों को राज्य को भारी करों का भुगतान करना पड़ता था। जब कभी परिस्थितियाँ या प्राकृतिक घटनाएँ उत्पादन-प्रक्रिया के प्रतिकूल होती थी तब भी करदाता के प्रति कोई नरमी नहीं बरती जाती थी। भारी करों के साथ-साथ लोगों को भ्रष्ट काजी तथा हुक्मरानों को रिश्वत देनी पड़ती थी। आज भी स्थिति बेहतर नहीं है। तथाकथित आधुनिक प्रजातांत्रिक राज्य, कल्याणकारी क्रियाकलाप के छद्मवेश में; मध्य युग के अपने समकक्षों की अपेक्षा अधिक शोषण करने वाला बन गया है। आधुनिक राज्य के कर लगाने वाले लोग, करदाता से उसके अल्प साधनों से अपना हिस्सा लिए बिना किसी को नहीं छोड़ता, यहाँ तक कि गरीब से गरीब को भी नहीं छोड़ते। अप्रत्यक्ष कर इतने आम और अनेक हो गए हैं कि प्राय: सभी वस्तुओं पर जिनका गरीब लोग उपभोग करते हैं, भारी कर लेते हैं। फलस्वरुप श्रमिक वर्ग की क्रय शक्ति समाप्त होती जा रही है और उसे जीवन-रक्षा के अमानवीय स्तर की ओर धकेला जा रहा है। निसंदेह अमीरों पर भी भारी कर लगे हैं किंतु वे धन और अपने संबंधों के प्रभाव से साफ बच जाते हैं। यदि वे अपनी देनदारी का भुगतान नहीं करते तो भी उनके विरुद्ध कोई दमनकारी कार्यवाही नहीं की जाती क्योंकि भ्रष्ट व्यापारियों, भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और भ्रष्ट अधिकारियों की एक-दूसरे से सांठगांठ है। इस प्रकार की स्थिति का सामना करने के लिए नानक जी कहते हैं कि शासक को गरीबों के हितों की देखभाल करने के लिए सच्चा शासक होना चाहिए। उसे स्वयं सादा जीवन बिताना चाहिए और उन्हें गुरमुख का चरित्र अपनाना चाहिए। तभी वह 'सच्चे बादशाह' कहलाने का अधिकार हकदार होगा और आम लोगों के सामान्य हित की देखरेख करने के योग्य होगा।

गुरु नानक जानते थे कि मानवीय स्वभाव को कठोर तरीकों से एकाएक नहीं बदला जा सकता है। यद्यपि उन्होंने सच्चे गुरमुख का निर्माण करने का प्रयास किया ताकि समाज को स्वार्थी व्यक्तियों से मुक्त रखा जा सके तथापि सिख आंदोलन को समूचे समाज को बदलने के लिए बहुत कम समय मिला। यदि गुरुओं को जैसी कि उन्होंने कल्पना की थी, समाज को उसके अनुरूप ढालने के लिए पर्याप्त समय मिलता तो उनके आदर्श राज्य/समाज का स्वप्न चरितार्थ हो जाता जिसका वर्णन मार्शल के शब्दों में इस प्रकार किया

जा सकता है

"और ऐसे विश्व में जहाँ सभी लोग पूर्णत: सच्चरित्र हों, प्रतियोगिता को कोई स्थान न हो होगा; किंतु यही स्थिति निजी संपत्ति और प्रत्येक प्रकार के निजी अधिकार की होगी। लोग केवल अपने कर्तव्यों के बारे में सोचेंगे और कोई भी आदमी अपने पड़ोसी की अपेक्षा जीवन की सुख-सुविधाओं और ऐशो आराम से अधिक अंश प्राप्त करने का इच्छुक नहीं होगा।"

मार्शल द्वारा कल्पित आदर्श स्थिति और नानक द्वारा नानक जी द्वारा वर्णित स्थिति में बहुत समानता है। वैकल्पिक रूप में, गुरु नानक ने कृषि के क्षेत्र में सामूहिक कार्य और वाणिज्य तथा उद्योग के क्षेत्र में धरोहर (ट्रस्टीशिप) के सिद्धांत का प्रचार किया। उन्होंने कई स्थानों में साहूकारों,व्यापारियों, उत्पादकों के बीच में प्रचार किया कि वे संपत्ति पर अहस्तांतरणीय अधिकार का दावा न करें। उनका कहना था कि उन्हें अपनी संपत्ति को परमात्मा (समाज) की देन समझना चाहिए और अपने को इसका अभिरक्षक/प्रबंधक मानना चाहिए। कृषि के क्षेत्र में जो उनके विचार में सर्वोत्तम व्यवसाय था, गुरु नानक ने सामूहिक काश्त और समान पाठशाला सहित सामुदायिक जीवन बिताने का सुझाव दिया। उनकी शिक्षाएँ अत्यंत आधुनिक थीं हालांकि उनके काल में कोई मार्क्स, सिस्मोंडी और कोई गांधी नहीं हुआ था। उन्होंने न केवल सामूहिक जीवन का प्रचार किया बल्कि जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए स्वयं भी सामूहिक जीवन बिताया।

उपर्युक्त कुछ प्रमुख विचारों के अतिरिक्त सूदखोरी, उत्पादन के कारकों, भूमि, श्रम,पूंजी, राज्य के कर्तव्यों के बारे में उनके विचार भी आधुनिक हैं और विद्यमान सामाजिक संदर्भ में प्रासंगिक हैं।

इन विचारों में ऐसी कोई भी बात नहीं है जो हमें इन्हें अमल में लाने से रुकती हो। तब भी एक ही संभावित बाधा हो सकती है कि हमारे जैसे बड़े देश में हमें स्वतंत्र व्यक्ति-स्वतंत्रता के कारण समाज के किसी वर्ग पर कोई प्रयोग थोप नहीं सकते।

(सिख-गुरुओं का आर्थिक चिंतन-जयराम दास, से साभार)

• • •

श्री गुरु तेगबहादुर जी का 400वां प्रकाश पर्व

-मणि कुमार

'शीश दिया पर सिर न दिया' यह कथन गुरु तेगबहादुर जी के बलिदान और शौर्य की गाथा है। गुरुद्वारा शीशगंज साहिब, दिल्ली से उद्धृत यह कथन गुरु तेगबहादुर जी के कार्यों को याद दिलाता है। यह वाक्य गुरु तेगबहादुर जी के पुत्र गुरु गोबिंद जी का है। गुरु तेगबहादुर जी,जिन्होंने अपने राष्ट्र, अपनी संस्कृति, अपने लोग, अपने धर्म की रक्षा के लिए सिर कटाना स्वीकार किया, पर सिर झुकाना नहीं। औरंगजेब ने उनके सामने तीन विकल्प रखे -

"तीन बात निरने कर लीजै,
लखहु भली सो धारन कीजै।
भरहा चलहु कलमे कहु पढि मुख,
देहि शाहु भोगहु सभि बिध सुख।
जे हठ करहु न मानहु एहो,
करामात कामल होई देहो।
जिम हजरत तुम से करिबावै,
तिम करतेहु देख हरखावै।
जो इह दोनहु नाहिन मानहु,
अपने पान प्रान कहु हानहु।"[1]

गुरु तेगबहादुर जी ने अपना शीश देना स्वीकार किया लेकिन शेष को स्वीकार नहीं किया।

सिख पन्थ के नौवें गुरु, गुरु तेगबहादुर जी का भारतीय संत परंपरा में अतुलनीय स्थान है। उन्होंने सनातन धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए अनेक यात्राएं की और जनता के मध्य इस धर्म के प्रति आदर भाव पैदा किया। देश में भ्रमण कर उन्होंने जनता में व्याप्त अंधविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का सराहनीय कार्य किया। उन्होंने जनता को इस हेतु प्रेरित किया कि वह अन्याय का एकजुट होकर मुकाबला करें तथा धर्म और राष्ट्र की अस्मिता की खातिर अपने प्राणों की भी आहुति देने से न डरे। कश्मीर के हिंदू पंडितों की रक्षा के लिए उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी, लेकिन उन्होंने उनके धर्म की रक्षा की और अपने बलिदान के द्वारा उनमें विश्वास जगाया। गुरु तेगबहादुर, छठें गुरु हरगोबिंद के पांचवें और सबसे छोटे पुत्र थे। 'गुरु विलास' में ऐसा उल्लिखित है कि इनके पिता गुरु हरगोबिंद जी ने इनके जन्म को परमपिता का वरदान माना और कहा कि उन्हें इस बालक में अपने दादा गुरु अर्जनदेव जी की समर्पण भावना झलकती है। उन्होंने अकाल पुरुष और गुरु नानक की अनंत आत्मा का आह्वान किया कि वे बालक को ऐसा वीरोचित तेज प्रदान करें कि वह निर्भीकता व साहस से दुष्टता का वमन कर सत्य और धर्म की स्थापना के लिए अंतिम सांस तक युद्ध करने में समर्थ हो।"[2]

गुरु तेगबहादुर एकांतनिष्ठ और त्यागी संत थे । अपने पिता गुरु हरगोबिंद की मृत्यु के पश्चात् बकाला आकर वर्षों तक साधना की। राजपाट (गुरु गद्दी) के बारे में इन्होंने कभी कोई भाव प्रकट नहीं किया । बल्कि आठवें गुरु ने जब उन्हें गद्दी सौंपी तो वे उसके लिए तैयार नहीं थे, लोगों ने उन्हें मनाकर इसके लिए तैयार किया। गुरु तेगबहादुर जी ने धर्म और राष्ट्र को एकजुट करने के लिए कई यात्राएं की। उनकी यात्रा में कई पड़ाव आए पंजाब, दिल्ली, प्रयागराज, काशी, बिहार, असम, आदि जगहों पर खूब समय बिताया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि गुरु गोबिंद सिंह जी के जन्म के समय वे असम में थे। इन यात्राओं के दौरान कई महत्वपूर्ण कार्य किए। कई गुरुद्वारों का निर्माण व जीर्णोद्धार करवाया, भटिंडा का दमदम साहिब और पटना का हरिमंदिर साहिब का इसमें विशेष महत्व है। श्री दशम ग्रंथ में गुरु गोबिंद अपने पिता के पुनीत कार्यों का स्मरण किया है -

"मुर पित पूरब कियसि पयाना, भांति भांति के तीरथि नाना।
जब ही जात त्रिवेणी भए, पुनं दान दिन करत बितए।"[3]

इस प्रकार गुरु तेगबहादुर ने अपना अधिकतर समय विभिन्न स्थानों की यात्रा में बिताया और अपने जीवन की अंतिम सांस तक धर्म और राष्ट्र का अपमान स्वीकार नहीं किया। गुरु तेगबहादुर जी के गोलोक प्रस्थान पर गुरु गोबिंद सिंह जी ने लिखा है-

"तेगबहादुर के चलते भयो जगत में सोक।
है है है सभ जग भयो जै जै जै सुरलोक।"[4]

गुरु तेगबहादुर जी ईश्वर की अराधना को ही मानव का सबसे बड़ा कार्य मानते हैं। "श्री गुरु तेगबहादुर जी निर्गुणोपासक साधकों की परंपरा का अनुसरण करते हुए ईश्वर की निर्गुण सत्ता को स्वीकार करते हैं, इस कारण रघुकुल तिलक राम तथा यशोदानन्दन कृष्ण को पूर्ण सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वीकार करते हैं। श्री गुरु तेगबहादुर जी ने राम-कृष्ण के अलौकिक गुणों का सुंदर वर्णन किया है।"[5] वे मानते हैं कि बिना हरि सुमिरन के इस जगत से मुक्ति नहीं है और इस संसार में हरि से प्यारा कुछ भी नहीं है। गुरु तेगबहादुर जी कहते हैं-

"जो प्रानी निसि दिन भजे रूप राम तिह जानु,
हरिजन हरि अंतरु नहीं नानक साचि मानु। (29)
रामु नामु उरि में गहियो जाके सम नहीं कोई ।
जिस सिमरत संकट मिटै दरसु तुहारे होई।"[6] (57)

वे ईश्वर के एकत्व के सिद्धांत को मानते हैं । परमात्मा केवल एक है। गुरु तेगबहादुर जी अकाल पुरख प्रभु राम जी का वंदन करते

हुए कहते हैं –

"सभ सुख दाता रामु है दूसर नाहि न कोई।
कहु नानक सुनि रे मना तिह सिमरत गति होइ।
जउ सुख कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह।
कहु नानक सुन रे मना दुरलभ मानुख देह।"[7]

गुरु तेगबहादुर जी एक सांसारिक-आध्यात्मिक आस्थाभाव रखने वाले महान संत थे। उन्होंने अपने त्याग और तप से सिख धर्म के इतिहास में उल्लेखनीय स्थान बनाया। गुरु तेगबहादुर जी की स्मृति को सदैव जीवंत रखने की आवश्यकता है। डॉ. कृष्ण गोपाल जी का यह कथन बिल्कुल प्रासंगिक है कि, "श्री गुरु तेगबहादुर जी ने भीषण कष्ट सहन करते हुए अपना बलिदान दिया। गुरु परंपरा के अत्यंत तेजस्वी दीपस्तंभ की तरह वे सदैव आलोकित रहेंगे। जिस प्रकार उनका यह बलिदान हुआ वह कथा केवल मार्मिक नहीं है वरन् भारतीय जनमानस को संगठित कर, आतताई शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने हेतु सदैव सन्नद्ध करती रहने वाली बलिदानी गाथा भी है।"[8]

संदर्भ :

1. सिख पन्थ, सरदार बलवंत सिंह स्याल, पृष्ठ–159
2. गुरु तेगबहादुर–महिंदर पाल कोहली (सं.),पृष्ठ–9–10
3. श्री दशम ग्रंथ, विचित्र नाटक, पृष्ठ – 201
4. श्री दशम ग्रंथ, विचित्र नाटक, पृष्ठ – 182
5. भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता– डॉ. कृष्ण गोपाल, पृष्ठ – 221
6. सलोकु महला – 9
7. सलोकु, महला – 9
8. भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता– डॉ. कृष्ण गोपाल, पृष्ठ – 228

Relevance of Sri Guru Gobind Singh's Philosophy and Vision in Contemporary Era

Prof. K.P. Singh

Abstract

This article tries to demonstrate the life, work, contributions, and impact on the society of Sri Guru Gobind Singh Ji, a great poet, thinker & philosopher, social reformer and institution builder, guru, and saint, an exceptional gladiator. There is a great influence of preaching and teachings of Sri Guru Ji on brotherhood, social harmony, secularism, and national building. His early background has proven that he was the God-gifted traits of intellect, intelligence, valor, inner incitement, and leadership by the birth. Willpower, bravery, and honesty are more important than size and strength of the opponents in winning a war. Hill kings and Mughals tried to destroy him numerous times, but they were never able to do so. Guru ji founded the Khalsa Panth, and the role they have played since then and now is also briefly enumerated in this article. Guru ji efforts to saving mankind from natural and man-made disasters have been recognized and appreciated across the world. In this article, the role of Khalsa during the epidemic is also explored. Sikhs may now be found not just in India but also across the world. Canada has the world's largest Sikh population, followed by the United Kingdom, the United States, and a number of other nations. Their significance has also been recognized on a worldwide scale. In order to give a practical shape to this article, depth literature has been conducted from the Internet. Journal articles, Sikh digital library resources, newspapers, Sikh blogs, and websites are among the sources of information. Mendeley, a reference management application, was utilized throughout the study to produce citations and references following APA 6th edition.

1. Introduction

Sikh Guru tradition is complete life philosophy in itself. Its primarily believes in universal brotherhood, service to humanity, protection to society, preserve of cultural heritage. The saga of the Great Guru is full of supreme sacrifices for the protection and preservation of culture, tradition, and religion. Sri Gobind Singh Ji was born on Friday, the 13th of Poh, Sudi 7th, Samvat Vikramaditya 1723, corresponding to 1666A.D. in Patna, Bihar, a major town with a long history (Singh, 1909). Every year, his birthday occurs in the months of December or January. However, Guru Ji birthday is commemorated annually according to the Nanakshahi calendar, which last year falls on January 2, 2020 (Hindustan Times, 2020). Guru Ji, the renowned warrior, poet, philosopher, and spiritual leader was born as a Gobind Rai. His father was Sri Guru Teg Bahadur Ji, the ninth Guru, and his mother were Gujri Mata. At the age of nine, Gobind Rai, subsequently known as Guru Gobind Singh, succeeded his father, Guru Tegh Bahadur, and became the tenth and final of the personal Sikh Guru. His noble deeds have always been applauded throughout the world. His views differed from those of his father. He believed that no one could harness the power of the Sikhs. Guru Gobind Singh was a distinguished soldier and commander. He was a fantastic rider, a sharpshooter with a weapon or an arrow, and a consummate shooter. He was a tremendously powerful man with a fearless attitude. Even in the direst of circumstances, he has seldom given up hope. Folks became naturally drawn to him since he had such an appealing demeanor. He was a very diligent individual. He fought many battles with hill leaders and Mughals and each of these fights demonstrates that he was an excellent soldier. (BBC, 2019)(*(No Title)*, n.d.)

There were ten Sikh Gurus in total over a two-hundred-year period. Guru Nanak's Ji successors were as follows:

Shri Guru Angad (1504-1552), Shri Guru Amar Das (1479-1574), Shri Guru Ram Das (1534-1581), Shri Guru Arjan (1563-1606), Shri Guru Har Gobind (1595-1644), Shri Guru Har Rai (1630-1661), Shri Guru Har Kishen (1656-1664), Shri Guru Tegh Bahadur (1652-1675), Shri Guru Gobind Singh (1666-1708) (Jathol, 2019).

2. Sikhism at a Glance

The Sikhism is one of monotheism religion. It is a strong of belief of Sikhism that God is one.After Hinduism, Islam, and Christianity, it is India's fourth biggest religion. The total population of Sikh in India is 22 crores. Punjab is home to the majority of Sikhs. However, Sikhs may now be present in every state in India. There is representation everywhere, from the President of India to the Prime Minister. Sikhs may now be found in 14 nations throughout the world. With 468,670 Sikh inhabitants, Canada has the world's biggest Sikh population followed by United Kingdom, i.e. (432,429), United States (250,000),Australia (125,904) and so on. The growth of Sikhism in India as well the world reflected that the Sikh faith and its people are anticipated to continue to grow in the future (WorldAtlas, n.d.).

3. Childhood and Early Life

Sri Patna Sahib Gurdwara, a spiritual shrine, lies on the location of the house where he spent his childhood. Since his childhood, he has had an inherent leadership quality. During his childhood, he used to assemble a team of youngsters his age around him and engaged them in various play activities. In addition, he also used to organize boat races, stage impersonated battles, and lavishly paid the winners. He spent approximately five years in Patna. Guru Gobind Singh absorbed a variety of different languages as a youngster, including Sanskrit, Urdu, Hindi, Braj, Gurmukhi,Arabic, and Persian. He also learned martial arts to enhance his combat abilities. Guruji's neighborhood was so impressed by his God gifted qualities and abilities and when he received a call from his father to leave Patna for Anandpur, everyone became disconsolate. However, everything went well, and he grew on to become a well-known leading voice of the country (Singh, 1909).

4. Scholar and Warrior

Sri Guru Gobind Singh was a great poet, scholar, saint, and warrior. He began learning Punjabi with Sahib Chand and Persian with Qazi Pir Mohammad while residing in Anandpur. Guru Gobind Singh was born with a natural talent for poetry creation, literary works, rhymes and many more and he dedicated his early years to it. The Var Sri Bhagauti Ji Ki, also known as Chandi Di Var, was his first and only important work in the Punjabi language, written in 1684. He penned poetry like Jaap Sahib,Akaal Ustat, Gian Probodh, Shabad Hazare, 33 Swayyas, and Zafarnama in honor of God. His complete form of work was given the name of Dasam Granth (H. S. Chopra, n.d.).

5. Thoughts, Theories and Philosophy of Sri Guru Gobind Singh

Philosophy is a set of beliefs that tries to explain the meaning of life or to provide guidelines about how to think and act. Sikh simply means "disciple or learner." The Sikh religion, which is distinct from Islam and Hinduism, was founded in northern India in the 15th century by World Guru Sri Guru Nanak Dev Ji. Sikhism is a monotheistic religion that emphasizes the equality of women and men. Sikhs adhere to three fundamental principles. Pray in God's name, live a good life, and share your talents with others(Jathol, 2019). For those who seek an eternal connection to their spiritual power inside, Sikh doctrine is an easiest route. Sri Guru Gobind Singh's ethics includes the followings:

- **The Way to honesty and liberation:** On his journeys, Sri Guru Gobind Singh paved the road with truth and awakened people who'd been suffering the effects of intolerance, misrepresentation, selfishness, and dishonesty. He traveled and taught by examples and doctrines, which has great impact on the life of people.
- **Service to mankind is service to God:** He believed that it was the primary responsibility of humans to assist the needy, feed the poor, and clothe those who were naked. In this way, one could become a hero in moral terms.
- **Humanity's Equal treatment:** In God's eyes, all human beings are equal.As a consequence, no one has the right to discriminate against human beings based on caste, race, colors or creed. Keeping all of this in mind, he established a community kitchen in which all people can sit and eat together regardless of their social status, which we called 'Langar'.
- **Inner strength development**: Guru ji highlighted the significance of developing the value of righteousness and truthfulness in human character and conduct and advice on how to control addictions and social evils.Arrogance, anguish, egotism, desire, and vanity are all addictions that can be overcome through self-examination and self-realization (Desh Raj Sirswal, 2018).

6. Sri Guru Ji beliefs that could help to Navigate a Dignified life

Sri Guru Gobind Singh stated 52 Hukams that can be incorporated into daily lives. Only a few of which have been discussed below:

- *"Kisae dee ninda, chugalee, atae eirkhaa nahee karnee".* It implies that you should not slander, spread rumors, or be petty to others.
- *"Dhan, javaanee, tae kul jaat da abhiman naee karnaa (Nanak daadak tahe duae goath. Saak guroo Sikhan sang hoath)".* It means do not be proud of your wealth. (All of the Guru's Sikhs are siblings from the same family, regardless of maternal and paternal caste or heritage.)
- *"Shabad da abhiaas karnaa".* It means to bring the sacred hymns to life, practice them.
- *"Guru Granth Sahib Jee noo Guru mananaa".* It entails trusting and accepting Shri Guru Granth Sahib Ji as your spiritual guide.
- *"Gurbanee dee kathaa tae keertan roaz sunanaa atae karnaa".* It means every day, listen to Kirtan and participate in discussions about the essence of Gurbani.
- *"Dushman naal saam, daam, bhaed, aadiak, upaa vartnae ate uprant udh karnaa".*It implies that before engaging in war, employ diplomatic efforts, various types of methods, and emission of those choices while dealing with adversaries.
- *"ardaesee, lorvaan, dukhee, apung manukh dee yataahshkat seva karnee".* It entails doing all possible to help and aid strangers, people who are in need, and even those who are in trouble
- *"Putaree da dhan bikh jananaa".* It means recognizing that viewing a daughter as a piece of property is poison.
- *"Dasvand denaa".* It means offering up to 1èk10 percent of one's revenues.
- *"Chugalee kar kisae da kam nahee vigaarnaa".* It means do not sabotage anyone's work by gossiping.
- *"Kum karan vich daridar nahee karnaa".* It means work hard and don't be a slacker.
- *"Istree da mooh nahee phitkaarnaa".* It means you must not curse or verbally abuse your wife (Hindustan Times, 2020, India Tody, 2019)

7. Founding of 'Khalsa Pant'

On 30the March 1699 Sri Guru Govind Singh ji founded a religious organization universally known a 'Khalsa Pant' at Shri Keshgarh Sahib (Punjab) during the Mughal Empire (present-day ShriAnandpur Sahib, Punjab). The word'Khalis' comes from theArabic meaning 'Pure'. He introduced the Five KS, the five articles of faith, tradition and practice that Khalsa Sikhs wear at all times. Means The five Ks were Kesh (Uncut hair), Kangha (a wooden comb), Kara (an iron or steel bracelet worn on the wrist), Kirpan (a sword or dagger), and Kacchera (short breeches).

7.1.**A New Iconic Identity of 'Khalsa Pant'**

The followers of the 'Khalsa Pant' and the Government of Punjab to commemorate 300 years of the founding of the 'Khalsa Panth' by the 10thMaster, Guru Gobind Singh, built the 'Virasat-e-Khalsa' museum in the Sikh holy town ofAnandpur Sahib in Punjab (2011). The 'Virasat-e-Khalsa' located close to Takht Keshgarh Sahib, the second most important Sikh shrine (after the Golden Temple) inAnandpur Sahib. This magnificent iconic building designed by Israeli Moshe Safdie- a world acclaimed urban planner and architect. The museum is a temple of learning, knowledge heritage and repository of teaching and preaching of Great Gurus. It narrates the story of Punjab and Sikhism using hand-crafted artifacts and the latest technology in an interactive

8. BriefAccount of Saga of Sri Guru Govind Singh Battles

Between 1686 and 1706AD, the Guru had to encounter several battles during 20 years. His spirituals and political activities were not accepted by either the hill state Rajas or the government. The rulers tortured him and forced him to fight against them.As a result, Guru had to indulge in numerous battles with opponents. To facilitate understanding, all of Guru Gobind Singh Ji's battles have been divided into two eras: Pre and Post Khalsa era.

8.1. Pre-Khalsa era

8.1.1. The Battle of Bhangani (1688)

It is evident from the literature that the War of Bhangani was the first battle of Guru Gobind Singh's with hill kings. The Battle of Bhangani was fought on September 18, 1688, in Bhangani, near Paonta Sahib, between Guru Gobind Singh's army and the united forces of numerous Rajas of the Sivalik Hills (Pahari rajas). There are several reasons for this, including military preparations by Guru Govind Singh Ji, which makes the hill kings feel threatened. Guruji was adamantly opposed to idol worship, whereas hill kings are staunch supporters and many more. However, Gurur Ji won the war despite having very few resources, and Guru Ji secured a resounding victory.

8.1.2. The Battle of Nadaun (1690)

Around 1690A.D., the battle of Nadaun took place between both the Union of the King of Hill States and the Mughals, with Guru Ji siding with the kings of hill states.The main reason for this battle was the refusal to pay annual tributes to the Mughals. The battle took place 32 kilometers

away from the Beas River's bank. Guru Ji and his companion were able to demonstrate their bravery yet again by defeatingAlif Khan. However, Guru Ji was disheartened by the unbearable act of Bhim Chand.

Guru Gobind Singh Ji was a warrior intellectual who won the war without fighting a battle in 1694A.D. Gradually, by the grace of the almighty God, Guru Gobind Singh Ji grew stronger which instilled fear in the minds of the Mughals. Khanzada Rustam crossed the Satluj River with his army on a cold winter night intending to attack Guru Ji. The Khanzada Rustam plan, on the other hand, was a complete failure. The Sikhs had thrown a few bombs at them, causing the opposition party leader and the army to flee.After the defeat of Khanzada in 1696, the bravest soldier Husain Khan attackedAnandpur Sahib, but he was also defeated by the Guru Ji soldiers("Battles Fought by Guru Gobind Singh Ji in Pre Khalsa Period Issues and analysis @ abhipedia Powered byABHIMANU IAS," n.d.).

8.2. Post-Khalsa era

8.2.1 The battle ofAnandpur (1701)

Guru Gobind Singh founded and commenced the Khalsa (1699A.D.) as a fighter concerned with defending the weak and vulnerable from religious bigotry.After two years of Khalsa formation, Guru Gobind Singh Ji was required to declare war (1701A.D.) on the Kings of the Hill States. The main reason for the conflict was a disagreement between the two parties about how they should worship. From then on, the king of Bilaspur, Bhim Chand, urged that Guru Sahib should takeAnandpur Sahib or pay sufficient tax for that. Guru Ji disagreed, and as a result, a great war broke out between them, resulting in significant losses for both sides. Later, an agreement was signed between the two parties and Guru Ji leftAnandpur Sahib and went to stay at Nirmoh near Kiratpur Sahib.

8.2.2. The Battle of Nirmoh (1702)

Bhim Chand, with the help of Mughal, attacked Sikhs at Nirmoh in order to end Guru Gobind Singh Ji's power. Guru Gobind Singh Ji and his soldiers fought bravely and won the war.

8.2.3. The Battle of Satluj (1702)

The battle of Nirmoh was won by Guru Gobind Singh Ji, but he opted to depart. He hadn't even crossed the Satluj river when his attackers struck again, hardly wanting to make any mistakes. Sikhs, on the other hand, beat them.

8.2.4. The Battle of Basauli (1702)

After Nirmah, Guru Ji and Sikhs went to Basauli, where he was attacked by the Bhim Chand army, and Bhim Chand and his company were defeated once more by Guru Ji and Sikhs.A treaty was signed in 1702 between Guru Gobind Singh and Bhim Chand, and as a result, he returned toAnandpur Sahib.

8.2.5. The Second Battle ofAnandpur Sahib (1704)

A war broke out inAnandpur Sahib after a two-year hiatus. The federation established by the Kings hill states asked Guru Ji to leaveAnandpur Sahib, but he refused, so they attacked him, but they lost the battle, and Guru Ji and his companion remained inAnandpur Sahib.

As the Guru Gobind Singh Ji's morale has risen, the Kings of the hills states have been feeling uneasy. Bhim Chand and the hill kings had been seeking Mughal assistance once more to demolish Guru Gobind Singh Ji's power. Wazir Khan, the hill state kings, and Ranghar all banded together to attack Guru Ji. This time the situation worsened and enemies of the Guru Gobind Singh Ji besiegedAnandpur Sahib on all sides. Many Sikhs desired to leaveAnandpur Sahib as the situation deteriorated, but Guru Ji was adamantly opposed.As a result of this, approximately forty Sikhs signed a disclaimer to leave Guruto Ji's company. Finally, Guru Ji

decided to leaveAnandpur Sahib, which he did on December 21st, 1704A.D.

8.2.6. The Battle of Shahi Tibbi

The carriage had only just arrived in Shahi Tibbi, near Kiratpur, when the Mughal army pursued them. Guru Ji ordered Udai Singh to stop them. Sikh Udai Singh with 50 companions was able to resist the huge enemies; however, all 50 Sikhs including Udai Singh embraced martyrdom one by one in this battle. The Guru Ji's caravan had arrived in the village of Sirsa Nangal early in the morning.

8.2.7. The Battle of Sirsa

The Battle of Sirsa is one of the most famous battles in history. When Guru Sahib and his companions arrived at the river Sirsa, the hills Kings, and Mughals attacked them again with tremendous force. The Sikhs, on the other hand, were able to hold off the attackers. Sahibzada BabaAjit Singh Ji's squad decided to oppose their attack in order to prevent them from progressing any farther before reaching Guru Ji. Both parties sustained significant losses. Sirsa River was overflowing at the time due to severe rain and thunderstorms. Guru Ji and his soldiers agreed to cross the river together.After crossing the river, Guru Ji had only 40 Sikhs. Later he arrived at Chamkaur with the remaining Sikhs, including family.

8.2.8. The Battle of Chamkaur Sahib (1705)

The Battle of Chamkaur was a historic event in Indian history that changed the course of the country. Guru Gobind Singh, his two sons, and forty disciples resisted awesome power a Muslim and Rajput alliance from such a tiny Haveli (House) with thick mud walls at the War of Chamkaur. Both of Guru Sahib's Sahibzadas demonstrated their fearlessness. Both, though, became martyrs. Guru Ji eventually departed with just five Sikhs out of forty.

8.2.9. The Battle of Khidrana (1705)

The Guru traveled from Chamkaur to Machhiwara, where he spent a few days in the most desolate of circumstances. Finally, he arrived at Machhiwara. Gulaba and Punjabi, two masands (collectors), accompanied him there. Later on, they were also denied to keep Guru Ji because of the Mughals' fear. In that critical situation, Guru Ji was being protected by two Pathans, Ghani Khan, and Nabi Khan. Guru Ji was saved from the Mughals' adversaries by them. Guru Ji arrived at Dina after many hardships, but he did not feel secure there, so he traveled to Kotkapura and then to Khidrana. He was accompanied by a huge number of Sikhs.A fierce battle between royal soldiers and Sikhs took place at the Dhabi of Khidrana in 1706, with the Sikhs emerging victorious. In this conflict, the forty Sikhs who had deserted the Guru in the second battle ofAnandpur played a major role. They all became martyrs in the face of overwhelming odds. Guru Ji was astounded by their bravery. They were given the title of Muktas by him.

9. Guru's Philosophy, Vision and Role in Social Harmony and Peace

Since its inception, the Khalsa has played an important role in the social well-being of Society. The Khalsa is the brainchild of Sri Guru Gobind Singh. Their selfless efforts to help those in need have been lauded around the world. The Khalsa, who has followed Guru Gobind Singh's path and thus Guru Ji's ideology, is still alive and extremely pertinent in building nation though brotherhood, harmony and service to the mankind. He had never attempted to fight a battle in advance, but he was compelled by the enemies to do so. The main cause behind every battle was the elimination of discrimination, social justice, equal rights, and several other issues. Just because of these priorities, Guru ji is well-liked both within and outside of the community. To modernize services, KhalsaAid, a non-profit organization based in the United Kingdom, was founded in 1999 to assist victims of natural and man-made disasters worldwide.

In India, it was opened in 2014 as KhalsaAid India. The basic principle of KhalsaAid is based on the religious philosophy of the Sikh Gurus: Sarbat da bhala (well-being of all), regardless of caste, creed, religion, community, or country.An article published in Indian Express shows that KhalsaAid already worked in 25 states in the country. Their first project began in India from Gujarat states after an earthquake wrecked the Latur region, causing thousands of people to become homeless. Many lives are saved by the KhalsaAid team by providing tents, purifier tablets, and other items. In addition, KhalsaAid assists the victims of natural and man-made calamities which are tsunami (2004), Punjab floods (2008), and Himalayan tsunami in Uttarakhand (2013). It also happened to come committed to advancing offer assistance following Hindu-Muslim clashes in Muzaffarnagar (Uttar Pradesh), as well as confrontations in Saharanpur city (Uttar Pradesh), massive flooding in Jammu and Kashmir (2014), Nepal volcanic eruption (2015), Maharashtra water shortage, and Kerala overflow (2018). It operates a compassionate

school for underprivileged children in Patiala, under which 250 children are enrolled (AnjuAgnihotri Chaba, 2021).

Throughout history, the Sikh community has aided society in overcoming disasters. The most recent examples of helping hands, saving hundreds of lives can be well witnessed during the worst COVID19 pandemic when during the second wave of COVID19, there was a huge scarcity of Oxygen crisis due to the mismanagement delivery chain. The disciples of Sri Guru Ji have always stepped forward to help people to support and saves the lives of thousands of people in Delhi NCR. This incident was prodigious and inspires to others that nothing is precious in the world than saving and serving the humanity.

Another, extraordinary mankind service influenced by the Guruji preaching and teaching also noticed by the followers of Khalsa during COVID 19 pandemic. A must mention, that Shir Jitender Singh 'Shunty' who runs an NGO named 'Shahid Bhagat Singh Sewa Dal' in Delhi NCR has cremated more than 3000 people from all religions- all strangers who needed a dignified farewell as their owned family members feared contracting the dreaded coronavirus or the bodies were unidentified. In addition to there are several examples in past especially during the ongoing pandemic the disciples of Guru through various Gurdwara and other sacred bodies have to extend tremendous relief supports to the coronavirus victims by freely distributing medicines, healthcare aids, foods and other essential services needed for the people. It was also noticing that various Gurdwara converted into temporary covid hospitals.

10. The Supreme Scarifies of Guru Ji

The tenth Sikh Guru determined that the lessons contained in that book would continue to guide Sikhs spiritually after his death; as a result, the Guru Granth Sahib now holds the status of a Guru, and Sikhs worship it with the same devotion as a genuine Guru(BBC, n.d.).

Following the death ofAurangzeb, Guru Gobind Singh no longer posed a danger to the Mughals. Bahadur Shah, the next Mughal emperor, was initially cordial with Guru Gobind. He even referred to the Guru as Hind Ka Pir or India's Saint. Later, however, Wazir Khan, the Nawab of Sirhind, persuaded Bahadur Shah to assassinate the Sikh community. Wazir Khan sent two Pathan assailants, Jamshed Khan and Wasil Beg, to Nanded to assassinate the Guru while he slept. Guru Gobind Singh was attacked by them while sleeping.However, Guru used his knife to slay Jamshed, the attacker, while other Sikh brethren murdered Beg. On October 7, 1708, he departed his physical body.("Battles Fought by Guru Gobind Singh Ji in Post Khalsa Period Issues and analysis @ abhipedia Powered by ABHIMANU IAS," n.d., Sikhwiki, n.d., *No Title*, n.d., Col Jaibans Singh, 2018)

11. Conclusion

Based on the foregoing history and contributions, Guru Ji was born to combat social injustice, eliminate prejudice from society, and stabilize the rights of all people to live freely and without fear. Feed the poor, clothe the poor, and assist those who are being exploited by superpowers was the main motto of Guru Ji.All of Guru Ji's remarkable acts have given Sikhism a distinct identity in society. Guruji ideology, thoughts, philosophy has been followed all across the globe, even in the current day. The disciples of Guru Gobind Singh ji have

always been coming forward to rescue the living around the Globe in any catastrophes. However, peoples from other communities also, on the other hand, retain their obligations by assisting mankind in the event of a disaster. We may deduce that joint efforts for equitable growth are required to improve the countryby adopting the preaching and teaching Sri Guruji.

References

(No Title). (n.d.). Retrieved from http://www.pupdepartments.ac.in/de/lesson/BA Semester 4/History English Medium/L-4-6.pdf

AnjuAgnihotri Chaba. (2021, February). KhalsaAid: In 25 states of the country and in the eye of controversy | Cities News,The Indian Express. *Indian Express*. Retrieved from https://indianexpress.com/article/cities/chandigarh/khalsa-aid-in-25-states-of-the-country-and-in-the-eye-of-controversy-7178239/

Battles Fought by Guru Gobind Singh Ji in Post Khalsa Period Issues and analysis @ abhipedia Powered byABHIMANU IAS. (n.d.). Retrieved July 3, 2021, from https://abhipedia. abhimanu.com/Article/State/NDc1OQ EEQQVVEEQQVV/Battles-Fought-by-Guru-Gobind-Singh-Ji-in-Post-Khalsa-Period-Punjab-State-Civils&State

Battles Fought by Guru Gobind Singh Ji in Pre Khalsa Period Issues and analysis @ abhipedia Powered byABHIM ANU IAS. (n.d.). Retrieved July 3, 2021, from https://abhipedia.abhimanu.com/Article/State/NDc2MgE EQQVVEE QQVV/Battles-Fought-by-Guru-Gobind-Singh-Ji-in-Pre-Khalsa-Period-Punjab-State-Civils&State

BBC. (n.d.). BBC - Religions - Sikhism: Sikhism at a glance. Retrieved July 4, 2021, from 2009 website: https://www.bbc.co.uk/religion/religions/sikhism/ataglance/glance.shtml

BBC. (2009b). BBC - Religions - Sikhism: Vaisakhi. Retrieved July 3, 2021, from BBC website: https://www. bbc.co.uk/religion/religions/sikhism/holydays/vaisakhi.shtml

BBC. (2019). BBC - Religions - Sikhism: Guru Gobind Singh. Retrieved July 3, 2021, from BBC website: https://www.bbc.co.uk/religion/religions/sikhism/people/gobindsingh.shtml

Col Jaibans Singh. (2018). The Battle of Chamkaur:An epic that changed the course of Indian history. *Indian Defence Review*. Retrieved from http://www.indiandefencereview.com/news/the-battle-of-chamkaur-an-epic-that-changed-the-course-of-indian-history/

Desh Raj Sirswal. (2018). Philosophy of Life of Sri Guru Gobind Singh Ji. *Journal of Posiitive Psychology*, *8*(2). Retrieved from https://philpapers.org/archive/SIRPOL.pdf

H. S. Chopra. (n.d.). *Comprehensive Bibliography on.* Bhai Gurdas Central Librry, Guru Nanak Dev University, Amristar.

Hindustan Times. (2020, January). Teachings of Guru Gobind Singh Ji that you can use in your daily lives - Hindustan Times. *HT*. Retrieved from https://www.hindustantimes.com/more-lifestyle/guru-gobind-singh-jayanti-2020-history-significance-and-teachings-of-the-tenth-sikh-guru/story-gJAXb2ICo1xBc4LRbUKUiI.html

India Tody. (2019). Remembering Guru Gobind Singh: 11 fascinating facts about the tenth Sikh guru - Education Today News. *India Today*. Retrieved from https://www.indiatoday.in/education-today/gk-current-affairs/story/guru-gobind-singh-304119-2016-01-16

Jathol, I. (2019). The Sikh Diaspora:AnAnalysis on Rebirth of Khalistan Movement in 21 st Century. *Orient Research Journal of Social Sciences*, *4*(2), 259–268.

Sikhwiki. (n.d.). Battles by Guru Gobind Singh - SikhiWiki, free Sikh encyclopedia. Retrieved July 3, 2021, from https://www.sikhiwiki.org/index.php/Battles_by_Guru_Gobind_Singh

Singh, B. L. (1909). *Sikh Digital Library/ :A Short Sketch of The Life and Work of Guru Gobind Singh - Bhagat Lakshman Singh.* Retrieved fromhttps://sikhdigit allibrary. blogspot.com/2016/04/a-short-sketch-of-life-and-work-of-guru.html

WorldAtlas. (n.d.). Countries With The Largest Sikh Populations - WorldAtlas. Retrieved July 4, 2021, from https://www.worldatlas.com/articles/countries-with-the-largest-sikh-populations.html

GURU TEGH BAHADUR – HOLY TRAVELS TO THE EAST

JAGMOHAN SINGH GILL

It is about the time when Sikhism in east India had already established itself with a strong foot-hold. The visit and teachings of first Master Guru Nanak Dev had created deep impact among the local people. Successive Gurus were always concerned about their well-being. They were well connected with the important Sikh centres like Kartarpur Sahib, Khadur Sahib, Goindwal Sahib, and Amritsar Sahibwhich had emerged on the basis of needs and priorities in different phases. Various missionaries were sent to propagate the message of righteousness.Among them onethe earliest and most prominent names was Bhai Gurdas. The local Sikhs stood by the big house of the Gurus with large offerings as a mark of utmost respect. Guru Tegh Bahadur, like his predecessors, was not a stay-at-homephilosopher.According to him, honesty, hard labour, a cultivated brain, and developed social qualities made an individual self-dependent and took him closer near theAlmighty like so many Sikhs who led such life. Guru Tegh Bahadur's visit to the East visit renewed the old ties and re-established the faith as the path of truthful living. Guruji's aim was to help the suffering masses and equip themagainst grief with emotional and spiritual counselling. Guru Tegh Bahadur Sahib set out for a long journey to the East in order to set up new preaching centres and develop the old ones in bigger forms. He garneredfollowersenmasse and created a stir wherever he went. It is a very long and interesting topicand can hardly be written in the space of few pages.

East India, as A am going to present before you is very large. There was a common terminology for some migrant people in Punjab. A heard from my parents and the elders that six-seven decades before the arrival of migrantlabourerswho were part of the success story of Green Revolution, those coming from Gangetic belt beyond the 'Bangar' area of Punjab (now in Haryana) were called **'Poorbias'**. In Sikh history, we get some such references to the large Gangetic region from Uttar Pradesh to the coasts of Bay of Bengal. The other term like Bhaiya (it is normally used for brother but now has become somewhat derogatory) came much later. My study of Poorab (east) starts with some parts ofAwadh, and the Purvanchal and Vindhyachal regions of Uttar Pradesh, coveringAllahabad, Sultanpur, Azam garh, Benaras, Mirzapur, Jaunpur (all are now divided into many districts) and the entire swathe of Uttar Pradesh bordering Bihar. Then A have covered Bihar (including Jharkhand), Bengal (including Bangladesh), Odisha and States known as the 'Seven Sisters' of the north-east with special focus on Patna Sahib, **one of the earliest Takhts of Sikhs and birthplace of our tenth master Guru Gobind Singh Ji.**

Guru Tegh Bahadur's first tour of the East, was in 1656-57as per references made by Bhatts before becoming Guru. These facts though not corroborated by the common sources of Sikh history, seem to be important and cannot be ignored. So, before going to the great travels of Guru Tegh Bahadur, A want to give some details of his earlier connections, based on different scholars and Bhatts. There were two early holy tours by Guru Ji before beinganointed as the Ninth Master. This will be enough evidence to prove the sacred bonding of Guru Ji with the Sikh-Sangat of entire eastern India.

Sarup Singh Kaushik, in "Guru Kian Sakhian", written in 1790AD in Sakhi no. 13 states,"following the footsteps of Guru Nanak and GuruAmar Das, Tegh Bahadur decided to go on a pilgrimage to the sacred places in the East. His mother Mata Nanaki, wife Mata Gujari, her brother Kripal Chand, Mata Hari, Suraj Mal's wife and five devoted disciples including Dyal Das, elder brother of Bhai Mani Singh and Sadhu Ram Khosla, first went to Kiratpur in June, 1656. From there they visited Kurukshetra where they stayed for a pretty long time. They were at Hardwar on the the Baisakhi day, 29 March, 1657. They lived there for several months.After attending the fair at GarhMukteshwar in October, 1657, the entourage returned to the Punjab".

The second journey to the East by Guru Tegh Bahadur was in 1660-1664. Shahd Bilas describes the second journey of Guru Tegh Bahadur to the holy places of pilgrimage. His wife Mata Gujari did not join him. With some family members and a number of disciples Guru Tegh Bahadur left home in 1660A.D. and visited Kurukshetra, Delhi, Mathura,Agra and Prayag. They were at Prayag on 19thApril 1661 and at Banaras on 21st June, 1661.

The Bhat VahiPoorbiDakhni on 21st June, 1661, recorded their visit to Benares as follows: "Guru Tegh Bahadur Ji betâ Guru Hargobindji Mahal Chhatekâ Banaras âye, sâlsatrah saiatharanAsârh, Sudi Panchami, gailNanak jiâyi Mata Guru Tegh Bahadurjiki, Mata Harijiâyistri Guru Suraj Mal ki, Bhai Kirpal Chand âyâbetâ Lal Chand Subhiki ka, BawaDyâ lDâsâyâbetâ Mai Das Jalhane ka, Gawal Das âyâbetâChhote Mal Chibber Ka, Chaupat Rae âyâbetâPeraChibbarkâ, Sangatâyâbetâ Binna Uppal ka; Sadhu Ram âyâbetâDharmeKhosle ka."

[On 21 June, 1661, Banaras was visited by Guru Tegh Bahadur son of Guru Hargobind, the sixth Guru. He was accompanied by MataNanaki, mother of Guru Tegh Bahadur, Mata Hariji wife of Guru Suraj Mal, Bhai Kripal Chand son of Lal Chand Sobhiki, BawaDyal Das son of Mai Das Jalhana, Gawal Das son of Chhote Mal Chhibbar, Chaupat (Champat?) Rai son of PeraChhibbar, Sangat son of Binna Uppal and Sadhu Ram son of Dharma Khosla.]

From Benares they went to Sasaram and then to Gaya.Afterwards, they came to Patna, and turned back home. They visited Banaras again and then took the road towards Prayag. It was on the way that they heard the news of the death of Guru Har Rai. They prayed for the deceased's soul at Tribeni, the confluence of the Ganga, Yamuna and Saraswati.

The Bhat VahiPurbiDakhni recorded: "Guru TeghBahadurji beta Guru Hargobind Ji Mahal Chhae, Guru Har Rae ji kiParchavnikarn Patna se âye; s'âlsatrâhsaiunnis Shukla pakhMagh mâskiPanchmike divas tirathPrâgraj Sangam teâyepahunche, Gail Mata Nanakijiâye mahal Guru Hargobindjike; Mata Harijiâye mahal Guru Suraj Maljike; Diwan Dargaha Mal âyâ beta Dwarka Das Chhibbar ka; hor Sikh faqirâye."

[On 4 January, 1663, Guru Tegh Bahadur son of Guru Hargobind, the sixth Guru, came from Patna to Prayag at the confluence of Ganga, Yamuna and Saraswati to pray for peace to the soul of Guru Har Rai (who had died on October 6, 1661). He was accompanied by Mata Hariji wife of Guru Suraj Mal, Diwan Dargaha Mal, son of Dwarka Das Chhibar, and other Sikh followers.]

After visiting several notable places Tegh Bahadur reached Delhi on 21 March, 1664, according to Bhat VahiPurbiDakhni and Guru Kian Sakhian. Guru Har Krishan was already there. Tegh Bahadur met the young Guru and offered condolences to Mata Sulakhni on Guru Har Rai's death.

After the demise of Guru Har-Kishan, Guru Tegh Bahadur was appointed the Guru amidst many unwarranted activities and unreasonable situations created by some people. Guru Ji made a couple of local tours in Punjab. He wished to follow the example of Guru Nanak by visiting holy places. He was desirous of meeting the Sikhs living outside the Punjab at many places in northern and eastern India. He was keen to propagate the true essence of Sikhism and to provide succourto suffering humanity.

Guru Tegh Bahadur's most important tour to Eastern and North-Eastern India

After becoming the ninth Master Guru Tegh Bahadur undertook organized tours following the footprints of the greatest the great, Guru Nanak. This was to concretize the faith and path of truth propagated earlier by Guru Nanak in this entire region. Guru Tegh Bahadur had received a Divine call from GodAlmighty to visit the East of India and to preach the Gospel of Truth. This tour of Guru Tegh Bahadur is referred to by every Sikh and non-Sikh historians. This journey was full of activity which most of them recorded. The basic reason for establishing such personal contacts was to create confidence in and infuse enthusiasm among the people and to give them moral and spiritual courage. The Sangats all around were anxious to meet their beloved Guru Ji. The curiosity of their waiting anxiously is beautifully described by BawaSaroop Das Bhalla–

"PoorabDeshSangatSakalÂtMân DarshanAbhlaâkh,

Dur Desh Durgam Sthaân Jaân Prâtigya Raâkh"

Guru Tegh Bahadur left Punjab on November 22, 1665 (ref Bhat VahiJadobansian, Khata Barthian). He was accompanied by his mother, wife, and devoted Sikhs like Kripal Chand, Dayal Das, Mati Das, Sati Das, Gurditta and few more. He had his own tents, horses, carriages, bullocks, camels and necessary goods to meet his requirements in the journey. Nawab Saif-ud-din of Saifabad presented the Guru a horse, a chariot, a tent, some camels and a few bullock carts. The Guru usually halted in a

garden outside a village or town or on the bank of a river or stream. **Most ofthe civilizations owe their genesis to the rivers as being its lifeline.**

Before entering the eastern part of the country Guru Tegh Bahadur visitedPehowa and Kurukshetra of Bangar region, and then went to Mathura, Brindaban,Agra, Etawah, Kanpur. He preached to the people the values of hard and honest work and charity, thus weaning them away from the scourge of tobacco and other intoxicants, healing the sick and converting (exhorting sinners) to a cleaner and more wholesome way of life. It is certainly a fact to marvel at how a former warrior turned recluse again participated in public life with such zeal and dedication. No wonder, he created a stir wherever he went and gathered a large following. Wherever he went, he distributed all the offerings he received from the devout among the poor and the holy and fed the hungry from his never-failing community kitchen. Spreading the message ofAlmighty Guru Tegh Bahadur ji entered eastern India after visiting several places of religious interest, as BawaSaroop Das Bhalla says about the importance of this region calledAwadh–

"Ganga Jamuna Gomti MisrâtAâo Nimkhaâr, Sab TirathSatgurGâye Kina Bhagat Vihaâr"

Here A intend to discuss Guru Tegh Bahadur's visit to eastern India with some glimpses of the various important and relevant places of his halt and stay, ranging fromAllahabad to Dacca. This is based on the early writers like BawaSaroop Das Bhalla of Mahima Parkash fame in the eighteenth century, GianiSantokh Singh 'Churamani' (author of Suraj Parkash) in the first half of nineteenth century, Giani Gian Singh (author of Twarikh Guru Khalsa) who visited these places in the second half of the nineteenth century and then noted scholars like Dr. Tirlochan Singh, Dr. Fauja Singh, G.B.Singh, Dr Ganda Singh, Hari Ram Gupta, Major Gurmukh Singh, Ved Prakash and others. The adventurous visitsto these places in the 1930's by GianiDhanna Singh Chahal of 'Cycle Yatra' fame have also been incorporated in this research.

From historical materials of the above scholars and my personal visits to most of the places repeatedly A can assume the approximate route of Guru Tegh Bahadur Ji while moving east wards and the return journey to Punjab. This was a long tour spanning about five years, partly by road and partly by river routes.

Guru Ji, along with his entourage moved from Mathura,Agra, and Kanpur and entered an old Hindu place of pilgrimage named Manakpur, on the banks of the river Ganga. From Manakpur Guru ji went toAllahabad and then to Benares. Some of scholars insist on his first going to Mirzapur and then Benares. But my assumption based on my visit and from the geographical angle, it seems that Guru Ji first visited Benares. Then he crossed the river Ganga and entered the town of Mirzapur.Then the entourage moved towards Sasaram viaAhraura and then crossing the river Karamnasa. Then he moved to Gaya and from there to Patna via Rajgir, Nalanda and Bihar Sharif.

At Patna, Guru Ji left Mata Gujari, Mata Nanaki Ji (Guru Ji's mother) and few important Sikhs under the care of the local Sikhs and started his journey further east along the banks of the river Ganga. This tour might have been on theriver route. He passed Phatua,Bakhtiarpur,Barh, Mokama, Bal-Guddar, LakhiSerai and then halted at Munger. Through Munger, Bhagalpur, Kahalgaon, Kantnagar or Kuntal Nagar and Rajmahal Guru Ji entered Bengal and reached Malda. From Malda he moved towards Nalhati and some other places on zig-zag waterways. Throughout the year the main mode of transportation was on the riverine network. Then he went pastJi on way to Dacca where he had a long stay. Some researchers claim that Guru Ji went to Dacca through Pabna via Gopalpur andGodagiri from Malda.They might have touchedMaksudabad (present Murshidabad). Making Dacca his base Guru Ji frequently visited many districts of Bengal now in Bangladesh including Chittagong, Sondip, Mymensingh, Shylet, Dohazari, Noakhali, Chandpur as well as the Jaintia Hills and Tipperah (Tripura) preaching the message of truth on the path of Guru Nanak. Then Guru Ji went to Kamrup or present dayAssam in his same mission and was instrumental in reducing the prolonged tension between the Mughals and localAhom Kings. He toured Dhubri, Rangamati, Gouripurand some other places over a period of more than two years and then returned to Dacca.

After a long stay in Dacca he went to Kolkata which was yet to develop into a full-fledged city and then to Burdwan where the Zamindar-turned-Maharaja was from Lahore and a descendant of Sangam Rai Kapur. From Burdwan Guru Ji went southwards Bishnupur, Medinipur, Contai, Jaleshwar, Mayur-Bhanj, and travelling on the old trunk road of Jagannath Puri,

touchedBhadrak, Cuttack before reaching,Puri. He might have planned to proceed farther southward towards Madras and Sri-Lanka, but the tour was shortened owing to the atrocities meted out byAurangzeb on common people. Then Guru Ji started the return journey which was quite fast and reached Patna, crossing various rivers. The places he passed through would have been Bishnupur, Gomoh, Parasnath, Madhupur, Deoghar, and Gaya.After some time Guru Ji resumed his journey touchingArrah, Chhapra, Shahpur, Bairiya, Buxar and Ghazipur on either bank of the Ganga. From Ghazipur Guru Ji went to Nizamabad inAzamgarh, either by boat on the river Tamsa or by road. From Nizamabad Guru Ji went by road to Jaunpur and thence to Benares,from where he might have gone toAyodhya, Lucknow, Farrukhabad, thus completing the great holy travels to east India.

Places visited by Guru Tegh Bahadur Ji- Only few places are discussed with very briefly on the basis of the above-mentioned historical documentsand my continuous fieldwork for years.

Kaa-Manakpur

Guru Tegh Bahadur Ji halted at Kaa-Manakpur to bless sannyasi Maluk Das who strayed away from the right path.The place of his worship and samadhi is still visited by devotees. Earlier, there was aSangat but now it stands totally destroyed. It was a place of natural beauty and surrounded by forests. Importance of Kaa-Manakpur in Sikh history was first highlighted in Mahima Parkash by BawaSaroop Das Bhalla while most of researchers have written about this based on Bhai Santokh Singh Churamani's Suraj Parkash of 19th century.As Mahima Parkash is an18th century text, my findings are based on Mahima Parkash. Thus BawaSaroop Das Bhalla writes –

Chaupai**– "Pun KaeManakpur Ka Mug Leena, Maluk Das Tahan Saadh Praveena"**.

In its annotation editors had gave wrong information of this place being in far ofAssam. Here author writes about the place Kae (now Kaa) Manakpur. The city still has some architectural remains which tell the history and reflect its glorious past. Manakpur Town is the second oldest town of Uttar Pradesh. Thisplace is on bank of the river Ganga in between Kanpur andAllahabad. Kaa-Manakpurwas a *subah* (province) in medieval India. It consisted of two strongholds: Kaa and Manikpur, now located on either side of the Gangaand is now in Uttar Pradesh. This two placeshave been bifurcated by the river which changed its course.Kaa now falls in Kaushambi district, while Manakpur has become a partPratapgarh district.It is called the
"town of kings and saints".

Manikpur and Kaa were important seats of government in the early Muslim period. Alauddin Khilji was the governor there before he ascended the throne of Delhi by murdering his uncle on the sands of the river between Manikpur and Kaa. The names of kings who inhabited by Manakpur are Alauddin Khilji, Jalaluddin Khilji, Balban, Raja Manikchand, Raja Tassuq Husain (Father in Law of Nawab WajidAli Shah ofAwadh).

Allahabad-

Guru Tegh Bahadur Ji reached Prayag (laterAllahabad and now Prayagraj) about February, 1666. He stayed there for two months but historian Dr. Gopal Singh says it was for about six months.This city is also referred to as Triveni since three rivers i.e. Ganga, Jamuna and the legendary Saraswati (fabled subterranean river) become one here. It is a celebrated place place of pilgrimage. They stayed atAhiyaapur Mohalla. Mata Gujari conceived for the first time in thirty-three years of her married life. Guru Gobind Singh wrote in BachitterNatak:

"Mur pit purab kîn payânâ
Bhântbhântketirathnânâ
Jab he jât Tribaini bhaye
Pun dân karat bataye"

[My father went to the east, He visited all sorts of places of pilgrimages; When he reached Tribeni (Prayag), He remained busy in alms-giving.)

It was at this sacred place and in the holy atmosphere where Guru Tegh Bahadur was busy giving away his spiritual and material wealth. Guru Ji blessed the people with all the bounties. People of Prayag were much impressed with the simple mission and the charming personality of the Great Guru.

Benares

he city has been blessed by the physical presence of the First, Ninth and Tenth Sikh Guru – Guru Nanak, Guru Tegh Bahadur and Guru Gobind Singh. It is the place where saints like Kabir and Ravidas, whose hymns are included in the Guru Granth Sahib, resided. Benares is the oldest holy place of the Hindus east of Prayag and on the banks of river Ganges. The two main Sikh Gurdwaras located in the periphery of city –***Nichibagh (Bari Sangat)***and ***Gurubagh***(Luxa Road) are of immense historical value. The first one

commemorates the visit of Guru Tegh Bahadur and the second one of Guru Nanak Dev. During Guru TeghBahhadur's visit it was thecentre of Sikhism for the entire region of Poorbanchal, i.e. Jaunpur, Gorakhpur, Nizamabad, Mirzapur, Gazipur and such other places. Important Sikh missionaries like Bhai Gurdas stayed for more than two years in the beginning of the 17th century and propagated Sikhism before being recalled by the Sixth Master, Guru Har Gobind Ji. It is also connected with Sikhism - related to Udasi and Nirmala activities.According to Bhai Kahn Singh Nabha, Guru Granth Sahib was installed in at least 40 places belonging to Udasi and Nirmala saints, but now the numbers has come down to very few.

Sasaram

Legend has it that Guru Tegh Bahadur Ji, while going to Patna from Benares stayed at Sasaram for 21 days. He was accompanied by his mother Nanaki Ji, wife Mata Gujari Ji, Baba Kirpal Ji (brother of Gujari ji) along with Sadh-Sangat.

One day Baba Phaagu Mal came to know about Guru Ji's impending arrival at Sasaram. He get constructed made a huge gate so that Guru Ji's entourage would not have any problem in entering the house. Guru Ji mounted on his horse entered Baba PhaaguMal'sKutiya, and called out to him, "Chachaji, A have come". Tears of love and respect started rolling down from the old man's eyes. Thousands of devotees came and participated in Satsang of Guru Ji. Local zamindars donated valuables as 'daswand', as a tribute to Guru Ji and Sangat.According to the folklore, Guru Ji got one 'Beri' from the house of an old lady (devotee, who didn't had any other thing offer due to her poverty). Guru Ji blessed her and accepted gladly and sowed it in front of Chachaji's cottage. Till now, this 350 year-old historical 'Beri' exists as a huge tree. It is said that during the visit of Guru Ji to Sasaram, the number of Sikhs swelled.

It is also said that Guru Ji composed 'Baani' in Raag Jaijawanti at this spot. [Raag Jaijawanti Mahalla 9, "Raam SimarRaamSimar, EeheTere Karaj Hai……"]

This part of Gurbani is in clear Bhojpuri dialect. Thus it not only concretizes the logic of a Sikh era of literature, through the emergence of this faith and the awakening of peripheral lives, but also records the multiplicity of texts that emerged with the travelling of the great Gurus across the country.

Gaya

Gaya is a very important town for the Hindus and the Buddhists. Gaya bears witness to the legacy of more than two thousand years of history of our country's great religious traditions set by famous philosophers and scholars. Guru Nanak visited this place while coming from Benares on way to Patna after preaching to the people to achieve true liberation by lighting the lamp of knowledge of the divine Name.

Later on, the Ninth Master, Guru Tegh Bahadur, visited this place before the rainy season in 1666.There is a Gurdwara which was earlier controlled by the Udassis, known as Gurdwara Deo Ghat or Nanak-Shahi to commemorate the famous visit of both the Gurus to this place. The building of this shrine was built by a very prominent UdasiPracharak, BabaAlmast. He was the head preacher of one of the main Dhuans established by Baba Gurdita, the eldest son of the Sixth Master, Sri Guru Hargobind Ji, successor of Baba Sri Chand, the founder of the Udasi order. Some early and renowned Khatri settlers helped it to function and a trust was created for this purpose. Sikhs across the globe including our supreme bodies should look into this matter with the seriousness it deserves. For the Sikhs this place is very important historically, because after Takht Sri Harmandir Ji, Patna Sahib, about a hundred kilometers from Gaya, is the next most sacred seat of Sikhism. The Gaya Gurdwara is now in a very dilapidated condition with no maintenance, and even without any caretaker.

Rajgir

This old historical town is placed in the laps of thecolourfulhills. This is a very important place from the religious point of view. Rajgir is associated with Jainism, Hinduism and Buddhism from the very early times. It is famous for hot springs. Just opposite to famous hot spring, called Brahmkund, there is Gurdwara and the reservoir of cold water is called 'Sheetal-kund' or 'Nanak-kund'. This place is said to have been visited by Guru Nanak and Guru Tegh Bahadur Ji.

Patna

In the 17th and 18th century Patna was an important trading hub and riverport and boasted of very flourishing economy, the major share of the activities being with the Europeans, Armenians and other international traders. **Patna was the home to the great Sikh Guru Tegh Bahadur's family for few years. One of the most important and historical shrines of entire Sikh world is Takht Sri Harimandir Ji of Patna, the birth place of the tenth master Guru Govind Singh.**Harimandir is situated in a lane called *Harimandir- Ki- Galli*, opposite

Jhauganj Post Office, within the jurisdiction of Chowk Kalan Police Station. Sikhs from the entire world come to pay respect to this shrine. It was the headquarters of PurabiSangat i.e. umbrella organization of Sikhs of the Eastern part of the country.A 'Hukumnama' (order copy) to '**PurabiSangat**' by the sixth Master Guru Hargobind,which is preserved supports this fact. Documentary evidence proves that during the time of Guru Hargobind the Sikh Sangats had firmly been established at various places such asAlamganj, Monghyr, Patna, Rajmahal, Dacca and some other cities of eastern India.

Many Hukumnamas sent by the Gurus and one by Mata Sundari were in the name of East Indian Sangats. This shows the importance of the great shrine from early days.

Patna already had become the main diocese of Sikhs of east India, covering the area between Dacca and Puri. Guru Tegh Bahadur reached Patna in the month of May 1666. But before leaving for different places he made necessary arrangements under the supervision of a devout Sikh lady, known as Mata Paidiand prominent Sikhs like Raja Fateh Chand Maini,for the safe stay of his family at Patna during the rainy season. Then Mata Gujari Ji was expecting a child as has been mentioned before.

Patna, or Pataliputra was known since the ancient times. This was hallowed by the presence of many holy men including theMahavira, Buddha, Guru Nanak and Guru Tegh Bahadur. The birth-place of Guru Gobind Singh, Ji known as Sri Harimandir, is a magnificent building. There are also many other Gurdwaras associated with the names of Guru Nanak, Guru Tegh Bahadur and Guru Gobind Singh.

Barh:-

Barh town divided in two parts by National Highway 31. The older section seems to be on bank of the river Ganga. This place is about 70 kilometreseast from Patna. Guru Tegh Bahadur stayed here while going towards Dacca.A Gurdwara is under the management of Takht Patna Sahib is in the old market place of Barh Bazar near Teraha More which was devastated in the 1934 earthquake. No repairing or reconstruction has been done. There is Guru Granth Sahib and Janam-Sakhi of Bhai Bala. It is located just opposite to Vaisnodham Mandir and on the left is Jain Mandir. Bhai KanahiyaSingh alias Kamdahia Singh was last Granthi, now-a-days his wife Bibi Kulwant Kaur has been taking care of this Gurdwara since his demise.

Munger– PakkiSangat

This Sangat on Belan Bazar on Pipal-Patti Road is very old and commemorates the travel of Guru Tegh Bahadur Ji during his visits to Dacca andAssam. There is a bed said to be extant from Guru Ji's time. There are two hand-written, one old printed and one newly printed Guru Granth Sahib. The correspondence made of Guru Tegh Bahadur with prominent Sikhs named 'Hukumnama'found in Munger describes the stay andunderscores the importanceof this place in Sikh annals. There are two 'samadhis' of very early Mahants, Baba Pardeshi Ram and Baba Videshi Ram. The descendantsof the Mahants are the present care-takers. There is Nishan Sahib erected at the initiative of a devout Sikh, Jagat Singh.

Bhagalpur

This is another important place where both Guru Nanak Sahib and Guru Tegh Bahadur stayed in the course of their tour towards the east. Two places worth mentioning are as follows.

Gurdwara Bari Sangat

Bari Sangat, said to be oldest is in Naya Bazar, Mahant Narayan Das Lane (Mohan Press Galli) commemorates the travel of ninth Guru Tegh Bahadur Sahib. Mahant Narayan Das was one of the Mahants about a hundred years ago.

Gurdwara Sri Guru Tegh Bahadur Ji Bari Sangat is on right side of 'Burha-Nath Ghat' of the river Ganga on 'Sakhi-Chand Ghat'. Guru Tegh Bahadur is said to have stayed here while going further east.

ChottiSangat

This is a very important site in Jogsar Mohalla near Burhanath Mandir on the banks of river Ganga. This is a very old Sangat said to be connected to the travels of Guru Tegh Bahadur Ji. The descendants of the Mahants can remember quite a few Mahants chronologically. There is an old hand-written Guru Granth Sahib kept with due respect and sanctity

Kantnagar

Guru Tegh Bahadur's Visit of Kant nagar - After one and a half century of Sri Guru Nanak's travels, Guru Tegh Bahadur again visited this part of India, obviously to rekindle the spirit of Sikhism. Where-ever the Ninth Guru went he advised his followers to organize themselves into congregational circles and follow the tenets of Sikhism with religious zeal. In 1666 Guru Tegh Bahadur arrived at the settlement of Kantnagar. Here he stayed for a few days and preached the message of Sikhism among the people. Devotees

came in large numbers and joined the congregation.At that time a good number of people who embraced his faith were subsequently came to be known as Nanak Panthis.Kantnagar was a big and prosperous village. It is said that thirty-six watchmen (*chowkidars*) used to keep round-the-clock vigil in this village. Situated on the left bank of the Ganga it was an important river port at that time.After continuous floods, about hundred and fifty years ago the place was went under waters. The Sikhs brought out Guru Granth Sahib and established a new Gurdwara in safer place called Laxmipur inmemory of Guru Tegh Bahadur's visit.

As you enter through a huge gate built in memory of Guru Tegh Bahadur in Laxmipur, you are immediately struck by its serenity and calmness besides the imprints of Sikhism all around. One cannot fail to notice a vibrant village life which is steeped in a unique kind of history, culture and heritage. Compared to other parts of rural Bihar, it is an affluent settlement with an impressive presence of Sikhs.

Rajmahal

"Rajmahal Bhanu BehalBhau Bhagat Gurmat Man Bhani, Sanmukh Sodhi Badli Seth Gopale GurmatJaani".

As per the above line ofVaars of Bhai Gurdas , the prominent Sikhs during the time of Guru Hargobind, Bhanu Behal, Badli Sodhi and Seth Gopal of Rajmahal were well acquainted with the thoughts of the Gurus and were great devotees of the Guru. This shows the importance of Sikhs of Rajmahal. Historically,it was a very important place in themedieval period, and was well connected with Patna and Dacca.

The town is on the banks of the river Ganga, bordering Bengal and Bihar (now Jharkhand). In 1576, the Battle of Rajmahal was fought between Mughal Emperor, Akbar and Sultan of Bengal,Daud Khan of Karani Dynasty. Daud Khan was captured and later executed by the Mughals. Later, after the conquest of Odisha in 1592, Raja Man Singh I, Mughal governor of Bengal Subah, came toRajmahal. He chose the site for his capital in 1595–96 because of its strategic command of the Teliagarhi Pass and the river.

In 1608, the capital of Bengal was transferred to Dacca (now Dhaka, Bangladesh). Raja Man Singh also renamed Rajmahal as 'Akbarnagar' as a tribute to EmperorAkbar and also constructed palaces, gardens and mosques on behalf of Mughal rulers. In 1639, Rajmahal regained its glory and was once more made the capital of Bengal by Shah Shuja, governor of Bengal Subah and second son of Emperor Shah Jahan. It continued as the seat of the Mughal Viceroy up to 1660 and a mint town till 1661.

Malda and Makhsudabad

Guru Tegh Bahadur Ji visited both the places while moving farther east to Dacca.Both were very famous towns thriving on silk and cotton industry. Traders from all over the world thronged these places.A Gurdwara is situated in theSarbari area of old part of Malda town, situated on theconfluence of the Mahananda and Kalindi rivers.Malda was the capital of Bengal and known as Goud,in the early medieval times. It is diagonally opposite to Rajmahal.

Makshudabad is on the banks of the river Bhagirathi. Owing to it its strategic location it became thecapital of Subah Bengalbeing shifted, from Dacca during the term of Murshid Quli Khan in the early 18th century and name of the town was changed to Murshidabad. There was a Gurd wararun by Udasi saints, but now it doesn't exist.

Dacca

"ChaaleSanmukhDeshBangale, Dundabhi Baaje Shabd Vishale".

In "Suraj Prakash" Bhai Santokh Singh writes "When Guru Ji starts from Patna to Dacca, passing big towns on the river Ganga like Munger, Bhagalpur loud sound of 'nagaara' (drums) was made in the respect of Guruji".

In 1666AD Guru Tegh Bahadur Ji visited Dacca,among the most prosperous of SouthAsian provinces. Bengal was a magnet for traders from Britain in 17th century under the Mughal Governor Shaista Khan.**Guru Ji was accorded a warm and rousing welcome by the local Sangat as well as the influential Nawab Saishta Khan, brother of Empress Mumtaz Mahal, wife of Shah Jahan.** The areas like Sangat-tolla where Guru Tegh Bahadur Ji is said to have stayed during his prolonged visit were exclusive Sikh Mohallas.**During this visit of Guru TeghBahadur the Sangat of Dacca was called Hazuri Sangat.** Bhai Natha and Bulaki Das made arrangements for the stay of the Ninth Master, during this visit between1666 and 1670 approximately with some breaks for visiting other places.

As per the census report of 1830 the number of Sikhs (they all were Khatris) was around 1100 out of 32,000 Hindus. In the mid-19th century eminent Sikh chronicler, Giani Gian Singh,

stayed in Dacca for about seventeen months researching on Sikhism of Dacca and East India. In his account, "Twarikh Guru Khalsa", he gives a foot note on Dacca. He states that local Sikhs were very much pleased with him owing to his missionary and dedicated zeal for the cause of Sikhism. They offered him their daughters and settle there for the benefit of local Sikhs. Giani ji of course declined, as he had taken upon himself the mission of his life to spread Sikhism. There was a big house at No 14 Shreesh Das Lane atSangatTolla of Bangla Bazar. This was known as 'Sikher Bari' which means the House of Sikhs. Guru Tegh Bahadur made it his residence-cum-preaching centre during his long stay at Dacca. In those days a Portuguese company also existed at SangatTolla area. It was mostly inhabited by Sikh Sangat staying in many houses of this locality even before Independence.

The Sikhs of Dacca were well connected with the Sikhs of East India, especially Patna Sahib. Patna Sahib's private retinue of army was sent to Dacca many times on various missions. One Sikh, named Bhai Mohan Singh, was appointed Diwan of Chittagong in the second quarter of 18th century during the reign of Nawab Murshid Quli Khan. Noted Historian, Dr Tirlochan Singh, observed, "Diwan Mohan Singh was no less a pious Sikh than a brave soldier and an able administrator. He made good opportunity and established more than a dozen of ***Sangats*** within his jurisdiction and attached ***Jagirs*** to one and all of them".

Eastern Bengal District Gazetteers by B.C.Allen, published in the early 20th century, give some description of the Guru's visit to Dacca and about the Sikhs, ***"Guru Tegh Bahadur visited Dacca, and there is a Sikh temple at Shujatpur near the Ramna. The Sangat at Sangattolla close to Sutrapur is now the chief place of worship but pious Sikhs still visit the ruins at Jafarabad where there is a well whose waters are thought to have curative powers".***

Importance of Dacca for the Sikhs dates back to ***the visit of Guru Nanak in his first Udasi*** to spread the message of truth, righteousness and other human values to live on this earth peacefully. The Sangat of Dacca was illuminated by his effulgent message. Many places are said to be linked with the Guru's tour and wells were sunk to provide fresh drinking water to his followers and common people alike. It is said that thecolour of water changed thrice in a day and local Bengalis treated it with pious belief that Thakur Nanak (they address Guru Nanak in their local term) was there in this well. This was called as Barchha Sahib as per Bhai Dhanna Singh Chahal who visited Dacca in the 1930s. There were some lores relating to Guru Nanak's visit and his drawing drinking water by piercing a spear in the ground. This is now extinct. One Gurdwara, said to have been visited by Guru Nanak, is at Ramna and is called Nanak Shahi Gurdwara. It is near the race course. It was earlier known as '***Nanak Ka Chapra'*** i.e. shelter of Nanak. Guru Nanak rested here. Some part of the land of this Gurdwara was later acquired for the construction of Dacca University. Baba Gurditta(eldest son of the Sixth Master Guru Hargobind), head of Udasi sect sent the noted missionary, BabaAlmast (head of one of the Dhuans) to Eastern India including Dacca, to trace the places of Guru Nanak's visit and propagate the tenets of Guru Granth Sahib.After him Bhai Natha was in charge of Bengal's Sangat. He initiated the construction of Nanak Shahi Sangat.

WhileGuru Tegh Bahadur ji, was at Dacca, the Sangat of nearby areas frequently requested Guruji to visit their places. So he started his tour to Jayantia hills, Shylet and then to Shaistaganj, Comilla, Lakhsham, DaulatganjSitakund, Hath Hazari and onward to Chittagong and the sea-port of Sondip. He came back to Dacca after meeting the Sangat of Bengal from Noakhali, Chandpur and Narainganj. The purpose of his visit was to renew the ties with the Sangats already established by Guru Nanak and further strengthened by GuruAmardas ji and respected Udasi missionaries. The effect of the Guru's tour was miraculous and a big number of Sangats came up in Bengal. These Sikhs were always ready to perform any type of Sewa: from monetary assistance to manual labour and whenever there was a call from Guru Gobind Singh later on in the hours of struggle against the oppression of the Mughal rulers. There is a Gurdwara SangatSuthra Shahi at Urdu Bazaar and another one on English Road in Dacca. Nawab Shaista Khan awarded jagirs to Gurdwara SangatTolla and Gurdwara Nanak Shahi in Dacca after the visit of Guru Tegh Bahadur Ji. Dr Tirlochan Singh who quoted from," Topography and Statistics of Dacca 1840AD", by James Taylor, confirms the presence of twelve Sangats beside the institution and places of other religion. Dr Tirlochan Singh visited Dacca in 1959 and tried to bring to the notice of the administration the misuse of Sikh shrines by

some unscrupulous people. It is there in his invaluable work on the life of Guru Tegh Bahadur Ji.

Different places of Assam

Guru Tegh Bahadur reached Kamrupand preached among the people for some time. Here, he also brought a compromise between the forces of Raja Ram Singh, a Kshatriya general ofAurangzeb (who had led expedition againstAssam), and the localAhom ruler as a true saint should have done. Towards the close of 1668, they set out forAssam, crossed the Brahmaputra and reached Dhubri, which had also been visited by Guru Nanak during his travels in eastern India. Guru Tegh Bahadur marked out the spot where the First Guru had sat. People thronged to see him. Guru Tegh Bahadur travelled to many places like Rangamati, Kamakhya to as far as Hajo.After some time, Guru Ji went back to Dacca inApril or May, 1670.

Return Journey from Dacca

In Dacca Guru Tegh Bahadur got royal reception. Guru Ji informed theSangat of his going back. Guru Ji appointed Bhai Natha as chief missionary of Bengal and Bulaki Das as Masand of Dacca region. The homeward journey began in 1670 amidst a very elaborate farewell in a fitting manner. Sangat from many parts came to bid farewell with moist eyes. This journey was faster than the outward journey. The change inAurangzeb's religious policy to the detriment of non-Muslims, caused considerable concern to Guru Tegh Bahadur. He now wanted to be by the side of his people. The longest halt was at Patna where the Guru rejoined his family and saw for the first time his son, Gobind Rai.The span of the stay in Patna on return journey varies in opinion of different researchers. Then Guru Ji moved towards Punjab visiting different places already discussed in the beginning.

A note on Jaunpur:-

Jaunpur is situated on the banks of the river Gomti. The Gomti, also known as Vashisti, originates from the lake of Pilibhit of Shahjahanpur and touches Kheri, Lucknow, and Jaunpurflowing about eight hundred kilometres before meeting the river Ganga in Saidpur . Guru Nanak visited Jaunpur during his first Udasi from Varanasi and then moved to further east. Few old Sikh families stay at Jaunpur with an old Gurdwara named **MirdangWaliSangat in memory of Ninth GuruTegh Bahadur Ji**. This place was said to be the residence of Bhai Gurbakhs Ji. The Guru Granth Sahib is seated here in a commodious rectangular hall.A platform built inside a separate small room represents the TapAsthan. Near this and the beside river, there is narrow well and a ruined hut.About two acres of land is shown in the name of Gurdwara Bari Sangat under revenue village of Chachakpur. This Sangat is said to be established by one of the prominent early Sikh missionaries, Bhai Gurdas Ji under the patronage of sixth master Guru Hargobind. This place is on the eastern side of the Gomti river.

Guru Tegh Bahadur, along with large group of Sangat, visited Varanasi while coming fromAllahabad and Mirzapur and stayed there for some time. News of Guru Ji's visit spread to all nearby areas. This was followed by large number of Sangat visiting him and paying tributes. The Sangat of Jaunpur visited under the supervision of Bhai GurbakshMasandwith large offerings. They listened to Guru's kirtan with utmost devotion. Guru Ji was so pleased that he blessed them and gifted Bhai Gurbaksh a 'Mirdang' (ancient Indian percussion instrument). From that time the Gurdwara became famous as "MirdangWaliSangat".Again, Guru Ji, while returning toAnandpur Sahib from his entourage of the east from Patna viaArrah, Chapra and Buxar, made a stay at Jaunpur'sMirdangWaliSangat for five days. He blessed the masses of this area under leadership of Bhai Gurbaksh Ji.

After touching few more places Guru Tegh Bahadur Ji moved to Punjab, thus concluding the great holy travels of east India. **Later on his supreme sacrifice infused a new spirit of bravery and valour and became the most distinctive feature of his successor, tenth Master Guru Gobind Singh.**

CONCLUSION

WhereverGuru Tegh Bahadur went, a huge mass fell into his following. These people in UttarPradesh, Bihar, West Bengal, Jharkhand,Assam, Odisha and Bangladesh constitute a very vital historical and spiritual component of the mainstream Sikhism. They might have been in these faraway places for over three centuries in complete isolation from the fountainhead, i.e., theAkal Takht, but they have retained their distinct culture in a different social milieu while adapting and adjusting to the local ones in a most syncretic manner. We are gearing ourselves to celebrate in 2021 the 400thParkash-Purabof Guru Tegh Bahadur. We have already celebrated 350thParkash-Purabof Guru Gobind Singh,and then 550thParkash-

Purab of Guru NanakDev.**But never celebrated the great holy tours of our great Gurus, firstly the 500th anniversary of Guru Nanak's first Udasi and secondly 350th year of holy travels of Guru Tegh Bahadur towards East India. Both these occasions were also important for the Sikhs of this region in terms of our glorious legacy**.We should embrace these distant people with the warmth of love of a brother and commit ourselves to their well-being in all manners possible. There should be a tie-up between Patna Sahib, the undoubted second most important citadel of our religion, and various Gurdwaras of historical importance in the States mentioned above and Bangladesh since they constitute important signposts in the journey of Guru Nanak Sahib some five hundred years ago, and later hallowed by the presence of Guru Tegh Bahadur Ji and Guru Gobind Singh Ji. A would make particular mention of Benaras, Nizamabad,Allahabad in eastern Uttar Pradesh; Rajgir, Sasaram, Gaya,KedliChatti, Laxmipur, Maheshwa (Katihar) and Halhalia(Araria) in Bihar; Dhubri and Naogaon inAssam; Dhaka, Chittagong,Rongpur, Dinajpur and Mymensingh in Bangladesh, Malda, Kolkata, Bishnupur and Chandrakona in West Bengal and Bhadrak, Cuttack and Puri in Odisha.

At many places new Gurdwara buildings are to be established for congregations. Theolder ones in dilapidated conditions are to be restored and maintained. The motive should be to make the Sikh brotherhood aware of their historic relationship. The historic bonding should be preserved. There is large scope for development of Sikhism in Bihar and other places of Eastern India as well. mic.

• • •

THE SIKH HERITAGE OF EAST INDIA

Abinash Mahapatra

When A come across the leitmotif pertaining to the Sikh Historicity of the East India Province, A hark back to the stint while A was deliberately researching on the SikhAntiquity by navigating through every single village èk district èk city, leafing through innumerable governmental revenue chronicles and mustering with the devout souls whose ancestors were matchlessly prosperous for getting contemporarily consecrated by Guru Sahiban, the signatures of which are still prevailing. With themamm othagesof my life surpassed in pungent and insightful explorations on the Sikh Historicity of this unexplored portion of our realm&His grace, A could author a manuscript entitled "The Sikh History of East India".

For the comprehensive exploration, its authenticity and the excavation as well the portray of the uncharted SikhAntiquity of East India, this book has been extensively accredited and admired by Gurdwara Management Board, Takhat Sachkhand Sri HazurAbchalnagar Sahib Ji (Nanded), Shiromani Gurdwara Parbandhak Committee (SriAmritsar Sahib)&Parliament of Official Languages (Ministry of HomeAffairs, Govt. of India). There are eight chapters in this book pertaining to the all-embracing East Indian States escorted by the country of Bangladesh with each chapter being authenticated by the consistent governmental bodies and the Principal Gurdwara Management Committee(s) of the specific realms.

It is for the consciousness of the readers that in East India, the states of Bihar,Assam, Bangladesh Domain, West Bengal, Odisha, Arunachal Pradesh, Sikkim&Andaman Nicobar Islands bequeath a very profound linking with the Sikh Religion which is consistently unyielding in one way or the other. In this very research article, extracts from my book "The Sikh History of East India" connoting to the apiece solitary chapter will be penned in apt which will engross the chronicles of the Guru Period as well as the Post Guru Period. Proffering my empathetic admirations at the lotus feet ofAkal Purakh Sri Waheguru Ji, A put my words on paper indorsing myself as a meagre servant of the Gur Khalsa Panth.

The Sikh Historicity of East India begun when Pehli Patshah, Jagatguru Dhan Dhan Sahib Sri Guru Nanak Dev Ji Maharaj and consecutively Nauwey Patshah, Jagatguru Dhan Dhan Sahib Sri Guru Tegh Bahadur Ji Maharaj stepped into Bihar from the district of Chandauli, Uttar Pradesh. If a chronological sequence is to be followed, then the regions pertaining to the visit of Guru Sahiban will be in the subsequent order- Sasaram, Gaya, Bodhgaya, Rajouli, Nalanda, Patna, Hajipur, Lalganj, Katihar, Munger, Bhagalpur, Sahib Ganj, Lakshmipore, Kantnagar, Baidyanath and Colgong where the consigns of their visit still prevails to mark the unbeatable predominancy of Gur Khalsa Raaj.

Pertaining to the visit of Nauwey Patshah Ji to East India, Sahib E Kamal, Faiz E Noor, Dasam Patshah Sahib Sri Guru Gobind Singh Ji Maharaj has penned the underneath lines in Bachittar Natak of Sri Dasam Granth Sahib Ji,

"Mur Pit Purab, Kiyas Payana,
Bhant Bhant ke Tiratha Nana,
Jab Eh Jat Tribaini Bhaye,
Pun Dan Din Karat Bitaye".

(My father went to the East and visited all sorts of places of Pilgrimage; When He reached Tribaini (Prayag), He contributed His junctures in alms giving).

In the afore mentioned realms of the Indian State of Bihar, ample no. of Historical Gurdwara(s) are persisting in the memories of Guru Sahiban, a few of them encompassing some antique relics as well. The prominent Guru Ghar(s) commemorating the visit of Pehli Patshah Jican be enlisted as "Gurdwara Sri Dev Ghat Sahib" in Gaya, "Gurdwara Bara Sangat"&"Gurdwara Chota Sangat" in Rajouli,

"Gurdwara Sri Guru Nanak Sheetal Kund" in Nalanda, "Gurdwara Bara Sangat", "Gurdwara Chota Sangat" and also a hill entitled as "Guru Nanak Shah ka Pahar" in Bhagalpur and finally, "Gurdwara Sri Guru Nanak Dev Ji" is prevailing in wrecked conditions at the districts of Baidyanath and Raj Mahal.

There prevail abundant historical facts related to the afore stated Gurdwara Sahiban which can be detailly scrutinized in my authored book, "The Sikh History of East India". The Mahant(s), Pandit(s), Maulvi(s) and scholars as well denounced their own mindsets and accepted Hazur Sachey Patshah Ji as their Master. The readers should take into their cognizance that Sahib Sri Guru Nanak Dev Ji Maharaj has neither affronted any religious practice nor was He against any religion. The benevolent Master was in a mission of conjugating the human race with the Supreme&Eternal Truth, the Magnificent Lord,Akal Purakh Sri Waheguru Ji and this legacy was ensued by the subsequent nine Nanak Jyot(s).

Post to the exodus of Pehli Patshah Ji from the state of Bihar, Tiji Patshah, Jagatguru Dhan Dhan Sahib Sri GuruAmardas Ji Maharaj appointed a Parcharak named as Chacha Phaggu Mal Ji who arrived at Sasaram and constructed a Manji for the propa- gation of Nankian Philosophy. He was fortunate to have glimpse of six consecutive Sikh Gurus, i.e., starting from the 3rd Sikh Guru to the 9th Sikh Guru but couldn't have the Darshan of 8th Sikh Guru connoting to a very stipulated jiffy of His Gur Gaddi period.According to the historical chronicles, Baba Gurditta Ji (the devout son of Chhevin Patshah Jagatguru Dhan Dhan Sahib Sri Guru Har Gobind Ji Maharaj) visited Sasaram and camped at the garden of a Nawab.

During the consecrated stay at Sasaram, Baba Gurditta Ji met Chacha Phaggu Mal Ji and used to address the Sangat at the Manji established by him. Even the legend prevails that the third successor of Mahant Dev Gir (the devout persona who had surrendered himself to Pehli Patshah Ji at Bodhgaya) had been to Punjab and was fortunate to have a glimpse of the 7th Sikh Guru, Jagatguru Dhan Dhan Sahib Sri Guru Har Rai Ji Maharaj and accepted Sikhi under His guidance. He was the solitaryearnestGur Sikh who had established 360 Nanak Panthi Matth(s) in the entire state of Bihar for the Sikh Dharam Parchar. In spite of relentless Parchar, Chacha Phaggu Mal Ji was in a somber thirst for Nauwey Patshah Ji's visit.

The thirst of this fervent Gur Sikh was quenched when Sagal Srisht Di Chadar, Nauwey Patshah, Sahib Sri Guru Tegh Bahadur Ji Maharaj descended on the soil of Bihar in the year of 1666 accompanied by Mata Gujri Ji, Mata Nanaki Ji and Sri Kirpal Chand Ji.All the places pertaining to the state of Bihar cited afore have been visited by Nauwey Patshah Ji as well who entered through Sasaram post having a bathe at Karmanasha River. Guru Sahib Ji fragmented the hypocritical views of the Pandit(s) and directed them to rely their faith and devotion only on the Magnificent Lord,Akal Purakh Sri Waheguru Ji. The ghat has been named after Guru Maharaj and there prevails a Gurdwara Sahib commemorating His visit to the stint.

The prominent Guru Ghar(s) commemorating the visit of Nauwey Patshah Ji can be enlisted as "Gurdwara Sri Sangat Sahib" in Chinari, "Gurdwara Taksali Sangat", "Gurdwara Chacha Phaggu Mal Ji", "Gurdwara Purana Guru ka Bagh"&"Gurdwara Purani Bari Sangat" in Sasaram, 'Gurdwara Sri Guru Tegh Bahadur Ji" in Gaya, "Gurdwara Sri Gau Ghat Sahib"&"Gurdwara Sri Guru ka Bagh" in Patna, "Gurdwara Sri Handi Sahib" in Danapur, "Gurdwara Sahib" in Munger, "Gurdwara Bara Sangat"&"Gurdwara Chota Sangat" in Bhagalpur, "Gurdwara Guru Nanak Sat Sangh Sabha" in Sahib Ganj, "Itihaasik Gurdwara Sri Guru Tegh Bahadur Sahib Ji" in Lakshmipore and a wrecked "Gurdwara Sahib" in Raj Mahal constituenciesdenoting toto the state of Bihar.

Nevertheless, of all the afore stated Gurdwara Sahiban are of great Historical Implication, yet the most substantial Gurdwara(s) connote to be of the districts of Lakshmipore, Sahib Ganj&Raj Mahal in Bihar. The Lakshmipore Gurdwara Sahib, is a refuge to variousPuraatan Shastar(s) of Nauwey Patshah Ji as well as of Kalgidhar Patshah Ji, a Huqumnama of Dasam Patshah Ji and a Saroop of Jagatguru Dhan Dhan Sahib Sri Guru Granth Sahib Ji Maharaj which was discovered from the nadirs of River Ganga.An imperative feature of this Saroop relies in the fact that even getting exhumed from a water body, it was enormously integral and fresh as it could be while placed on any terrestrial location.

It was here in Lakshmipore where persisted a Gur Sikh whose name connotes to Sardar Mangal Singh (also presaged as Sardar Ram Singh). He was a devout Khalsa and was present at SriAbchalnagar Sahib Ji when procured the Sachkhand Gamanof Sahib Sri Guru Gobind Singh Ji Maharaj. He had equipped a manuscript which has citation of every solitary incidence that took place at the stint of Hazur Sachey Patshah Ji's Jyoti Jyot. Inscribed in Larivar Gurmukhi Script, this handwritten chronicle affords the meticulous juncture of attack on Hazur Sachey Patshah Ji, the names of the assassin and the contemporary evidence that the verses from Sri Dasam Granth Sahib Ji were articulated on Dasam Pita Ji's Jyoti Jyot.

A reconcile that while A stepped into the jurisdictions of Sahib Ganj&Raj Mahal, A comprehended that the historical Gurdwara Sahiban had been razed down which can be well-thought-out to be the lack of Parchar or not as much of the Sikhi Establishments in these remote areas. Post to a penetrating scrutinization of the revenue records and with the aid of police officials, A could acquire the exact destinations of the historical Gurdwara(s). In Sahib Ganj, the bushed Nishan Sahib upon the almost wrecked "Gurdwara Sri Guru Nanak Sat Sangh Sabha" was enough sufficed to track the Khalsa Raaj in the jurisdiction. Currently, there is no Parkash of Guru Maharaj in the Gurdwara Sahib which has got nearly infringed.

The efforts of unearthing the SikhAntiquity at Raj Mahal were apparent to be mammoth. When A entered the premises of the Gurdwara Sahib, A was flabbergasted to squint the existence of inhabitants in it. The building of Gurdwara Sahib was approximately crushed to soil with the complex void of Nishan Sahib. The lack of any persisting consigns ignited me to get the premise drilled. Post to a penetration of 3 feet, three stone slabs were excavated, the one on which Mool Mantar was engraved, on the second was carved "Guru Nanak Shahi Sangat, Zilla – Raj Mahal"&on the third, Mool Mantar was inscribed. A urge to leaf through my book "The Sikh History of East India" for more explorations on this leitmotif.

The Bihar's Sikh Historicity took endless fillips with the birth of Dasam Patshah Sahib Sri Guru Gobind Singh Ji Maharaj at the residence of Salas Rai Johri, Patna Sahib. Maharaja Ranjit Singh Ji transformed this dwelling into Takhat Sri Harimandar Ji Patna Sahib and the construction work took nearly two years i.e., from Samvat 1896 to Samvat 1898, while the reconstruction was performed on Kartik Samvat 2011 (19th November, 1954) which got accomplished on Posh 7, Samvat 2014 (1957A.D.). A have included in my book, "The Sikh History of East India" the extracts from the British Novelists entitled Charles Wilkins&Dr. F Buchanan who had visited the Takhat Sahib and have penned their majestic experiences.

Apart from these, a detailed history of the Takhat Sahib, list of relics&important dates concerned to it, the influx of Sufi Saint Bhikhan Shah to Patna Sahib, the infantile chronicles of Shahebzaada Gobind Rai Ji and a wide-ranging demonstration of the historicity linked to the Gurdwara Sahib(s) associated with Dasam Patshah Ji, namely "Gurdwara Kangan Ghat Sahib", Gurdwara Maini Sangat" and "Gurdwara Gobind Ghat Sahib" can be accessed from the first chapter of my authored book "The Sikh History of East India". A wish to state that this chapter has been authenticated by the Hon. Chairman of Dharam Parchar Committee (Takhat Sri Harimandar Ji Patna Sahib), Hon. Founder President&members of S.G.P.C.B.

Subsequently, the second chapter of my book, "The Sikh History of East India" is based on the Sikh Historicity corresponding to the state ofAssam. A would like to conscious the readers that this research work of mine was copiously aided by the Hon. Chief Minister ofAssam, Eastern Zone Sikh Pratinidhi Board and the administration of Mataji Gurdwara. The descendance of Sahib Sri Guru Nanak Dev Ji Maharaj in the jurisdiction of Dhubri Sahib on the banks of Brahmaputra River where "Gurdwara Damdama Sahib" and the visit to Danapur where "Gurdwara Barcha Sahib" still persists to honor His Holy visit and the redemption of Noor Shah along with countless archives have been pertinently labelled in this chapter.

Post to His exodus, it was Nauwey Patshah Sahib Sri Guru Tegh Bahadur Ji Maharaj who stepped into this state enrouting through the banks of Brahmaputra River and reached Dhubri Sahib. Here Guru Maharaj was invited by the Mughal appointed administrator, Raja Ram Singh for his rivalry against theAhom Raja, Chakradhwaj Singh. The capitulation of the chief Tantric Lady named Netai Dhobani,

the huge boulder that she flung on Guru Patshah Ji post getting all her spells futile are still prevailing at "Itihaasik Gurdwara Sri Guru Tegh Bahadur Sahib Ji" at Dhubri Sahib,Assam. The Panj Peer(s) who were invited by the Mughal appointed admini strator, Raja Singh too accepted Nauwey - Patshah Ji as their Master.

Correspondingly, A have provided the names of Panj Peer(s) along with their descriptive identities, the historically commemorative Panj Peer Dargah, the visit of Nauwey Patshah Ji to Kamakhya Temple, the prevalence of Sikh Panda (Pandit) who transpires to be the current custodian of a chronicle in Gurmukhi dating back to the epoch of Guru Maharaj (along with the translation).Also, A have penned the conversation of Mahant Jivan Das ofAssam with Kalgidhar Patshah Ji and His Huqumnama(s) related to the state ofAssam and the list of offerings of theAssamese King, Raja Sug Deo which encompassed a golden bowl, a Panj Kala Shastar, the Parsadi Elephant, diamond bracelet, etc., in apt and vivid.

The Sher E Punjab, Maharaja Ranjit Singh Ji also had a great role in shaping the magnificent Sikh History of this state. Legend prevails that theAhom King, Raja Chandrakant Singh had sought help from Maharaja Ranjit Singh Ji to fight against the Burmese Invaders and for this, a troop of 500 Sikh Soldiers were dispatched from Punjab under the supervision of the army commander, Sardar Chaitanya Singh&the only female "Mataji" to which the legislative entries refer to as "Battle of Hidrakchi". Though the conflict was victorious, yet some prescribed to settle in the areas of Borkhola, Hajo, Hathi Para, etc. and then "Mataji Gurdwara" was erected where prevails two of her guns and a flour mill.

A was fortunate to meet with the present descendants of those Sikh Warriors who have been reverentially designated in almost all the fields and follow a mutual cultural system for which they have been named asAssamese Sikhs èkAxomiya Sikhs. The readers of this research article can leaf through the pages of the second chapter of my authored book, "The Sikh History of East India" for a profound scrutinization on the afore cited Sikh Historicity initially from the Guru Period to the stint of Khalsa Raaj Establishment in the state ofAssam. The readers can pay a glimpse over my detailed conversations with the Sikh Panda (Pandit) of Kamakhya Temple and the eminent Sikhs of this state in this book.Also, A wish to state that this chapter in my book has been authenticated by the Hon. Chief Minister ofAssam&the Hon. General Secretary of Sikh Pratinidhi Board, Eastern Zone (Dhubri Sahib,Assam).

The third chapter of my book, "The Sikh History of East India" is based on the Sikh Historicity linked to the realm of Bangladesh. A would like to cognizant the readers that this research work of mine was profuselyaided by the Hon. Chairpe rson of Bangladesh Gurdwara Management Committee and the eminent Sikh Officials of respective Gurdwara Bodies stationed in the country. The places visited by Pehli Patshah, Jagatguru Sahib Sri Guru Nanak Dev Ji Maharaj&Nauwey Patshah, Jagatguru Sahib Sri Guru Tegh Bahadur Ji Maharaj symbolizes to Sylhet, Dhaka, Mymens ingh&Chit tagong.Also, this province is sanctified by the Huqumnama(s) of Dasam Patshah Sahib Sri Guru Gobind Singh Ji Maharaj.

When A stepped into the Government Records Office at Dhaka and accessed the Revenue Records, A was astonished to notice that there all inclusive of 152 Historical Gurdwara Sahiban in this province among which 32 were in Dhaka only. A bewailed to witness that there are only five Gurdwara Sahiban prevailing in this country, related to the visit of Pehli Patshah Ji&Nauwey Patshah Ji. In a chronological sequence, they can be enlisted as "Gurdwara Nanakshahi" &" Gurdwara Sangat Tola" in Dhaka, "Gurdwara Nanak Mandir" in Mymensingh and finally, "Gurdwara Sikh Temple Estate" at Chowk Bazar&"Gurdwara Sikh Temple Estate" at Paharthali in the Chittagong dominions of this country.

A urge the readers to turn over the pages of the third chapter of my authored book, "The Sikh History of East India" for a profound exploration on the antiquity of Sikh Religion in this province. The revenue records of the existing as well as the demolished Gurdwara Sahiban, list of relics and their concerned significance especially of the contemporary portrait of Nauwey Patshah Ji preserved at "Gurdwara Sangat Tola Sahib", the list of Hindu as well as Islamic scholars èk intellectuals who embraced Guru Sahiban as their Master, conversations with their present descendants

&the English paraphrases of Huqumnama(s) related to this province can be gaudily scrutinized from the contents of my authored book.

The fourth chapter of the book, "The Sikh History of East India" emphases on the Sikh Historicity of West Bengal. This state presages to be a vital dominion in Sikh History which has been consecrated by the visits of Pehli Patshah Ji&Nauwey Patshah Ji, the commemorative Gurdwara(s) established in the memory of their visits and the divine love for Sikhi which ensues even post to the exodus of Guru Sahib Ji with hundreds of surpassing years. Generally, the principal city of Kolkata inclines to be the pivoted center of deliberating the Sikh History but the unmappedelement relies in the datum that apart from Kolkata, nine more destinations have been manifestedcorrelating the Udasi(s) of Sikh Gurus.

If a list of eminent Sikh Heritage prevailing in this state is chrono logically arranged, then for Kolkata, it would be "Gurdwara Sikh Sangat", "Gurdwara Guru Nanak Dev Ji", "Gurdwara Bara Sikh Sangat", "Gurdwara Chota Sikh Sangat", "Gurdwara Guru ka Bagh (Baghmari)", "Gurdwara Muni Lal Sikh Sangat", "Gurdwara Guru ka Bagh (Narkeldanga)"&"Gurdwara Rash Bari Sikh Sangat".Also, there are historical Gurdwara(s) in the state, namely, "Gurdwara Guru Nanak Dev Ji" in Kenduli (birthplace of Bhagat Jaidev Ji), "Itihaasik Gurdwara Guru Nanak Dev Ji" in Murshidabad, "Gurdwara Sri Guru Nanak Dev Ji" in Malda "Gurdwara Charan Kamal Sahib Ji (1510)"&"Sri Guru Nanak Gurdwara (Katwa)" in Burdwan and ultimately, it was "Gurdwara Guru Nanaksar (Chandrakona)" in Midnapore. Astoundingly, while glancing the revenue records to exhume the Sikh History of this state, A was blazoned to note that Nauwey Patshah Ji had established Quila Gobindgarh at the dominion where currently persists the British constructed Fort William.

It is hereby earnestly appealed, that the readers may leaf over the fourth chapter of my authored book, "The Sikh History of East India" for a profound exploration on the antiquity of Sikh Religion in this state. A have provided a detailed depiction of the visit of Guru Sahiban to this state, the evidential and authenticated history of the historical Gurdwara Sahiban, the arrival of Sri Dasam Granth Sahib Ji along with a Huqumnama and Shastar of Dasam Patshah Ji at Gurdwara Chota Sikh Sangat, amemoir of theAgrahari Sikhs of Nauwey Patshah Ji, my visits and conversation with the families whose dynasties were directly related to Nauwey Patshah Ji and have been initiated Khande Di Pahul by Dasam Patshah Ji.

A was fortunate to meet in person with these individuals and was empathetically sanctified to record their history as articulated by them. It was their noble assistance that A could prepare a hierarchical tree of this family. A have cited my visit to Rama Krishna Matth and my conversation with the Mahant(s) who revealed infinite sources of unnoticed Sikh History and the reverences of Rama Krishna Lineage including of Swami Vivekananda for our Guru Sahiban which are evidentially persisting in the form of corralled chronicles, letters and the translations of Bani. Corres pondingly, A have cited 42 BengaliAuthors along with their works on Sikh History, Philosophy&Gurbani which is a worth extraordinary facet.

A would like to quote that A have correspondingly cited the summit and dialogue of Pehli Patshah Ji with Vasco Da Gama in this state with apposite evidentiary sources and legitimacy. This specific chapter of my book "The Sikh History of East India" has been authenticated by the Hon. Secretary of "Guru Gobind Singh Study Circle, East India" who was my source of inspiration and influence during my research work. To the readers, A do extend my plea that few of the historical Gurdwara Sahiban pertaining to the state of West Bengal are in a state of ruins which needs to be reinstated at the soonest before getting miserably tumbledown. Post leafing through my book, please proffer your substantial apprehension on this aspect.

The fifth chapter of my book, "The Sikh History of East India" is associated with the Sikh History of my native land i.e., Odisha. For this research work, the Hon. Chief Minister of Odisha, the Hon. Governor of Odisha&my cousin Rashmita Panda (I.A.S.), currently serving as the Director cum C.E.O. of Odisha Skill DevelopmentAuthority were a great source of enthusiasm for me. Generally, if Panthic deliberations commence regarding the state of Odisha, then the SikhiAntiquity gets confined within the district of Jagannath Puri.Apart from this specified jurisdiction, the Sikh Historicity prevails in ten more districts

where consigns of Sikhi Establishments still prevail to commemorate the presence of Khalsa Raaj.

The state of Odisha has been consecrated with the footsteps of Pehli Patshah Ji and Nauwey Patshah Ji.Also, Kalgidhar Patshah Ji has referred to the state of Odisha in His authored, “Sri Dasam Granth Sahib Ji”&“Sri Sarbaloh Granth Sahib Ji”. The most significant aspect related to the Sikh Historicity of this state relies the articulation of SikhAarti at Jagannath Temple premises by Pehli Patshah Ji. The historical Gurdwara(s) in the state of Odisha can be enlisted as, “Odia Gurdwara” at Biranchipur in Balasore, “Gurdwara Guru Nanak Gaadi”&“Gurdwara Guru Nanak Sangat Sahib” in Bhadrak, “Gurdwara Sri Bauli Sahib” in Jajpur, “Gurdwara Sri Guru Nanak Dev Ji” in Chhatia, “Gurdwara Guru Nanak Datan Sahib Ji” in Cuttack, “Gurdwara Sri Bauli Matth Sahib Ji”, “Gurdwara Sri Mangu Matth Sahib Ji”&“Gurdwara Sri Punjabi Matth Sahib Ji” in Jagannath Puri.

However, the historically important Guru Ghar(s) include, “Gurdwara SriAarti Sahib YaadgariAsthaan” at Jagannath Puri is the only Gurdwara Sahib in the entire globe which stationed on the sea shore to commemorate the Holy SikhAarti recited by Pehli Patshah Ji in the Jagannath Temple premises. This Gurdwara Sahib has been constructed by adhering to the Huqumnama of SriAkal Takhat Sahib Ji and Takhat Sri Harimandar Ji Patna Sahib Ji which have been bequeathed upon Sant Baba Shamsher Singh Ji. On the other hand, the “Gurdwara Sahiban” at Sungadia (Mayurbhanj), Bhavani Patna, Garposh and Koraput have been built either by the support of monarchs or the eminent Sikhs visiting this realm.

Sri Chaitanya Mahaprabhu Ji, Sri VallabhAcharya Ji&innumerable saints have met Pehli Patshah Ji at Jagannath Puri and A have inscribed evidentiary chronicles of these in my book.Also, Sher E Punjab Maharaja Ranjit Singh Ji has also visited this state, constructed the borderline wall of Jagannath Temple premises, stayed with his entire troop at Punjabi Matth and also donated the Kohinoor to this Holy Temple. A have depicted all the afore mentioned stances in the fifth chapter of this book in apt with apposite emblematic contemporary sources along with the governmental records and the history pertaining to each of the Gurdwara(s) have also been authenticated by Hon. Jathedar of SriAkal Takhat Sahib Ji.

Persuading to the sixth chapter of my book, “The Sikh History of East India”, A have gaudily depicted the Sikh Historicity pertaining to the state ofArunachal Pradesh.As A have pursued my graduation degree in Zoology Honors from Himalayan University (Itanagar), A have very emotive kin with this state. A reconcile the days while A was on an excursion in the regions of Tawang, Mechuka and Lohit to unearth the massive yet concealed Sikh History and A was empathetically supported by Miss Nomi Neag who served as the Under Secretary to the Hon. Governor ofArunachal and fortunately, A came across Mr. Sagar Singh Kalsi (I.P.S.) who was posted as the Superintendent of Police in Tawang District of this state.

A would like to quote that Sri Ghanshyam Meena (I.A.S.) who served as the Commissioner at Directorate of Research (Dept. of CulturalAffairs), Govt. ofArunachal Pradesh played the role of a momentous protagonist during my research work on the Sikh History of this state. The historical Gurdwara(s) of this state can be enlisted as “Gurdwara Teesri Udasi” in Tawang&“ Gurdwara TapAsthaan Guru Nanak Dev Ji” in Peshombu, Mechuka. The historically important Gurdwara(s) of this state can be considered to be “Gurdwara Guru Nanak Ji Sabha” situated at Pasighat which is the first ever Sikh Gurdwara in the state to be constructed around 1967 and the “Gurdwara Sahib” at Hapoli Road of Ziro Taluka, the foundation stone of which was laid by Lt. Colonel Karamjit Singh of 60 Engineers Regiment on 5th ofAugust in the year of 1969.Also, it is this state where Pehli Patshah Ji met Srimanta Shankar Dev at Parshuram Ghat where they had deliberate discussions and the saint altered his direction of thoughts towards those of Hazur Sachey Patshah Ji.

A would hereby like to bring into the cognizance of the readers that A have inscribed in apt the each and every single stint relating to the Sikh Historicity of this state commencing from the visit of Guru Sahib Ji, the chronicles of the historical as well as historically important Gurdwara Sahiban and also the devotion of the Buddhist Lama èk Rinpoche for Guru Maharaj. For those who wish to pursue further researches pertaining

to the Sikh Historicity of the state ofArunachal Pradesh can refer to my book, "The Sikh History of East India". Craving for the treasured reminiscences associated with this state, A empathetically convey my hearty gratitude to the renowned personalities who still confers to be an integral portion of my life.

Subsequently proceeding to the seventh chapter of my book, "The Sikh History of East India", the Sikh Historicity pertaining to the state of Sikkim has been aptly embodied. The journey of Hazur Pehli Patshah Ji to this realm, the places associated with His consecrated Footprints, the devotion of local Rinpoche(s) èk Lama towards Guru Maharaj and the commemorative Sikh Heritages constructed, namely "Gurdwara Guru Nanak Lama"&" Gurdwara Guru Dang Maar" along with the relics of the Benevolent Master preserved in these Guru Ghar(s) as well as in the Buddhist Monasteries have been vividly depicted in this book inclusive of proper evidential sources&governmental records as well.

The ultimate and eighth chapter of my book, "The Sikh History of East India" reflects on an uncharted yet intensely magnificent Sikh Historicity prevailing in Andaman & Nicobar Islands. Though none of our Guru Sahiban has stepped into this jurisdiction, yet the influx of Dr. Diwan Singh Kalepani and his days of torture for the freedom of India in the central jail rms an integral portion of the gigantic Sikh History. It is to bring into the consciousness of the readers that in this chapter, A have inscribed an inclusive memoir of Dr. Diwan Singh Kalepani with few instances bequeathed upon me by his progenies, the history of Gurdwara associated with him and a vivid depiction of Sikh Establishments in this Union Territory.

May the grace ofAkal Purakh Sri Waheguru Ji befall on the human race.

WAHEGURU JI KA KHALSA
WAHEGURU JI KI FATEH

• • •

Guru Nanak Dev's Voyages towards North-East India.

VAIBHAV SINGH

In my middle school, there used to be a story of Guru Nanak and his desciple and travel-partner, Mardana. Guru Nanak made a trip broadly to spread the message of adoration, empathy and humankind, and to claim the reasons for human existence on Earth. Nanak had acquired huge prevalence and was profoundly regarded by all organizations of society. The information on his visit to any town would arrive at much before his appearance, and individuals used to set up their towns ahead of time to invite him. In one of his Voyages, Nanak alongside his friend and devotee Mardana were getting into a town to have an alternate encounter. The locals of this spot were cold, haughty, and scornful. The town was going by brutal landowners and tricky ministers who didn't care for a sacred man visiting them. They let Nanak into their town according to the predominant traditions, yet showed their presumption and boasting in for sure to demonstrate that he was an unwanted visitor, and that he should leave their town. Nanak invested some energy with them trying to show them reality, however understood that the locals were not able to change by any stretch of the imagination. Thus, he chose to leave from that point. He used to favor individuals of each town prior to continuing ahead to the following. Keeping this custom after leaving the town, he lifted his hand and favored the townspeople, and said, 'Vasderaho' (may you remain and thrive here). Having gotten an amazingly cold and rough treatment from the residents, Mardana was shocked at Nanak's gifts. In any case, he had no idea with regards to why Nanak wished they stay there. Further on their excursion, they reached in another town. The locals here were basic, cherishing, kind, and generous in their conduct. Consistently, the townspeople would get together and pay attention to Nanak's exercises of intelligence. Definitely included, they would ask Nanak their inquiries, and they gained from him how they could change their lives to defeat their sufferings and embrace greatness. Nanak put in a couple of days with them.At the point when he understood his motivation had been served, he bid goodbye to the town. While leaving, in his standard style, Nanak lifted his hand to favor the locals, and said, 'UjadJao' (May you get uprooted). Hearing Nanak's beatitude, Mardana was totally perplexed. Unfit to control his curiosity, he asked, "O Nanak, you favored the individuals who abused us, to remain, and these individuals who have been so pleasant to us, you are favoring them to get dislodged. Why? A can't comprehend the point." Then Guru Nanak gave an insightful answer, "The locals of the past town are ego-centric. Their transcending conscience has shut their brains to new experiences, so there isn't so much opportunity for change. They don't have great qualities and ethics to teach to the World. It is better they stay inside their town, so that, their selfishness doesn't influence others. Oppositely, individuals of this town are acceptable and they convey incredible qualities. On the off-chance if they are uprooted, they will go to different spots.Any place they will go, they will advance others with their high qualities and character. They will bring energy among individuals. They can possibly change the general public for improvement." Mardana, dazed at Nanak's edified vision, fell on his feet and expressed gratitude toward God, for he had the most brilliant educator one might have at any point. Despite the fact that Voyage is normally utilized in a real sense to mean a long and energizing excursion or an outing that includes cruising like a journey, it tends to be utilized metaphorically too. In any event, investigating your genealogy may turn into a Voyage of self-disclosure, taking youand puts you at the point you don't expect and showing you more, than you expected. Same way, the section is entitled as Voyage as Nanak plunged deep down in the World to provide easy access of insights for their kin and to comprehend that 'God is One' irrespective of caste, creed, gender and race.

'Udasi' term is extremely celebrated in Sikkism. Udasi or Udasin is a strict, austere faction, Sampradaya (Custom) which views itself as section of Sikhism, and spotlights on the lessons of its organizer, Sri Chand (1494-1643ACE), Son of Guru Nanak Dev, the principle propagator of Sikhism. He set up the foundation in mid 1600s. The word 'Udasi' is gotten from the Sanskrit word which signifies "one who is apathetic regarding or disregardful of common connections, an emotionless, or a vagabond." In Sikh custom, the term 'Udasi' has likewise been utilized for every one of the four voyages of Guru Nanak. In this sense, Udasi implied a drawn-out and non-attendance from home.A few researchers, including numerous Udasis, follow the beginning of the faction back to the PuraGic age, at the same time, verifiably speaking, Baba Sri Chand was the originator. The significant group of Udasin religious zealots was initially neither Shaiva nor even Hindu, but rather had a place with the Sikh religion. The Udasin are in this way, called Nanakputras, the 'children of Nanak', and they worship the GranthaSaheb, the sacrosanct book of the Sikhs. They were banned by the replacement of Guru Nanak and bit by bit went to Hinduism. Guru Nanak got his thrust from the situation of individuals of world and spread the "genuine message of God". The people of the world were confounded by the contradictory words given by Ministers, Savants, Qazis, Mullahs, and so forth. Nanak was resolved to carry his message to the majority; so in 1499, he chose to set out on his holy mission to spread the heavenly message of harmony and sympathy to the entirety of humankind. It is accepted that Guru Nanak is the second most voyaged individual on the planet; the vast majority of his excursions were made by walking with his disciple and companion Bhai Mardana. He went in each of the four headings - North, East, West and South. The originator Sikh Guru is accepted to have voyaged in excess of 28,000 Kilometers in five significant voyages through the world during the period from 1500 to 1524. The record for the most voyaged individual is held by Ibn Battuta of Morocco. Guru Nanak saw the world enduring out of disdain, zeal, deception and affectation. The world had soaked in mischievousness and sin. So he concluded that he needed to travel and teach and convey the message ofAlmighty Lord. So he set out in 1499 on his central goal for the recovery of humankind on this planet. He led the truth, sublime-love, harmony and happiness for humankind. For 1 year he spread his message of harmony, empathy, uprightness and truth to individuals in and around his home. Nanak told peoplethat God is one and we're his children. He went with the one of Sabad (Verse) in Guru GranthSahab.

अव्वल अल्लाह नूर उपाया कुदरत के सब बंदे।
एक नूर ते सब जग उपजया कौन भले को मंदे।।1।।

This basically means "ONEALLAH (GodèkCreator) HAS CREATED HIS OWNAURAèkRADIANT INCLUSIVE OF HIS ENTIRE CREATION. HIS CREATION UNDER HIS LAWS OF NATURE CONSISTS OFALL HUMANITY. SO HOW TO SAY WHOARE GOODAND WHOARE BAD (On premise of RaceèkReligionèkCaste and so on)" This Sabad clears all goals. Master Nanak conveyed this in air all over, he went. In his second and third Udasis, he went to North-Eastern Part of India. He voyaged toAssam, Sikkim, Tibet and Bhutan till South-West China and conveyed this message from the beginning.

In this manner, Srimanta Shankar Dev is parallel and corresponding to him. He's likewise one of the beacons of India. He also voyaged miles for individuals' edification.After his first journey, he inferred that God is one. He spread 'Ek Sharan Naam Dharma' and told individuals the significance of one God. 'EkSharana Dharma' (in a literal sense: Shelter-in-One religion) is a neo-Vaishnavite religion spread by Srimanta Shankar Dev in the fifteenth-sixteenth century in the Indian province ofAssam. It rejects center around Vedic-ceremony and spotlights on commitment (Bhakti) to Krishna as congregational tuning-in (Shravan) and singing his name and deeds (Kirtan). To some degree, Hindu Scripture advocates exactly the same thing. They adviseus to respect each type of Gods and ideologies yet have faith in one. In ShrimadBhagvadGeeta, Krishna announces:

सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंष्षरणंव्रज
अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिज्यामिमिमाशुचः।।2

This means "Abandoning dependence on all duties that is Dharma take refuge in me alone. A shall liberate you from your sins; therefore grieve not. "Lord Krishna has depicted different sorts of information, cycles of religion, information on the Supreme Brahman, information on the Super-soul, information on the various kinds of orders and situations with public activity, information on the disavowed

request of life, information on non-attachment, sense and brain control, reflection, and so forth He has depicted from multiple points of view various kinds of religion. Presently, in summing up Bhagavad-gita, the Lord says thatArjun should surrender every one of the cycles that have been disclosed to him. He ought to just acquiescence to Krishna. That give-up will save him from a wide range of wicked responses. In the Eighth Chapter, it was said that one in particular, who has gotten liberated from all evil responses can take to the love of Lord Krishna. Hence one may believe that except if he is liberated from all corrupt responses he can't take to the giving-up measure. There is no need of demanding exertion to liberate oneself from wicked responses. One ought to unhesitatingly acknowledge Krishna as the pre-eminent friend in need of every living element. With confidence and love, one should give-up unto Him.As indicated by the reverential cycle, one ought to just acknowledge such strict rules that will lead eventually to the reverential help of the Lord..Anything that doesn't prompt the perfectional phase of Krishna's awareness, ought to be kept away from. One ought to be certain that in all conditions Krishna will shield him from all challenges. There is no need of reasoning how one should keep the body and soul together. Krishna will see to that. One ought to consistently think himself vulnerable and ought to consider Krishna the lone reason for his advancement throughout everyday life. When one genuinely draws in himself in reverential support of the Lord in full Krishna cognizance, on the double, he gets liberated from all defilement of material nature. There are various cycles of religion and purificatory measures by development of information, contem plation in the spiritualist yoga frame work, and so on, however one who gives up unto Krishna doesn't need to execu te such countless strategies. That straight forward acquiescence unto Krishna will save him from pointlessly foolish things around. One would, thus be able to gain all headway immediately and be liberated from all wicked responses.

This is same thing engendered by Srimanta Shankar Dev by his 'Ek Sharan Naam Dharma' and by Guru Nanak Dev also. This basic and practical path of both Guru Nanak and Srimanta Shankar Dev attracted both Hindus and Non-Hindus effectively into its libertarian crease. The amateurs keep on being accepted into the confidence by an inception-function called Xoron-Lowa (In a literal sense: take-shelter), typically directed by Sattradhikars, heads of monastic organizations called Sattras, who for the most part draw biblical genealogy from Shankar Dev. Some Sattrad hikars, particularly those from the Brahma-sanghati, reject biblical heredity from Shankardev because of an early break with the ideaology. Some advanced reconstruc tion-establis hments direct Xoron-Lowa outside the Sattra foundation. Foundations proliferating 'EkSharana' like Sattra (Religious communities) and villagesNamghar (Prayer Houses), had significant impact in the advancement of the social cosmetics ofAssam. The imaginative manifestations exuding from this development, prompted causing of new types of writing, music (Borgeets or Celestial Songs), theater (AnkiaNaat) and dance (Sattriya dance). The focal text of this religion is Bhagavat of Shankar Deva, which was delivered from the Sanskrit Bhagavata Purana by Srimanta Sankardeva and other early individuals from the Ek Sharan School. This book is enhanced by the two books of melodies for congregational singing: KirtanGhoxa by Shankar Dev and NaamGhoxa by Madhab Dev. These books are written in the Assamese language.

The religion is likewise called Mahapuruxiya in light of the fact that it depends on the love of the Mahap urux or Mahapurush (Sanskrit: Maha: Supreme and Purush: Being), a sobriquet of the incomparable profound character in the Bhagavata and it's followers are normal called Maha puruxia, Sankari and so forth. In course of time, the designation 'Mahapurux' came additionally to be optionally applied to Shankar Dev and Madhab Dev, the key preceptors. Non-adherence to the Hindu Varna-System and dismissal of Vedic-Karmakannd marked its true character. Despite the fact that frequently seen as a piece of the more extensive and Pan-Indian Bhakti Movement, it doesn't revere Radha with Krishna which is normal in other Vaishnava schools. It is described by the Dasya type worship. Generally, it has been against caste-system, and particularly against Bali-Pratha (Animal Sacrifice) normal in different groups of Hinduism, particularly Shaktism. Noted for its egalitarianism, it posed a serious challenge to Brahminical Hinduism, and converted into its fold people of all castes, ethnicity and religion (inclu ding Islam).

Same way, Guru Nanak travelled with a light beam to enlighten the path of commons. In 1500, he embarked on his Divine Mission and went towards east, west, north and south and visited various centers of Hindus, Muslims, Buddhists, Jainis, Sufis, Yogis and Sidhas. He met people of different religions, tribes, cultures and races. He travelled on foot with his Muslim companion named Bhai Mardana, a minstrel. His travels are called Udasis. In his first Udasi (travel), Guru Nanak covered east of India and returned home after spending about 6 years. He started from Sultanpur in 1500 and went to his village Talwandi to meet and inform his parents about his long journey. His parents wanted their young son to provide comfort and protection for them in their old age and so they told him they would prefer it if he did not go. But he told them that the world was burning in the fire of Kalyug and that thousands and thousands were waiting for the Divine message of theAlmighty for comfort, love and salvation. The Guru, therefore, told his parents, 'There is a call from Heaven, A must go whither He directs me to go.' Upon hearing these words, his parents agreed and gave their blessings. So Guru Nanak started his mission and the roots of Sikhism were laid down first towards the east of India.

According to the 'Puratan Janams akhi', which is one of the oldest accounts of the life history of Guru Nanak, Guru Ji undertook five missio nary journeys (Udasis) to the far away places of Ceylon (Sri Lanka), Mecca, Baghdad, Kamroop (Assam), Tashkand and many more. He travelled far and wide to spread the word of Gurbani and covered most of India, present day Bangladesh, Pakistan, Tibet, Nepal, Bhutan, South West China,Afganistan, Iran, Iraq, SaudiArabia, Egypt, Israel, Jordan, Syria, Kazakhstan, Turkmeni stan, Uzbekistan, Tajikistan, and Kyrgyzstan.

It is quite possible that the passing of Srimanta Shankar Dev's wife expanded his generally existing profound tendency and Srimanta Shankar left for a twelve-year-long journey, at some point after his little girl was married to Hari, a Bhuyan scion. He gave over the support of his family to his child in-law Hari; the BhuyanShiromaniship to his grand uncles Jayanta and Madhav; and started his excursion in 1481. He was joined by seventeen others including his companion and partner Ramaram and his instructor MahendraKandali. Now of time, he was 32. The journey took him to Puri, Mathura, Dwaraka, Vrindavan, Gaya, Rameswaram ,Ayodhya, Sitakunda and practically the wide range of various significant seats of the Vaishnavite religion in India. He appear to have spent numerous years at Jagannath-kshetra at Puri, where he read and disclosed the Brahma-Purana to the ministers and lay-men.At Badrikashram in 1488, he formed his first Borgeet. "manameri ram charanahi lagu"3.inBrajavali.As per Katha-Gurucharit, the primary Borgeet was "ram merihridayapankaje baise"4.and he created it in 1481 at the actual beginning of the journey at a spot called Rowmari. He got back toAlipukhuri after 12 years. By then his family had moved back toBordowa in his absence. During his pilgrimage, he became the part of a pan-Indian Bhakti movement and helped it blossom.After his exposure to the detailed Bhagavat-Puran and Shrid hara Swami's commentary Bhavar tha-Dipika, Shankar Dev created a dance-show called Chihna Yatra, for which he painted the Sapta-Vaikuntha (Seven-Skies), directed the creation of instruments and played the instrum ents himself.As per different biogra phers, Shankar Dev created Maha-Nata in the presence of Jagdish Mishra, in the temple he had built atAlipu khuri.As indicated by MaheshwarNeog, "This was the point when Sankardev decided to preach a new religion. Some of the first to be initiated into this religion was the wife of Jayanta-Dalai, a leper named Hariram (Later Tula siram), Ramaram his associate and MahendraKandali, his teacher."5. The 13 years atAlipukhuri was the period during which he thought about profoundly Vaishnavism and on the structure that would best suit the moral requirements of individuals. Anant Kand ali, a significant researcher of Sanskrit, turned into his pupil during this time; he deciphered the later piece of Canto X of the Bhagavat-Puran after consul ting Shankar Dev.

In many ways, Srimanta Shankar Dev is parallel to Shri Guru Nanak Dev. Both travelled a lot for the sake of mankind. Both were the light houses of India and eminent parts of Bhakti Movement. They travelled a lot for people's enlightenment.After his first pilgrimage only, Shankar Dev concluded that God is one. He propagated 'Ek Sharan Naam Dharma' and told people the importance of one God. Even in Sikkism, only the holy text 'Guru GranthSahab' is Guru now and its nothing but compilation of Sabad (Words) of 100 poets and

devotees of Bhakti Movement. They both recognized the importance of celestial words that are self-sustaining and ever-relevant.An eminent scholar of Sikhism Professor Puran Singh writes about Guru Nanak, “A new life came to the people, in him they found their God, their world, and their lost souls, Inhim, they began anew; and in him they ended”.6. Both worked for the betterment of people’s life. Nanak ensured the words for a successful and fruitful life beyond the quarrelsome society based on caste and religion and likewise In the Eastern front of India, SrimantaShankar Dev ensured the representation of tribes and subalterns in the mainstream.

References:

1. Shri Guru GranthSahib,Ang: 1349
2. Shrimad Bhaagvad-Geeta, Chapter: 18, Verse: 66
3. Borgeet,Assam Publishing Company (2015), Page No. 14
4. Borgeet,Assam Publishing Company (2015), Page No. 15
5. Neog, Maheshwar : Sankardeva and His Times, LBS Publications, 2nd Edition (2018) Page No. 118
6. Singh, Puran : The Book of Ten Masters, Createspace Independent Publications (2017), Page No. 86

• • •

लेखक परिचय

1. **प्रो. जगबीर सिंह,** कुलाधिपति, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, भटिंडा, पंजाब
2. **प्रो. कपिल कपूर,** शिक्षाविद, पूर्व उपकुलपति, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
3. **डॉ. हरमोहिंदर सिंह बेदी,** कुलाधिपति, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश
4. **मनमोहन सिंह,** स्पेशल डायरेक्टर, मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर, भारत सरकार
5. **प्रो. करमजीत सिंह,** कुलपति, जगत गुरु नानक देव पंजाब स्टेट ओपन विश्वविद्यालय, पटियाला
6. **डॉ. अमृत कौर रैना,** शिक्षाविद एवं इतिहासकार
7. **डॉ. हरबंस कौर सागू,** एसोसिएट प्रोफेसर, गुरु तेगबहादुर खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
8. **प्रो. सुधीर कुमार,** अंग्रेजी विभाग पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ 160014 (भारत) मो. 8054368260
9. **तरुण विजय,** पूर्व सांसद (राज्यसभा)
10. **डॉ. सुरजीत कौर जोली,** पूर्व प्राचार्या श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
11. **डॉ. परमवीर सिंह,** सिख विश्वकोश विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला
12. **प्रो. रविंदर सिंह,** पंजाबी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
13. **डॉ. गुरजीत कौर,** एसोसिएट प्रोफेसर, पंजाबी विभाग, माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
14. **प्रो. पूरन चंद टंडन,** हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
15. **हरकीरत हीर,** गुवाहटी (असम)
16. **डॉ. आलोक सिंह,** हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय,शिलांग मेघालय
17. **डॉ. रुचिरा ढींगरा,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
18. **डॉ. साधना गुप्ता,** सहायक आचार्य व गोल्डन, बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में नामांकित, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़
19. **कुलमोहन सिंह,** पूर्व मैनेजर, पंजाब एंड सिंध बैंक
20. **डॉ. नीतू गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दौलत राम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
21. **डॉ. विदुषी शर्मा,** विशेषज्ञ, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
22. **डॉ.अवधेश कुमार अवध,** मैक्स सीमेंट (प्लॉट) फोर्थ फ्लोर, एलबी प्लाजा, जीएस रोड, भंगागढ़ गुवाहाटी (असम)
23. **विवेक शर्मा,** शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
24. **अग्निशेखर**, कश्मीरी कवि और गद्यकार
25. **संतोष बंसल,** स्वतंत्र लेखिका, दिल्ली
26. **पपिंदर सिंह,** आई.ओ.सी.एल. (ए.ओ.डी.), डिगबोई, असम
27. **आदित्य नाथ तिवारी,** शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
28. **जयरामदास,** आर्थिक इतिहासकार
29. **मणि कुमार,** शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
30. **प्रो. के.पी. सिंह,** सूचना विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
31. **जगमोहन सिंह गिल,** सामाजिक इतिहासकार, कोलकाता
32. **अविनाश महापात्रा,** युवा इतिहासकार
33. **वैभव सिंह,** हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्राग्ज्योतिका : मुख्य आवरण पृष्ठ

गुरुद्वारा धुबड़ी साहिब : आवरण पृष्ठ पर असम के सुप्रसिद्ध गुरुद्वारे धुबड़ी साहिब का चित्र है। यह गुरुद्वारा गुरु नानकदेव जी और गुरु तेगबहादुर जी की स्मृति में निर्मित है। गुरु नानकदेव जी के यहां आगमन के बाद इस स्थान को दमदमा साहिब भी कहा जाता है। ऐसी लोककथा है कि यहाँ एक महिला ने गुरु तेगबहादुर जी पर प्रहार किया पर उन्हें कोई हानि नहीं हुई। गुरुजी ने जब कोई प्रतिकार नहीं किया तब महिला ने गुरुजी से क्षमा मांगी। वह महिला कपड़े धोने का कार्य करती थी। महिला के कपड़ा धोने के कार्य के सम्मान में उनके कर्म के नाम पर धुबड़ी शहर का नाम रखा गया।

अंतिम पृष्ठ का परिचय

1. **गुरुद्वारा बरछा साहिब, धानपुर, असम :** अपनी ढाका यात्रा के उपरांत गुरु नानकदेव जी धानपुर नामक स्थान पर भी गए थे। लोकमान्यता के अनुसार यहाँ की रानी नूरशाह काले जादू में माहिर थी। उसने अपने काले जादू से गुरुजी को प्रभावित करना चाहा पर सफल नहीं हो पाई। नूरशाह श्री गुरु नानकदेव जी से प्रभावित हुईं और उनकी शिष्या बनीं। नूरशाह के अनुरोध पर गुरुजी ने अपना बरछा उन्हें भेंट कर दिया। इसी कारण इस गुरुद्वारे का नामकरण गुरुद्वारा बरछा साहिब हुआ।
2. **गुरुद्वारा नानक शाही, ढाका, बांग्लादेश :** यह वर्तमान बांग्लादेश का सबसे बड़ा गुरुद्वारा है। इसे गुरु नानकदेव जी के आगमन की स्मृति में बनाया गया था। इस गुरुद्वारे में गुरु तेगबहादुर जी के चरणचिह्न हैं।
3. **गुरुद्वारा बड़ी सिख संगत, कोलकाता :** गुरु नानकदेव जी और गुरु तेगबहादुर जी की पूर्वोत्तर यात्रा का प्रत्यक्ष प्रमाण रहे इस गुरुद्वारे का रोचक इतिहास है। गुरु नानकदेव जी ने यहाँ अपने प्रवास के समय महामारी ग्रस्त लोगों का उपचार किया और उपदेश दिए।
4. **गुरुद्वारा चाचा फग्गुमल साहिब, सासाराम, बिहार :** यह गुरुधाम गुरु तेगबहादुर जी के प्रति चाचा फग्गुमल की श्रद्धा का प्रतीक है। इनके पूर्वजों ने गुरु नानकदेव जी के समय सिख मत अपनाया था और उनकी प्रचार–यात्रा के समय यह मसंद था। पंडित फग्गुमल जी की श्रद्धा का सम्मान करते हुए गुरु तेगबहादुर जी ने यहाँ आकर उन्हें दर्शन दिए।

सूचना

1. यह पत्रिका विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मानकों के अनुसार 'पीयर रिव्यूड एंड रेफ्रीड' शोध पत्रिका है।
2. पत्रिका में प्रकाशित होने वाले लेखों का प्लेगरिज्म (Plagiarism) परीक्षण अनिवार्य है।
3. शोध लेख हिंदी अथवा अंग्रेजी भाषा में होना चाहिए।
4. शोध संदर्भ, तथ्य, वक्तव्य आदि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।
5. शोध लेख मौलिक एवं अप्रकाशित होना चाहिए।
6. लेख में शोध संदर्भो का उपयोग अकादमिक शोध नियमों के अनुपात में होना चाहिए।
7. शोध लेख के साथ लेखक अपना संक्षिप्त परिचय, पासपोर्ट आकार का फोटो, ईमेल तथा मोबाइल नंबर अवश्य भेजें।
8. शोध पत्र 2500 से 5000 शब्दों तक का हो सकता है। कंप्यूटर पर अंकित शोध सामग्री ही स्वीकार की जाएगी। इसके लिए हिंदी में यूनिकोड अथवा मंगल फॉन्ट का प्रयोग किया जाना चाहिए।
9. आप लेख pragjyotikapatrika@gmail.com पर भेज सकते हैं।
10. प्रत्येक अंक की सूचना पत्रिका की वेबसाइट www-pragjyotikapatrika.com पर उपलब्ध रहेगी।
11. शोध पत्रिका की किसी भी सामग्री का बिना अनुमति अन्यत्र प्रकाशन अनुचित है।
12. शोध पत्र हमारी विशेषज्ञ समीक्षा समिति (peer & Review committee) के द्वारा द्वि–स्तरीय समीक्षित होकर प्रकाशन हेतु स्वीकृत किया जाता है।
13. पत्रिका के सभी पद अवैतनिक एवं परिवर्तनीय हैं।
14. पत्रिका का प्रकाशन पूर्णतः अव्यवसायिक है।

ਦਸ ਗੁਰੂ ਦਰਸਨ
ਗੁਰੂ ਅੰਗਦ ਦੇਵ ਜੀ
ਗੁਰੂ ਹਰ ਗੋਬਿੰਦ ਜੀ
ਗੁਰੂ ਅਮਰ ਦਾਸ ਜੀ
ਗੁਰੂ ਹਰਿ ਰਾਇ ਜੀ
ਗੁਰੂ ਰਾਮ ਦਾਸ ਜੀ
ਗੁਰੂ ਹਰ ਕ੍ਰਿਸਨ ਜੀ
ੴ
ਸਤਿ ਨਾਮ
ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ
ਗੁਰੂ ਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਜੀ
ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ